मार्च १९५३

वर्ष ४ अंक ५

★

महावीर का अमर संदेश

सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता न हंतव्वा, न अज्झावेयव्वा, न परिघेत्तव्वा, न उद्दवेयव्वा। एस धम्मे सुद्धे, नितिए, सासए, समेच्च लोगं खेयन्नेहिं पवेइए।

किसी प्राणी, किसी भूत, किसी जीव, किसी सत्त्व को न मारना चाहिए, न सताना चाहिए, न कैद करना चाहिए, न कष्ट पहुँचाना चाहिए, न डराना चाहिए। यही धर्म शुद्ध है, नित्य है, शाश्वत है, अनुभवी व्यक्तियों द्वारा संसार का स्वरूप समझ कर बताया गया है।

—आचारांग

सम्पादक

मोहनलाल मेहता एम. ए.

★

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम

बनारस–५

इस अंक में—

१. वीर वर्धमान (कविता)—श्री मोहनलाल मेहता एम. ए. १
२. महामानव की मानसिक भूमिका—डॉ० राजबली पांडेय एम०ए०, डि०लिट् ३
३. संन्यास मार्ग और महावीर—प्रो० दलसुख मालवणिया ७
४. स्वप्न और सत्य (गद्यकाव्य)—श्री विज्ञानचन्द्र भारिल्ल १२
५. जैन शिक्षण संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा—श्री धनदेवकुमार 'सुमन' १३
६. आत्म-धर्म (कहानी)—श्री जयभिक्खु १७
७. दौरे के संस्मरण—श्री हरजसराय जैन, बी०ए० २३
८. महावीर (गीत)—श्री रंजन सूरिदेव २७
९. सच्ची साधना का प्रभाव—श्री राजाराम जैन २८
१०. महावीर और क्षमा—श्री भूपराज जैन ३०
११. भगवान महावीर और वर्तमान युग—श्री नरेशचन्द्र जैन ३५
१२. अपनी बात (सम्पादकीय)— ३७
१३. विद्याश्रम-समाचार— ४१

श्रमण के विषय में—

१. श्रमण प्रत्येक अंगरेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है।
२. ग्राहक पूरे वर्ष के लिए बनाए जाते हैं।
३. श्रमण में सांप्रदायिक कदाग्रह को स्थान नहीं दिया जाता है।
४. लेखादि प्रकाशित करना या न करना संपादक की इच्छा पर निर्भर है।
५. प्राप्त हुए लेखादि वापिस नहीं भेजे जाते। लेखादि भेजते समय उनकी एक प्रति अपने पास रख लेना ठीक होगा।
६. अप्रकाशित रचनाएँ ही श्रमण में प्रकाशित होने के लिए भेजी जानी चाहिए।
७. संपादन-संबन्धी पत्र-व्यवहार सम्पादक से करें एवं व्यवस्था संबन्धी पत्र-व्यवहार व्यवस्थापक से करें।
८. ग्राहक पत्र-व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक-संख्या लिखना न भूलें।

वार्षिक मूल्य ४) **एक प्रति ।=)**

प्रकाशक—**कृष्णचन्द्राचार्य,**
श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस-५
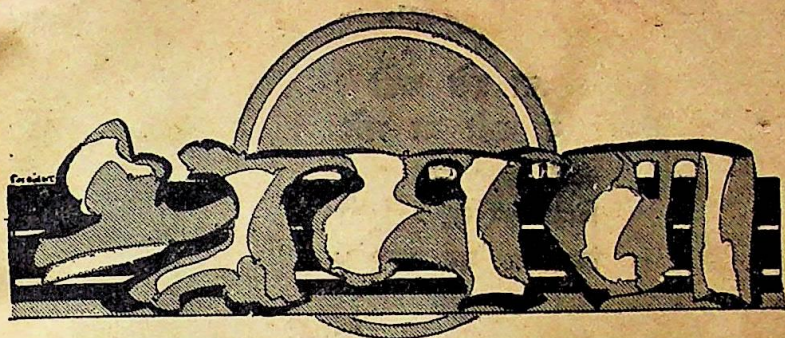
श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस का मुखपत्र

मार्च १९५३ | वर्ष ४ अंक ५

वीर वर्धमान

एक नए राग से
ध्वनित आकाश अहो !
हो रहा प्रकाश
पूर्ण लोक प्रकाशित अहो !
पवन के प्रवाह से
जगत् सुवासित अहो !
कौन सी विभूति अरे–
नूतन प्रकाश लिए
एक नया राग लिए
धरणी पर आ गई
एक नया हास लिए !
पुण्य खिलखिला उठा
पाप बिलबिला उठा
सुर-समूह तुष्ट हुआ
मानव संतुष्ट हुआ
असुर तिलमिला उठा

कल्पना इसे कहो
सत्य कहो या भले
भाव तो प्रवाह में
मिल कर नई राह में
खिल कर नई चाह में
चल पड़े वह चले
तन का वह रूप अरे
छाई है वदन पर
सहज सरल रूप राशि
कवि की कमनीय
मृदुल
कल्पना की दिव्यराशि
धन्य हुई आज धरा
पा नई परम्परा
अथवा
प्राचीन कहो
चली हुई आ रही
पली हुई आ रही
कभी लूटती हुई
कभी बिखरती हुई
या कि लुटाती हुई
कभी निखरती हुई
टली हुई आ रही
ज्ञान की परम्परा
ध्यान की परंपरा
दर्शन के साथ साथ
दान की परम्परा

—मोहनलाल मेहता एम० ए०

कर्णाटक की मूर्तिकला में

महामानव की मानसिक भूमिका

डॉ० राजबली पाण्डेय, एम. ए. डी. लिट्.

कर्णाटक के जीवन और संस्कृति को जैन धर्म से बड़ी प्रेरणा और बहुत सामग्री मिली है। विशेषकर मूर्ति-कला तो उससे बहुत ही प्रभावित है। जीवन में स्वच्छ और सादे आचरण, त्याग और तपस्या तथा मनुष्य के पुरुषार्थ से ऐश्वर्य की प्राप्ति मतिकला में बड़ी सफलता और प्रभावोत्कारिता के साथ अङ्कित है। इनमें से ऐश्वर्य ने मूर्तिकला में चमत्कारी प्रभाव दिखलाया है। मनुष्य स्वभावतः अपने शरीर—साढ़े तीन हाथ के पुतले—की शोभा में सन्तुष्ट नहीं रहता। उसकी बुद्धि और भावना इन्द्रियों के झरोखों से बार बार बाहर झाँकती हैं। वह अपने शरीर और मन के अतिरिक्त बाहर के संसार पर भी आधिपत्य स्थापित करना चाहता है; वह केवल मनुष्य नहीं, ईश्वर होना चाहता है। इसी प्रयत्न में मानव बड़े मापदण्ड से अपने शरीर और व्यक्तित्व की कल्पना करता है। मानव से महा मानव होने की यही प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया कर्णाटक की जैनमूर्ति-कला में स्पष्ट दिखाई पड़ती है। इन में से कुछ महामूर्तियों का उल्लेख नीचे किया जाता है—

गोम्मटेश्वर अथवा बाहुबली की महामूर्तियाँ श्रवणबेलगोला, कारकल और येणूर नामक स्थानों में मिलती हैं। इनमें से प्रथम ५६½ फीट, द्वितीय ४२½ फीट तथा तृतीय ३५ फीट ऊँची है। ये तीनों एक एक विशाल प्रस्तर-खण्ड को काट कर निर्मित हुई हैं। सबसे बड़ी मूर्ति तौल में १०० टन से अधिक ही होगी। इन महाकाय प्रस्तर-खण्डों अथवा मूर्तियों को पहाड़ियों के शिखरों पर चढ़ाना स्वयं एक महाकर्म है। इस संबंध में फर्ग्युसन आश्चर्य के साथ लिखता है—"अपने स्थान में खड़ी इनसे दूने आकार की शिलाओं को काट कर उनको रूप देने में हिन्दू मस्तिष्क कभी विचलित नहीं होता; किन्तु इतने विशाल पिण्ड को पहाड़ी के चिकने और खड़े ढाल से चढ़ाना उसकी

शक्ति के भी बाहर दिखाई पड़ता है, यद्यपि एक स्थान पर अगणित मानव-समूह को एकत्रित करने में वह बहुत कुशल था।"[१] फिर भी स्थानीय अनुश्रुतियों के अनुसार यह सत्य है कि ये मूर्तियाँ निर्मित होकर पहाड़ियों पर चढ़ाई गयी थीं। कारकल की मूर्ति के संबन्ध में यह कहा जाता है कि इसको ऊपर चढ़ाने में बीस लोहे की गाड़ियाँ लगायी गयी थीं, जिनके पहिये भी दृढ़ लोहे के बने हुए थे। गाड़ियों के ऊपर रूई की मोटी ढेर पड़ी हुई थी। गाड़ियों को महती शक्ति प्राप्त हो इसलिए प्रत्येक पर दस सहस्र नारियलों (मानव मुण्ड के प्रतीक) की बलि चढ़ायी गयी। फिर असंख्य भक्तों ने अपना कंधा लगाया और घोर तथा अथक परिश्रम करके मूर्ति को उसके वर्तमान स्थान तक पहुँचा कर उसको निश्चल सीधा खड़ा किया।[२]

इन महामूर्तियों की कल्पना, उनका निर्माण और उनका पर्वत शिखरों तक वहन तथा उनका वर्तमान स्थान में स्तम्भन सभी बातें सामान्य मानव की बुद्धि और शक्ति के बाहर जान पड़ती हैं। इसलिये कर्णाटक के लोक गीतों में इन मूर्तियों के निर्माण और स्थापना के संबन्ध में मानवेतर शक्ति की कल्पना की गयी है। लोक-गीतों के अनुसार इन मूर्तियों का निर्माता कालकूड नामक दानव था। उसके द्वारा मूर्ति निर्माण की कथा इस प्रकार मिलती है—"बेलूर और बेलगुल के राजा ने कल्लट्ट मारनाड के प्रस्तर-शिल्पी कालकूड को अपने यहाँ आमंत्रित किया। उसने अपने कंधे पर सूत्र रखा जिससे लोग उसकी जाति जान जाएँ। इसके बाद उसने छत्र धारण किया। उसने अपने फावड़े की धार पैनी की और उसे कंधे पर रखा। रुखानी की धार तेज करके उसको झोले में रखा। उसने अपना फरसा (परशु) भी तेज किया और अपने कंधे पर रखा। उसने मापने के लिये धागा और दण्ड लिया। अपने वेषागार में उसने अपना वस्त्र पहना। तत्पश्चात् अपनी स्त्री से कहा, 'मैं बेळगुळ राज्य में जा रहा हूँ।' वह बेळगुळ पहुँचा। पत्थर की बारह सीढ़ियाँ चढ़कर उसने राजप्रासाद का द्वार पार किया। चित्रित चावडी से होकर आगे बढ़ा। बहुमूल्य पत्थर के बने

---

१. A History of Indian and Eastern Architecture. II, PP. 72--73.

२. Thurston. The Castes and Tribes of Southern India, II, PP. 422--23.

हुए एक स्तम्भ से होता हुआ एक विस्तृत आँगन को पार किया। वहां पर राजा मयूरपक्ष से युक्त सिंहासन पर विराजमान था। दानव ने अपने हाथ उठा कर उसे नमस्कार किया। राजा ने उत्तर में कहा, 'कालकूड! आओ और आसन पर बैठो।' 'मुझको आपने किस लिये बुलाया?' कालकूड ने राजा से पूछा। राजा ने उत्तर दिया—यह सन्ध्या है और भोजन का समय हो गया है। पाँच सेर चावल लो और अपने स्थान पर जाओ। क्या काम करना है कल प्रातः बतलाऊँगा और तुम ठीक तरह काम करना। दूसरे दिन प्रातः राजा ने उसको पाँच काम करने को बतलाये—१००० स्तम्भों और १२० मूर्तियों से युक्त एक विशाल मंदिर, सात मूर्तियों के साथ सात मंदिर, भीतर एक छोटा मंदिर और बाहर एक उपवन, आँगन में एक हाथी और एक महाकाय गुम्मत नामक मूर्ति। राजा ने उसको इस प्रकार काम करने को कहा कि यदि सम्पूर्ण वास्तु मंदिर में एक द्वार खोला जाय तो एक सहस्र द्वार बन्द हो जाँय और यदि एक सहस्र द्वार खोले जाँय तो एक द्वार बन्द हो जाय।......... कालकूड ने अपने प्रस्तर का चुनाव स्वयं किया। वह एक बड़ी चट्टान के पास पहुँचा जिसको पेर्य कल्लुणी कहते थे। चारों दिशाओं में उसने देवताओं का स्मरण किया। इसके पश्चात् उसने चट्टान में दरार का पता लगाया। उसमें रुखानी रखा और फरसे से आघात किया। पत्थर-खण्ड अलग हो गये जिस प्रकार मांस रक्त से अलग हो जाता है। उसने बहुत सुन्दर काम किया और राजा के आदेशानुसार सभी मंदिरों, मूर्तियों आदि का निर्माण किया।[1]

महामूर्तियों का निर्माण और उसके संबन्ध में लोक-गीतों में कल्पना एक बात को स्पष्ट करती है। मनुष्य अपनी भौतिक सीमा को पार कर महामानव होना चाहता है। ५६½ फीट ऊँची गोम्मटेश्वर की मूर्ति तो एक प्रतीक मात्र है। मनुष्य की कल्पना का महामानव तो असीम है। वहां तक मनुष्य का हाथ नहीं पहुँच सकता; संभवतः कोई यंत्र और मनुष्य की बुद्धि भी नहीं। महामानव की चोटी तक मनुष्य की कल्पना अथवा भावना ही उड़ सकती है। वास्तव में भारत के धार्मिक इतिहास में ईश्वर, देव, मानव और दानव के परस्पर संबन्ध की मनोरञ्जक कहानी है। मानव विकास के प्रारम्भ में जब मनुष्य ने प्रकृति की विभूतिमती शक्तियों को देखा

१. Burnell, The Devil Worship of the Tuluvas, Ind. Ant. XXV. MS, 25.

तब उनसे बहुत प्रभावित हुआ। उनके द्वारा जीवन के साधनों की उपलब्धि तो उसे स्पष्ट दिखाई पड़ती थी। इसलिए दानात्, दीपनात्, द्योतनात् आदि से देवों की सहज कल्पना हो गयी। दृश्य जगत् के मापने अथवा उसको फोड़ कर उसका रहस्य जानने का कोई यन्त्र—भौतिक अथवा बौद्धिक—उसके पास नहीं था। [अभी मनुष्य ने विश्व के एक अणु को फोड़ कर उसकी आन्तरिक शक्ति और उसके परिणाम को देखा है।] परन्तु मनुष्य की कल्पना अवश्य कहती थी कि इन देवों की कोई नियामिका शक्ति है, नहीं तो ये परस्पर टकरा कर अपना तथा सम्पूर्ण जगत् का विनाश कर देंगे; इनके ऊपर नियंत्रण करने वाला कोई ईश्वर है और उसमें ऐश्वर्य है। मनुष्य की भावना उस कल्पित शक्ति का आदर भी करने लगी और फिर तो भगवान्, भक्ति, पूजा, वन्दना आदि भी प्रारम्भ हो गये। बाहर जिस शक्ति की कल्पना मनुष्य ने की थी उसका एक छोर—अणुमात्र—उसको लम्बे अनुभव के पश्चात् अपने भीतर भी दिखायी पड़ने लगा; वही उसका अपनापन अथवा आत्मा था। वास्तव में विश्व के रहस्य के संबन्ध में मनुष्य की यह काल्पनिक अथवा भावुक अनुभूति थी; बौद्धिक अथवा वैज्ञानिक नहीं। मनुष्य अभी तक विश्व को माप या जान नहीं सका है। असीम और अनन्त को भाँपने—जानने नहीं—के माध्यम अभी तक मनुष्य के पास ये ही—कल्पना और भावना ही—हैं। कला के भी ये ही माध्यम हैं। सच बात तो यह है कि कला स्वयं असीम और अनन्त को झाँकने और भाँपने का एक मूर्त माध्यम अथवा प्रतीक है। परन्तु मनुष्य की कल्पना के पंख उड़ते उड़ते थक जाते हैं। वह भावना, अनन्त और असीम से भी घबड़ा जाता है और फिर वह अपनी शारीरिक सीमा के भीतर लौट आता है और बुद्धि के द्वारा विश्व का रहस्य जानने का प्रयत्न करता है। इस प्रयत्न में मानव शरीर का महत्त्व बढ़ जाता है, बुद्धि का भी। बुद्धि का क्षेत्र शरीर से बड़ा है, किन्तु उसकी भी प्राकृतिक सीमा है जिसको वह पार नहीं कर सकती। मनुष्य अपने व्यक्तित्व और पुरुषार्थ को यथासंभव बढ़ाता है; ऐश्वर्य की भी कामना करता है। पुरुषार्थ भी मनुष्य के लिए स्वाभाविक और मानव विकास के लिए आवश्यक है, लेकिन शरीर और बुद्धि को सीमाओं से बाँध देने पर वह पिञ्जरबद्ध हो जाता है। बन्धन कितना भी सुन्दर और महत्त्वपूर्ण क्यों न हो वह मनुष्य के लिए अन्ततोगत्वा असह्य है; उसके पुरुषार्थ का लक्ष्य भी मोक्ष ही है। इसलिए वह अपने शरीर और बुद्धि की सीमाओं को लाँघ कर

(शेष पष्ठ ३४ पर देखें)

संन्यास मार्ग और महावीर

प्रो० दलसुख मालवणिया

वेदका मार्ग यज्ञमार्ग है। यज्ञ करके देवों की तृप्ति से संपत्ति और पुत्रादि ऐहिक सुखसाधनों को जुटाने का प्रयत्न वैदिक आर्य लोग करते थे। उस समय धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ की प्रधानता थी। मोक्ष पुरुषार्थ वैदिकों के लिए नहीं था। यह पुरुषार्थ और उसका साधन ये दोनों वैदिकों के लिए नयी बात थी। वैदिक आर्य जैसे जैसे हिन्दुस्थान में फैलते गये वैसे वैसे यहाँ की प्रजा की कई बातें उन्होंने अपनाई। उनमें मोक्ष पुरुषार्थ और उसका साधन सन्यास मार्ग भी हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि जब आर्य लोग कुरु-पांचाल को छोड़कर इधर पूर्व प्रदेश के संपर्क में आते हैं तब ही आर्य ऋषियों के मुख से उपनिषदों का ब्रह्मज्ञान प्रकट होता है। वे वेदप्रतिपादित यज्ञों को फूटी नाव के रूप में देखने लगते हैं। बाह्य सम्पत्ति के मूल्य को तुच्छ समझने लग जाते हैं और अनन्त सुख की खोज के लिए प्रयत्नशील देखे जाते हैं। जैन और बौद्धशास्त्रों में उस समय के भारत का जो चित्र है वह कुरु-पांचाल का नहीं है किन्तु वह मगध, बिहार, मिथिला, और बनारस के आस-पास की तत्कालीन भारतीय संस्कृति पर है। इन शास्त्रों के प्रकाश में यदि हम उपनिषदों का ब्रह्मज्ञान और याज्ञिकधर्म का विरोध देखें तो स्पष्ट हो जाता है कि सन्यास प्रधान श्रमण संस्कृति की ही यह देन है जो ब्राह्मणों के उपनिषदों में प्रतिबिम्बित हुई है। जो ब्राह्मण यहाँ भौतिक संस्कृति को जुटाने में ही और परलोक में स्वर्ग प्राप्त करने में ही पुरुषार्थ की इतिश्री समझते थे वे ही यहाँ की श्रमण संस्कृति के प्रभाव में आकर कर्मकाण्ड को तुच्छ मानने लग गये और ज्ञान तथा त्याग मार्ग का आश्रय करके मोक्ष में ही परम पुरुषार्थ की प्रतिष्ठा करने लग गये।

बौद्ध त्रिपिटक और जैन आगमों में परिव्राजक और श्रमण-सन्यासियों के आचार और दर्शन का वर्णन है। परिव्राजक लोग अपना घर छोड़कर अपने कुटुम्ब का परित्याग कर इधर-उधर घूमते थे और भिक्षा वृत्ति से जीवन यापन करते थे। जीव और जगत् के विषय में ज्ञान सम्पादन करना-कराना यह उनका काम था। उनके विविध आचारों का वर्णन बौद्ध और जैन ग्रन्थों में मिलता है और उनके विचार दर्शन का भी वर्णन हम वहीं प्राप्त करते हैं। उससे पता चलता है कि उस युग में विभिन्न मतवादों--संप्रदायों की बाढ़ आई थी। उन सभी का एक लक्षण यदि कुछ कहा जा सकता है तो यही था कि उन सबने अपना निर्वाह भिक्षावृत्ति से करना स्वीकार किया था। बाह्यवेश का स्थूलरूप से साम्य होने पर भी सभी सम्प्रदायों में अपने-अपने बाह्य चिह्न होते थे। ऊपर विचारों में भी मतभेद था। श्रमणशील परिव्राजकों को छोड़कर कुछ ऐसे भी त्यागी थे जो एकान्त जंगलों में ध्यान और तपस्या में लगे हुए थे और इस प्रकार अपना समस्त समय आत्मा और जगत् के स्वरूप की खोज में लगाते थे। जिज्ञासु लोग उन्हीं के पास जाकर अपनी शंकाओं का समाधान करते थे और आध्यात्मिक साधना में प्रगति करते थे। ऐसे ही सन्यासियों की खोज में भगवान् बुद्ध ने अपनी साधना का बहुकाल बिताया था, यह बात त्रिपिटक से मालूम होती है। किन्तु किसी से उनको संतोष नहीं हुआ और उन्होंने अपया नया ही मार्ग खोज निकाला और वह था आत्मवाद का निषेध। आत्मवाद का निषेध करके भी उन्होंने निर्वाण—मोक्ष और उसके मार्ग का प्रतिपादन किया है, दूसरे सन्यासियों की तरह निर्वाण के लिए गृहत्याग को आवश्यक बतलाया है अर्थात् विचार में मतभेद रहते हुए भी सन्यास दीक्षा का महत्त्व उन्होंने भी स्वीकार किया। उस समय त्यागियों का एक बहुत बड़ा भाग उनके विचार से सहमत हुआ और कई परिव्राजकों ने उन्हीं के मार्ग को अपनाया। ऊपर इस प्रकार बौद्ध धर्म के रूप में एक नया सन्यास मार्ग श्रमण मार्ग प्रचलित हुआ। इस नये सन्यास मार्ग का प्रारम्भ इसी बनारस में हुआ था। इसी से इस बात का हम सहज निश्चय कर सकते हैं कि उस समय भी अर्थात् आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व भी बनारस त्यागियों का अखाड़ा बना हुआ था। अन्यथा भगवान् बुद्ध को ज्ञानप्राप्ति तो बिहार के गया में हुई किन्तु उनका प्रथम उपदेश यहाँ क्यों होता ?

यदि हम इतिहास के पन्ने उलटें तो पता चलता है कि भगवान् बुद्ध से भी ढाई सौ वर्ष पूर्व इसी बनारस में भगवान् पार्श्वनाथ नामक जैन तीर्थंकर हुए

और उन्होंने भगवान् बुद्ध के श्रमण मार्ग के लिए क्षेत्र तैयार किया था। बौद्ध विद्वान कोशाम्बी जी का कहना है कि भगवान् बुद्ध ने अपने जीवन में जो उग्र तपस्या की और उन्होंने भिक्षु के लिए अहिंसादि व्रतों की जो योजना बनाई वह भगवान् पार्श्वनाथ की ही परम्परा की देन है। पार्श्वनाथ की ही परंपरा में भगवान् महावीर जैन तीर्थंकर हुए। वे भगवान् बुद्ध के समकालीन थे। किन्तु संन्यासमार्ग के विषय में भगवान् बुद्ध से काफी बड़े थे।

भगवान बुद्ध के संन्यासमार्ग का नाम है मध्यमार्ग जब कि भगवान् महावीर का सन्यासमार्ग उत्कट है। जिस तपस्या को बुद्ध ने निकम्मी बताया उसी तपस्या को महावीर ने सन्यासियों के लिए परम आवश्यक बतलाया है। यदि उसी का अवलम्बन बुद्ध करते तो उन्हें तपस्या से घृणा नहीं होती। भगवान् महावीर ने तपस्या दो प्रकारकी बतलाई है। बाह्य और आभ्यन्तर। मुख्य तपस्या आभ्यन्तर ही है और उसी की पुष्टि के लिए बाह्य तपस्या साधन मात्र है। बाह्य तपस्या में उपवास मुख्य है और आभ्यन्तर तपस्या में सेवा स्वाध्याय और ध्यान मुख्य है। बाह्य तपस्या तब तक ही ठीक है जब तक ध्यान स्वाध्याय में बाधा न हो। यदि उसके प्रतिकूल हो तो बाह्य तपस्या को भगवान महावीर ने निरर्थक बतलाया है अर्थात् उपवासादि बाह्य तपस्या ध्यान धारणा को सफल बनानेमें यदि सहायक सिद्धि होते हों तब तो ठीक है किन्तु यदि उपवास से अध्यात्मिक शान्ति में बाधा आती हो तो वह तपस्या नहीं किन्तु तपस्याभास है।

परिव्राजकों द्वारा तपस्या में पंचाग्नि तप, काँटों पर सोना आदि शरीर के लिए कष्टदायक और हिंसक साधनोंका अवलम्बन लिया जाता था। उसका विरोध तो भगवान् पार्श्वनाथने ही इसी बनारस में किया था और देहदमनका मार्ग–श्रेष्ठ मार्ग है यह बताया था। तब से सन्यासियों में उपवास की प्रतिष्ठा बढ़ी थी किन्तु भगवान् बुद्ध ने देहदमन के इस प्रकार को भी अच्छा नहीं समझा। भगवान महावीर ने देखा कि भिक्षुकों को यदि खाने के लिए कमाना नहीं है और स्वोपार्जित धनसे भी जीवन निर्वाह नहीं करना है सिर्फ भिक्षा-वृत्ति पर जीना है तब उसकें लिए कम से कम खाना यह अनिवार्य होना चाहिए अन्यथा वह समाज के लिए बोझ रूप बन जायगा और जीवन निर्वाह के लिए नाना प्रपंच–मंत्र, तंत्र, ज्योतिष आदि में पड़ जायगा और उसकी आध्यात्मिक साधना एक ओर रह जायगी। खाने-पीने की चिन्ता ही उसे सताया करेगी। और उसी के प्रपंच में पड़कर अपना भिक्षु-जीवन निष्फल बना लेगा।

भिक्षावृत्ति के नियमों में जितनी कड़ाई भगवान् महावीर ने सन्यासियों के लिए की उतनी शायद अबतक के इतिहास में किसी ने नहीं की। भगवान् बुद्ध स्वयं और उनके शिष्यों को यह इजाजत थी कि वे किसी का निमंत्रण पाकर उसी के यहाँ भोजनके लिए जायँ। भोजन भगवान् बुद्धके निमित्त और उनके शिष्यों के निमित्त बनाया जा सकता था। एक समय तो ऐसा भी हुआ कि भगवान् बुद्ध के लिए और उनके संघ के लिए एक बड़ा पशु काटा गया और पकाकर उन्हें खिलाया गया। भगवान् महावीर के शिष्यों ने इस बात की बड़ी निन्दा की। इस बात की खबर जब भगवान् बुद्ध को मिली तो उन्होंने नियम बनाया कि अब से कोई भिक्षु वह मांस नहीं खायगा जो उसके लिए बनाया गया हो। इसका जिक्र बौद्धों के बिनयपिटक में है। महावीर ने तो अपने साधुओं के लिए यह नियम बनाया था कि वह किसी का निमन्त्रण स्वीकार ही नहीं कर सकता। भोजन के समय जैन साधु भिक्षा के लिए निकले और जहाँ से योग्य आहार मिल जाय ले लें। आहार लेने में भी कई कड़े नियम ह—मांस, मक्खन, घी, दूध ऐसे रक्तवर्द्धक आहार की मनाही है। रूखा-सूखा भोजन ही किया जा सकता है। और वह भी उसके लिए न बना हो ऐसा प्रतीत होने पर ही। इतना ही नहीं, किन्तु वह उतनी मात्रा में ही ले सकता है जिससे देनेवाले को फिर से अपने लिए कुछ न बनाना पड़े। जिसके मकान में वह ठहरा हो उसके यहाँ से भिक्षा नहीं ले सकता। किसी का द्वार बंद हो तो उसको खोलकर या आवाज देकर खुलवाकर वह भिक्षा नहीं ले सकता। इतना ही नहीं किन्तु भिक्षा में भी सचित्त-सजीव, अचित्त-निर्जीव का विवेक करना चाहिए। वह कोई ऐसा पदार्थ भिक्षा में नहीं ले सकता जिसमें बीज हो और जीव होने की संभावना हो। इसके कारण स्वयं भगवान् महावीर के जीवन में ऐसा कई बार हुआ है कि उन्हें अपने नियमानुसार भिक्षा नहीं मिली। और वे खाली हाथ लौट आये और कई दिन के फाके किए। किन्तु उन्होंने अपने नियमों में कोई ढिलाई नहीं की।

भगवान् महावीर स्वयं नग्न रहे और अपने संघ के भिक्षुओं को भी आदेश दिया कि जहाँ तक हो सके नग्न रहने का ही प्रयास भिक्षु को करना चहिए। रहने के लिए उसी मकान का उपयोग करना चाहिए जो भिक्षु के निमित्त बनाया न गया हो। वृक्ष के नीचे, शून्यगृह, श्मशानगृह–यही भिक्षु के लिए योग्य निवास स्थान है अन्य नहीं। भिक्षु किसी सवारी का उपयोग नहीं कर सकता। उसे सदैव पादविहारी होना चाहिये। चातुर्मास—वर्षाऋतु को

छोड़कर किसी एक स्थान पर स्थायी निवास जैनभिक्षुओं के लिए महावीर ने निषिद्ध किया है। वे स्वयं भी सतत विहारी थे और सदैव नये नये अपरिचित स्थानों में जाते थे और अपनी तपस्या करते थे। अपरिचित स्थानों में कई बार वे गुप्तचर समझकर पकड़े भी गए और लोगों ने भी काफी कष्ट दिया किंतु वे अपने सतत विहार के नियम से विचलित नहीं हुए और जैन भिक्षुओं के लिए भी सतत बिहार का नियम बना दिया। इस प्रकार निर्मोही--निष्परिग्रही होने के लिए उन्होंने भिक्षुओं के जीवन में काफी कड़ाई की। और इस बात का ध्यान रखा कि ये भिक्षु लोग समाज में अपने जीवन निर्वाह के लिए किसी प्रकार से भी बोझ रूप न बनें। उनका ध्येय तो यही रहे कि लोगों से सिर्फ सदाचार और जीवनशुद्धि की आशा रखें और स्वयं भी अपने जीवन को उन्नत बनावें। अर्थात् सबपर कल्याण का ध्येय रहने पर भी समाज से अपने स्वार्थ की सिद्धि में अन्न, वस्त्र, निवास या किसी भी वस्तु की वे आशा न रखें। प्रेमपूर्वक कोई दे दे तो ले लें किंतु लेना अपना अधिकार और देना अन्य का कर्तव्य है ऐसी भावना न रखें। किसी इष्ट वस्तु के मिलने पर खुशी और न मिलने पर नाराजी–इन दोनों बातों से भिक्षु दूर रहें। शापानुग्रह यह भिक्षु का काम नहीं। यदि इन सब बातों को देखा जाय तो कहना होगा कि भगवान् महावीर ने जो सन्यास मार्ग का उपदेश दिया वह लोक कल्याणकारी था।

एफ० ३,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
बनारस–५

———
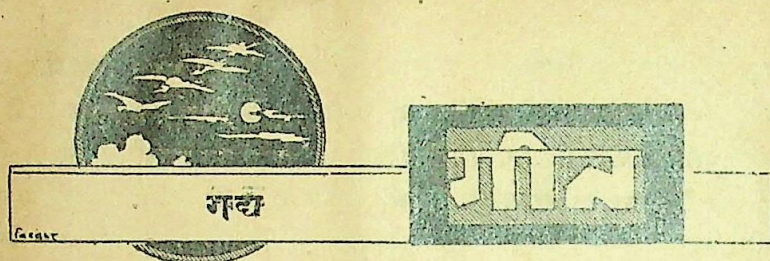
स्वप्न और सत्य !

श्रावण मास की निस्पंद मेघमालाओं के कोमल अंचल में विश्राम करने वाली तरल जल बिन्दु ! कुछ क्षणों तक सुवासित मलय समीर के शीतल झकोरों में जीवन का आनन्द लूटो और शुभ्र गगन मंडल की उज्ज्वल तारिकाओं के साथ आंखमिचौनी खेलो, पर अंतिम क्षण में जब धरती के विस्तृत गर्भ में सर्वदा के लिए अपना अस्तित्व विलीन करने लगो तब तनिक भी शोक न करना क्योंकि जगत परिवर्तन शील है !

सुरभित पंखुड़ियाँ की मादकता से समस्त उपवन का वातावरण सुवासित करने वाले मृदुल पुष्प ! उषा की झीनी मुस्कुराहट से उत्पन्न मोती से स्वच्छ धवल ओस-कणों को लूटो और अलसित यौवन की मदमाती बहार का उपभोग करो, पर दूसरे दिन ग्रीष्म-ऋतु के प्रखर ताप से म्लान और शुष्क होकर जब धूलि-कणों में अपना पराग और पंखुड़ियाँ हमेशा के लिए मिलाने लगो तब दुखित न होना क्योंकि जगत असार है !

शून्य व निस्तब्ध अमावस्या की रात्रि में भयानक और सघन तिमिर को चीरकर ज्योति की उज्ज्वल किरण प्रदान करने वाले दीपक ! अपने दग्ध और आहत शरीर से भी जगत को आलोकित करो और भोले मानव के अंधकारमय नयनों में प्रकाश भर दो। पर जब वही गहन तिमिर तुम्हें अपने विशाल अन्तस्तल में आत्मसात करने लगे और ज्योति किरणें धीरे धीरे क्षीण होकर उसमें सर्वदा को विलीन हो जाएँ तब चिंतित न होना क्योंकि जगत स्वप्न है ?

सुमति जैन होस्टल,
३ विक्टोरिया रोड, शूले, बैंगलोर

—विज्ञान चन्द्र भारिल्ल

जैन शिक्षण संस्थाओं में

धार्मिक शिक्षा

卐 卐 卐 卐 卐 श्री धनदेव कुमार 'सुमन' 卐 卐 卐 卐 卐

एक समय आया जब सम्पूर्ण भारतवर्ष पर ब्रिटिश सामन्तशाही का अधिकार हो गया। शासन संचालकों के हृदय में भारत को येन केन प्रकारेण सदैव के लिए परतन्त्रता की शृंखलाओं में आबद्ध रखने की विचारधाराएँ उद्वेलित हो उठीं। उपाय सोचे जाने लगे। पाश्चात्य संस्कृति के उद्भट विद्वानों में विचार विनिमय हुआ। मैक्समूलर के इन विचारों से कि यदि आप किसी देश को परतन्त्रता के पाशजाल में बांधना चाहते हैं तो आवश्यक है उसकी संस्कृति तथा साहित्य को नष्ट भ्रष्ट कर दिया जाए, लोग प्रभावित हो उठे। बस फिर क्या था? इन्हीं विचारों को भारत में क्रियान्वित किया जाने लगा। पाश्चात्य सभ्यता तथा पाश्चात्य संस्कृति का प्रसार करने वाली शिक्षण संस्थाएँ स्थापित की जाने लगीं। शीरीं फरहाद, लैला मजनूँ तथा अरेबियन नाइट्स जैसी अनमोल कथाओं से परिपूर्ण साहित्य दे चरित्र निर्माण किया जाने लगा। वे होनहार नवयुवक जिन्हें देश और समाज की डगमगाती नैया को पार लगाना था, चरित्र भ्रष्ट हो अश्लील गीत गाते हुए इतस्ततः परिभ्रमण करने लगे। कहाँ इनका वह पतित जीवन और कहाँ प्राचीन संस्कृति की एक यह घटना जिसकी स्मृति मात्र से ही मस्तक गौरवान्वित हो हो उठता है!

जब औरंगजेब की सेनाएँ पराज़ित हो युद्ध से भाग उठीं, तब शिवाजी के सैनिकों ने नगर को लूटना प्रारम्भ कर दिया। एक मरहठा सैनिक एक स्त्री को पकड़ लाया और शिवाजी को सम्बोधित करते हुए कहने लगा, "देखिए! मैं आप के लिए कैसी सुन्दर एवं अनुपम वस्तु लाया हूँ।" शिवाजी ने उस रमणी के अनुपम लावण्य को देखा और कहा, "मैं बहुत ही भाग्यवान् होता यदि मेरी मां इतनी रूपवती होती। सरदारो? आदर सहित इन्हें इनके निवासस्थान पर पहुँचा दो।" जनता पाषाणवत् मन्त्रमुग्ध हो देखती रही। मुक्त कंठ से शिवाजी का गुणानुवाद किया जाने लगा। जय जयकारों

से आकाश और पाताल गूंज उठा। और वह सरदार बहा रहा था खून के आँसू! उसे डूब कर मरने के लिए कहीं जगह भी प्राप्त न हो रही थी।

कहने का तात्पर्य यह है कि पाश्चात्य सभ्यता के विषैले प्रचार से वातावरण अत्यन्त दूषित हो उठा। इस शिक्षा के विरुद्ध लोगों के हृदय में विद्रोह की चिनगारी सुलगने लगी। यह चिनगारी हवा पाकर एक दिन भयंकर विद्रोह की ज्वाला में भड़क उठी। सुधारकों ने समय की गति विधि को पहचाना। बढ़ते हुए इस रोग की औषधि का अनुसन्धान किया। प्राचीन गुरुकुलों तथा सामाजिक शिक्षण संस्थाओं की पद्धति को श्रेयस्कर समझ यत्र तत्र इसका श्रीगणेश किया।

विश्व में वही समाज जीवित रह सकता है जो समय के साथ साथ चले। जैन समाज भी इन विचारों से अछूता न रहा। स्थान २ पर जैन हाई स्कूल, पाठशालाएँ, गुरुकुल तथा महाविद्यालय स्थापित किए गए। कार्यवाहक अदम्य उत्साह और अद्भुत लगन से इनके संचालन में जुट गए। इस दृष्टि से हम गत चौथाई शताब्दि को महान क्रान्ति का युग कह सकते हैं। इन पच्चीस वर्षों ने शिक्षा संस्थाओं में एक युगान्तर उपस्थित कर दिया। कार्य्य संचालकों ने अपने अथक अनवरत प्रयत्नों से देश और जाति में जागृति की एक लहर पैदा कर दी। विद्यार्थियों के हृदयों में समाज सेवा के भाव अंकुरित होने लगे और यह आशा होने लगी कि वह समय दूर नहीं जब जैन धर्म के सिद्धांतों का प्रसार भारत में ही नहीं प्रत्युत विश्व के कोने २ में हो उठेगा।

समय निर्बाध गति से बहता रहता है। समय आया जब कि हमें अपनी आशाओं पर तुषारपात होता हुआ दृष्टि गोचर होने लगा। धार्मिक महाविद्यालयों से शिक्षा प्राप्त कर निकलने वाले नवयुवकों के सम्मुख जीविका का प्रश्न उपस्थित हो उठा। समाज में भी उन दिनों एक विचारधारा उद्वेलित हो उठी कि इन धार्मिक शिक्षा प्राप्त युवकों की जीविका का उत्तरदायित्व समाज के कंधों पर ही रहेगा। यह विचारधारा इतनी प्रबल हो उठी कि समाज में लौकिक बनाम धार्मिक शिक्षा का युद्ध चल पड़ा। विद्यार्थी समाज भी इसे अर्थहीन समझ कर लौकिक शिक्षा की ओर अग्रसर होने लगा। ये संस्थाएँ मृतप्राय, निर्जीव सी परम्परा के रूप में चलती रहीं। रह गए केवल धार्मिक शिक्षा के केन्द्र हाई स्कूल तथा पाठशालाएँ।

ये शिक्षण संस्थाएँ वर्तमान समय में जिस रूप में चल रही हैं, उसे देखते

हुए यदि यह कह दिया जाए कि इन पर 'जैन' का केवल साईन बोर्ड ही लगा हुआ है तो कोई अत्युक्ति न होगी। इससे अधिक हीन दशा और क्या होगी कि निरन्तर कई वर्षों से चलने वाली इन संस्थाओं में 'जयजिनेन्द्र' शब्द की ध्वनि भी कहीं कर्णगोचर नहीं होती। यदि सूक्ष्म पर्यविक्षण किया जाए तो इसके निम्न कारण प्रतीत होते हैं—

(१) समाज की उदासीनता—जैन समाज की अनेक शिक्षण संस्थाएँ शिक्षा के प्रसार में जुटी हुई हैं। इन शिक्षण संस्थाओं में लौकिक शिक्षा के साथ २ धार्मिक शिक्षण भी दिया जा रहा है। परन्तु समाज के नेताओं ने कभी भी इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि धार्मिक शिक्षण इन संस्थाओं में किस रूप में दिया जा रहा है। कहीं कुछ पढ़ाया जाता है और कहीं कुछ। अर्थात् प्रत्येक संस्था अपनी डेढ़ ईंट की मस्जिद बनाए बैठी है। आवश्यकता तो इस बात की थी कि समाज के कर्णधार कई वर्ष पूर्व इस विषय पर दृष्टि-पात करते परन्तु आज तक भी किसी के कान पर जूं नहीं रेंगी। समाज को चाहिए कि वह कई वर्षों से छाई हुई उदासीनता के प्रगाढ़ आवरण को छिन्न भिन्न कर आबाल वृद्ध में एक नवीन चेतना संचारित कर दे। एक ऐसी संस्था का निर्माण किया जाए जो समस्त संस्थओं को एक केन्द्र के अधीनस्थ करे। अर्थात् जब तक हमारी संस्थाओं का एकीकरण नहीं होता तब तक प्रगति के उच्च पद पर आसीन होना दुष्कर है।

(२) कार्य संचालकों की उदासीनता—प्रत्येक संस्था के कार्यकर्ताओं तथा प्रबन्धकारिणी समितियों का विशेष ध्यान इस बात की ओर रहता है कि लौकिक विषयों की परीक्षा का परिणाम शत प्रतिशत रहे। इसके लिए वे विशेष चिन्तित रहते हैं। यदा कदा स्कूल में अन्य विषयों का निरीक्षण भी करते हैं परन्तु धर्मशिक्षा की क्या अवस्था है और क्या पढ़ाया जाता है? इस पर तनिक भी दृष्टिपात नहीं करते। इनकी यह उदासीनता पढ़ाने वालों को निरुत्साहित कर देती है और वे इस विषय को अनावश्यक समझ इसके उद्देश्य को समाप्त कर देते हैं।

(३) धार्मिक अध्यापकों का आदर न रखना—कार्य वाहकों के हृदय में इस मनोवृत्ति की प्रधानता रहती है कि हमें कार्य करने वाले व्यक्ति अल्प से अल्प वेतन पर प्राप्त हो जाएँ। बेकारी रूपी महा विकराल दैत्य का भीषण साम्राज्य जब चतुर्दिक छाया हुआ है तो अल्प वेतन पर कार्य करने वालों का मिल जाना कोई कठिन नहीं। परिणामतः ढाक के तीन पात

वाली कहावत चरितार्थ होती है। कहीं अधिक वेतन मिल जाने पर वे उस संस्था को छोड़ अन्यत्र चले जाते हैं। इसके अतिरिक्त जो सम्मान प्रतिष्ठा हमारे हृदयों में अंगरेजी शिक्षा प्राप्त युवकों के प्रति होती है वह धार्मिक शिक्षकों के प्रति नहीं। अल्प वेतन प्राप्त होने के कारण उन्हें इधर उधर हाथ फैलाने पड़ते हैं।

धार्मिक शिक्षण देने वालों को चाहिए कि वे समय की गतिविधि को पहचानते हुए देश, काल और भाव के अनुसार चलें। यह वैज्ञानिक युग है और जैन धर्म के सभी सिद्धान्त विज्ञान की कसौटी पर परखने पर सत्य निकलते हैं। उसी के अनुरूप सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाए तो छात्रों पर इसका विशेष प्रभाव पड़ सकता है। पढ़ाने के अतिरिक्त हमारा मुख्य उद्देश्य उनके चरित्र निर्माण पर ही होना चाहिए। धार्मिक शिक्षा मानव जीवन को समुन्नत बनाने के लिए आवश्यक है। परन्तु उसकी रूपरेखा क्या हो यह विषय अत्यन्त ही विचारणीय है। यदि ये शिक्षण संस्थाएँ मानव को मानवता का पाठ नहीं पढ़ातीं, बालकों की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीनों शक्तियों को पूर्ण विकसित नहीं करती तो हम छात्रों के जीवन से खेलते हैं जिसका हमें अधिकार नहीं है। हम समाज के उस रुपये को जो दिन रात के पसीने की गाढ़ी कमाई है, व्यर्थ में व्यय कर रहे हैं। इससे तो अच्छा यही होगा कि हम उन शिक्षण संस्थाओं को जो हमारे उद्देश्य को पूर्ण नहीं करती बन्द कर व्यर्थ में व्यय होने वाले रुपये को दुःखियों, अपाहिजों तथा उन शरणार्थी भाइयों की सहायतार्थ लुटा दें जिनके मुँह में कई दिनों से अन्न का एक ग्रास भी नहीं गया।

जैन हाई स्कूल,
सदर बाजार, रुई मंडी,
देहली

——:*:——

कहानी

आत्म-धर्म

श्री जयभिक्खु

उषा की लालिमा जिस समय पृथ्वी को चूम रही थी उस समय आततायी को ज्ञान हुआ कि जिसे वह रस्सियों से बाँध कर पीट रहा था वह तो वैशाली के महान् गणतन्त्र का ज्ञातृवंशीय राजकुमार है। वर्धमान उसका नाम है। इतनी मार के सामने तो भूत भी भाग जाता है किन्तु यहाँ तो क्रोध की एक रेखा तक नहीं, वेदना का एक शब्द तक नहीं।

वाह, कुमार वाह! चेहरे पर कैसी शान्ति है! ललाट पर कैसा अक्षुण्ण तेज है! नयनों में कैसी प्रेमभरी प्रीति है! स्वर्ण के समान पीतवर्ण काया है। उसके शरीर पर रस्सी के काले चिह्न इन्द्रनील मणि की रेखा के समान शोभित हो रहे हैं! अनिष्ट भी इष्ट को प्राप्त करके कैसा शोभित हो रहा है! देह की पीड़ा के साथ मानो इस मानव का कोई संबन्ध ही नहीं!

पीड़ा पहुँचाने वाला किसान आखिर रो पड़ता है, पैर पकड़ कर आक्रन्दन करता है—"ओ करुणापति! मुझे क्षमा करो।"

क्षमा करने की बात ही क्या थी? अपने कर्म का ही तो फल था। जन्मान्तर के अपने अपराध का ही तो कार्य था। इस अपराध के आगे एक और नया अपराध खड़ा करके अपराधों की माला बनाने से क्या लाभ? अपराध को भोग लेने पर वह स्वयं शान्त हो जाता है।

वर्धमान शान्त हैं। आँखों से तेज निकल रहा है। किसान बिना बोले ही समझ जाता है कि कुमार ने मेरा अपराध क्षमा कर दिया है।

उषा अरुणिमा को ले आई। अरुणिमा आकाश में अपने स्वामी सूर्य को ले आई। सूर्य के ताप से पृथ्वी जलने लगी।

वनमार्ग शून्य सा पड़ा है। लू की लपटें चारों दिशाओं में अपना साम्राज्य फैला रही हैं। राजमहल और राजवाटिकाएँ दूर रह गई हैं। शरद् ऋतु के

एकाकी मेघ के समान वर्धमान महावीर आगे आगे कदम बढ़ाए चले जा रहे हैं। पैर तो पृथ्वी पर चल रहे हैं किन्तु मस्तक मानो गगनमण्डल को भेदने के लिए आकाश में चल रहा है।

कितने ही देवालय, कितने ही यक्ष-यक्षिणियों के स्थान चले जा रहे हैं किन्तु उनके हाथ बद्धाञ्जलि नहीं होते। देव-देवियों की कृपा प्राप्त करने के लिए मानवजाति ने स्थान स्थान पर मंदिरों का निर्माण कर कैसी सुविधा प्रदान की है। देव के प्रसन्न होने पर क्या नहीं मिल सकता! किन्तु ऐसी सुविधा को उन्हें कोई चेष्टा नहीं।

अरे वर्धमान! बाल हठ छोड़ दे। तेतीस कोटि देवताओं के सामने तेरी क्या हिम्मत! तूने करोड़ों अनुयायिओं के इष्ट देवता की अवहेलना आरंभ की है। तेरा उपजाया हुआ तत्त्वज्ञान कहीं तुझे ही न खा जाय!

वायु का वेग बढ़ रहा है। सहस्रमुखी शेषनाग की विषपूर्ण फुत्कार के समान लू की लपटें शरीर को जला रही हैं, धूल उड़ उड़ कर आँखों में गिर रही है। दिशाएँ तरह तरह की आवाजों से गरज रही हैं। मत्स्याकार, मयूराकार और गजमुखाकार रथ आकाश में उड़ रहे हैं।

जयजयकार करो! ऐरावत के स्वामी, शचीसखा, देवाधिदेव और यक्षों के राजराजेश्वर इन्द्रदेव आ रहे हैं। आइए इन्द्रदेव! आप की प्रसन्नता से क्या सिद्धि नहीं होती? धन मिलता है, धान्य मिलता है, स्वर्गसुख मिलता है, देवांगनाएँ मिलती हैं, अप्सराएँ मिलती हैं।

"वर्धमान! ठहर जाओ।" इन्द्रराज का गंभीर स्वर सुनाई दिया, "कुमार! एक कदम भी आगे न बढ़ाना, मैं कुछ पूछना चाहता हूँ।"

वर्धमान वहीं पर शान्ति से खड़े रहे।

"तुमने यक्ष और इन्द्रपूजा का निषेध किया है?"

वर्धमान ने स्वीकृतिसूचक सिर हिलाया।

"यज्ञादि में आहुति न देने का उपदेश दिया है?"

वर्धमान ने पूर्ववत् सिर हिलाया।

"और इस समय होने वाली देव-देवियों की पूजा का भी निषेध किया है?" इन्द्रराज के शब्दों से उग्रता टपक रही थी।

वर्धमान का प्रत्युत्तर वही था। मुख पर निर्भयता का वही तेज था।

इन्द्रराज इस प्रकार के प्रत्युत्तर की आशा से नहीं आए थे। उन्होंने अपने वचनों की अवज्ञा करने वाला अभी तक कोई नहीं देखा था। इन्द्रराज वेग से जरा आगे बढ़े। उनके रत्नजटित मुकुट के हीरे क्रोध से काँपने लगे। मुद्रिका अंगुली पर चक्कर काटने लगी। चक्षुओं में लालिमा पैदा हो गई। वज्रदण्ड चंचल हो उठा।

पर वर्धमान तो उसी निर्भयता से खड़े हैं।

सामंत खड्ग लेकर इन्द्र के पीछे आकर खड़े हो गए। वे मारने के लिए अत्यन्त अधीर मालूम होते थे। इन सामन्तों के पीछे तलवारों से भी अधिक शक्तिशाली देवांगनाएँ झूमती हुई आईं। उनके पीछे अर्धनग्न अप्सराएं नृत्य करती हुई पहुँचीं। यह सारी इन्द्रराज की सेना की अनुपम शक्ति थी।

किन्तु वर्धमान पाषाण की प्रतिमा के समान शान्तभाव से खड़े थे। इस क्रोध, मोह और माया का मानो साधन और संपत्तिहीन इस महामानव पर कोई प्रभाव न था। पत्थर पर पानी कैसे टिक सकता है ?

"तुमने आत्मा को ही सर्वोपरि पद पर स्थापित किया है ? और लोगों को आतमा के अतिरिक्त अन्य किसी शक्ति के—ईश्वर के सामने भी झुकने की मनाही की है ?"

"हाँ", वर्धमान ने स्वीकार किया।

"वर्धमान ! मैं तुम्हारा हितचिन्तक हूँ। मुझ से अपना संबन्ध न बिगाड़ो। तुम जिस आदर्श को लेकर निकले हो उसका मार्ग लम्बा है। ये वन-पर्वत, ये ग्राम-नगर, ये सरिता-तट और जलाशय मेरे साम्राज्य के अन्तर्गत हैं। मंदिरों में मेरी पूजा होती है। स्थान स्थान पर मेरा जय-जयकार होता है। पद पद पर मेरे अनुचर हैं। वचन पर नियंत्रण रखना। जगत् को विपरीत मार्ग की शिक्षा न देना !"

वर्धमान इन्द्र के वक्तव्य का मुद्रांकित भावों से मानो तिरस्कार कर रहे थे।

"वर्धमान ! मन में गर्व न रखो। मेरे उपासकों और अनुचरों की अगणित सेना तुम्हारे गर्व को चूर्ण कर देगी। मुझे न उखेड़ो। मेरा सहयोग तुम्हारे लिए सहायक होगा। किसी समय अवसर पड़ेगा तो मैं ही काम आऊँगा।"

"इन्द्र ! जो सम्पत्ति और सत्ता को असार समझकर सार की खोज में निकला है वह असार का सहयोग कैसे प्राप्त कर सकता है ! मुझे तो निर्बल मानवों को सबल बनाना है। पराश्रितों को स्वाश्रित बनाना है। मैं जो सबसे कहता हूँ वही तुम से भी कहता हूँ। आत्मा के अतिरिक्त दूसरा देव नहीं, आत्मशुद्धि के बिना मुक्ति नहीं। मानवता से बढ़कर कोई धर्म नहीं। निर्भयता के बिना कोई सिद्धि नहीं।"

"अर्थात् तुम मुझे चुनौती देते हो ? तुम्हारी मेरे साथ युद्ध करने की इच्छा है ?"

"अवश्य, यह तो प्रेम का युद्ध है। यहां रक्तपात की चेष्टा नहीं। रक्त देकर प्रतिपक्षी को तृप्त करने का प्रयत्न है। इसमें तो पराजित की भी विजय है।

"मैं दर्शन नहीं जानता। हाँ, इतना ध्यान अवश्य रखना कि एक छोटी सी चींटी विशाल सेना का कुछ नहीं बिगाड़ सकती।"

"सामान्य स्थिति में यह सत्य है। असाधारण में यह असत्य है। तुम्हें मालूम नहीं कि एक साहसी मच्छर मदोन्मत्त मातंग को भी हिला सकता है।"

"वर्धमान ! विवेक से काम लो। जब तक ये मंदिर हैं तभी तक सब कुछ हैं। अनेकों को यहाँ से अन्न मिलता है। जब तक ये मंदिर हैं तब तक अमृतरस का पान कराने वाली अप्सराएँ भी हैं। जो आधार है उसी को काटते हो। चतुर व्यक्ति जिस शाखा पर बैठा हुआ होता है उस शाखा को कभी नहीं काटता। मुझे कुपित करोगे तो रहने का छप्पर तक दुर्लभ हो जायगा।"

"आत्मा की क्षुधा इतनी तेज हो चुकी है कि देह का उसके सामने कोई अस्तित्व नहीं।"

"अर्थात् इस देह के अस्तित्व का भी अभाव है।"

"देह प्रिय है यह ठीक है किन्तु प्रिय का बिना बलिदान किये प्रेय कैसे प्राप्त हो सकता है ? जिसके तेज की खोज में निकला हूँ, उस पर इस देह को सहर्ष समर्पित कर सकता हूँ।"

"तो तुम्हें मान की भी आवश्यकता नहीं ? मैं जानता हूँ कि देह छोड़ने वाले कीर्ति के लोभी होते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी मेरी आवश्यकता रहेगी।"

"कीर्ति और मान ने ही अनेक त्यागों को निष्फल बनाया है। इसी का मैंने सर्व प्रथम त्याग किया है। संसार को पार करने वाले कई बार कीर्ति के कूल पर ही डूब कर मर जाते हैं। इसीलिए मैं विस्मृति के अंधकार में जाने की इच्छा रखता हूँ। अनार्य देश की ओर प्रवास करने की भी इच्छा है।"

"अनार्य देशों में साथ रहूँगा तो काफी सुविधा होगी।" इन्द्र की सहनशीलता सीमातीत हो रही थी, चर्चा में बहुत समय व्यतीत हो गया था और मंदिरों में अप्सराओं के नृत्य की राह देखी जा रही थी।

"मुझे सुविधा की चिन्ता नहीं। सुविधा की चिन्ता करने वाला धर्म, पंगु होता है। संसार को देव-देवियों के मिथ्या-जाल से छुड़ाना ही सच्ची सेवा है। सिंह सरीखी आत्मा की आज कैसी दुर्दशा की जा रही है! आत्मा के अतिरिक्त कोई ईश्वर नहीं। आत्मा ही ईश्वर है। इन्द्र! यदि आराम की इच्छा होती तो घर क्यों छोड़ता! व्यापारी नश्वर व्यापार के लिए कष्ट सहता है, क्षत्रिय क्षणिक कीर्ति के लिए मैदान में उतरता है। सांसारिक स्वार्थ के लिए भी इतने कष्ट उठायें जाते हैं तो आत्मा के लिए क्या नहीं किया जा सकता?"

"आत्मा आत्मा क्या करते हो? चोर के समान तुम्हारी आत्मा कहाँ छिपी हुई है? इस देह को तो देखो, दोनों में से कौन सुन्दर है?" सुन्दरतम नवयुवती अप्सरा ने अंग भंग करते हुए कहा। उसके यौवन से रस छलक रहा था। शरीर से सौन्दर्य झर रहा था।

वर्धमान यह दृश्य देखते रहे। किन्तु यह क्या? अप्सरा स्वयं लज्जित हुई। कमल पत्र से अपना निर्लज्ज वक्षस्थल ढाँक लिया।

"आकाश-विद्युत् के कभी दर्शन किये हैं। इन्द्र के इस वज्र से भी नहीं डरते?"

"मेघखण्ड आपस में टकराते हैं इसलिए विद्युत् उत्पन्न होती है। घर्षण बिना तेज की प्राप्ति अशक्य है।" मानो कोई अप्रतिरथ महारथी शीतल शक्ति की घोषणा कर रहा था।

"और यह गड़गड़ाहट? इससे भी डर नहीं लगता?"

"आन्तरिक गड़गड़ाहट से कम!"

"राजकुमार !" इन्द्रराज का महासामन्त समीप आया, "कभी इन्द्रधनुष देखा है ? उसके पीछे की सुहावनी नगरी की कल्पना की है। कभी रात्रि के समय आकाशगंगा देखी है ? उसके किनारे मुक्ता-कन्दुक से खेलती हुई नग्न अप्सराओं की कल्पना की है ?"

"कल्पना–विहार को छोड़ दो। आत्मधर्म के पुजारी के लिए यह साधारण बात है।"

"साधारण !" महासामंत ने क्रोधभरी आँखों से वर्धमान की ओर देखा किन्तु अंगार मानो पानी में गिरकर बुझ गया।

इन्द्रराज तंग हो गए। वह साधारण मानव इन्द्र के कृपा-प्रसाद को ठुकरा रहा था। इन्द्र ने शंख फूंका और प्रचण्ड स्वर से कहा "कुमार ! तुझे समझाना अशक्य है। दीपक पर गिरते हुए पतंग को नहीं समझाया जा सकता। आज्ञा दे देता हूं अपने अनुचरों को–उपासकों को ! सावधान होकर चलना, आंधी आवे, उल्कापात हो, कोई चिढ़ावे अथवा मारे तो मुझे दोष न देना। सहायता के लिए बढ़ाये हुए मेरे हाथ का तूने स्वयं तिरस्कार किया है।"

आकाश में गड़गड़ाहट होने लगी। वृक्ष की शाखाएँ कम्पित होने लगीं। आकाश में मेघ के पर्वत बनने लगे। अप्सराओं ने आभूषण झनझनाए। वातावरण में तूफान के शंख बजने लगे।

"पीड़ा पहुँचा अथवा मार ! मेरी आत्मा का मरण नहीं होता, यह तुझे क्या मालूम ! यह बाँधी नहीं जा सकती इसकी तुझे क्या खबर ?"

वर्धमान मेरुशिखर की तरह अविचल थे।

इन्द्र क्रोध से विचलित हो उठा। अन्तिम समय तक उसे अपनी पराजय का भान न हुआ। आत्मधर्म के पुजारी ने ईश्वर के नाम से चलने वाली उस साम्राज्यशाही को मानने से बिलकुल इन्कार कर दिया।

पटेल नो मढ़, मादल पुरा
एलिस ब्रिज, अहमदाबाद—६

दौरे के संस्मरण

श्री हरजसराय जैन

अभ्यास न होने से संस्मरण लिखना आसान नहीं है। सिर्फ कार्य व उद्देश्यवश भ्रमण में गए हुए व्यक्ति के लिए तो बहुत सी बातें कुछ उलझी हुई सी जान पड़ती हैं। उन्हें पृथक् करके लिखना और भी मुश्किल हो जाता है। संभव है कि यह कठिनाई अभ्यास या ज्ञान की कमी के कारण मुझे ही लगती हो, जो वास्तव में हो ही न।

इस वर्ष राजस्थान और मध्यभारत के भ्रमण की प्रेरणा इसलिए भी हुई कि समिति के बनारस में बढ़ते हुए कार्यक्षेत्र व विकास के साथ साथ इसकी माँगें विशाल और बहुरूपी होती जा रही हैं। इनकी व्यवस्था की प्रेरणा दिनों दिन बलवती हो रही है। ऐसी हालत में जैन जनता को पार्श्वनाथ विद्याश्रम, शतावधानी रत्नचन्द्र पुस्तकालय, और 'श्रमण' आदि वर्तमान प्रवृत्तियों से परिचित कराना जरूरी होता जाता है; इसके अलावा और भी आवश्यक प्रवृत्तियों एवं भावी साहित्य निर्माण आदि योजनाओं का दिग्दर्शन कराना भी आवश्यक था। जैन समाज में साधुओं का विशेष स्थान है। प्रत्येक धार्मिक और सामाजिक अच्छे कार्य के साथ उनकी सहानुभूति तभी मिल सकती है, जब कि उनको तसल्ली हो जाय कि जैनोलॉजी (जैन विद्या के क्षेत्र) में रिसर्च का काम करने वाले विद्वान उसकी अवहेलना नहीं करते, बल्कि उसी वस्तु को नए रूप में, नई भाषा में अधिक प्रामाणिक रूप से रखने का प्रयत्न करते हैं। दार्शनिक और सांस्कृतिक गुत्थियों को जैन तीर्थंकरों व जैन आचार्यों के दृष्टिकोण को लेकर सुलझाने की चेष्टा करते हैं, उनके सौंदर्य को बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं और यह दिखाते हैं कि अपने अपने काल में उन सभी ने अपने स्वीकृत विचारों के विरोध में भी विपक्षियों के वज्रसमान प्रहारों को खुली छाती से सहन किया था। इतना ही नहीं, उन्हीं की विचार सामग्री से बल्कि अपने पक्ष का समर्थन किया था। इस बारे में रतलाम में विराजमान प्रसिद्ध मुनि श्री प्रेमचन्द्र जी महाराज का उदाहरण ही काफ़ी होगा। उन्होंने ने बड़े ध्यान से डॉ०

नथमल जी टाटिया की पुस्तक 'Studies in Jaina Philosophy' में से ज्ञानवाद के धारणा आदि कुछ अंश को मुझसे सुना और तसल्ली की। अगले दिन इसी चीज़ को अपने व्याख्यान में बड़े अच्छे रूप से समर्थन करते हुए संतोष भी प्रकट किया। इससे पहले उदयपुर में मुनि श्री श्रीमल जी महाराज ने इस ग्रन्थ को अपने पास इस विचार से रख लिया कि वह अंगरेजी के विद्वानों के बड़े काम का ग्रन्थ है।

इस साल २५०० मील से भी अधिक लंबी यात्रा की प्रेरणा देने वाली दूसरी चीज़ थी पंजाब के प्रतिष्ठित और परिचित साधुओं के राजस्थान और मध्यभारत के कई शहरों में चातुर्मास। सादड़ी सम्मेलन के बाद वे इधर ही रह गए थे। उनकी स्थान स्थान पर उपस्थिति हमारे लिए सुविधाजनक थी। खासकर लेखक ने बीकानेर, भीनासर, जोधपुर, पालनपुर, अहमदाबाद, नाथद्वारा और रतलाम कभी नहीं देखे थे। उधर के स्थानीय सज्जनों से भी पहली बार ही परिचय का अवसर मिला।

हमें इस बात से बड़ा संतोष हुआ कि जहाँ पर भी पंजाब के साधु थे, सभी जगह उनकी बड़ी प्रतिष्ठा व सम्मान देखा। जैनसंघों पर उनका पूरा प्रभाव था। हमने यह भी देखा कि रतलाम में मुनि श्री प्रेमचन्द्र जी महाराज के उपदेशों से प्रभावित होकर वहाँ के बृहत् संघ ने अपने को एकरूप में संगठित किया। यहाँ तक कि अलग अलग स्थानकों की दीवारें हटा कर उनको एक बना दिया। सादड़ी सम्मेलन और हमारी कान्फ्रेंस की यह सबसे बड़ी सफलता है। इसके अलावा उदयपुर में उपाचार्य श्री गणेशीलाल जी और प्यारचन्द्र जी महाराज की छत्रछाया में साधुओं का जो आपसी प्रेम व्यवहार देखा, वह हृदय को प्रसन्न करने वाली चीज़ थी। वर्षों से भिन्न भिन्न चले आ रहे संघ में भी हमने एकरूपता और उत्साह की लहर देखी।

इंदौर में शास्त्री मुनि श्री सुशीलकुमार जी की बड़ी प्रशंसा सुनी। जिस दिन हम पहुँचे थे, अगले दिन ही उन्हें जैन समाज की ओर से मानपत्र दिया गया था। जोधपुर में पं० मुनि श्री शुक्लचन्द्र जी महाराज के व्याख्यानों से खिची हुई जनता, कीर्तन, भजन, व्याख्यान सुनने के लिए तीन तीन वक्त आती थी, पालनपुर में व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी और कविवर श्री अमरचन्द्र जी महाराज आदि मुनियों का विशेष सम्मान देखा।

जहाँ भी हम गए, प्रायः सभी जगह देखा कि बनारस की प्रवृत्तियों के

बारे में खासकर साधुसमाज को काफी परिचय था। जैनजनता में भी उत्साह पाया। हमारे विचारों को सभी ने प्रेम व श्रद्धा से सुना। नौजवानों में विशेष जिज्ञासा देखी। इन सब बातों से हमें संतोष तो हुआ ही, साथ ही अपने कार्य में निष्ठा भी बढ़ी। 'श्रमण' पत्र के बारे में भी उत्सुकता पाई गई। खासकर साधुलोग इसे पढ़ते सुनते भी हैं। यह भी पता लगा कि उनके पास 'श्रमण' प्रायः पहुँच जाता है। 'श्रमण' में बनारस की प्रवृत्तियों के बारे में हर महीने थोड़ा बहुत निकलता रहता है, इससे बहुतों को पता लगता रहता है कि वहाँ क्या कार्य हो रहा है। इससे सब जगह हमारा काम भी सरल हो जाता था। अधिक परिचय देने की जरूरत नहीं रहती थी। भूमिका पहले से बनी हुई थी।

देहली से हम लोग १६ अक्तूबर को सीधे बीकानेर पहुँचे थे। सेठिया जी के यहाँ ठहरे। समिति के प्रधान ला० त्रिभुवननाथ जी वहाँ सीधे आए थे। हमने देखा कि श्री भैरोदान जी सेठिया ८५–८६ वर्ष की अवस्था में भी सर्वांग स्वस्थ, चलते फिरते, अपनी प्रवृत्तियों में निरन्तर नियत समय पर भाग लेते हैं। जिनको देख कर प्रसन्नता के साथ श्रद्धा भी होती है। श्री अगरचन्द जी नाहटा की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ दर्शनीय हैं। आप का पुस्तक संग्रह बड़ा सुन्दर व सुव्यवस्थित है। इंदौर में राज्यभूषण कन्हैयालाल जी भंडारी से मिल कर विशेष प्रेरणा मिलती है। आप भंडारी मिलों और व्यापारिक सभी प्रवृत्तियों को छोड़ कर योग साधना और जन हितार्थ चिकित्सा में ही प्रवृत्त रहते हैं। आप का औषधालय भी अन्य कामों की भाँति विकसित और सुव्यवस्थित देखा। भीनासर में सेठ चम्पालाल जी बाँठिया का नानाविध सामाजिक प्रवृत्तियों के अलावा मकान की सुन्दर रचना और सजावट के साथ ही कलाप्रेम विशेष सराहनीय है।

हम सभी जगह इतनी देर से पहुँचे थे कि चातुर्मास उठने वाला ही था। हमें यह बार-बार अनुभव हुआ और लोगों ने कहा भी कि जैन समाज से कुछ लेना हो तो सबसे अच्छा समय पर्युषण पर्व होता है। उन दिनों में एक उत्साह होता है, सब के मन में कुछ न कुछ देने की भावना रहती है। यह ठीक होते हुए भी हमें लगा कि जिस डेपुटेशन को अनेक जगह जाना हो, वह सिवाय एकाध जगह के पर्युषण के दिनों में ही सर्वत्र कैसे पहुँच सकता है, फिर सभी साथियों की सुविधा का भी प्रश्न रहता है। इस वर्ष तो छोटे भाई की

बीमारी भी पर्युषण के दिनों में ही प्रकट हुई। बल्कि पर्युषण के दिन ही दौड़-धूप और चिन्ता में बीते। अपनी कन्या का विवाह ४ अक्टूबर को था। जब इन सब बातों से निवृत्ति हुई तो चातुर्मास में मुश्किल से एक पक्षभर बाकी रह गया था। संवत्सरी को बीते तो दो मास होने को आए थे। असल बात यह है कि समाजोपयोगी व सांस्कृतिक प्रवृत्तियों के लिए जो कि स्थानीय न हों, लोगों को अपने दिलों में दान देने की प्रवृत्ति आगे पीछे भी बनाई रखनी चाहिए। हमारी यह भी कठिनाई थी कि जब हम बीकानेर पहुँचे तो दीवाली में केवल दो दिन रह गए थे। सभी इस त्योहार की तैयारी में लगे हुए थे। जोधपुर पहुँचे तो वह दिन ही दीवाली का था। अगला दिन नए वर्ष का आरंभ था। हमने देखा कि इस ओर नूतन वर्ष का आरंभ दीवाली के अगले दिन प्रतिपदा को होता है। सभी लोग सारा दिन एक दूसरे से मिलने जुलने में लगाते हैं। उन्हें दूसरी बातों की ओर ध्यान देना ही मुश्किल होता है। जोधपुर में हमें इसका पूरा अनुभव हुआ। भंडारी शुकनचन्द जी और भंडारी दौलत सिंह जी के यत्न और मंत्री साहब के कहने के बावजूद यहाँ कोई भी उपस्थित नहीं हुआ।

हमने अक्सर यह भी देखा कि सरकार की करनीति, मजदूरों के सम्बन्ध में अनेक नए कानूनों के लागू होने और अत्यन्त मन्दा होने से व्यापारी और कारखाने वालों को बड़ी समस्या का सामना करना पड़ रहा है। जो व्यक्ति ४-५ अंकों की रकम देने में संकोच नहीं किया करते थे। इन दिनों वे भी कुछ देने को तैयार न थे। लोगों की आर्थिक स्थिति काफी डावाँडोल हो रही है।

—क्रमशः
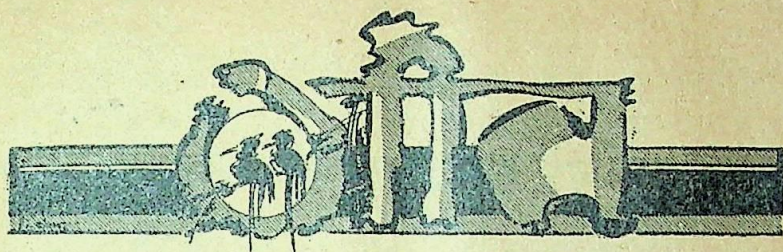
महावीर

महामृत्यु भी हार गई है !
जीवन निर्भय, अमर, प्राणमय, पीड़ा यह स्वीकार गई है !

सुधा न रुचती फीकी-फीकी,
पीता हूं तीखा हलाहल;
तन-मन को कंचन करने को
सुलगाता हूँ नित प्राणानल।

दुर्दम मानव, परुष, वज्रमय, इसकी नकश-निगार नई है !

यन्त्रित रस तो विरस हो गया,
यंत्रणा-स्वरस अब पीता हूँ;
मेरा अमरत्व ज़रा देखो,
मैं स्वयं काल बन जीता हूँ।

स्वयं विधाता पुरुष, तर्कमय, प्रगति नदी-सी धारमयी है !

अश्रु खोजने आई पीड़ा—
वापस जाती है टकरा कर;
व्याकुल करने आई चिन्ता
स्वयं भागती है घबरा कर।

अकलुष अन्तस्, कार्यमित्र मन मेघा शत-शतद्वारमयी है !

बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन
कदमकुआँ, पटना—३

—श्रीरंजन सूरिदेव

सच्ची साधना का प्रभाव

श्री राजाराम जैन

घटना ढाई हजार वर्ष पूर्व की है, श्वेताम्बी के निकटवर्ती घने जंगल में वाचाला नामक एक आश्रम था। अब वह वीरान हो चुका था, लेकिन उसके खण्डहर आज भी उसकी समृद्धि की गौरव गाथा गाते हुए प्रतीत होते थे, वहाँ पर अब कुलपति और स्नातकों की जगह एक भयंकर विषधर निवास करने लगा था। उसने उस आश्रम पर मानों एकच्छत्र राज्य ही कर लिया था। वह वहाँ पर किसी के भी अस्तित्व को स्वीकार नहीं कर सकता था विभिन्न अस्थिपञ्जर इसके उदाहरण प्रत्यक्ष बतला रहे थे।

विक्रम पूर्व ५११–५१० की मार्गशीर्ष की कृष्णा प्रतिपदा भारतीय इतिहास की एक विशेष तिथि के रूप में अमर रहेगी। निर्मोही भगवान् महावीर ने अस्थिकग्राम तथा मोराक सन्निवेश की जनता के विशेष परिचय से अपनी साधना में जब बाधा उपस्थित देखी तो उन्होंने निर्जनवास करने की ठानी, और वहाँ से उत्तर वाचाला की ओर चल पड़े।

सूर्य अपनी सारी शक्ति लगाकर सिर पर चमक रहा था, स्थल मण्डल तो मानो तेजस्वी बनने की उससे प्रतिद्वन्दिता ही कर रहा था। सभी प्राणी गर्मी से मुरझाकर छायालोक में विश्राम कर रहे थे। हाँ, एक साधक अवश्य अपनी साधना के पूरक, एक भयानक एवं अपरिचित स्थान की ओर बढ़ता ज़ा रहा था, उसकी तीव्र गति स्पष्ट बतला रही थी कि उसे प्रचण्ड गर्मी, तूफान या सरोष बवण्डर भी नहीं रोक सकते, नहीं रोक सकते।

साधक कुछ दूर ही पहुँचा था कि उसे एक आवाज सुनाई दी—

"क्या तुम अपने घर के औगरया (घर के निकाले हुए) आदमी हो जो अपने प्राण गँवाने उस तरफ जा रहे हो...क्या तुम्हें नहीं मालूम कि यह मार्ग कई वर्षों से चालू नहीं है ?....इसके आगे कुछ ही दूरी पर एक भयंकर सर्प रहता है, जो किसी को भी जिन्दा नहीं छोड़ता। मीलों के घेरे तक उसके

भयंकर विष ने पक्षियों तथा जीव जन्तुओं की तो बात दूसरी, पेड़ पौधों तक को सुखा दिया है, अतः तुम अविलम्ब वापिस हो जाओ।"

निर्मोही और आत्मविश्वासी साधक महावीर ने पौरुषोचित धन्यवाद प्रकट कर अपना चलना जारी रखा, और कुछ ही समय में वहाँ पहुँचकर उन्होंने एक टीले पर अपना आसन जमा लिया। कहना न होगा कि यह टीला उसी भयंकर सर्प की बाम्बी (घर) थी। विषधर जब घूमकर अपने घर आया और देखा कि एक कोई अजनबी पुरुष उसके घर पर आसन जमाए बैठा है तो उसे यह अपना तिरस्कार और पराजय ज्ञात हुई। उसने आवेश में आकर साधक महावीर के पैर में पूरी शक्ति लगाकर काट लिया। तेजस्वी साधक पर जब इसका कुछ भी असर न हुआ तो उसने और कई जगह काटा। फिर भी उनके ऊपर जरा भी इसका प्रभाव न हुआ।

साधक महावीर की जब समाधि भंग हुई तो देखा कि सर्प कतराया हुआ उनके सामने बैठा है। शान्त स्वर में उन्होंने पूछा—"क्यों भाई, तुम्हारा क्रोध तो शान्त हो गया न ?" सर्प ने यह सुनकर लज्जा से अपनी गर्दन झुका ली। यह अपने किए हुए पाप कर्मों के प्रायश्चित्त के लिए मानो मौन सम्मति थी।

उस दिन से उसने अपनी हिंसक मनोवृत्ति छोड़ दी। यह साधक की सच्ची साधना एवं आत्मबल का प्रभाव था। कहते हैं कि उस दिन के बाद से वह आश्रम पुनः हरा भरा एवं शान्ति तथा विद्या का केन्द्र बन गया।

मालथोन
सागर (मध्यप्रदेश)

महावीर और क्षमा

श्री भूपराज जैन

विश्व वैचित्र्य का आगार है। विश्व का यदि पर्यवलोकन किया जाय तो इसकी विचित्रता स्पष्टरूप से हमारी दृष्टि में झलक उठेगी। इस विशाल विश्व में बिना किसी कारण के कितनी आनन्दानुभूति होती है, यह एक घुमक्कड़ पूर्णरूपेण बता सकता है। यह निर्मल नीलाकाश कितना विस्तृत तथा कितना अनन्त है, कोई भी इसका अनुसन्धान नहीं कर सका। जिसकी छत्रछाया में मानव अनादि काल से आश्रय पा रहा है ऐसा यह भूखंड कितना बृहत् तथा विशाल है इसका युगों से अन्वेषण करने पर भी वैज्ञानिकों ने पता नहीं पाया। ज्यों ज्यों इसका अनुसन्धान किया जाता है त्यों त्यों आश्चर्यकारी वस्तुओं को देखकर वैज्ञानिक विस्मयविमुग्ध होते रहे हैं। एक के बाद दूसरी और अनेक समस्याएँ, विचित्रताएं समक्ष खड़ी हो जाती हैं। प्रकृति का क्रीड़ास्थल यह संसृतिसंगम अद्भुतालय है। सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ मानव स्वयं ही अनूठा एवं अनुपमेय है। जीवन स्वयं एक प्रहेलिका है अनेक ऋषि, महात्माओं एवं महापुरुषों ने इसको सुलझाने का सतत प्रयत्न किया किन्तु वे जाल में पड़े हुए मृग की तरह उलझ गए। इसी में समस्त किरणों का अनूठा इतिहास छिपा पड़ा है। किन्तु रंगरूप भेद के अनुसार इसमें परिवर्तन होता रहता है। कभी दानवता का बोलबाला रहता है तो कभी मानवता का। जब इस वैचित्र्यागार पर दानवता, निर्मम पाशविकता एवं पैशाचिकता का नग्न नृत्य होने लगता है तभी महापुरुष जन्म लेकर दुखित धरणी को मुक्त करते हैं।

आज से ढाई हजार वर्षपूर्व भारत की धार्मिक एवं सामाजिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। धर्म के नाम पर मनुष्य अपनी स्वार्थपूर्ति में लगे हुए थे, अपना उल्लू सीधा करना ही अपना कर्तव्य समझ बैठे थे। आडम्बर, पाखंड, ढोंग एवं निरे अहम् का सम्पूर्ण देश में अनर्गल प्रचार था। मूक पशुओं का यज्ञ की बलिवेदी पर बलिदान किया जाता था। वे निरीह पशु उच्छ्वसित आहों एवं करुण दृष्टियों से उन धर्मात्मा बधिकों से प्राणभिक्षा मांग रहे थे किन्तु वे तो पशुहिंसा को धर्म का निर्देश एवं पवित्र कार्य समझते थे। उसके बिना तो उनके यज्ञों की पूर्णाहुति होती ही नहीं थी। निरीह मानवों के लहू से अपने करों को रक्तरंजित करने में समाज के कर्णधार हिचकिचाते नहीं थे वरंच अपना अहोभाग्य समझते थे। दुष्कर्मों

की धूम थी, चारों तरफ भय, शोक और पीड़ा का अखंड साम्राज्य था। कहीं बालक खिसियाने से होकर चीत्कार करते थे तो कहीं विश्ववंद्य नारी जाति का करुण आर्तनाद पृथ्वी के उर को झकझोर रहा था। सारा समाज भीषण वेदना से कराह रहा था। भौतिकवाद के मोहक जाल में मानव बुरी तरह से फंस कर छटपटा रहा था तथा आध्यात्मिकवाद विस्मृति के गहन अंधकार में विलीन हो रहा था।

देश और समाज की स्थिति अत्यन्त विषम थी। ऐसी भयानक परिस्थितियों से जब वातावरण अशान्त और भीषणतम हो उठता है तब मानव निरुपाय होकर शक्ति साधना में लीन होता है, यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। वह अपने मस्तिष्क को झुकाकर हित की आकांक्षा करता है। ऐसे समय में एक महापुरुष का जन्म लेना अनिवार्य हो जाता है। एक ऐसे पुरुष की उन्हें आवश्यकता थी जो सत्य को प्रकट करके उन्हें दुरवस्था से बचा सके। सत्य का आलोक दिखाकर नयनों के सामने से माया के पर्दे को हटा सके। ज्ञान का बोध कराकर विमूढ़ता का विनाश कर सके। उस समय में एक ऐसे महामानव की आवश्यकता थी जो जीवन के महत्त्व को समझाकर आत्म-कल्याण का सुगम से सुगम मार्ग बताकर पतितों को ऊँचा उठा दे।

आंग्ल भाषा में एक प्रसिद्ध कहावत है "Necessity is the mother of invention." अर्थात् 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है'—इसके अनुसार परिवर्तन हुआ। मनुष्यों के भाग्य ने पलटा खाया। देश में सौभाग्य सूर्य उदय हो रहा था। समस्त दिग्दिगन्त रागमय हो उठे थे। एक ऐसी दिव्य ज्योति जन्म ग्रहण करना चाहती थी जिसके पावन चरणों की रजःकण से यह धरा पूत होकर अपने आप को शिवभावना से अलंकृत करना चाहती थी। अन्ततः वह स्वर्णिम दिवस भी आ ही पहुँचा और चैत्र सुदी त्रयोदशी की पावन वेला में, मांगलिक घड़ी में वीर प्रभु वर्धमान ने क्षत्रिय-कुण्ड नगर में महाराजा सिद्धार्थ के घर त्रिशला की कुक्षी से जन्म ग्रहण किया। पवन उनका जन्म संदेश लेकर सम्पूर्ण दिशाओं को सुनाने के लिए चल पड़ा। कलियों ने प्रसन्नता से चटक कर भ्रमरों को रसपान कराने के लिए अपना उर कमल विकसित कर दिया। स्वर्ग में भी संदेश पहुँच गया। इन्द्र और देवताओं ने मिल कर महोत्सव मनाया।

बालक वर्धमान यौवनावस्था में प्रविष्ट हुए, जिसके द्वार पर पैर रखते ही मनुष्य मदान्ध और मदोन्मत्त होकर भूल जाता है कर्तव्य को और स्वयं को।

उस समय वह अपने हृदय में एक प्रकार की गुदगुदी का अनुभव करता है, उससे पुलकित होकर दीन दुनिया को विस्मृत कर खो जाता है अतृप्ति की मादकता में। किन्तु वर्धमान अलौकिक संयमी तथा दृढ़कर्त्तव्य पालक थे। उन्होंने उस समय की परिस्थितियों का, घटनाचक्रों का गहन अध्ययन किया। उनकी आत्मा मानव का परित्राण करने के लिए तड़फ उठी। किशोरावस्था में इस प्रकार के भाव यह सिद्ध करते हैं कि, "Child is the father of man." अपनी भाषा में हम कहा करते हैं कि "पूत का पग पालनै दिखे।" यही उक्ति वर्धमान पर पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है। आखिर एक दिन प्राणीमात्र का कल्याण करने के किए, विश्वप्रेम और विश्व-बन्धुत्व का पाठ पढ़ाने के लिए राजकुमार वर्धमान, वैभव में लहराता जीवन, सर्वगुण सम्पन्न सुमुखी चन्द्रवदनी भामिनी एवं विशाल कंचन राशि को ठोकर मार कर निकल पड़ा घर से कुछ अन्वेषण करने के लिए।

तीस वर्ष की अवस्था, फूल सी कोमल देह फिर भी उग्र तपस्या, एक दिन नहीं, सप्ताह पक्ष नहीं, महीनों निराहार, निर्जल रह कर कठोर साधना। तपस्या काल में भयंकर यातनाएँ, भयंकर यातनाओं में भीषणतम, कठोरतम, और दुर्धर्ष परीक्षाएँ, एक नहीं, दो चार नहीं सैकड़ों! फिर भी पूर्णरूपेण उत्तीर्ण; दृढ़ता तथा धीरता का परिचायक है। यह साहस, संयम और त्याग तुम्हारा ही था, प्रभुवर तुम्हें धन्य है, तुम लेशमात्र भी विचलित नहीं हुए। साढ़े बारह वर्ष की तपस्या की जलती हुई भट्टी में तपकर तुम कुन्दन हो गए। इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके जिनेन्द्र कहलाए। शरीर साधना के परिणाम स्वरूप केवलज्ञानी हुए, दिव्य दृष्टि प्राप्त कर महावीर कहलाए।

प्राणी मात्र को उपदेश देना प्रारम्भ किया। कष्टों के समुद्र मंथन के पश्चात् जो अमृत प्राप्त किया उसको मानवजाति को पिलाने के लिए ही तुम एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने लगे। गांव-गांव, शहर-शहर और गली-गली में घूम घूम कर मानवता का उत्थान करने के लिए मानव को बोध देना प्रारम्भ किया। अपने उपदेशों में उन्होंने कहा, "मनुष्य को क्षमाशील होना अत्यन्त आवश्यक है। जो प्राणी क्षमागुण से अलंकृत नहीं है वह प्राणी ही क्या? उसका जीवन धिक्कार है।" यह उपयुक्त ही कहा है कि "क्षमा वीरस्य भूषणम्।" बिना क्षमा के मानवताररहित वीणा के समान है। जिसमें न कोई राग होता है न स्वर।

कोई भी मनुष्य उपदेश देने का अधिकारी तभी हो सकता है जबकि स्वयं आदर्श समुपस्थित कर उसका अनुकरण करता रहे। भगवान महावीर अपूर्व क्षमाशील थे भयंकर यातनाओं में भी उन्होंने क्षमा का पल्ला कभी नहीं छोड़ा था बल्कि अत्यन्त दृढ़ता से पकड़े रहे। चण्डकौशिक ने अपनी विषमय फुत्कारों से सम्पूर्ण विजन प्रान्त में हलचल उत्पन्न कर दी, वृक्ष लता तक उसके जहरीले श्वास से झुलस गईं किन्तु वह महावीर को नहीं डिगा सका। अभिभूत होकर अन्त में उसे अत्यन्त वेदना हुई। महावीर का ध्यान खुलने पर वह पालतू नाग की तरह उनके चरणों में लोटने लगा। महावीर ने क्षमादान देकर उपदेश दिया तथा उसका उद्धार किया। अहा! कैसा रम्य और उदार हृदय था जिन्होंने अपने ही नहीं मानवता के शत्रु को क्षमादान दिया। ऐसी एक नहीं अनेक घटनाएँ उनके जीवन में घटित हुईं। वनदेवियां वन्य सौन्दर्य लिये उन्हें पथभ्रष्ट करने के प्रयत्न में असफल हुईं। संगम देव एवं ग्वाले की यातनाएँ असफल रहीं। उन्होंने अपनी नीचता का अनुभव किया। बालक की तरह गिड़गिड़ा कर तीर्थंकर देव श्री जिनराज महावीर के चरण कमलों में गिर पड़े। महावीर ने उनको क्षमादान ही नहीं दिया अपितु सत्पथ पर लगाकर भवबंधनों से मुक्त कर मोक्षमार्ग दिखा दिया।

उन्होंने कहा— क्षमा निर्बलों का नहीं अपितु सबलों का भूषण है। क्षमा वह दीपस्तम्भ है जिसके संधिस्थल पर खड़ा होकर मानव शान्ति की पयस्विनी का उद्‌गम स्थल बन सकता है। क्षमा वह भूषण है जिससे अलंकृत होकर मानव जाति अपने को भव्य तथा महान् बनाकर उन्नति के चरमोत्कृष्ट आसन पर आसीन कर सकती है। आने वाली संततियों के लिए आदर्श रख कर सुपथ का निर्माण कर सकती है। कायरता दूसरों पर आक्रमण करना सिखाती है किन्तु सच्ची वीरता शत्रु पर भी क्षमावृत्ति सिखाती है।

भगवान् महावीर के जीवन में हमें ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिलते हैं जिनमें उन्होंने हिंसक, वन्य पशुओं, यक्षों, दानवों तथा निर्मलता के चोगे में कपटीवेश वालों को अभिभूत करके मानवता का पाठ पढ़ा करके सन्मार्गारूढ़ किया। महावीर की क्षमा कायर, निर्वीर्य और शक्तिहीन की नहीं अपितु तेजस्वी, मनस्वी तथा ज्ञानी की थी। कायर तो क्रोध में बेंत की तरह सिहर उठता है। कहा है—

"क्षमा बड़न को चाहिये छोटन को उत्पात।" वास्तव में पूर्ण सत्य है। बड़े से तात्पर्य यहाँ आयु में बड़े होने से नहीं वरंच जो अपने कार्यों एवं गुणों से महान् हैं; क्षमा उसका भूषण है।

आज विश्व अपनी लगाई हुई लपटों में जलता जा रहा है। इसके लिए क्षमावृत्ति की आवश्यकता है। यदि साम्राज्यलिप्सु राष्ट्र क्षमावृत्ति धारण करलें तो अल्प दिवसों में ही यह वसुन्धरा फिर से लहलहा उठेगी। इसके वक्षस्थल पर रत्नराशि चमक उठेगी और उष्ण पवन मलय पवन में परिवर्तित हो जायगा। वैसे तो—

पर उपदेश कुशल बहुतेरे।
जे आचरहिं नर न घनेरे।

श्री जवाहर विद्यापीठ
भीनासर (बीकानेर)

(पृष्ठ ६ का शेष)

बाहर जाना चाहता है। पग पग पैदल चलने के बदले पुनः वह कल्पना और भावना के पंखों पर उड़ना चाहता है। बुद्धि और विज्ञान की आवश्यकता समझते हुए भी मनुष्य कल्पना और भावना में सुख और आनन्द का अनुभव करता है। कला इन्हीं दो प्रवृत्तियों की वाहिका है। कल्पना और भावना मानव में अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द और उसके लोकोत्तर व्यक्तित्व की संभावना उत्पन्न करती हैं। कला इस प्रयास का मूर्त अंकन है। कला मनुष्य के शरीर को पृथ्वीतल पर से ऊपर उठा देती है। फिर उसके ऊपर साढ़े तीन हाथ का बन्धन नहीं रह जाता; उसकी ऊँचाई असीम और उसका विस्तार अनन्त हो जाता है। तीर्थङ्करों, बुद्धों और बोधिसत्वों की असामान्य विशालकाय मूर्तियों का रहस्य यही है। मानव से महामानव बनने की भूमिका यही है। विश्वके मूल्याङ्कन में पहले देव अथवा ईश्वर बढ़ा; फिर भौतिक मानव, पुनः काल्पनिक महामानव। तदनन्तर मानव में देव अथवा ईश्वर—अनन्त ज्ञान और आनन्द से युक्त लोकोत्तर मानव। इस विश्व के अभिनय में एक ओर ईश्वर अथवा देव पृथ्वी पर उतर आया—उसका अवतार हुआ; दूसरी ओर मानव आकाश छूने लगा—उसका दैवीकरण होगया।

भारती महाविद्यालय,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
बनारस—५

भगवान महावीर और वर्तमान युग

नरेश चन्द्र जैन

जिस विज्ञान की सहायता से मानव ने निर्दय, प्रलयंकारी शस्त्रों द्वारा विश्व का नाश करने का प्रयत्न किया, आज वही उसका निकटतम शत्रु हो गया। आज का विश्व अपनी हिंसावृत्ति से स्वयं आक्रान्त है और शांति, बन्धनमुक्त होने के लिए अविरल पुकार रुद्धकंठ से कर रहा है।

ऐसे समय में भगवान के अमर अमृत-गान से उसे अवश्य ही शांति मिलेगी। वह हिंसा के क्रूर, संकीर्ण प्रदेश से शांति के सागर में अपनी जीवन नैया निर्भय ले जा सकेगा।

भगवान महावीर की ही शिक्षा में उसकी वास्तविक आर्थिक, सामाजिक एवं नैतिक उन्नति निहित है। मनुष्य की आध्यात्मिक एवं भौतिक उन्नति का सरस दृढ, एवं सुगम्य एक ही मार्ग है और वह मार्ग भगवान महावीर की अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह, तप एवं ब्रह्मचर्य ही है। इसी मार्ग पर चलने से मानव की सर्वमुखी उन्नति हो सकती है। अहिंसा के निर्मल उद्देश्य से मनुष्य बिना किसी को कष्ट दिये अपनी उन्नति कर सकता है। अहिंसा का उपदेश निषेधात्मक नहीं है। परन्तु वह तो समस्त प्राणियों में चेतन की स्थिति की श्रेष्ठता को स्वीकार करता है। यदि सारे प्राणी एक दूसरे के शत्रु ही हो जायँ तो सृष्टि तत्काल नष्ट हो जाय, माँ अपने पुत्र को ही मार डालेगी। अहिंसा के आधार पर ही मानव समाज का अस्तित्व है। यदि कोई ऐसा माने कि बिना हिंसा हम जीवित ही नहीं रह सकते तो यह उसका भ्रम है। यह बात सत्य है कि सूक्ष्म अहिंसा का पालन सम्भव नहीं है पर स्थूलरूप से अहिंसा का पालन आवश्यक है और इसी में जग-कल्याण है। इस मार्ग की यथार्थता अनेकान्तवाद की कसौटी पर कसी जा सकती है। भगवान के अचौर्य और अपरिग्रह के उपदेश से ही संसार के क्लान्त मानव का उद्धार हो सकता है। साम्राज्यवाद तथा पूँजीवाद की निर्दय संकीर्ण मनोवृत्ति ने मनुष्य को पशु से भी अधिक पतित, दरिद्र एवं नारकीय कष्टों

के योग्य बनाया है। इसी मनोवृत्ति की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप आज विश्व में आधारभूत परिवर्तन होना चाहता है जिससे मानवता को एक ठस लगने वाली है। प्रतिहिंसा की ज्वाला में कहीं मानव की निर्मम हत्या न हो जाय। भगवान महावीर के अपरिग्रह एवं अचौर्य अमूल वचनों को बलान्त मानव अपनाए अन्यथा इसका अस्तित्व ही संदेहात्मक है।

भगवान महावीर ने केवल भौतिक स्तर ऊंचा करने का सुगम मार्ग ही नहीं दिखाया अपितु यह निर्देश किया कि मानव का लक्ष्य आभ्यांतरिक तप, स्वावलम्बन एवं स्वपुरुषार्थ से बन्धनमुक्त ही हो सकता है। प्रत्येक प्राणी स्वतन्त्र है। अपनी अपनी उन्नति, अपनी अपनी मुक्ति स्वयं ही करनी होगी, कोई भी तुम्हारा पाप स्वयं अपने पर लेकर तुमको मुक्त नहीं कर सकता है। वास्तविक उन्नति के लिए शुद्धभावना, ज्ञान, अहिंसा एवं सत्य ही पर्याप्त हैं, व्यर्थ का कायाक्लेश करने से मोक्ष नहीं प्राप्त होगा।

"सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः।"

भगवान महावीर ने प्रत्येक जाति एवं वर्गों में समानता मानी है। उच्च-वंश में जन्म लेने मात्र से कोई व्यक्ति बड़ा नहीं होता अपितु उच्च कर्म से ही उच्च बनता है किसी जाति या धर्म विशेष में जन्म लेने व धारण करने से ही उसका मोक्ष नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति अपने पुरुषार्थ से चाहे वह किसी भी जाति का क्यों न हो, मोक्ष प्राप्त कर सकता है। सब प्राणियों में चेतन विद्यमान है। कोई भी जन्म से श्रेष्ठ या पतित नहीं कहा जा सकता। हरिजन भी अपनी उतनी ही उन्नति कर सकता है जितनी कि एक सम्राट्। सब व्यक्ति समान हैं एवं स्वतन्त्र हैं। इस समानता के पाठ एवं विश्वबन्धुत्व की भावना तथा स्वतन्त्रता की पुकार सभी ने की है। आज के मानव में समानता, स्वतन्त्रता एवं विश्वबन्धुत्व कहाँ है? जैन दर्शन ने इसको पूर्णरूप से माना है। पर व्यवहार में यह कहाँ है? हमें गण-तन्त्रात्मक भारत में स्वतन्त्रता, समानता एवं विश्वबन्धुत्व की भावनाओं को अवश्य जागृत करना है, इसी में मानव का कल्याण है। जैन दर्शन के यथार्थवाद, अनेकान्तवाद,अ परिग्रहवाद, अहिंसा, अचौर्य व्रत आदि की आध्या-त्मिक उन्नति के क्षेत्र में बहुत बड़ी देन है और इसी से भारत का क्या विश्व का कल्याण संभव है।
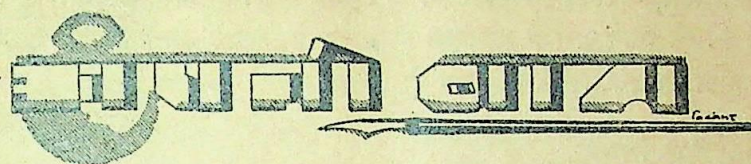
एक नई आशा

बिहार सरकार जिन तीन संस्थाओं को जन्म देने के लिए बहुत उत्सुक थी उनमें से दो संस्थाएँ तो अस्तित्व में आ चुकी हैं और उन्होंने अपने अपने विषय पर कार्य करना भी प्रारम्भ कर दिया है। पहली संस्था है दरभंगा संस्कृत इन्स्टिट्यूट, जिसमें संस्कृत की भिन्न भिन्न शाखाओं का वैज्ञानिक अध्ययन-अध्यापन किया जा रहा है। दूसरी संस्था है नालन्दा पालि इन्स्टिट्यूट, जिसमें बौद्ध ज्ञान-विज्ञान एवं पालि का अध्ययन-अध्यापन करने की सुविधा दी जाती है। इसी प्रकार एक ऐसी संस्था की भी आवश्यकता है जो जैन ज्ञान-विज्ञान एवं प्राकृत के अध्ययन-अध्यापन के लिए कुछ कार्य करे। भारत में संस्कृत के लिए एक संस्था खोलना कोई कठिन कार्य नहीं है। दरभंगा के एक महाराजा ने ही इस कार्य को पूरा कर दिया। बौद्धधर्म का अन्ताराष्ट्रिय महत्त्व है इसीलिए नालन्दा पालि इन्स्टिटयूट का खुलना भी अति कठिन कार्य न था। रही बात जैन इन्स्टिटयूट की। इसके लिए बाहर से तो पैसा आ ही नहीं सकता। भारत में रहने वाले जैन इस कार्य के महत्त्व को समझकर इसके लिए आवश्यक धन दें, यह भी जरा कठिन है। इसीलिए इस प्रकार की संस्था अभीतक स्थापित न हो सकी। इतना होते हुए भी हमारे समाज के कुछ उत्साही एवं विद्वान् कार्यकर्ता इसके लिए यथाशक्ति बराबर प्रयत्न करते रहे। 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' के ९-२-५३ के अंक में यह समाचार निकला है कि वैशाली का संघ इस कार्य को पूर्ण करने के लिए सक्रिय कदम उठा रहा है। वहाँ के संघ के लोग इस प्रकार की संस्था वैशाली में खुले, इसके लिए पूरी कोशिश कर रहे हैं। वे इस कार्य के लिए केन्द्रीय सरकार तथा प्रादेशिक सरकारों के पास भी पहुँचने वाले हैं। उन्हें इस बात का गौरव है कि वैशाली महावीर की जन्मभूमि है और जैन विचार धारा के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए यदि कोई संस्था खुले तो वह वैशाली में ही खुले, इसके लिए वे कृतसंकल्प हैं। उनके उत्साह के बढ़ाने में पूर्ण सहयोग देना प्रत्येक समर्थ व्यक्ति का कर्तव्य है। साथ ही हमारे देश की प्रान्तीय एवं केन्द्रीय सरकारों का भी कर्तव्य है कि वे इस पुनीत कार्य में

हाथ बँटाए। विहार सरकार तो प्रारम्भिक सहायता प्राप्त हो जाने पर इस संस्था को अपने खर्च से चलाएगी ही। क्या हम यह आशा करें कि वैशाली में इसी वर्ष इस संस्था का जन्म हो जाए ?

एक शुभ निर्णय

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के कार्यकर्ताओं ने यह निर्णय किया है कि जैन साहित्य के प्रकाशन के लिए धीरे धीरे सक्रिय कदम उठाया जाय। यह प्रकाशन दो प्रकार का होगा। एक तो ऐसे साहित्य का प्रकाशन, जो आवश्यकतानुसार अधिकारी विद्वानों से तैयार कराया जाय। उदाहरण के लिए हमें एक प्रामाणिक जैन साहित्य के इतिहास की जरूरत है। कुछ लोग मिल कर इस काम को अपने हाथ में लें व एक निश्चित समय के भीतर इस कार्य को पूर्ण करके संस्था को सौंप दें। इसी प्रकार जैनदर्शन का इतिहास, जैन शब्दकोश आदि आवश्यक विषयों पर पुस्तकें तैयार कराई जा सकती हैं। इसकी निश्चित योजना प्रायः तैयार है। इस योजना के प्रथम अंश को कार्यरूप में परिणत करने का संस्था का संकल्प अभिनन्दन के योग्य है। दूसरे प्रकार का प्रकाशन ऐसे ग्रन्थों का है जिन पर पीएच. डी., डी. लिट. आदि ऊंची ऊंची उपाधियां प्राप्त हुई हों। आज के वैज्ञानिक युग में इस प्रकार के ग्रन्थों का अत्यन्त महत्त्व है, इस बात को जान कर ही संस्था के कार्यकर्ताओं ने यह निर्णय किया है कि चाहे कहीं से पैसा मिले चाहे न मिले, हमें ऐसे ग्रन्थ प्रकाशित करने ही हैं। इस निर्णय से हमें ऐसी आशा करनी चाहिए कि थोड़े ही समय में जैन विषयों पर प्रामाणिक साहित्य तैयार हो सकेगा। खोजपूर्ण ग्रंथों का प्रकाशन आज तक जैन समाज की संस्थाओं के लिए एक समस्या बनी हुई थी। इस निर्णय से इस समस्या को सुलझाने में काफी सहायता मिल सकेगी। क्या संस्था के कार्यकर्ताओं को इसके लिए हम बधाई दें ?

विद्याश्रम की प्रबन्ध समिति ने सर्व प्रथम 'जैन साहित्य का इतिहास' नामक ग्रन्थ तैयार कराने का निश्चय किया है। इस कार्य को किस रूप में सम्पन्न किया जाए, इसके लिए निम्न योजना बनाई गई है। इस ग्रन्थ के चार भाग होंगे—

भाग-१-आगमिक साहित्य का इतिहासः प्रथम खण्ड-मूल आगम और उनकी निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका और टबाओं का सांगोपांग परिचय। इस खण्ड के सम्पादक के रूप में पं० बेचरदास जी का नाम सुझाया गया है।

द्वितीय खण्ड—षट्खण्डागम, कषाय पाहुड, महाबन्ध तथा उन पर रचित धवला, जयधवला, महाधवला आदि सभी टीकाओं का पूर्ण परिचय। इस खण्ड के सम्पादक के रूप में डॉ० हीरालाल जैन का नाम रखा गया है। तृतीय खण्ड–इसमें कर्म प्रकृति, पञ्चसंग्रह, गोम्मटसार आदि सम्पूर्ण कर्म विषयक साहित्य का परिचय रहेगा। इसका सम्पादन पं० फूलचन्द्र जी करेंगे, ऐसी आशा है। चतुर्थ खण्ड–इसमें आगमिक प्रकरण साहित्य का परिचय रहेगा। इस खण्ड का सम्पादनभार पं० दलसुख मालवणिया पर रहेगा।

भाग २–दार्शनिक और वैज्ञानिक साहित्य का इतिहासः इसके दो खंड होंगे—प्रथमखण्ड में प्रमाण, नय, निक्षेप, द्रव्य, गुण, पर्याय आदि दार्शनिक विषयों का ऐतिहासिक परिचय रहेगा। इस खंड के संपादन के लिए भी पं० दलसुख मालवणिया का नाम रखा गया है। द्वितीय खण्ड में व्याकरण, कोष, अलंकार, छन्द, ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद, संगीत, शिल्प, मुद्रा आदि विषयों पर सामग्री एकत्र की जायगी। इस खण्ड के सम्पादक डॉ० ए० एन० उपाध्ये रहेंगे।

भाग ३—साहित्यिक कृतियों का इतिहासः इस भाग में भी दो खण्ड होंगे—प्रथम खण्ड में पुराण, चरित, कथा और प्रबंध का परिचय रहेगा और दूसरे खण्ड में काव्य, नाटक, चम्पू, स्तोत्र आदि विषयों पर ऐतिहासिक अध्ययन रहेगा। इस भाग का सम्पादन कार्य डॉ० भोगीलाल सांडेसरा करेंगे। ऐसी आशा है।

भाग ४—लोक भाषाओं की कृतियों का इतिहासः हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी आदि उत्तर की भाषाओं में लिखी हुई जैन कृतियों का ऐतिहासिक परिचय प्रथम खंड में दिया जाएगा तथा द्वितीय खण्ड में कन्नड़, तामिल तेलगु आदि दक्षिणी भाषाओं की कृतियों का परिचय रहेगा। प्रथम खण्ड का संपादन श्री अगरचन्द नाहटा एवं द्वितीय खंड का सम्पादन श्री के० भुजबलि शास्त्री करेंगे। प्रत्येक खण्ड में अनेक अध्याय या प्रकरण रहेंगे। जिन्हें लिखने के लिए भिन्न भिन्न लेखक नियुक्त किए जाएँगे। लेखकों को प्रतिपृष्ठ ५) पुरस्कार दिया जाएगा।

एक मूक सेवक का सम्मान

मेवाड़ में जन्म लेने वाले जैन समाज के कर्मठ सेवक श्री जोधराज जी सुराणा को मद्रास प्रान्त के सभी जैन जानते है। आज से बीस वर्ष पहले उन्होंने मद्रास में जाकर शिक्षा का अंकुर लगाया और उत्तर से जाने वाले

लोगों के हृदयों में शिक्षा के प्रति प्रेम पैदा किया। सन् १९३३ में वहाँ पर एक छोटी सी प्राथमिक शाला की स्थापना की। धीरे धीरे आवश्यकता प्रतीत होने पर उन्हीं के हाथों से छात्रालय भी स्थापित किया गया। उनके इन छोटे छोटे प्रयत्नों से समाज में ज्यों ज्यों जागृति फैलती गई और उत्साही युवकों तथा धनवानों का उन्हें सहयोग प्राप्त होता गया, त्यों त्यों वे अपनी प्रवृत्तियों को आगे बढ़ाते गए। इसी के फल स्वरूप जैन एज्युकेशन सोसायटी का संगठन हुआ। सोसायटी के संगठन के बाद प्राथमिक पाठशाला हाईस्कूल के रूप में परिणत हुई। आज मद्रास में जो जैन कॉलेज चल रहा है वह इसी प्राथमिक पाठशाला का विकसित रूप है। मद्रास में हिन्दी माध्यम द्वारा शिक्षा देने वाली संस्थाओं में इस संस्था का स्थान बहुत महत्त्व-पूर्ण है। इस दृष्टि से श्री सुराणा जी को केवल जैन समाज की सेवा का ही नहीं अपितु हिन्दी की सेवा का भी श्रेय है।

मद्रास के बाद उन्होंने अपना केन्द्र बेंगलोर बनाया है। वहाँ भी उनका यही कार्य है। सुमति जैन छात्रालय, जैन हिन्दी विद्यालय, हिन्दी माध्यमिक बालकबस्ती आदि संस्थाएँ उन्हीं के परिश्रम का परिणाम है। मद्रास और बेंगलोर के अतिरिक्त आसपास के अन्य स्थानों में भी उन्होंने यथावसर कार्य किया। रोबर्सन पेठ में महावीर हिन्दी स्कूल, रायचुर में वर्धमान हिन्दी पाठशाला, कोपल में महावीर जैन विद्यालय की स्थापना भी सुराणाजी के परिश्रम का ही फल है।

श्री सुराणाजी ने इतना सारा कार्य करते हुए भी कभी आर्थिक फल की आकांक्षा नहीं रखी, यह उनकी सेवा की सबसे बड़ी विशेषता है। इतना ही नहीं अपितु उन्होंने अपने पास जो कुछ था उसमें से भी बहुत कुछ इन कार्यों के पीछे समर्पित कर दिया। बहुत बड़े परिवार का उत्तरदायित्व अपने सिर पर होते हुए भी उन्होंने भविष्य की कभी चिन्ता नहीं की। उनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य रहा है जैन समाज व हिन्दी की सेवा।

श्री सुराणाजी की इन सेवाओं के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए कुछ लोगों ने यह निश्चय किया है कि उन्हें पचीस हजार रुपये की एक थैली अर्पित की जाए। इस योजना का प्रत्येक विद्याप्रेमी को स्वागत करना चाहिए एवं अपनी शक्ति के अनुसार इसे सफल बनाने में योग देना चाहिए। विशेषकर मद्रास प्रान्त के जैनों को तो इसमें पूर्ण सहयोग देना चाहिए।

विद्याश्रम समाचार

विद्याश्रम की नई प्रवृत्तियाँ

इस समय श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम की ओर से कई नई प्रवृत्तियाँ चालू हो रही हैं। सरकार की मार्फत करीब ६ बीघे जमीन ली जा रही है। जिस पर लगभग २७०००) रु० खर्च होगा। 'जैन साहित्य निर्माण योजना' की प्राथमिक रूपरेखा छपवा कर विशिष्ट विद्वानों की सेवा में विचारार्थ भेजी जा चुकी है। उनके उत्तरों से पता चलता है कि विद्वानों ने इस योजना का अच्छा स्वागत किया है; और वे संभव सहयोग देने को तैयार भी हैं। जैन समाज की दृष्टि से साहित्य के निर्माण का कार्य बड़े महत्व का है। इसकी आज जरूरत भी है। सबसे पहले 'जैन साहित्य का इतिहास' का काम शुरू होगा। योजना को पूर्ण रूप देने के लिए इसी अप्रैल में विद्वानों का एक सम्मेलन भी बुलाया जा रहा है। हर्ष की बात है कि सुप्रसिद्ध विद्वान श्री वासुदेव शरण अग्रवाल इस कार्य में प्रमुख भाग ले रहे हैं; और पूज्य पं० श्री सुखलाल जी का आशीर्वाद इसके साथ है। इन सब बातों को निश्चित रूप देने के लिए मंत्री श्री हरजसराय जी जैन इन्हीं दिनों अमृतसर से बनारस पधारे थे और करीब एक सप्ताह यहाँ ठहरे।

डॉ० इन्द्र बनारस में

'श्रमण' के प्रेमी पाठकों को यह जानकर हर्ष व संतोष होगा कि डॉ० इन्द्रचन्द्र (शास्त्री, शास्त्राचार्य, एम. ए., पी. एच. डी.) फिर से श्रमण के संपादन का उत्तरदायित्व अपने पर ले रहे हैं। 'श्रमण' के प्रस्थापक होने के नाते इससे इनका स्वाभाविक स्नेह है। हमारा विश्वास है कि 'श्रमण' अब पहले से भी कहीं अच्छेरूप में पाठकों के सामने आएगा। पाठकों से भी हमें पूर्ण सहयोग व आदर मिलने की आशा है। इधर विद्याश्रम के संचालक यह विचार कर रहे हैं कि 'श्रमण' को और भी उपयोगी बनाया जाए। इसके त्रैमासिक अंकों में अनुसन्धान की सामग्री दी जाए। जिससे इसके पाठकों की ज्ञानवृद्धि हो और यह सांस्कृतिक साहित्य के निर्माण में सहायक बने। इसके अलावा डॉ० इन्द्र साहित्य निर्माण योजना की व्यवस्था और स्वयं साहित्य निर्माण आदि के कार्य भी अपने हाथ में ले रहे हैं।

—अधिष्ठाता

जैन साहित्य निर्माण योजना तथा 'श्रमण' के अनुसन्धान अंक

(क) जैन समाज तथा साहित्य प्रेमियों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति, अपने पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस में एक नई प्रवृत्ति प्रारम्भ कर रही है और वह है जैन तत्त्वज्ञान, इतिहास एवं साहित्य आदि विषयों पर नवीन प्रामाणिक साहित्य का निर्माण। इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत सर्वप्रथम निम्न लिखित तीन महाग्रन्थों की योजना बनाई गई है:-

१ **जैन साहित्य का इतिहास**—अर्धमागधी, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, तामिल, कन्नड, तेलगु आदि भारतीय भाषाओं में जैन विद्वानों द्वारा रचे गए हजारों ग्रन्थ हैं। अभी तक ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं निकला जो उन का प्रामाणिक परिचय दे सके। प्रस्तुत ग्रन्थ इसी अभाव की पूर्ति के लिए एक प्रयत्न है। ग्रन्थ का अनुमानित आकार बड़े साइज के लगभग ३००० पृष्ठ का होगा, इसके लिए भारत के सुप्रसिद्ध विद्वानों से सम्पर्क स्थापित किया गया है। जो जिस काल, भाषा या विषय के विशेषज्ञ हैं उन्हीं से उस पर लिखने का अनुरोध किया गया है।

२ **जैनधर्म तथा तत्त्वज्ञान का इतिहास**— उपलब्ध इतिहास की दृष्टि से देखा जाय तो भी जैन परम्परा तीन हजार वर्ष से जनमानस का सिंचन एवं संस्कार कर रही है। भारत की अन्य विचारधाराओं के सम्पर्क में आने पर उस में विविध परिवर्तन भी हुए हैं। उसके इस संघर्ष एवं प्रगति का क्रमबद्ध इतिहास अभी तक उपलब्ध नहीं है। स्याद्वाद, प्रमाण, नय, निक्षेप आदि जैन तर्कशास्त्र, जीव अजीव आदि तत्त्वज्ञान, अहिंसा, महाव्रत, अणुव्रत आदि आचारशास्त्र, गुणस्थान, लेश्या, ध्यान आदि अध्यात्म एवं अन्य बातों का तुलनात्मक सर्वाङ्गीण परिचय देने वाला ग्रन्थ भी अभी तक नहीं है। प्रस्तुत ग्रन्थ इसी दिशा में एक ठोस प्रयत्न होगा।

३ Dictionary of Jain Proper Names (**जैन पारिभाषिक शब्दकोश**)— जैन साहित्य में इतिहास, भूगोल, आचारशास्त्र, तत्त्वज्ञान आदि विषयों से संबन्धित जितने शब्द हैं, सब का संक्षिप्त परिचय इसमें रहेगा।

(ख) उपरोक्त प्रवृत्तियों के अतिरिक्त यह भी सोचा जा रहा है कि 'श्रमण' का प्रत्येक त्रैमासिक अंक अनुसन्धान (Research) से सम्बन्ध रखने वाला हो। उसके द्वारा पाठकों को यह जानकारी मिलती रहे कि जैन तत्त्वज्ञान एवं इतिहास के विषय में क्या क्या नई खोज हो रही है।

इन प्रवृत्तियों का संचालन डॉ० इन्द्र अपने हाथ में ले रहे हैं। हम आप को सहयोगी बनने के लिए आमन्त्रित करते हैं। निवेदक—

हरजसराय जैन, मंत्री

अप्रैल १९५३

प्रार्थना

प्रभो !
जब जीवन की हरियाली सूख जाय,
पक्षियों का कलरव बन्द हो जाय,
सूर्य मण्डल पर ग्रहण की काली छाया घनीभूत
हो जाय,
परखे हुए मित्र तथा आत्मीय कण्टकाकीर्ण मार्ग पर
मुझे अकेला छोड़ कर चले जायँ,
ब्रह्माण्ड की सारी विपत्तियाँ बरसने वाली हों
उस समय
हे मेरे प्रभो !
इतनी कृपा करना
कि
मेरे अधरों पर
हास्य की
एक क्षीण रेखा दौड़ जाय !

★

सम्पादक
डॉ० इन्द्र एम.ए., पीएच. डी.

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम
हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस-५

इस अंक में-

१. मानवमात्र का तीर्थ—पं० सुखलाल जी — १

२. भौतिकता और अध्यात्म का समन्वय—प्रो० दलसुख मालवणिया — ३

३. हम किधर बह रहे हैं ?—डॉ० इन्द्र — ५

४. क्षमादान (कहानी)—श्री जयभिक्खु — १५

५. अधूरा चित्र (गद्यगीत)—श्रीमती सत्य प्रभाकर — २०

६. प्राकृत साहित्य के इतिहास के प्रकाशन की-आवश्यकता—श्री अगरचंद नाहटा — २१

७. हमारी यात्रा के कुछ संस्मरण—श्री हरजसराय जैन, — २८

८. प्रिय कहाँ हो ? (गीत)—श्रीमती कमला जैन 'जीजी' — ३४

९. अपनी बात (सम्पादकीय)— — ३५

१०. साहित्य-सत्कार — ३७

११. विद्याश्रम-समाचार— — ३९

श्रमण के विषय में-

१. श्रमण प्रत्येक अंगरेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है।

२. ग्राहक पूरे वर्ष के लिए बनाए जाते हैं।

३. श्रमण में सांप्रदायिक कदाग्रह को स्थान नहीं दिया जाता।

४. अप्रकाशित रचनाएँ ही श्रमण में प्रकाशित होने के लिए भेजी जानी चाहिए।

५. संपादन-संबन्धी पत्र-व्यवहार सम्पादक एवं व्यवस्था संबन्धी पत्र-व्यवहार व्यवस्थापक से करें।

६. ग्राहक पत्र-व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक-संख्या लिखना न भूलें।

वार्षिक मूल्य ४)   एक प्रति ।=)

प्रकाशक—कृष्णचन्द्राचार्य,
श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस-५
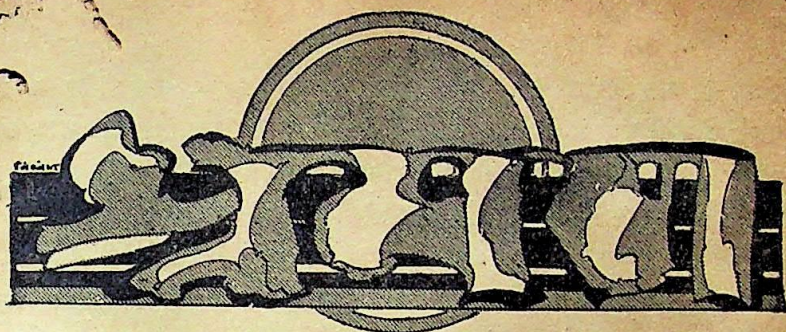
श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस का मुखपत्र

अप्रैल १९५३ | वर्ष ४ अंक ६

मानव मात्र का तीर्थ

पं० सुखलाल जी

दीर्घतपस्वी महावीर की जन्म-भूमि और तथागत बुद्ध की उपदेश भूमि होने के कारण वैशाली विदेह का प्रधान नगर रहा है। यह केवल जैनों और बौद्धों का ही नहीं, पर मानव-जाति का एक तीर्थ बन गया है। उक्त दोनों श्रमणवीरों ने करुणा तथा मैत्री की जो विरासत अपने अपने तत्कालीन संघों के द्वारा मानव-जाति को दी थी उसी का कालक्रम से भारत और भारत के बाहर इतना विकास हुआ है कि आज का कोई भी मानवतावादी वैशाली के इतिहास के प्रति उदासीन नहीं रह सकता।

मानव जीवन में संबंध तो अनेक हैं, परन्तु चार संबंध ऐसे हैं जो ध्यान खींचते हैं—राजकीय, सामाजिक, धार्मिक और विद्याविषयक। इनमें से पहले दो स्थिर नहीं। दो मित्र नरपति या दो मित्र राज्य दीर्घकाल तक मित्रता में स्थिर नहीं रहते। परस्पर शत्रु भी अचानक मित्र बन जाते हैं। इतना ही नहीं, शासित शासक बन जाता है और शासक शासित। सामाजिक संबंध कितना ही निकट का और रक्त का हो किन्तु यह स्थायी नहीं होता। हम दो चार पीढ़ी दूर के संबंधियों को अकसर बिल्कुल भूल जाते हैं। यदि संबंधियों के बीच स्थान की दूरी हुई या आना जाना न रहा तब तो बहुधा एक कुटुम्ब के व्यक्ति भी पारस्परिक संबंध को भूल जाते हैं। परन्तु धर्म और विद्या के

संबंध की बात निराली है। एक धर्म का अनुगामी भाषा, जाति, देश आदि बातों में उसी धर्म के दूसरे अनुगामियों से कितना ही जुदा हो तब भी उनके बीच धर्म का संबन्ध ऐसा होता है मानो वे एक ही कुटुम्ब के हों। चीन, तिब्बत जैसे दूरवर्ती देशों का बौद्ध जब सीलोन, बर्मा आदि के बौद्धों से मिलेगा तब वह आत्मीयता का अनुभव करेगा। भारत में जन्मा और पला हुआ मुसलमान मक्का मदीना के मुसलमान अरबों से घनिष्ठता मानता है। यह स्थिति सब धर्मों की अकसर देखी जाती है। गुजरात, राजस्थान, दूर दक्षिण, कर्णाटक आदि के जैन कितनी ही बातों में भिन्न क्यों न हों पर वे सब भगवान् महावीर के धर्मानुयायी होने के नाते अपने में पूर्ण एकता का अनुभव करते हैं। भगवान महावीर के अहिंसाप्रधान धर्म का पोषण, प्रचार वैशाली और विदेह में ही मुख्यतया हुआ है। जैसे चीनी बर्मी आदि बौद्ध, सारनाथ, गया आदि को अपना ही स्थान समझते हैं, वैसे ही दूर दूर के जैन महावीर के जन्म स्थान वैशाली को भी मुख्य धर्म स्थान समझते हैं और महावीर के धर्मानुगामी होने के नाते वैशाली में और वैसे ही बिहार के अन्य तीर्थों में मिलते हैं। उनके लिए बिहार और खासकर वैशाली मक्का या जेरुसेलम है। यह धार्मिक संबंध अमर है। काल के अनेक थपेड़े भी इसे क्षीण कर नहीं सके हैं और न कभी कर सकेंगे। बल्कि जैसे जैसे अहिंसा की समझ और उसका प्रचार बढ़ता जायगा वैसे वैसे ज्ञातृपुत्र महावीर की यह जन्मभूमि उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण तीर्थं बनती जायगी।

हम लोग पूर्व के निवासी हैं। सोक्रेटिस, प्लेटो, एरिस्टोटेल आदि पश्चिम के निवासी थे। बुद्ध, महावीर, कणाद, अक्षपाद, शंकर, वाचस्पति आदि भारत के सपूत थे। जिनका यूरोप, अमेरिका आदि देशों से कोई वास्ता नहीं। फिर भी पश्चिम और पूर्व के सम्बन्ध को कभी क्षीण न होने देने वाला तत्त्व कौन सा है, यदि कोई ऐसा प्रश्न करे तो इसका जबाब एक ही है कि वह तत्त्व है विद्या का। जुदे जुदे धर्म वाले भी विद्या के नाते एक हो जाते हैं। लड़ाई, आर्थिक खींचातानी, मतान्धता आदि अनेक विघातक आसुरी तत्व आते हैं तो भी विद्या ही ऐसी चीज है जो सब जुदाइओं में भी मनुष्य मनुष्य को एक दूसरे के प्रति आदरशील बनाती है। अगर विद्या का संबन्ध ऐसा उज्ज्वल और स्थिर है तो कहना होगा कि विद्या के नाते भी वैशाली-विदेह और बिहार सबको एक सूत्र में पिरोयेगा क्योंकि वह विद्या का भी तीर्थ है।
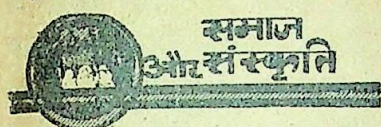
भौतिकता और अध्यात्म का समन्वय

प्रो० दलसुख मालवणिया

सामान्यतः लोगोंकी यह धारणा है कि 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' यह महाकवि की उक्ति ब्राह्मण धर्म की साधना के लिए सच है। श्रमण धर्म का मार्ग इससे विपरीत है। अतएव वे कहा करते हैं कि व्यक्तित्व के आध्यात्मिक विकास के लिए भौतिक वस्तुओं की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। मैं समझता हूँ कि इससे बड़ा झूठ कोई हो नहीं सकता।

जैन और बौद्ध दोनों ने अपने महापुरुषों की शारीरिक विशेषताओं का जो वर्णन किया है उन पर तनिक ध्यान दिया जाय तो स्पष्ट होगा कि आध्यात्मिक विकास जितना प्रबल करना हो उतना ही शरीर प्रबल और सुदृढ़ चाहिए। यह बात दोनों श्रमणमार्गियों ने सिद्धान्त रूपसे स्वीकृत की है। यह एक दूसरा प्रश्न है कि शरीर का वैसा प्राबल्य कई जन्मों के कार्य का फल हो और जिस जन्ममें मुक्त होना हो उस जन्म के कर्म दूसरे ही प्रकार के हों। किन्तु मुख्य बात इतनी तो स्पष्ट है कि जब साध्य अध्यात्मदृष्टि से श्रेष्ठ सिद्ध करना हो तब साधन-शरीर उतना ही प्रबल होना चाहिए। अन्यथा श्रेष्ठ प्रकार की साधना संभव नहीं। शरीर भौतिक है, इससे तो कोई इनकार कर ही नहीं सकता है। तब यह कहना कि आध्यात्मिक साधना के लिए भौतिक वस्तुओं की तनिक भी आवश्यकता नहीं, यह अध्यात्म और भौतिक दोनों की मर्यादा को नहीं समझने का फल है?

साधक को आध्यात्मिक विकास के लिए शरीर के अतिरिक्त जितने साधन चाहिए—चाहे वे वस्त्र, पात्र, पिच्छ, कमंडलु या और कुछ हों, उन्हें परिग्रह की कोटि से हटा देने मात्र से या उन पर ममत्व बुद्धि नहीं है ऐसा कहने मात्र से वे सब आध्यात्मिक नहीं बन जाते। वे भौतिक ही बने रहते हैं। किन्तु उनका उपयोग आध्यात्मिक दृष्टि के या आध्यात्मिक साधना के

विकास के लिए करते हैं भौतिकवाद के या भौतिक दृष्टि के विकास के लिए नहीं करते। इसीलिए हम कहते हैं कि भौतिक वस्तुओं की भी आवश्यकता आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में पड़ती ही है। आवश्यकता के स्वीकार मात्र से हम आध्यात्मिक के बजाय भौतिकवादी बन जाते हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। वस्तु कोई भी हो—भौतिक या आध्यात्मिक—उसका उपयोग जिस दृष्टि से होता है उस दृष्टि के अनुसार व्यक्ति को आध्यात्मिक या भौतिक कहा जायगा।

भगवान् बुद्ध के जीवन का ध्यान से अध्ययन करें तो पता चलेगा कि उन्होंने शरीर की भौतिक आवश्यकताओं को सर्वथा अनवसर में निरुद्ध करके क्या फल पाया? बोधि के बजाय कष्ट ही उनके पल्ले पड़ा। फलस्वरूप उन्होंने सुजाता से क्षीर ग्रहण करके अपना मार्ग बदला। इससे क्या यह सिद्ध नहीं होता कि आध्यात्मिक साधना में भी भौतिक वस्तुओं की आवश्यकता रहती ही है भगवान् महावीर को उग्र तपस्वी समझा जाता है किन्तु उन्हें भी क्या अन्न जल नहीं लेना पड़ा? फिर यह कैसे माना जाय कि आध्यात्मिक व्यक्ति को भौतिक पदार्थों से कोई मतलब ही नहीं।

साधना के मार्ग को स्वीकार करके ही प्रथम क्षण में यदि कोई यह निश्चय कर ले कि हमें अब किसी भौतिक वस्तु से मतलब नहीं, तो ऐसा उनका निश्चय आत्मघात का तो कारण हो सकता है साध्यसिद्धि का नहीं। आत्मघात को तो संसार बढ़ाने वाला माना गया है। आध्यात्मिक साधना का वह मार्ग नहीं है। यही कारण है कि जैनशास्त्रों में जो योगनिरोध—व्यापारनिरोध या प्रवृत्तिनिरोध की प्रक्रिया बताई गई है। उसमें प्रवृति से ही क्रमशः प्रवृत्ति का निरोध माना गया है। जैसे गांठ बांधने के लिए एक प्रकार का प्रयत्न आवश्यक है वैसे उसे खोलने के लिए भी प्रयत्न की आवश्यकता है। इसी प्रकार संसार के योग्य कर्म संग्रह करने के लिए जैसे एक प्रकार की क्रिया आवश्यक है वैसे कर्मों के मोक्ष के लिए भी एक प्रकार की क्रिया आवश्यक है। यह सब साधना एक क्षण में हो जाय और हमारा छुटकारा दूसरे क्षण में हो जाय यह संभव नहीं। बहुत कुछ समयसापेक्ष है। ऐसी स्थिति में यदि कोई यह निश्चय करके बैठ जाय कि हमें तो—अध्यात्म से मतलब है, भौतिक से कुछ भी मतलब नहीं तो—वह मुक्ति का नहीं, किन्तु आत्मघात का मार्ग अपनाता है यह नितान्त स्पष्ट है।

[शेष पृष्ठ १२ पर]

हम किधर बह रहे हैं ?

डॉ० इन्द्र

ता० २०–२–५३ शुक्रवार को बम्बई जैन युवक संघ की ओर से डॉ० इन्द्र को विदाई देने के लिए एक स्नेह सम्मेलन आयोजित किया गया था। उस समय उन्होंने जैन समाज से संबन्ध रखने वाली कई समस्याओं को स्पर्श करते हुए महत्वपूर्ण प्रवचन दिया। उसका सारांश निम्नलिखित है :—

प्रमुख साहेब, श्रद्धेय परमानन्द भाई तथा बन्धुगण !

बम्बई जैन युवक संघ एक असाम्प्रदायिक संस्था है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वतन्त्र विचार प्रकट करने का अधिकार है। संघ के सदस्य किसी की बात सुनते समय इस बात को महत्व नहीं देते कि बोलने वाला कौन है या किस सम्प्रदाय को मानने वाला है। यहाँ सभी के लिए द्वार खुला है। महत्व इसी बात को दिया जाता है कि बोलने वाले में सत्य और शिव की मात्रा कितनी है। स्वतन्त्र विचारों का इस प्रकार स्वागत करने वाली संस्थाएँ जैन समाज ही नहीं भारत में भी कम है। बम्बई आते समय मेरे लिए यह एक आकर्षण था। इसीलिए एक साम्प्रदायिक संस्था में भी कार्य करना स्वीकार कर लिया।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस प्रकार की संस्थाएँ आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त कृश हैं। उन्हें प्रतिदिन के भोजन की चिन्ता करनी पड़ती है। दूसरी ओर साम्प्रदायिक संस्थाओं के पास गगनचुम्बी प्रासाद हैं। उनका घंटानिनाद मार्ग में चलने वालों को अनवरत सुनाई देता रहता है। इसका कारण है कि असाम्प्रदायिक संस्था किसी प्रकार का उन्माद नहीं पैदा कर सकती और उन्माद पैदा किए बिना विरले ही दानशूर बनते हैं। जिस प्रकार युद्ध में प्राण अर्पित करने के लिए सैनिकों को मदिरा, रणवादित्र तथा जयघोष आदि के द्वारा एक प्रकार का उन्माद चढ़ाया जाता है, उसी प्रकार बड़ा दान लेने के लिए भी विशिष्ट प्रकार का उन्माद चढ़ाने की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार बिना उन्माद के सोच समझ कर प्राणों की आहुति

देने वाले कम होते हैं, उसी प्रकार उन्माद के बिना धन देने वाले भी विरल होते हैं। कृश होने पर भी ऐसी संस्थाओं का अस्तित्व मानवता के लिए बहुत बड़ा वरदान है। अनन्त अन्धकार में वह एक क्षीण प्रकाश किरण के समान है। जिस समय समाज की नौका सम्प्रदायवाद के तूफान एवं अंधकार के वशीभूत होकर प्राणघातक चट्टान की ओर बढ़ने लगती है, ऐसी संस्थाएँ उसे भय की सूचना देती हैं। वे उसे बचाने में समर्थ हों सकें या न हो सकें किन्तु विनाश की सूचना तो दे ही देती हैं।

मैं स्थानकवासी कान्फरेंस में कार्य करने के लिए यहाँ आया तो अच्छी तरह जानता था कि एक संकुचित वातावरण वाली साम्प्रदायिक संस्था में जा रहा हूँ। श्री परमानन्द भाई तथा अन्य मित्रों ने संकेत भी किया था। फिर भी एक प्रयोग के रूप में मैंने इसे स्वीकार किया। जिन संस्थाओं को आज हम साम्प्रदायिक या प्रतिगामी समझ कर तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं, अपने जन्मकाल में वे भी क्रान्तिकारी संस्था के रूप में सामने आईं। उसको जन्म देने वाले व्यक्तियों में सुधार की भावना थी। साथ ही उन्होंने अपने त्याग और तपोबल के द्वारा उन्हें सींचा। फिर वे आज प्रतिगामी क्यों बन गई हैं, यह एक विचारणीय प्रश्न है। जो संस्था विकास की भावना को लेकर उत्पन्न हुई वह विकास में बाधक क्यों बन रही है? यदि इस प्रश्न का उत्तर यह दिया जाय कि व्यक्ति के समान संस्था भी बाल्यकाल, यौवन तथा वार्द्धक्य को प्राप्त करती है। यह एक शाश्वत नियम है। तो यह नियम जैन युवक संघ पर भी लागू होगा। यह भी एक दिन बूढ़ा हो जाएगा। ऐसी स्थिति में हमें पुरानी संस्थाओं से घृणा करने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु घर के बृद्धजनों के समान उन्हें निवृत्ति दे देनी चाहिए। किन्तु यदि वे निवृत्ति न लेना चाहें तो विचारणीय समस्या हो जाती है। उस समय भद्र अवज्ञा का आश्रय भी लिया जा सकता है। यदि युवक संघ इस शाश्वत नियम को मानता है तो उसके लिए उचित होगा कि अवज्ञा का अवसर आने से पहले ही निवृत्त हो जाय या समय के साथ उचित परिवर्तन करता रहे।

वस्तुतः देखा जाय तो ऐसी संस्थाएँ इसलिए जीर्ण हो जाती हैं कि उन में नया रक्त नहीं आने पाता। वृद्ध लोग, जो अपने यौवन में क्रान्तिकारी थे, पचास साल बीतने पर भी उन्हीं विचारों को पकड़े रहते हैं और फिर भी अपने को क्रान्तिकारी मानते हैं। वे यह मान कर बैठ जाते हैं कि जहाँ तक हम चले हैं उस से आगे कोई नहीं जा सकता। वृद्ध यदि अपने को वृद्ध

मानने लगे तो विशेष हानि नहीं होती। किन्तु जब वह अपनी जीर्ण शक्ति के मापदण्ड द्वारा युवा शक्ति को नापना चाहता है तो धोखा खाता है। उसे चाहिए कि युवकों को अपने अनुभव का लाभ देकर अलग हो जाय, उन्हें आगे बढ़ने दे। उनकी प्रगति तथा विचारों को कुण्ठित करने का प्रयत्न न करे।

ऐसी संस्थाओं के प्रतिगामी बनने का एक कारण उन की परिग्रहपरायणता भी है। यह परिग्रह दो प्रकार का होता है। उपनिषदों की परिभाषा में इसे लोकेषणा तथा वित्तेषणा कहा जाएगा। समाज के प्रतिनिधित्व की चिन्ता करने वाली संस्थाओं को लोकेषणा का ध्यान रखना पड़ता है। वे सुधार करना चाहती हैं किन्तु उसके लिए किसी वर्ग को नाराज़ नहीं कर सकतीं। इतना ही नहीं जिस वर्ग के हाथ में जनमत या पूंजी है उसकी अनुचित प्रशंसा भी करनी पड़ती है। जिसका विरोध करना चाहिए उसी के गीत गाने पड़ते हैं। फिर वे सीधे रूप में हों या आड़े टेढ़े रूप में। उस समय सत्य या समाजहित की दृष्टि गौण हो जाती है और सत्ताप्राप्त वर्ग को प्रसन्न करने की मुख्य। कान्फरेंस सरीखी लोकतन्त्रात्मक संस्थाओं में ही नहीं, शिक्षा तथा अन्य लोकोपयोगी संस्थाओं में भी, जहाँ विद्या, तपस्या एवं सेवा के वातावरण की आशा की जाती है, ऐसा करना पड़ता है। तपोवन को भी राजाओं का गुलाम बनना पड़ता है। प्रत्येक संस्था पैसे से चलती है और पैसा पैसेवाले से ही मिल सकता है। इसके लिए वार्षिकोत्सव या अन्य किसी प्रकार का समारोह रचकर उसे सभापति बनाया जाता है। उसके हाथ से उद्घाटन या शिलान्यास कराया जाता है। उस समय उसके गीत भी गाने पड़ते हैं। जो संस्था परिग्रह या संचय पर निर्भर है, फिर वह धनसंचय हो या जनसंचय हो, वह अपरिग्रह या त्याग की बातें उतनी ही कर सकती है जहाँ तक परिग्रह को आघात न लगे। वह सत्य तथा अहिंसा का वेश असत्य को छिपाने के लिए पहिनती है।

ऐसी संस्थाओं में ईमानदारी से काम करने वालों के सामने एक विचित्र अन्तर्द्वन्द्व खड़ा हो जाता है। एक ओर सत्य का प्रश्न होता है और दूसरी ओर संस्था के प्रति वफादारी का। बाहर भी उसे दोनों प्रकार के व्यक्ति मिलते हैं, कुछ सत्य की आशा रखते हैं और कुछ संस्था के प्रति वफादारी की। ऐसे धर्मसंकट में एक भावुक व्यक्ति कुछ भी नहीं कर पाता। असत्य का पोषण करते समय आत्मा विद्रोह करती है और सत्य प्रकट करते

समय संस्था का विद्रोह होता है जिसे न करने के लिए वह वचन तथा नैतिक दृष्टि से बद्ध है।

उपनिषदों में आता है—"असत्ये वर्त्मनि स्थित्वा ततः सत्यं समीहते।" अर्थात् मनुष्य सत्य की खोज के लिए असत्य मार्ग का अवलम्बन करता है। प्रायः संस्थाएं इसी आदर्श को सामने रख कर चलती हैं। लोक कल्याण की साधना के लिए यह आवश्यक मान लिया जाता है कि कुछ न कुछ असत्य का आश्रय लेना पड़ेगा। किन्तु जैन परम्परा इस बात में विश्वास नहीं करती। असत्य का मार्ग आपको सत्य पर नहीं ले जा सकता। ध्येय शुद्धि के साथ साथ उपाय भी शुद्ध होना आवश्यक है।

उस दिन परमानन्द भाई ने 'प्रबुद्ध जैन' के विषय में सुझाव देने के लिए कहा। मेरे सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि 'प्रबुद्ध जैन' बम्बई जैन युवक संघ का मुखपत्र है। ऐसी स्थिति में उसे अपनी मातृसंस्था का वफादार तो होना ही चाहिए। यदि स्थानकवासी कान्फरेंस एक छोटा बाड़ा है तो जैन युवक संघ एक बड़ा बाड़ा। बाड़ाबन्दी बुरी है तो छोटे और बड़े में तरतम हो सकता है किन्तु किसी को उपादेय नहीं कहा जा सकता।

इन प्रश्नों का उत्तर सोचते समय मेरे सामने दो दृष्टियाँ आईं। निश्चय दृष्टि से प्रत्येक संगठन एक बाड़ा है और इस लिए हेय है। जो लोग उन्मुक्त विचरण करना चाहते हैं उनका कोई संगठन नहीं होता। प्रत्येक संगठन का एक आदर्श होता है और उस पर पहुँचने की एक प्रणाली होती है। दूसरों से प्रेरणा की जाती है कि वे उसी आदर्श को सामने रख कर उसी प्रणाली से चलें। यदि कोई उस आदर्श या उस प्रणाली से इधर उधर होता है तो संगठन उसे सह्य नहीं करता। हम चाहते हैं, पक्षी उड़े। किन्तु जो मर्यादा हमने बाँध रखी है उससे आगे न जाय। सभी संगठन अपनी बांधी हुई मर्यादा में उड़ने वालों का संरक्षण करते है। उन्मुक्त विहारी को कोई नहीं पूछता। जिस प्रकार कबूतर पालने वाले ऊँची उड़ान से रोकने के लिए कबूतरों के पंख तोड़ देते हैं इसी प्रकार सामाजिक संस्थाओं वाले अपने कर्मचारियों को आर्थिक या अन्य दृष्टि से पंगु बनाकर रखते हैं। उनकी बुद्धि या लेखनी को खुली छूट नहीं देते। महाकवि रवीन्द्र ने अपने 'तोते की शिक्षा' नामक रूपक में यही बात बताई है कि सभ्यता और संस्कृति का नाम लेकर खड़े होने वाले ये संगठन किस प्रकार उन्मुक्त विहारी मानव को

कृत्रिमता का दास बना देते हैं। जे० कृष्णमूर्ति ने इसी लिए थियोसोफिकल सोसायटी को धर्मसंस्था के रूप में नहीं रहने दिया। समाज जिन्हें अनुशासन अथवा धार्मिक एवं लौकिक मर्यादा के रूप में ग्रहण करता है वे ही मानव जाति के बन्धन तथा विकास के अवरोधक तत्त्व बन जाते हैं। अभिज्ञान शाकुन्तल में प्रतीहारी कहता है—"जिस दण्ड को मैंने राजमर्यादा के रूप में ग्रहण किया था, वही मेरा अवलम्बन गया है। अब उसका सहारा लिए बिना चल ही नहीं सकता।" वही बात धर्मसंस्था के संचालकों के साथ होती है। वे विशिष्ट प्रकार के वेश तथा क्रिया कलाप को इस लिए अंगीकार करते हैं कि उसके द्वारा स्वपर कल्याण कर सकें। किन्तु कुछ ही समय बाद वेश के अधीन हो जाते हैं। उस समय वे वेश को धारण नहीं करते किन्तु वेश उनको धारण करता है। वेश के बाहर उनको कोई मार्ग ही नहीं सूझता।

इस प्रकार निश्चय दृष्टि से देखा जाय तो संगठन मात्र त्याज्य हैं। किन्तु निश्चय दृष्टि का उपयोग आदर्श को स्थापित करने के लिए होता है। लोक-व्यवहार उस पर नहीं चलता। शंकराचार्य ने कहा है—सत्यानृते मिथुनी कृत्य सर्वोऽयं लौकिको व्यवहारः" अर्थात् प्रत्येक लौकिक व्यवहार में सत्य और मिथ्या का सम्मिश्रण होता है। जैन शास्त्रानुसार भी कर्मबन्ध का सर्वथा निरोध चौदहवें गुणस्थान में होता है, जो पूर्णतया निष्क्रिय अवस्था है। प्रवृत्ति मात्र के साथ पाप लगा हुआ है। इस लिए पाप और पुण्य की व्यवस्था ध्येय के आधार पर की जाती है। जो संगठन बाड़ाबन्दी या अपनी रक्षा को मुख्य ध्येय बना कर चलता है वह सत्य के मार्ग से विचलित हो जाता है, हेय हो जाता है। दूसरी ओर जो संगठन सत्य को सामने रख कर चलता है और उसके लिए अपने अस्तित्व की भी चिन्ता नहीं करता, वह पथविचलित नहीं होता। मैं आशा करता हूँ, जैन युवक संघ इस कसौटी को सामने रख कर चलेगा। अपने आस्तित्व की रक्षा के लिए वह सत्य से विमुख न होगा।

अभी कुछ दिन पहले मैं सोजत गया था। स्थानकवासी समाज ने श्रमण संघ तथा एक आचार्य की स्थापना करके सादड़ी में जो क्रान्तिकारी कदम उठाया था, उसकी विगतों पर विचार करने के लिए वहाँ श्रमण संघ के मन्त्रियों का सम्मेलन हुआ था। १६ में से १४ मन्त्री उपस्थित थे। उनके अतिरिक्त २५० साधु साध्वी तथा हजारों की संख्या में श्रावक सम्मिलित हुए। अ० भा० श्वे० स्थानकवासी जैन कान्फरेंस की जनरल कमेटी भी

हुई। मन्त्री मण्डल के सामने विचारणीय प्रश्न थे—साधु को ध्वनिवर्द्धक यन्त्र पर बोलना चाहिए या नहीं ? भिक्षा में केले आदि फल ले सकते हैं या नहीं ? पक्खी आदि तिथियों के सम्बन्ध में भी निर्णय करना था। साधुओं को विश्वविद्यालयों की परीक्षा में बैठने देना चाहिए या नहीं—यह भी विचारणीय था। दूर दूर से साधु पैदल विहार करके वहाँ पहुँचे और दो सप्ताह तक शास्त्रार्थ चलता रहा। भावना सभी की अच्छी थी। किन्तु एक ओर विश्व की प्रगति देखें और दूसरी ओर इस बात पर विचार करें कि हमारा साधुसमाज किन नगण्य बातों में उलझा हुआ है तो हृदय को चोट लगती है। यह युग है, जिस समय विश्व में त्याग और तपस्या की भूख बढ़ रही है। क्या हमारा साधु समाज इस समय छोटी छोटी बातों में न उलझ कर विश्व के सामने कुछ उच्च आदर्श स्थापित करेगा ? यदि 'प्रबुद्ध जैन' द्वारा हम लोग साधुवर्ग तथा गृहस्थों का ध्यान ठोस कार्यों की ओर खींच सकें तो यह बहुत बड़ी सेवा होगी।

भक्त लोग अपने आराध्य की पूजा दो दृष्टियों से करते हैं। कुछ लोग मूर्ति, धर्मग्रन्थ या व्यक्ति विशेष को अपना आराध्य मानकर उससे आध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त करते हैं। वे यह अपेक्षा नहीं करते कि आराध्य उन्हें मार्गदर्शन करे। मार्ग तो वे स्वयं निश्चित करते हैं। अपनी उदात्त भावनाओं की जागृति के लिए किसी जड़ या चेतन को प्रतीक मान लेते हैं। दूसरे लोग ऐसे होते हैं जो अपने आरध्य से मार्गदर्शन की आशा भी रखते हैं। यदि वेश को साधुत्व का प्रतीक मानकर उसकी पूजा की जाती है तो वहाँ व्यक्ति के गुणों का प्रश्न नहीं रह जाता। वहाँ तो प्रत्येक वेशधारी में साधुत्व की स्थापना करली जाती है। किन्तु जैन समाज साधुओं की पूजा इस रूप में नहीं करता। वह तो उन्हें चारित्र का आदर्श तथा आध्यात्मिक नेता मानता है। उनके उपदेशों पर चलने का प्रयत्न करता है। आज भी हमारे समाज में साधुओं का यह वर्चस्व पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। ऐसी दशा में उनका वैयक्तिक जीवन तथा विद्या का स्तर कितना ऊँचा होना चाहिए, उनकी दृष्टि कितनी विशाल एवं तलस्पर्शिनी होनी चाहिए यह कहने की बात नहीं है। हमें समाज का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना है।

हमारे सामने अयोग्य दीक्षा तथा बालदीक्षा का प्रश्न तो है ही, उन दीक्षितों का प्रश्न भी है जिनकी अन्तरात्मा दीक्षा लेने के बाद उस स्थिति से विद्रोह कर रही है। वे चाहते हैं, अध्ययन करें, आध्यात्मिक विकास करें।

किन्तु साम्प्रदायिक यन्त्रों में इस प्रकार पिसते रहते हैं कि कुछ कर ही नहीं पाते। कुछ ऐसे भी हैं, जिनमें युवावस्था के साथ यौवन सुलभ वृत्तियाँ जाग गई हैं। वे एक सदगृहस्थ के रूप में अपना जीवन बिताना चाहते हैं किन्तु कोई मार्ग नहीं सूझता। जिस प्रकार अधिक दिन तक पिंजरे में रहा हुआ पक्षी खुले आकाश में उड़ने से डरता है उसी प्रकार वे भी बाहर के संघर्षमय जीवन में आते हुए डरते हैं। जिन्होंने इस प्रकार का कदम उठाया है और मुनि जीवन को त्याग दिया है वे भी अधिकतर अच्छा आदर्श नहीं उपस्थित कर सके। ऐसी दशा में भविष्य का विचार किए बिना उन्हें मुनिव्रत छोड़ देने की सलाह देना विचारपूर्ण कदम नहीं है।

जैन परम्परा एक त्याग प्रधान परम्परा है। किन्तु हमारे मन्दिर और धर्मस्थानों में प्रायः पैसे की पूजा होती है। व्यक्ति भगवान को महापुरुष का गौरव तो देता है किन्तु उस गौरव की परिभाषा अपने जमे हुए संस्कारों के अनुसार करता है। माहात्म्य का मापदण्ड उसका अपना होता है।

बम्बई के एक मूर्तिकार ने गणेश की मूर्ति बनाई तो उसे कोट और पैंट पहिनाया और मुंह में सिगरेट दे दी। श्री मश्रूवाल ने टिप्पणी करते हुए इसे देवता का अपमान बताया। किन्तु वास्तव में देखा जाय तो मूर्तिकार के मन में श्रद्धा की कमी न थी। उसके मन में यह संस्कार जमा हुआ था कि संसार में सर्वोत्तम पुरुष अंग्रेज हैं और उनका वेश कोट और पैंट है। वे सिगरेट भी पीते हैं। ऐसी स्थिति में भगवान को धोती पहिनाना उसे छोटा बनाना है। भगवान् जब सर्वोत्तम पुरुष हैं तो अंग्रेज से कम नहीं हो सकते। मारवाड़ में जो सीता की मूर्ति बनती है उसे घाघरा पहिना कर जेवरों से लाद दिया जाता है। गुजरात की सीता साड़ी पहिनती है। दक्षिण की सीता धोती की लांग लगा कर फूलों से शृङ्गार करती है। यदि थोड़े दिनों में सीता लिपस्टिक का प्रयोग करने लगे तो यह आश्चर्य की बात न होगी। जैन समाज व्यापारी समाज है। वह धन की पूजा करता है। इस लिए वीतराग को भी हीरे के हार तथा सोने की आंगिया पहिनाना चाहता है। भगवान् की सवारी में हाथी घोड़े, सोने चान्दी के रथ तथा अन्य वैभव का प्रदर्शन किया जाता है। वस्तुतः यह भगवान् की पूजा नहीं है किन्तु भगवान् की आड़ में लक्ष्मी की पूजा है।

पंजाब विभाजन के समय जब हिन्दू मुसलमानों का झगड़ा चल रहा था तो मेरे सामने एक घटना हुई। एक बढ़ा मुसलमान नीचे गिरा हुआ हाथ

जोड़ कर प्राणों की भीख मांग रहा था। उसके ऊपर एक हिन्दू ने फरसा उठा रखा था। इतने में फरसा नीचे आया और बूढ़े का सिर कट कर अलग हो गया। मारने वाला राक्षसी अट्टहास करता हुआ चिल्लाया—बोल, महात्मा गाँधी की जय। वह गाँधी जी की जय बोलता था किन्तु गाँधी जी का भक्त न था। भक्त तो वह अपने अन्दर रहे हुए शैतान का था। उसका नाम उसने महात्मा गांधी रख लिया था। इसी प्रकार हम त्यागी भगवान् का नाम लेकर परिग्रह की पूजा करते हैं।

जैन परम्परा का आविर्भाव एक आध्यात्मिक परम्परा के रूप में हुआ है। लौकिक बातों के लिए उसने कोई जोर नहीं दिया। लौकिक संस्कारों के लिए जैन भी प्रायः वैदिक परम्परा का अनुसरण करते आए हैं। किन्तु कुछ समय से एक नया आन्दोलन चला है। जैन अपने को हिन्दुओं से अलग करना चाहते हैं। जैन धर्म जातिवाद को नहीं मानता। हिन्दुओं के साथ रहने के कारण उसमें भी यह बुराई घुस गई। जैन मन्दिर में अछूतों का प्रवेश रोक दिया गया। देश के स्वतंत्र होने पर नया विधान बना और उस में छूआछूत को समाप्त करने के लिए हिन्दू धर्मस्थानों में अछूतों को धर्माराधन के पूरे अधिकार दे दिए गए। बुराई को स्वीकार करते समय तो हम हिन्दू बन गए, जब उसे दूर करने का प्रश्न आया तो अलग हो रहे हैं। अन्य कई दृष्टियों से भी यह समस्या विचारणीय है।

अभी अभी कुछ लोगों ने जैन विवाह पद्धति निकाली है। यदि नवीन युग के अनुसार वह कोई आदर्श विवाह पद्धति हो तो यह अभिनन्दनीय है। किन्तु उसी प्रकार अग्नि की प्रदक्षिणा तथा अन्य बातें कायम रखते हुए केवल हिन्दू देवताओं के स्थान पर जैन देवता रख देने से काम नहीं चलेगा। जैन देवता तो गार्हस्थ्य जीवन के त्याग का आशीर्वाद दे सकते हैं। वे विवाह की सफलता के लिए कैसे आशीर्वाद देंगे। उन्हें ऐसी बातों में घसीटना उन्हें अपने आदर्श से गिराना है। एक अध्यात्मिक विचारधारा को लौकिक बातों में लाना और उसके आधार पर एक अलग जाति बनाने की चेष्टा करना जैन परम्परा के लिए लाभदायक नहीं हो सकता। जैनधर्म का कल्याण इसी में है कि वह चरित्र को उन्नत करने के लिए एक विचारधारा के रूप में प्रेरणा देता रहे। उसे जातिवाद में संकुचित न होने देना चाहिए। हमें यह उदारता रखनी चाहिए कि एक ब्राह्मण या मुसलमान भी अपने को जैन कह सके।

केवलज्ञान, कर्मवाद, भूगोल आदि ऐसी बहुत सी बातें हैं जिनके विषय में हमारे समाज में मिथ्या धारणाएँ जमी हुई हैं और उनका जीवन पर कुप्रभाव पड़ रहा है। उन सब के विषय में सचाई को प्रकाश में लाना हमारा सबका कर्तव्य है।

आशा है, जैन युवक संघ 'प्रबुद्ध जैन' तथा साक्षात् चर्चा वार्ता द्वारा इन सब बातों को प्रकाश में लाएगा। मैं बनारस जाकर 'श्रमण' को फिर अपने हाथ में ले रहा हूँ। उसका भी यही ध्येय है। इसलिए समझता हूँ, मेरे वहाँ जाने से जैन युवक संघ का क्षेत्र और भी विस्तृत हो जाएगा।

मैंने जो विचार प्रकट किए हैं वह एक नम्र निवेदन है। मेरा कभी यह आग्रह नहीं होता कि दूसरा व्यक्ति उसे मान ही ले। हो सकता है चर्चा वार्ता या विशेष अनुभव के बाद मुझे स्वयं परिवर्तन करना पड़े। सत्य के जिज्ञासु को परिवर्तन के लिए सदा तैयार रहना चाहिए।

अन्त में, आप सब ने मेरे प्रति जो यह स्नेह प्रकट किया है, उसके लिए सभी का आभार मानता हूँ। इच्छा थी यहाँ रहकर आप सभी के परिचय से अधिक लाभ उठाता किन्तु वह न हो सका। फिर भी आप सभी का जो प्रेम लेकर जा रहा हूँ, वह मेरे साथ रहेगा। उसमें उत्तरोत्तर वृद्धि होगी और हमलोग मिलकर इस ज्योति को प्रज्वलित रखने का प्रयत्न करते रहेंगे।

(पृष्ठ ४ का शेष)

अतएव साधनाकाल में भौतिक और अध्यात्म दोनों का समन्वय आवश्यक है। यह निश्चय से कहा जा सकता है कि भौतिक वस्तुओं का उपयोग उतनी ही मात्रा में किया जाय जितनी मात्रा में आध्यात्मिक विकास के लिए आवश्यक हो। आवश्यकता का निर्णय साधक स्वयं करे यही ठीक है। जो लोग आध्यात्मिक नहीं हैं वे ही इस विवाद में पड़ते हैं कि साधनाकाल में अमुक उपकरण चाहिए अमुक नहीं। वे स्वयं जब साधना करते हैं तब ही क्या उचित और है क्या अनुचित, इसका निर्णय कर सकते हैं। इन बातों में शास्त्र दिशानिर्देश तो कर सकता है किन्तु मर्यादा का निर्णय नहीं कर सकता। ऐसा मानने पर शास्त्रों में दिखाई देने वाला उपकरणविषयक मतभेद तुच्छ लगेगा।

कहानी

क्षमादान

श्री जयभिक्खु

सुहाग की लाल साड़ी ओढ़कर उषासुन्दरी खंभात सागर पर क्रीड़ा के लिए आयी ही थी। नृत्य करता हुआ श्याम जलनिधि नौकारूपी अनेक गोपियों के साथ क्रीड़ा कर रहा था।

नावें बहुत दिनों से लंगर से बँधी हुई बंदरगाह पर पड़ी हुई थीं। सामान पीठ पर लाद दिया गया था। समुद्र का पानी शान्त था। हवा भी अनुकूल थी फिर भी न जाने नाविक हाथ-पैर पकड़ कर क्यों बैठे थे। वे निरन्तर समुद्र की ओर देखा करते थे। पूछने पर सभी कहते— "समुद्र में खतरा है।"

"गोवा के निर्मुकुट सम्राट्—खंभात के शाह सौदागर राजिया सेठ भी डरने लगे? कर चुके तब तो व्यापार!" कहने वाले ने जरा ढंग से कहा। अन्तिम शब्द पूरे होने न पाए कि घोड़े वाला एक सोने का रथ आकर सामने खड़ा हो गया। पीछे दो सहस्त्र अरब पठानी घोड़े पर चढ़कर आ रहे थे। सोने के शिखर और मखमल के पर्दे वाले उस रथ को सभी जानते थे। सभी सावधान होकर स्वागत करने के लिए तैयार हो गए।

हवा ने एक नौका से दूसरी नौका तक यह संदेश पहुँचा दिया कि वाजिया सेठ आगए हैं।

उस रथ से एक ऐसा व्यक्ति धीरे से बाहर आया जो न ज्यादा स्थूल था और न ज्यादा कृश। उसके लम्बे कपाल पर लगा हुआ बादामाकार केसर-तिलक जैनत्व का परिचय दे रहा था। पगड़ी और जूते खंभात की याद दिलाते थे। कर्ण-कुण्डल और कण्ठ-हार समृद्धि के परिचायक थे। रेशमी किनारी की धोती, गोवा के किसी फिरंगी दर्जी के हाथ का सिला

हुआ कमीज, कमर में लपेटा हुआ जरी का दुपट्टा और उसमें लगाई हुई रत्नजटित कटारी सामने देखने वाले की आँखों को नीचे झुका देते थे।

पहचानने में एक क्षण का भी समय नहीं लगा। ये थे गांधार के निवासी और खंभात के बहुत बड़े पूंजीपति राजिया सेठ के छोटे भाई वाजिया सेठ।

सर्व प्रथम बंदरगाह पर रहने वाले बनजारे ने अभिवादन किया। उसने कहा—"श्रीमन्! कोई प्रचुर सामग्री नहीं मिलती। कई दिन बीत गए, माल का आवागमन सर्वथा बंद है। भरे हुए जहाजों का जाना रुका हुआ है और खाली होने वाले जहाजों का आना बन्द है।"

"यह मैं जानता हूँ," वाजिया सेठ ने उत्तर दिया और उससे प्रश्न किया—"पार्श्वनाथ के मंदिर के मुनीम शिकायत करने आए थे। तुमने प्रति बैल आधा द्रम्म लगान बहुत समय से नहीं दिया! भाई? धर्म का पैसा बाकी रखना ठीक नहीं।"

"जानता हूँ सेठ साहब! दूध से धोकर देना है किन्तु क्या करें! यह सारा महीना सिर पर पड़ा है, राजा साहब!"

"हानि की रकम दुकान से ले जाओ किन्तु धर्म-कर तो आज ही मुनीम के पास पहुँचा दो।"

"अमर रहे आप का आदरणीय स्थान, सेठ साहब! आज ही लगान दे दिया समझें, धर्म के काम में ढील कैसी?"

वाचाल बनजारे की बात पर मंद मंद हँसते हुए वाजिया सेठ आगे बढ़े।

बंदरगाह के मुनीम कान में कलम डाले हाथ में बही पकड़े खड़े ही थे। शिष्टाचार के दो शब्दों के बाद सेठ जी ने प्रश्न किया—

"मुनीम जी! जहाजों में माल तैयार है? कहां कहां क्या क्या जायगा?"

"सेठ साहब जी! सब की सूची तैयार है। सबसे आगे के जहाजों में चावल हैं जो मलाबार, कोंकण, सिंध, आफ्रिका और अरब जाएंगे। फिर

बाजरी के जहाज हैं जो मलाबार जाने वाले हैं। इसके बाद गेहूँ, तिल और रुई के जहाज हैं। इनमें से कुछ तो मलाबार और आफ्रिका जाने वाले हैं। दूसरे छः जहाज सोंठ, मिर्च और मसाले के हैं जो ईरान जायंगे।"

"स्थानीय जहाजों में क्या है ?"

"श्रीमन् ! स्थानीय में इस समय साधारण माल है। रेशमी कपड़ा, कम्बल, दरियाँ, हरड़, बहेड़ा, आँवला, शक्कर, हींग, चूड़ियाँ और खिलौने हैं। मलाबार, अरब, लालसागर और आफ्रिका के पूर्वभाग के व्यापारियों ने इस समय अपने यहाँ से अकीक (एक जाति का पत्थर) के आभूषण खूब लिये हैं। वे कहते हैं कि वहाँ की श्यामाएँ इन पर मुग्ध होकर टूट पड़ती हैं।"

"ठीक, किन्तु वापिस लौटते समय क्या क्या माल लाना है, इसका निर्णय किया ? बेचारों का लौटना व्यर्थ न जाय, इसका ध्यान रखना।"

"ऐसा कहीं हो सकता है सेठ साहब ? मैंने ठीक ठीक अनुमान लगा लिया है। वापिस लौटते समय अरबस्तान से पान खजूर, अफीम और मजीठ आदि लावेंगे, ईरान से लीलम के व्यापारियों ने लीलम मँगाये हैं, किसी ने किसमिस, कस्तूरी और मोती मंगाये हैं। ईडन से ताम्र, सीसा, पारा, सिन्दूर और फिटकरी लाने की योजना बनाई है। रंगरेजों ने इस समय आफ्रिका से कपोत की बीट मंगवाई है। वे कहते हैं कि इसके बिना रंग पक्का नहीं होता। मलाबार जाने वाले जहाज वहाँ से लोहा, चावल, इलायची, नारियल, पान और गरम मसाला लाने वाले हैं। हमारे जहाज पेगु भी जा रहे हैं। वहाँ से जायफल, जावित्री और मणिक लाएँगे। कुछ जौहरी सिंहलद्वीप जाने वाले हैं और बहुत कुछ लाने वाले हैं। अब जाने की आज्ञा मिल जाय तो अच्छा हो। बैठे बैठे सभी तंग आगये हैं।" मुनीम ने अन्त में वणिक-विद्या का प्रयोग किया और जो कुछ कहना था एक साथ कह दिया।

"जी हां, तंग हो गए हैं।" मुनीम की बात का सभी नें समर्थन किया।

"जानता हूँ, किन्तु इस समय कच्छ-काठियावाड़ के संघार, जत और मेर लोगों ने भारी उपद्रव मचा रखा है। वे अरबी और फिरंगी लुटेरों के साथ मिल गए हैं।"

"तब फिर क्या होगा ?" सभी नाविकों के मुँह पर चिन्ता छा गई।

"कुछ नहीं, सब ठीक होगा। गोवा की सरकार भी सहायता के लिए तैयार है किन्तु मैंने जान बूझ कर तुम लोगों को नहीं जाने दिया। हमारे पवित्र दिवस समीप हैं और प्रवास में इन दिनों कुछ मारपीट हो, यह ठीक नहीं।"

"ठीक है, आज से तीसरे दिन पर्युषण पर्व प्रारंभ होने वाले हैं। बस, इतने दिन तक यहीं विश्राम; बारहवें दिन रवाना हो जाना।" मुनीम ने सेठ जी के शब्दों का अर्थ स्पष्ट किया।

"बारह दिन तो बात करते बीत जाएँगें।" सभी प्रसन्नता का अनुभव करने लगे। वाजिया सेठ अपने रथ की ओर मुड़े। समुद्र में जहाजों का झुण्ड आता हुआ दिखाई दिया।

सब उस ओर देखने लगे।

"अरे, कप्तान विजरेल के जहाज !"

इतने में अधिपति विजरेल किनारे आ पहुँचा। सागर का सम्राट् कप्तान विजरेल शौर्य की साक्षात् मूर्ति था। हजारों लुटेरों के छक्के छुड़ाने वाला यह योद्धा अनेक युद्धों में विजय प्राप्त कर चुका था। उसका शरीर युद्ध की स्मृति दिलाने वाले अनेक घावों से भरा हुआ था। वाजिया सेठ को देखते ही तुरन्त किनारे पर आया, अभिवादन किया और कहने लगा—

"सेठ साहब! समुद्र के पापी को पकड़ लाया हूँ। चौल के खोजगी को चुनौती देकर हराया है। साथ ही पकड़ लाया हूँ। गोवा सरकार ने एक लाख रुपये का दण्ड दिया है। दण्ड न चुकाने पर दसवें दिन मृत्यु-दण्ड की आज्ञा है।"

जकड़ा हुआ रावण का दूसरा अवतार खोजगी सेठ के पैरों में पड़ा, दया की भीख मांगी और प्रतिज्ञा की कि "अब आपके व्यापार में कभी बाधक न बनूंगा।"

"कप्तान विजरेल! खोजगी दया की याचना करता है। सद्व्यवहार का वचन देता है।"

"ऐसे लोगों का क्या विश्वास ? कल बदल जाय तो ?"

"तो क्या ? यह है और हम हैं। बिल्ली हमेशा घी नहीं खा सकती। हम लोग भी तो इससे बढ़कर हैं !" वाजिया सेठ ने वणिकत्व और क्षत्रियत्व दोनों का दर्शन कराने वाले शब्दों का उच्चारण किया। सेठ जी का मत था कि गुड़ से काम हो जाए तो विष का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

"किन्तु दण्ड कौन देगा ?"

"हमारे पवित्र दिवस समीप हैं, यह जानते हो न ?"

"जी हाँ, आठ दिन तक व्यापार बंद रखने की सरकारी आज्ञा है।"

"हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि पर्व के दिनों में किए गए एक गुने दान से सौगुना पुण्य होता है और यह तो एक मानव के अभयदान का काम ! एक लाख रुपए कोष से ले जाओ ! मुक्त करो इस सागर के लुटेरे को !"

वाजिया सेठ की उदारता और धर्मप्रियता ने सब को चकित कर दिया।

(२)

पापी के भी हृदय होता है। निरस्तपादप हृदय में भी किसी दिन पादप अंकुरित होता है। सागर के लुटेरे चौल के खोजगी ने लुटेरापन छोड़कर नाविक का कार्य संभाला है। राजिया सेठ ओर वाजिया सेठ की कृपा से उसके जहाज जावा, सुमात्रा, पेगु और सिंहलद्वीप से लगाकर चीन और अरबस्तान तक जाते हैं।

एक बार उसी के जहाज को सामुद्रिक लुटेरों ने घेर लिया। भयंकर जलयुद्ध हुआ। सागर का प्रसिद्ध लुटेरा स्वयं बाहर आया, शस्त्र संभाले और जमकर युद्ध होने लगा। अन्त में लुटेरों की हार हुई और उनका जहाज समुद्र में डुबो दिया गया।

जीवनरक्षा के लिए भागते हुए बाईस लुटेरों को क़ैद किया गया।

खोजगी ने आदेश दिया—"सायंकाल के समय ये सभी लुटेरे कत्ल करके समुद्र में फेंक दिए जायँ !"

भाद्रपद का महीना था। उत्तरा और चित्रा के ताप से समुद्र का पानी भी उष्ण हो जाता था। आकाश में एक भी बादल न था।

शाम होते ही आकाश में द्वितीया का चन्द्र उदित हुआ। सागर में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब झलक रहा था। इसी समय जल्लाद लुटेरों को पकड़े हुए आ पहुँचे। खोजगी भी अपने आदेश का पालन कराने के लिए समय पर आ पहुँचा। संकेत मात्र की देर थी कि एक वृद्ध लुटेरे ने कहा—

"मृत्यु का हमें कोई भय नहीं किन्तु हम राजिया-वाजिया सेठ की प्रजा हैं। नाविकता का नाश होते देख कर हमने यह काम अपनाया। पेट की अग्नि है न? किन्तु एक बात कह दूँ?"

"शीघ्र कह! मेरी तलवार अधिक समय तक नहीं रुक सकती!"

"आज कल राजिया-वाजिया सेठ के पर्व के पवित्र दिन हैं। इस समय तो हत्यारे को भी क्षमा मिलती है। हम क्षमा-याचना करते हैं।"

कालमूर्ति खोजगी कुछ समय के लिए गंभीर विचार में डूब गया। उसको कुछ याद आ रहा था। थोड़ी देर बाद उसने आज्ञा दी—

"वाजिया सेठ के पर्व के दिन हैं। सबको छोड़ दो?"

तलवारें म्यान में घुस गईं। सभी मुक्त कर दिए गए।
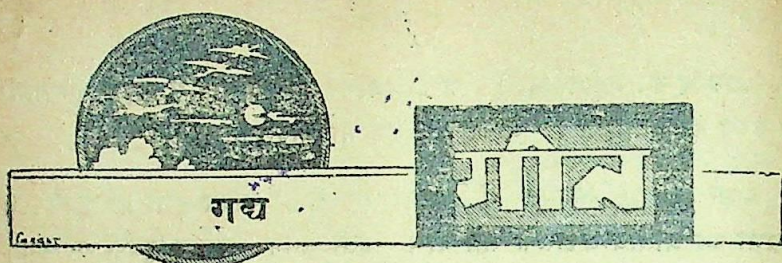
अधूरा चित्र

मेरी चित्रशाला में एक अधूरा चित्र टंगा था।

दिवाकर की सुनहली किरणों ने वसुधा को छुआ, विश्व के कण-कण में उल्लास भर गया। उपवन के सुसुप्त पुष्प मानों अपने स्वामी का शुभागमन सुनते ही हँस पड़े, हरी-हरी दूब पर प्रकृति देवी ने मानों सहस्त्रों मोती बिखेर दिये। पक्षी गण मृदु-भाषा में किल्लोल कर उठे, नव स्फूर्ति पाते ही मानव समूह अपने कर्त्तव्य पथ पर बढ़ चला।

मैंने देखा—मेरी अधूरा चित्र मानों मुझे संकेत कर रहा था—चित्रकार! बस तुम्हारी कला यहीं पर समाप्त हो गई?......

वह चित्र मानो व्यंग की हँसी हँसकर मुझे लज्जित कर रहा था......

आवेश में आकर मैंने तूलिका उठाई चित्र को सुन्दर बनाने के लिए, परन्तु चित्र में अंकित व्यक्ति की उदास मुख मुद्रा प्रसन्न न बन सकी। मैंने चित्र की पूर्ति करने के लिए अपनी कला निछावर कर दी। परन्तु चित्र अभी भी अधूरा ही था।

मेरे नेत्रों में जल भर आया, हृदय में गहरी पीड़ा उत्पन्न होकर मुझे विकल करने लगी, सारा संसार सुखी है, मैं दुःखी हूँ। क्योंकि मेरा चित्र अधूरा है।

सहसा मेरे हृदय में एक नवीन विचार जागृत हुआ—कहीं मेरे चित्र पर अंकित उदासी मेरी मलिन आत्मा का प्रतिबिंब तो नहीं है?

अब की बार मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, मानों चित्र का व्यक्ति खिल खिलाकर हँसता हुआ कह रहा हो—

चित्रकार! अब तुम ठीक मार्ग पर आये।

—श्रीमती सत्य प्रभाकर

प्राकृत-साहित्य के इतिहास के प्रकाशन की आवश्यकता

ले० अगरचन्द नाहटा

भारतीय साहित्य में जैन साहित्य का स्थान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। भाषा, विषय, प्रचुरता, उपयोगिता आदि हर दृष्टि से उसकी अपनी विशेषता है। भारतीय भाषाओं की दृष्टि से तो उसका महत्त्व बहुत ही अधिक है। प्रारंभ से ही वह लोक भाषा में लिखा गया। ज्यों ज्यों लोकभाषा बदलती गई, जैन विद्वान् साहित्य निर्माण में भाषा के उन बदलते हुए रूपों को अपनाते गये। इसी प्रकार जैनधर्म का प्रचार जिन जिन प्रान्तों में फैला, उन प्रान्तों की बोल-चाल की भाषा में भी जैन विद्वानों ने बराबर रचनाएँ कीं। इसीसे भारत की प्रायः सभी उल्लेखनीय प्रान्तीय भाषाओं में जैन साहित्य उपलब्ध होता है।

जैन साहित्य विशालता में बहुत ही उल्लेखनीय है। जहाँ जहाँ भी जैनी निवास करते हैं, हर प्रान्त के प्रायः नगरों एवं ग्रामों में भी हस्त लिखित ग्रंथ भंडार पाये जाते हैं। वर्षों से शोधकार्य चालू होने पर भी अभी तक सैकड़ों ज्ञानभंडार अज्ञातावस्था में पड़े हैं और जिस किसी भंडार को देखा जाता है, कुछ न कुछ नवीन-अज्ञात रचनाएँ उपलब्ध होती ही रहती हैं। अतः संपूर्ण साहित्य की जानकारी तो संभव नहीं पर बहुत से प्रसिद्ध भंडार प्रकाश में आ चुके हैं और कईयों के सूचीपत्र प्रकाशित भी हो चुके हैं। उन्हीं के आधार से जैन साहित्य का इतिहास हिन्दी में शीघ्र ही तैयार होना चाहिये।

विगत ७५ वर्षों के मुद्रणयुग में छोटे बड़े हजारों जैन ग्रंथ जहाँ तहाँ से प्रकाशित हो चुके हैं। पर अप्रकाशित साहित्य की अपेक्षा तो वे आटे में नमक के समान ही हैं। फिर भी खास खास उपयोगी ग्रंथ काफी प्रकाश में आ चुके हैं। पर अभी अप्रकाशित साहित्य में से सैकड़ों ग्रंथ बहुत उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण हैं, उन्हें प्रकाश में लाना अत्यावश्यक है। उनके महत्व को

जानकारी बिना साहित्य के इतिहास के तैयार हुए मिल नहीं सकती, और महत्त्व विदित हुए बिना उनके प्रकाशन की प्रेरणा व प्रयत्न हो नहीं सकता।

जैन धर्म के दो प्रधान सम्प्रदाय हैं। उनमें से श्वेताम्बर जैन साहित्य के परिचायक तो कई ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें स्व० मोहनलाल दलीचंद देसाई का कार्य विशेष रूप से उल्लेख योग्य है। उन्होंने २५ वर्ष निरंतर जैन साहित्य की जानकारी जनता के लिए सुलभ बनाने में ही लगाए। 'जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास' और 'जैन गुर्जर कवियों' तीन भाग श्वेतांबर जैन-साहित्य का परिचय देने वाले अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं।[१] प्रो० हीरालाल रसिकलाल कापड़िया भी इस क्षेत्र में कई वर्षों से अच्छा काम करते हैं। जैन आगमों के परिचायक आपके दो ग्रंथ अंग्रेजी एवं गुजराती में प्रकाशित हो चुके हैं। गुजराती ग्रंथ 'आगमो नुं दिग्दर्शन' साधारणतया ठीक जानकारी देता है। अभी आपका 'पाइय भाषाओ अने साहित्य' ग्रंथ प्रकाशित हुआ है। जिसमें प्राकृत साहित्य का संक्षेप में ठीक परिचय मिल जाता है। पर ये सभी ग्रंथ गुजराती में होने के कारण उनका प्रचार बहुत ही सीमित है। मुनि जिन विजय जी का सम्पादन कार्य उल्लेखनीय है। इन पंक्तियों का लेखक भी २२ वर्षों से प्रयत्नशील है ही। दिगंबर साहित्य का परिचय देने में नाथूरामजी प्रेमी, जुगुलकिशोरजी मुख्तार, डॉ० हीरालालजी आदि ने प्रयत्न किया है पर दिगम्बर साहित्य का इतिहास तो दर किनार अभी पूरी सूची भी प्रकाशित नहीं हो पाई। जिसके लिए विगत १०-१५ वर्षों में मैंने कई प्रेरणादायक लेख भी प्रकाशित किये पर कोई फल नहीं हुआ। जयपुर महावीर क्षेत्र कमेटी से अजमेर भंडार की सूची छपी है तथा नागौर व जयपुर भंडारों की सूची बन रही है।

दिगंबर-श्वेतांबर दोनों संप्रदायों का साहित्य बहुत अंशों में एक दूसरे का का पूरक है। अतः अब राष्ट्र भाषा हिंदी में सारे "जैन साहित्य का परिचय" एक साथ प्रकाशित होना अत्यन्त आवश्यक है। यह कार्य किसी एक व्यक्ति का नहीं—यह तो बहुत से विद्वानों के सम्मिलित प्रयत्न से ही संभव हो सकता है। अतः में इसकी संक्षिप्त रूप-रेखा उपस्थित कर रहा हूँ। कोई संस्था इस महत्त्वपूर्ण कार्य को हाथ में ले और जिस २ विषय का जिन विद्वानों

---

१. श्री जैन श्वेताम्बर कान्फरेन्स बम्बई से प्रकाशित। मूल्य ६) ५) ३) १०) हैं। हर जैन साहित्य प्रेमी विद्वान को इन्हें खरीदना चाहिए और जैनेतर विद्वानों व संस्थाओं को देने चाहिये।

का विशेष अध्ययन हो—उनसे उन उन साहित्य और विषयों के इतिहास ग्रंथ तैयार करवाये जावें। वैसे तो सबसे अच्छा कार्य तो यही हो सकता है कि भारतीय साहित्य के इतिहास ग्रंथों में जैन साहित्य के बारे में आवश्यक जानकारी प्रकाशित की जाती रहे। पर उन ग्रंथों में वह जानकारी बहुत सीमित ही दी जा सकती है और उसे देने के लिए भी जैन साहित्य के परिचायक विविध ग्रंथ प्रकाशित होने ही चाहिए। हमारी प्रा:: शिकायत रहती है और वह उचित भी है कि संस्कृत साहित्य के इतिहास, हिंदी साहित्य के इतिहास आदि में जैन संस्कृत एवं हिंदी साहित्य की बड़ी उपेक्षा की गई है। भूले भटके दो चार जैन कवियों के १०, २० ग्रंथों का उल्लेख ही उनमें पाया जाता है[1]। हम उन ग्रंथों के लेखकों को जोरदार उपालंभ तभी दे सकते हैं जब कि हमारे पास हर विषय के जैन साहित्य के परिचायक विविध प्रकाशित ग्रंथ हों। अन्यथा उनके लिये जैन साहित्य का अधिक परिचय प्राप्त करना श्रम-साध्य है। हमें अपनी इस कमी की पूर्त्ति शीघ्र करनी चाहिए।

मेरी राय में भाषाओं की दृष्टि से और विषयों की दृष्टि से जैन साहित्य के परिचायक—साहित्य के इतिहास आठ आठ भागों में तैयार करवा कर प्रकाशित करने आवश्यक हैं। फुटकर रूप से इस क्षेत्र में कुछ काम हुआ भी है। पर स्वतंत्र रूप से काम किए बिना जैसा कि हम चाहते हैं—काम हो नहीं सकता। इतः पूर्व जो काम हुआ है उसकी जानकारी प्राप्त कर उसका उपयोग कर लेना है। पर प्रत्येक विषय की अद्यतन जानकारी और विशुद्ध विवेचन स्वतंत्र ग्रंथ निर्माण करने पर ही हो सकता है। जहाँ तक यह योजना काम में नहीं लाई जा सके, वहां तक इस संबंध में जो भी लेख आदि प्रकाशित हुए हैं* उनका एक संग्रह ग्रंथ निकल जाय तो काम चलाऊ

---

१. भारतीय जैनेतर विद्वानों की अपेक्षा तो पाश्चात्य विद्वानों के इंडियन लिटरेचर आदि ग्रंथों में अधिक पदिचय दिया गया है। इसका कारण भारतीय विद्वानों की साम्प्रदायिकता भी है।

* जैसे भुजबलि शास्त्री लिखित कन्नड, प्राकृत, संस्कृत जैन वाङमयादि का परिचय। ए. चक्रवर्ती का तामिल जैनसाहित्य का परिचय स्वतंत्र ग्रन्थ में छपा है उसका हिन्दी सार भी कुछ छपा था। जैन ऐतिहासिक साहित्य का परिचय मुनि जिनविजय जी के निबंध में पाया जाता है। अपभ्रंश साहित्य का परिचय डा० हीरालाल जी के नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित लेख में है। राजस्थानी जैन साहित्य पर मैंने गत कार्तिक में राजस्थान विश्वविद्या-

जानकारी प्राप्त करने में सुगमता और भावी विशद कार्य में सुविधा एवं सहायता मिल सकेगी। मेरी योजना जैन साहित्य के परिचायक १६ ग्रंथों के प्रकाशन की इस प्रकार है। कमी-वेशी भी की जा सकती है।

भाषा की दृष्टि से १ प्राकृत, २ संस्कृत, ३ अपभ्रंश, ४ राजस्थानी, ५ गुजराती, ६ हिन्दी, ७ कन्नड और ८ तामिल—इन आठ भाषाओं में जैन साहित्य अधिक रूप से मिलता है। इनमें से प्राकृत, संस्कृत, राजस्थानी, गुजराती में तो छोटी मोटी हजारों रचनायें प्राप्त हैं। अतः इन आठों भाषाओं में रचित जैन साहित्य का इतिहास स्वतन्त्र रूप से आठ भागों में तैयार किया जाना चाहिए।

इसी प्रकार विषय वर्गीकरण किए जाने पर १ जैनतत्त्वज्ञान (जीव विज्ञान, कर्म विज्ञान भूगोल आदि), २ जैन न्याय—दर्शन, ३ जैन आचार, ४ जैन कथा, ५ व्याकरण, कोश, छंद, अलंकारादि, ६ काव्य, नाटक, गद्यग्रंथ, ७ ज्योतिष, वैद्यक, शिल्प, मंत्र तंत्र आदि वैज्ञानिक व उपयोगी साहित्य, ८ ऐतिहासिक। इन आठ विषयों के साहित्य के इतिहास रूप एक एक ग्रंथ खूब अच्छी तरह तैयार हो सकते हैं।

इन ग्रंथों के निर्माण करने वाले अधिकारी विद्वान सभी कार्य व्यस्त हैं।†

पीठ से भाषण दिये हैं। जैनमंत्र साहित्य पर अनेकान्त में व डा० भगवानदसा के भैरवपद्मावती कल्प की अंग्रेजी प्रस्तावना में, जैन ज्योतिष के सम्बंध में पं० नेमिचन्द्र शास्त्री का व जैन संस्कृति संशोधन मंडल द्वारा प्रकाशि तदलसुख भाई के जैन दार्शनिक साहित्य का परिचय, प्रो० हीरालाल का पाहुड़ ? अनेक विषयों पर मेरे सैकड़ों लेख छप चुके हैं उनमें से चुन चुन कर संग्रह ग्रन्थ प्रकाशित हो।

† जैसे मुनि जिनविजय जी, पं० सुखलाल जी, बेचरदास जी, लालचंद्र भगवानदास गांधी, जुगलकिशोर जी मुख्तार, नाथूराम जी प्रेमी अब वृद्ध साहित्यकों में हैं। डा० हीरालाल, आदिनाथ उपाध्याय, दलसुख भाई, भोगीलाल संडेसरा, हीरालाल कापड़िया आदि अन्य कार्यों में व्यस्त रहते हैं अतः इनके पास जैन संस्कृति संशोधक मंडल के रिसर्च स्कालर श्री नथमल जी टॉटिया, इंद्रचन्द्र जी शास्त्री, गुलाबचंद्र जी चौधरी आदि को रखकर काम करवाया जाय तो पिछले विद्वान भी तैयार हो जायेंगे। उनका अनुभव परिपक्व होने से भविष्य में परम्परा चलती रहेगी। नये नये विद्वान तैयार होते हैं, उनको इन सब कार्यों में खपाया जा सकें तो बड़ा ही अच्छा हो।

कुछ तो वृद्धावस्था के कारण अधिक श्रम करने में असमर्थ हैं और कुछ कार्य भार की अधिकता से। अतः उनसे काम लेने के लिए सहायक के रूप में एक एक प्रतिभा संपन्न व साहित्यक रूचि वाले विद्वानों की नियुक्ति करके अधिकारी व्यक्तियों की देखदेख एवं सलाह-सूचना से काम लिया जा सकता है।

हमारे साहित्य के इतिहास संबंधी तैयार किये जाने वाले ग्रंथ केवल वर्णनात्मक ही न होकर विवेचनात्मक भी होने चाहिए। उदाहरणार्थ—प्रो० हीरालाल कापड़िया के 'आगमो नुं दिग्दर्शन' और 'पइय भासाओ अने साहित्य' आदि ग्रंथ व लेख विवरण तो ठीक देते हैं, उनसे सूचना व जानकारी तो मिल जाती है, पर विवेचन नहीं मिलता। इसी प्रकार देसाई के ग्रंथों में से 'जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास', ज्ञातव्य बातों का एक कोश ग्रंथ सा है, जिसमें साहित्य का विवरण, जैन इतिहास की घटनाओं का सार तो संक्षिप्त में खूब सम्मलित किया गया है पर किसी बात की विशेष जानकारी व विवेचन इसमें नहीं आ सका। एक ग्रन्थ में अनेक बातों का समावेश होने से। और उनके 'जैन-गुर्जर कविओं' में तो गुजराती और साहित्य के इतिहास की कच्ची सामग्री तो खूब मिलती है, पर उस साहित्य की विविधता, उसके प्रकार, परम्परा विशिष्टता आदि का विवेचन वे ५०० पृष्ठों में लिखने वाले थे—वह अधूरे लिखे जाने व अप्रकाशित रह जाने से विवेचन की अपेक्षा रह गई। यह काम अब जैन साहित्य के भावी इतिहास लेखकों को करने का है। पूर्ववर्ती कामों का उन्हें बहुत बड़ा सहारा मिल रहा है—उनका श्रम बहुत हलका हो गया है। फिर भी बड़े ही दुख के साथ कहना पड़ता है कि अभी तक हुए कार्यों को आगे बढ़ाने की रुचि व प्रेरणा नये शिक्षितों में नहीं पाई जाती। इस रुचि को विकसित करने का प्रयत्न अत्यन्त आवश्यक है।

जैन साहित्य की अपेक्षा बौद्ध साहित्य की जानकारी आज विश्व को अधिक है। भारतवर्ष से सैकड़ों वर्षों से बौद्धधर्म विलुप्त सा होकर विदेशों में चारों ओर फैल गया। बौद्ध साहित्य के अनेक ग्रंथ अब मूल भाषा व मूल रूप में प्राप्त नहीं हैं। अनेकों ग्रन्थों के चीनी, बर्मी, तिब्बती, अनुवाद ही प्राप्त हैं। पर विगत ५०।६० वर्षों से पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान बौद्ध-साहित्य की ओर विशेष रूप से गया और पाली टैक्स्ट सोसाइटी‡ आदि द्वारा

‡ भारत सरकार से प्राकृत साहित्य के प्रकाशन की व्यवस्था होने व उसमें ५००) महीने पर पं० फतेचन्द बेलाणी की नियुक्ति का समाचार कुछ महीनों पूर्व पढ़ा था पर वेलाणी कितना व कैसा काम कर सकेंगे, नहीं कहा जा सकता।

अनेक बौद्ध ग्रंथ रोमन लिपिओं और अंग्रेजी अनुवाद के रूप में सुलभ हो गये। प्राचीन चीनी अनुवादों के आधार से मूल पाठ के उद्धार का प्रयत्न भी किया गया है। भारत में भी इधर २०-२५ वर्षों में इस दिशा में काफी काम हुआ है। यद्यपि इस काम में बहुत अधिक बौद्धिक श्रम और समय लगा है। जैन साहित्य के क्षेत्र में वैसी विशेष कठिनाई न होने पर भी अभी उसके महत्त्व को विश्व के सम्मुख रखे जाने का प्रयत्न नहीं हुआ है। जैनों ने जो कुछ कार्य किया वह अपने में ही सीमित रहा। डॉ० हरमन जैकोबी आदि पाश्चात्य विद्वानों के प्रयत्न के फलस्वरूप अभी कुछ जैनधर्म और साहित्य संबंधी जानकारी विश्व को है। अब जैन समाज को अपने धर्म व साहित्य प्रचार का सही रास्ता शीघ्र ही अपनाना चाहिये। अन्यथा वे बहुत पीछे रह जायंगे। जो बड़ी हानि होगी। जैन समाज बहुत बड़ी साहित्य सम्पत्ति का स्वामी है। उसकी स्मृति प्रकाशन में आना अब अत्यंत आवश्यक है। जैनधर्म के सिद्धान्त बड़े उपयोगी हैं उनकी प्रसिद्धि से विश्व नतमस्तक हो उठेगा।

हाल ही में हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से प्रकाशित भरत सिंह उपाध्याय रचित 'पाली साहित्य का इतिहास' मेरे अवलोकन में आया। उपाध्याय जी जैन कालेज बड़ौत के हिंदी विभाग के अध्यक्ष हैं। विगत ६, ७ वर्षों में उन्होंने बौद्ध साहित्य का अच्छा अध्ययन करके कई ग्रंथ प्रकाशित किए हैं। मैंने उन्हें २-३ पत्रों द्वारा बौद्ध साहित्य के साथ साथ जैन साहित्य विशेष कर आगमिक प्राकृत साहित्य के अध्ययन के लिए भी निवेदन किया। जैन कालेज में अध्यापक होने के नाते भी उनका यह कर्त्तव्य था व पं० राजकुमार जी आदि के वहीं होने से सुविधा भी है पर उन्होंने इस ओर तनिक भी ध्यान दिया, प्रतीत नहीं होता। उनकी रुचि एक मात्र बौद्ध साहित्य में ही लगी हुई है। आपका प्रस्तुत ग्रंथ बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। यह पाली साहित्य का इतिहास हो नहीं है—उन ग्रंथों का विषद परिचायक और विवेचनात्मक ग्रंथ है। इससे जिन ग्रंथों का इसमें परिचय दिया गया है—उनमें क्या क्या विषय हैं—क्या विशेषताएं हैं आदि का बोध हो जाता है व उन ग्रंथों के अध्ययन की प्रेरणा मिलती है। अतः मेरी राय में हमारे

विद्वत्ता की दृष्टि से पं० लालचंद व प्रो० कापडिया का सहयोग उन्हें मिल जाय तो काम ठीक होगा। पं० लालचंद काम धीरे धीरे करने पर भी बड़ा सुन्दर करते हैं। वर्षों के अनुभवी हैं। ये दोनों विद्वान अभी सेवा दे भी सकते हैं उचित स्थान व पारिश्रमिक देने पर।

"जैन साहित्य के इतिहास" ग्रंथ निर्माण में इस शैली को अपनाना उपयोगी होगा। मैं "प्राकृत साहित्य का इतिहास"§ तो शीघ्र इस पाली साहित्य के इतिहास की भाँति हिंदी साहित्य सम्मेलन के द्वारा ही प्रकाशित हुआ देखना चाहता हूँ। ऐसी सार्वजनिक और प्रसिद्धि प्राप्त संस्था से ऐसा ग्रंथ प्रकाशित होने पर ही उसका प्रचार ठीक से हो सकेगा।

प्राकृत भाषा और साहित्य के अनेक पंडित श्वेतांबर व दिगंबर दोनों संप्रदायों में विद्यमान हैं। बौद्ध पाली साहित्य की अपेक्षा प्राकृत जैन साहित्य विविधता, विशालता, दीर्घ परंपरा आदि अनेक दृष्टियों से बहुत महत्त्वपूर्ण है। पाली साहित्य बहुत थोड़ी शताब्दियों तक रचा गया है। जब कि प्राकृत जैन साहित्य की परंपरा भगवान महावीर से लेकर आजतक चली आरही है। व्याकरण, छंद, कोश, अलंकार, ज्योतिष, वैद्यक, मंत्र, वास्तुशास्त्र, मुद्राशास्त्र आदि अनेक विषयों के ग्रंथ प्राकृत में हैं। कथा, काव्य, नाटक, गद्य पद्य सभी प्रकार का प्राकृत साहित्य उपलब्ध है। प्राचीन जैनागमों का महत्त्व भी बौद्ध त्रिपिटिकों आदि से कम नहीं है। दोनों रचनाएँ समसामयिक हैं। एक दूसरे के अध्ययन से ही अनेक बातों की जानकारी में पूर्णता आ सकती है, निश्चय करने में सुविधा होती है। इनसे तत्कालीन भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक ज्ञातव्य बातों की नई नई सूचनाएँ मिलती है। इसलिए भारतीय विद्वानों को दोनों धर्मों और दोनों भाषाओं के साहित्य की जानकारी साथ २ हो तो अच्छा रहेगा। मैं प्राकृत भाषा और साहित्य के अधिकारी जैन विद्वानों, मुनियों एवं संस्थाओं से अनुरोध करूँगा कि राष्ट्र भाषा में प्राकृत साहित्य का इतिहास शीघ्र ही प्रकाशित करने का प्रयत्न करें। विशेषतः श्री सोहन लाल जैन धर्म प्रचारक समिति व जैन संस्कृति संशोधन मंडल बनारस से ही मैं अवश्य ही आशा करता हूँ कि वे अपने रिसर्च स्कालरों को थीसिस के लिए ये विषय लेने की प्रेरणा करें व जैन साहित्य का इतिहास व उपर्युक्त १६ खंड तैयार कर प्रकाशित करने का बीड़ा उठावें। धनिक इसे पूर्ण सहयोग दें।

---

§ प्राकृत साहित्य का इतिहास वैज्ञानिक दृष्टि से लिखा जाय। इसमें जैनेतर प्राकृत साहित्य का ही समभाव से अध्ययन कर यथास्थान उचित रूप सेपरिचय दिया जाय। प्राकृत भाषा की उपयोगिता पर पं० लालचंद गांधी का ग्रन्थ पठनीय है।

हमारी यात्रा के कुछ संस्मरण

ला० हरजसराय जैन

राजस्थान और मध्यभारत के भ्रमण की प्रेरणा इस कारण से भी हुई थी कि समिति के बढ़ते विकास के साथ साथ इस पर आने वाली मांगे भी विशाल और बहुरूपी होती जाती हैं। इनकी व्यवस्था की प्रेरणा दिनोंदिन बलवती हो रही है। इस हेतु से जैन जनता को पार्श्वनाथ विद्याश्रम, शतावधानी रत्नचन्द्र लायब्रेरी और श्रमण आदि वर्तमान प्रवृत्तियों का परिचय कराना जरूरी होता जाता है, साथ ही संबन्धित और आवश्यक अन्य प्रवृत्तियों तथा भावी रूपरेखा का दिगदर्शन कराना भी उतना ही जरूरी था। जैन समाज में साधु अपना एक अलग स्थान रखते हैं। उनकी सहानुभूति तभी प्राप्त हो सकती है जब उनको सान्त्वना हो जाए कि धर्म के मूल सिद्धान्तों की जैनॉलोजी (Jainology) के क्षेत्र में रिसर्च करने वाले अवहेलना नहीं कर रहे हैं बल्कि उन्हीं की व्याख्या नवीन भाषा में नवीन ढंग से, उनके सौन्दर्य और मूल्य बतलाने के हेतु से की जा रही है कि दार्शनिक प्रश्नों के संबन्ध में, सांस्कृतिक समस्याओं के समाधान में जैनतीर्थंकरों और आचार्यों का दृष्टिकोण क्या रहा है ? अपने काल मे उन्होंने भी अपने स्वीकृत विचारों के संबन्ध में विपत्तियों के वज्रसमान प्रहारों को खुले छाती से सहन किया है और उन्हीं की सामग्री से अपने पक्ष का समर्थन दिया है, इसी संबन्ध में रतलाम में विराजमान भूतपूर्व उपाध्याय मन्त्री श्री प्रेमचंद जी ने डॉ० नथमलजी टाटिया की पुस्तक Studis in Jain Philosophy में से जैन ज्ञानवाद के प्रसंग में धारणादि भी वर्णित हैं, तसल्ली कर ली थी।

दूसरी प्रेरणा इस विस्तृत २५०० मील से अधिक के देशाटन की यह भी थी कि स्थानकवासी जैन साधुओं के संघैक्य कर लेने से अपने परिचित पंजाबी प्रतिष्ठित साधु कई मुख्य स्थानों में चतुर्मासार्थ ठहरे हुए थे, स्थान २ पर उनकी उपस्थिति हमारी सुविधा थी। लेखक बीकानेर, भीनासर, जोधपुर, पालनपुर, अहमदाबाद, नाथद्वारा और रतलाम से अपरिचित था, कई स्थानीय सज्जनों से भी अपरिचय ही था। संघैक्यतार्थ पंजाबी साधुओं ने साहसपूर्ण सहयोग दिया था। इसका कुछ मान सम्मान या परिचय हमें भी प्राप्त हो सकता था।

हमें संतोष इस बात का हुआ कि बनारस की प्रवृत्तियों की साधारण प्रसिद्धि प्रायः सभी स्थानों में विराजित साधुजनों तक पहुँच चुकी थी। श्रमण की सभी जगह चर्चा थी। उसके पाते रहने की उत्कण्ठा भी थी, इससे हमारा काम सरल हो जाता था। बीकानेर में श्रीबखतावरमल और उनके शिष्य श्रीनेमचन्द्र और श्री हनुमन्तजी ने स्पष्ट शब्दों में इन प्रवृत्तियों के प्रति कर्तव्य की जाँच कराई, जोधपुर में मन्त्री श्री शुक्लचंद्रजी (भूतपूर्व युवाचार्य) विराजमान थे, पालनपुर में कविवर अमरमुनिजी और श्री मदनलालजी थे, नाथद्वारा में प्रधान मन्त्री श्री आनन्दऋषीजी और उदयपुर (मेवाड़) में उपाचार्य श्री गणेशीलालजी और मन्त्री श्री प्यारचन्दजी थे, उपाचार्यजी के अतिरिक्त उनके शिष्य मुनि श्री श्रीमलजी समिति की प्रवृत्तियों के समर्थक और उत्साही प्रेरक थे; रतलाम में श्री प्रेमचन्द्रजी और इन्दौर में पंजाबी साधु छोटेलालजी के साथ उनके शिष्य शास्त्री श्री सुशीलकुमार थे। सभी स्थानों पर हमें इन मुनिवरों का विशेषरूप से और स्पष्टतया सहयोग मिलता रहा। उपाचार्यजी ने कहा कि उनके विचारानुसार तो प्रत्येक जैन क्षेत्र को अपने अपने स्थानार्थं एक एक ऐसा विद्वान तैयार करना चाहिये। बीकानेर में छोटे साधु ने प्रश्न उपस्थित किया कि जिस काम का उन्होंने परिचय दिया है, वह स्तुत्य है कि नहीं ? यदि स्तुत्य है तो उसकी सहायता सर्व प्रकार से करना सभी का परम कर्तव्य है।

जहाँ जहाँ गए, पंजाबी साधुओं के स्पष्ट और जोरदार भाषणों से जनता प्रसन्न और प्रभावित थी। रतलाम में श्री प्रेमचन्द जी के व्याख्यानों की धूम से वहाँ के दोनों दलों ने दीवार तोड़कर अलग अलग स्थानकों को एक कर लिया था। हमारे चले आने के बाद विहार वाले दिन दोनों दलों के सभी स्त्री-पुरुषों का सहभोज नियत हो चुका था। इन्दौर में शास्त्री सुशीलकुमार जी की भूरि २ प्रशंसा थी। जिस दिन हम वहाँ पहुँचे थे उससे अगले दिन स्थानीय जैनियों की ओर से उन्हें मानपत्र दिया गया था, जोधपुर में जनता प्रातः कीर्तनार्थ, फिर व्याख्यान सुनने के लिए और सायं भी आती थी।

पुनः कुछ यही अनुभव हुआ कि अपनी समाज से कुछ लेना इच्छित हो तो संवतसरी के पास ही आना चाहिए, उन दिनों देने की प्रवृत्ति चालू होती है, एक एक वातावरण होता है; परन्तु जिस डेप्युटेशन को अनेक स्थानों पर घूमना हो, वह सभी जगह संवतसरी के अवसर पर कैसे पहुँच सकता है ? पर्यूषणों में भी दो-तीन स्थानों से अधिक नहीं जा सकते, फिर भिक्षार्थियों की

अपनी सुविधा का प्रश्न भी है। इस वर्ष भाई की बीमारी ठीक पर्यूषणों में प्रगट हुई, संवतसरी दौड़धूप और चिन्ता में व्यतीत की। उपरान्त अत्यधिक कमज़ोरी रही। कन्या का विवाह ४ अक्तूबर को था। जब निवृत्ति हुई तब चातुर्मास के अन्त में एक पक्ष ही रह गया था। तब तक संवतसरी बीते दो मास होने लगे थे। उपयोगी प्रवृत्तियों के लिए जो स्थानीय न हों, दान देने की वृत्ति आगे पीछे भी बनाए रखना चाहिए।

बीकानेर पहुँचे तो दीवाली में दो दिन शेष थे। सभी काई आने वाले त्योहार में ही लग सा रहा था। जोधपुर पहुँचे तो वह दिन ही दीवाली का था। अगला दिन नए वर्षारम्भ का था। इस ओर नूतन वर्ष का आरम्भ दीवाली से अगले दिन की पड़िवाँ को होता है। सभी लोग सारा दिन एक दूसरे से मिलने में लगाते हैं। दूसरी ओर ध्यान देना ही मुश्किल है। जोधपुर में हमें इसका पूरा अनुभव हुआ। श्री भण्डारी शुकनचंद और भण्डारी दौलत सिंह जी के यत्न और मन्त्री साहिब को कहने के बावजूद भी कोई उपस्थिति नहीं हुई।

सरकार की कर नीति और मजदूरों के सम्बन्ध में अनेक नए कानूनों के लागू होने और अत्यन्त मन्दा होने से व्यापारी और कारखाने वालों को बड़ी समस्या का सामना था। जो व्यक्ति ४-५ अंकों की रकम देने में संकोच नहीं किया करते थे, इन दिनों कुछ भी देने को तैयार न थे।

बीकानेर निवासी श्री भैरादान जी सेठिया ८५/८६ की आयु में भी सर्वाङ्ग स्वस्थ, चलते फिरते, अपनी प्रवृत्तियों में निरन्तर नियत समय और भाग लेते देखने से प्रसन्नता होती है। 'श्री अगरचंद नाहटा का पुस्तक भंडार दिलचस्प और विस्तृत था। इन्दौर में राय बहादुर कन्हैयालाल जी भण्डारी सभी मिलों और व्यापार का ध्यान त्याग कर योग साधना और जनहितार्थ चिकित्सा में ही मन लगाते हैं, उनका चिकित्सालय और औषधालय उनके अन्य कामों की भांति विकसित और सुव्यवस्थित है। जिस कोठी में रहते हैं, उस सब में यही प्रबन्ध फैला हुआ है। भीनासर में श्री चम्पालाल जी बांठिया का मकान, बनावट, सजावट और पालन की दृष्टि से उनके रस और रुचि का सूचक है।

इन्दौर में पंजाबी जैन शरणार्थी या पुरुषार्थी स्यालकोट, पसरूर आदि

से काफी बसे हुए हैं। अपनी हिम्मत और दृष्टि के अनुसार अपना निर्वाह चलाने का प्रयत्न सभी कर रहे हैं। कोई विशेष निराश अनुभव नहीं होती है परन्तु जड़ें जमते कुछ पुश्तें लगेंगी। इन शरणार्थी भाईयों की एक सामाजिक समस्या यह भी है कि उन्हें अपने बच्चों के रिश्ते नाते पंजाब में ही करने पड़ते हैं, कईयों के पुराने निश्चित सम्बन्ध हो चुके हुए हैं। कई एक को करने हैं तो उधर देना लेना दोनों अभी अति कठिन हैं। परिचय अभी प्रायः अल्पकाल का ही है, रस्मोरिवाज का भी अन्तर है। पंजाब में सगाई सम्बन्ध तीन पैसे के कार्ड के परस्पर प्रतिदान से निश्चित हो सकते हैं। अन्य रस्में अति सरल और कम खर्च हो चुकी हैं, उधर कुछ रियासती ठाठ हैं, लेनादेना काफी खर्चीला है। पंजाब से इन्दौर जैसी जगह ७०० मील से अधिक दूर है।

ऐसे भाईयों के प्रति जो अपना पुनर्निर्माण करने का प्रयत्न कर रहे हैं, सभी रिश्तेदारों की भ्रातृवत चिन्ता और सहानुभूति सदा प्रवर्तित रहनी चाहिये। उनके खर्च और भार को हलका करना उनके सम्बन्धियों के ध्यान में सदा कायम रहना चाहिये। परन्तु ऐसी अवस्था में भी देखा गया है कि सम्बन्धीजन सुविधा उपस्थित करने की बजाय स्वयंस्वार्थ को अपने चिन्तन में प्रथम स्थान देते हैं, वर पक्ष वाले यदि स्वयं बरात लेकर वहां न जाए कि खर्च बहुत अधिक उठेगा और कन्यापक्ष को लाचार करें कि वह सारे कुटुम्ब को पंजाब में लाने का खर्च सहन करे, १५/३० दिन अपना व्यापार धन्धा बन्द करें, अपरिचित स्थान पर आकर अपने परिवार के लिये और वरपक्ष के ठहराने के लिये मकानों का प्रबन्ध करें, सभी प्रकार की सामग्री और खिलाने पिलाने के बर्तनादि की व्यवस्था करे और इस पर भी ८०/१०० बराती जो उस समय कानून के विरुद्ध संख्या हो, भोजनादि से प्रसन्न करे तो यह भाईयों के प्रति और शरणार्थी जैसे भाईयों के प्रति सौहार्द्र या सहानुभूति नहीं। नंगे बल का प्रयोग है। ८०/१०० बराती दिखावे के मान का कुप्रदर्शन हैं। परस्पर मदद नहीं, अपना पैसा बचाने की लालसा है, उभय पक्ष के प्रति कठोरता है।

कुछ एक को यह शिकायत थी कि श्रमण के पत्रों में मुनियों के नामों के साथ उनकी उपाधियों का वर्णन नहीं होता है। हमें यूं तो इस इच्छाकी पूर्ति के लिये कोई आपत्ति नहीं है परन्तु यह साहित्यक न होगा। वर्तमान

साहित्य की रुचि और परम्परा इन विशेषणों के इस्तेमाल में सुरुचि और सौन्दर्य नहीं समझती वरन इस अभ्यास की विरोधी है, हम 'श्रमण' को साहित्य की दृष्टि से भी ऊंचे स्तर पर रखने में प्रयत्नशील हैं।

कंचन बहन के विवाह ने १९५१ में स्थानकवासी समाज में कितनी अधिक हलचल की है, इसका अनुमान लगाना तो हमारे लिए मुश्किल है परन्तु इससे आकुलता काफी स्वीकृत की गई थी। 'श्रमण' में उभयपक्ष के समर्थक लेख निकले थे। इस यात्रा में हमें अनुभव हुआ है कि बावजूद इस अवस्था के कि समिति के संचालकों ने श्रमण में निकलने वाले लेखों के सम्बन्ध में इन शब्दों में अपनी स्थिति स्पष्ट की हुई है कि······"श्रमण में प्रकाशित लेख तथा सम्पादकीय विचार लेखक एवं सम्पादक के अपने विचार हैं। संस्था की नीति से उनका कोई संबन्ध नहीं है।" तो भी भ्रम बना रहता है। पाठक प्रायः विचारणा कम करते हैं। सम्पादकीय लेख भी समिति की कोई सरकारी नीति के आधीन नहीं है। वह तो सम्पादक के व्यक्तिगत विचार हैं। जब तक वह उपरोक्त बन्धनों से मर्यादित है, सम्पादकों को कुछ भी लिखने में स्वतन्त्रता है।

यदि गुणावगुण की दृष्टि से विचार किया जाए तो हम उपरोक्त घटना को समाज की परम्परा का अपवाद मानने में क्यों दुविधा मानते हैं। अनेक बार हमारे साधु मुनि और साध्वियाँ ढाल आदि की वांचना करते हैं तो उनके अन्दर सभी प्रकार की समस्यों के साधारण रीति नीति के अपवाद भी आते रहते हैं, तो उनके सुनाने से क्या उस समय अपवादी के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करना एक भावना या ध्येय नहीं होता? क्या हमें (श्रोताओं या श्रावक श्राविकाओं) यह शिक्षा देने की चेष्टा नहीं होती कि हम उस अपवाद को गहन गम्भीर दोष न मानकर सहनशीलता और सहानुभूति युक्त धारण करें? तो कंचन बहन के विवाह को दुष्नाम देने के स्थान पर अपने ही काल का अपवाद मान लिया जाए।

सारे सफर में जहाँ २ हम गए वहां लोगों से मिलने, अपना उद्देश्य वर्णन करने और उनकी उदारता को मार्ग देने की चेष्टा के अतिरिक्त कुछ और करना सम्भव नहीं रहता है। जो हमने बहुत से नगर पहले देखे हुए नहीं भी थे और बीकानेर, जोधपुर आदि ऐतिहासिक नगर भी थे परन्तु वहां के किसी मशहूर मुकाम, स्थान या संस्था को देखने का हमें अवसर नहीं मिल

सका। दो दिन से अधिक एक ही स्थान पर रहना हमें मुश्किल था। उदयपुर में महाराजाओं के महल, पिचोला में स्थित जगनिवास और जगमन्दिर महल हम देखने जा सके क्योंकि वह हमारे निवास स्थान से समीपस्थ थे। और हम अपने थोड़े अवकाश का उपयोग कर सकते थे। यहाँ पर फतहसिंह मेमोरियल सराए एक विशाल सुस्थित और व्यवस्थित ठहरने का स्थान है परन्तु न जाने किस अननुभवी ने बनाने का निरीक्षण किया है कि कमरों में पानी के निकास का प्रबन्ध होने पर भी सतह इस ढंग से रखा है कि उपयोग किया हुआ जल बाहर मुहाने की ओर बहने के स्थान पर कमरे के मध्य में आना ही पसन्द करता है और ठहरनेवाले की परेशानी का कारण रहता है। अहमदाबाद में साबरमती आश्रम, महात्मा गांधी की कुटिया, प्रार्थना स्थान, कागज बनाने का उद्योग और इस प्रकार के कामों में महात्मा जी मशीनरी का कितना उपयोग मनुष्य के हितार्थ मानते थे, सभी देखा। कैलिको मिल्स में जहाँ सारी मिल्स देखीं, अधिक आकर्षण था बच्चों की सार सम्हाल का कार्य। यह बच्चे उन स्त्रियों के थे जो मिलों में काम धंधा कर परिवार का खर्च चलाती हैं। पुराना जैन मन्दिर भी देखा, अधिक देखने का समय नहीं मिला, इन सब में पण्डित सुखलाल जी की प्रेरणा रहती है कि जिज्ञासा होनी चाहिए। पण्डित जी के सौजन्य से पण्डित बेचर दास जी व श्री रसणीकलाल C. पारीख से, जो अहमदाबाद यूनिवर्सिटी में रिसर्च in charge हैं और उनके पुत्र और उनकी पुत्रवधू से, जो अमरीकन रमणी हैं, साक्षात् मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अहमदाबाद में हम एक प्रकार से तीर्थ यात्रा पर गए थे। पण्डित सुखलाल जी के इतने समीप पालनपुर तक पहुँच कर उनके पास न पहुंचना भी हेय कार्य होता। सरितकुंज जहाँ पण्डित जी ठहरते हैं, सुरम्य, स्वच्छ और सुन्दर स्थान है। सुश्री इन्दुकला पण्डित जी के पास अपने महानिबंध के कार्य में संलग्न रहती हैं। यह २० वर्षीया बाला पण्डित जी की प्रेरणा शक्ति और उनकी छत्रछाया में विकास का नमूना है। उस सारे वातावरण का वह चाँद सी अनुभव होती थीं।

प्रिय कहाँ हो ?

प्रिय कहाँ हो ?

नहीं हो तुम कुटी में, अट्टालिका में भी नहीं हो
रम्य उपवन में नहीं हो, वाटिका में भी नहीं हो
नील नभ में नहीं हो तारावली में भी नहीं हो
कृष्ण मेघों में नहीं हो, दामिनी में भी नहीं हो
शशि सदन देखा नहीं शायद वहाँ हो !

प्रिय कहाँ हो ?

क्या छिपे हो सिंधु में, या निर्झरों में बह रहे हो
लहरवत् मैं हूँ अमिट यह मृदु स्वरों में कह रहे हो
मधुनिशा में नयन तारों से मुझे तुम झाँकते हो
सच बता दो मूल्य मेरा आज भी क्या आँकते हो
तो इधर देखो हृदय में तुम यहाँ हो !

प्रिय कहाँ हो ?

स्वप्न में मुझ तक पहुँचने रात्रि भर तुम जागते हो
स्पर्श करना चाहती हूँ तब कहो क्यों भागते हो
पलक झपते आ पहुँचते पलक खुलते कहाँ जाते
हृदय मेरा टूटता है क्या कभी यह जान पाते
ले चलो मुझको वहीं बस तुम जहाँ हो !

प्रिय कहाँ हो ?

—श्रीमती कमला जैन 'जीजी'
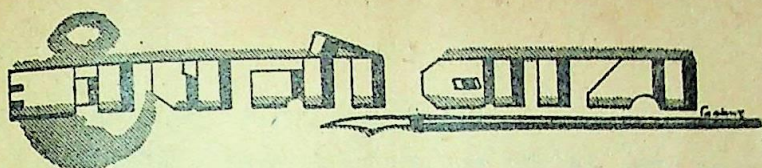
वैशाली का पुनरुत्थान

भगवान् महावीर स्वामी के मामा महाराजा चेटक की राजधानी वैशाली जैन समाज के लिए महत्वपूर्ण स्थान रखती है। उसके पास ही क्षत्रियकुण्ड है। महावीर के पिता सिद्धार्थ उसके गणतान्त्रिक नायक थे। कर्मार ग्राम, वाणिज्यग्राम, कोल्हाक सन्निवेश आदि महावीर के जीवन से संबन्ध रखने वाले स्थान भी उसी के आसपास हैं। महावीर कहाँ उत्पन्न हुए, कहाँ बाल्यावस्था तथा युवावस्था को बिताया, कहाँ प्रव्रजित हुए, प्रव्रज्या के बाद पहली रात कहाँ बिताई, फिर किधर विहार किया, और कहाँ कहाँ रहकर आत्म-साधना की, कैवल्य प्राप्ति के पश्चात् जनकल्याण के लिए किधर विचरण किया, यह सब वैशाली और उसके निकटवर्ती स्थानों को देखने से स्पष्ट झलकने लगता है। इसके बाद कोई सन्देह नहीं रह जाता कि लिच्छवि गणतन्त्र का केन्द्र, महावीर की जन्मभूमि तथा बुद्ध की उपदेशभूमि यही वैशाली रही है।

किन्तु यह दुःख की बात है कि जैन समाज का ध्यान इस ओर अभी तक नहीं गया है। वर्तमान जैन शासन के नायक भगवान् महावीर की जन्मभूमि अभी तक जैन समाज से छिपी हुई है।

ईसाई, मुसलमान तथा दूसरे धर्म वाले अपने अपने धर्म-प्रवर्तक के जन्म-स्थान को कितना महत्व देते हैं, यह बताने की आवश्यकता नहीं है। जेरूसलम के लिए ईसाइयों ने जो संघर्ष किया है वह धर्मानुराग का एक अमर इतिहास है। एक भारतीय मुसलमान गरीब होने पर भी जन्म भर की कमाई खर्च करके, अनेक कष्ट उठाकर मक्का जाने का अरमान रखता है। किन्तु जैन समाज सब तरह की सुविधाएँ होने पर भी कुण्डलपुर को भुलाए बैठा है।

पिछले आठ वर्षों से बिहार सरकार वैशाली के पुनरुत्थान के लिए प्रयत्नशील है। प्रतिवर्ष महावीर जयन्ती के अवसर पर वहाँ मेला लगता है। पचास हजार से अधिक जनता एकत्रित होती है। बिहार के मन्त्री तथा अन्य राज्याधिकारी भी इसमें रुचि के साथ भाग लेते हैं। मेले में सभी इस उत्साह के साथ इकट्ठे होते हैं जैसे अपने किसी महान् पूर्वज की स्मृति मना रहे हों। अब भी वहाँ चौबीस गाँव ज्ञातृवंशीय भूमिहारों के हैं, जो भगवान् महावीर के कुल से सीधा संबन्ध रखते हैं।

महावीर, बुद्ध, जनक आदि जीवन्मुक्त तपस्वियों की जन्मभूमि होने के अतिरिक्त बिहार जैन, बौद्ध तथा ब्राह्मणों का सांस्कृतिक केन्द्र भी रहा है। नालन्दा के कारण तो बिहार अखिल विश्व का विद्यागुरु कहा जा सकता है। कुछ वर्षों से वहाँ की सरकार ने यह योजना बनाई है कि बिहार के इस अतीत गौरव को पुनर्जीवित किया जाय। तदनुसार भारतीय संस्कृति के तीनों स्रोतों के लिए तीन केन्द्र स्थापित करने का निश्चय किया है। उनमें से संस्कृत तथा वैदिक परम्परा के अध्ययन के लिए दरभंगा इन्स्टिट्यूट की स्थापना की है। पाली तथा बौद्ध दर्शन के लिए नालन्दा इन्स्टिट्यूट प्रारम्भ हो गई है। तीसरी इन्स्टिट्यूट वैशाली में प्राकृत तथा जैनदर्शन के अध्ययन के लिए इस वर्ष खोलने का निश्चय किया है।

बिहार सरकार जहाँ अपने कर्तव्य के लिए कटिबद्ध है वहाँ जैन समाज को भी इस कार्य में पूरा सहयोग देना चाहिए। हमें यह कहते हुए गर्व होता है कि इस पुनीत कार्य के लिए कलकत्ते की तेरापंथी सभा ने अखिल जैन समाज की ओर से पांच लाख रुपए देने का वचन दिया है। आशा है सरकार अब इस वैशाली इन्स्टिट्यूट को भी शीघ्र ही मूर्त रूप दे देगी।

इस वर्ष वैशाली का नवम समारोह मनाया गया था। इसकी अध्यक्षता के लिए दीर्घदर्शी पं० श्री सुखलाल जी को आमन्त्रित किया गया था। पंडितजी ने जैन, बौद्ध तथा ब्राह्मण परम्पराओं के मेल से भारतीय संस्कृति के विकास का जो मार्गदर्शन किया है वह सभी के लिए मननीय है। भारतवर्ष सदियों से धर्म के नाम पर मत मतान्तर पन्थों के झगड़ों का अखाड़ा बना हुआ है। उसकी दुर्बलता का मुख्य कारण ही साम्प्रदायिक झगड़े हैं। जिस प्रकार भारतीय सरकार ने इन झगड़ों से ऊपर उठ कर सघराज्य की स्थापना की है और उसके द्वारा राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने का निश्चय किया है उसी प्रकार यदि सभी मत मतान्तर भी बाह्य झगड़ों से ऊपर उठकर उस अन्तस्तल तक पहुँचने का प्रयत्न करें जहाँ त्याग और प्रेम की एक ही धारा बह रही है, तो राजनीति और धर्म परस्पर पूरक बनकर देश को आगे ले जा सकेंगे। इतना ही नहीं, समस्त विश्व का पथप्रदर्शन कर सकेंगे। पण्डित जी के उपरोक्त विचार सभी धर्मनेताओं के लिए आदरणीय हैं। पण्डित जी का भाषण हम अगले अंक में दे रहे हैं।

---:*:---

साहित्य-सत्कार
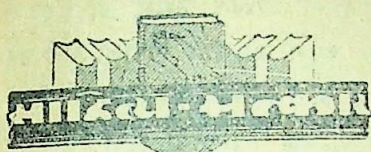
मधुरिमा : नई भावनाओं का प्रतीक कविता संग्रह

रचयिता—अशेष; प्रकाशक— चिनगारी प्रेस, बनारस; मूल्य—१॥)

कवि 'अशेष' की 'मधुरिमा' सचमुच ही मधुर गीतों का एक संग्रह बन पड़ी है। कविताएँ पढ़कर जान पड़ता है कि कवि ने अपने हृदय की ही 'मधुरिमा' को साकार रूप दिया है। पहली कविता की पहली पंक्ति ही हृदय में एक मधुर झंकार के साथ एक मधुर भावना को उमगाने में समर्थ है—

मदहोश—आम की बाहों में
बेसुध मदमाती
मंजरियाँ

मधुरिमा के सभी गीत नई धारा के प्रतीक हैं। कवि ने मानव हृदय की अनेक प्रकार की भावनाओं को अपने विभिन्न गीतों में व्यक्त कर 'मधुरिमा' में एकाकार कर दिया है। हृदय में छिपे हुए सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव को व्यक्त करने में भी कवि ने कुशलता दिखाई है। श्री त्रिलोचन शास्त्री की 'पूर्वा' के शब्दों में कहा जाय तो कवि ने आशा-निराशा, सुख-दुःख, संध्या-उषा, रात-दिन, हास-रुदन सब पर समान रूप से ध्यान दिया है। हमें विश्वास है कि सुन्दर आर्ट पेपर पर छपी हुई कवि 'अशेष' की 'मधुरिमा' पाठकों के हृदय की मधुर भावनाओं को झकझोरने में सफल हो सकेगी।

संघी मोतीलाल जी मास्टर : परिचय और श्रद्धांजलि

सम्पादक—जवाहिर लाल जैन; प्रकाशक—श्री सन्मति पुस्तकालय, जयपुर; मूल्य—१)

हमारे देश में मूक सेवकों की कमी नहीं है। ऐसे ऐसे व्यक्ति हमारे देश में हो चुके हैं जिन्होंने बिना किसी प्रकार की मान-प्रतिष्ठा की आकांक्षा किए, बिना किसी प्रकार का अपना विज्ञापन-आत्मप्रचार किए, तन-मन-धन से देश, जाति व धर्म के लिए अपना कर्तव्य पूरा करते हुए अपना जीवन अर्पण किया। ऐसे व्यक्तियों को साहित्यिक भाषा में मौनसाधक या मूकसेवक कहा जाता है। मास्टर मोतीलाल जी भी एक मूक सेवक थे। मास्टर सा०

जयपुर की वह भव्य विभूति थे जिन्होंने अपना जीवन दूसरों की सेवा में व्यतीत कर दिया था। दूसरों की सेवा करने की तीव्र पिपासा होने पर भी उन्होंने कभी अपने आप को प्रकाश में लाने या सेवा का ढिंढोरा पीटने का प्रयत्न नहीं किया। प्रस्तुत पुस्तक में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा लिखे गए मधुर संस्मरण और श्रद्धांजलियों से उनके जीवन पर काफी प्रकाश पड़ता है। इसे एक 'लघु स्मारक ग्रंथ' कहा जाय तो अनुचित न होगा।

—महेन्द्र 'राजा'

हस्तिनापुर: लेखक—अमरचन्द एम० ए०; प्रकाशक—श्री जैन संस्कृति संशोधन मंडल, बनारस ५. मूल्य—२)

प्रस्तुत पुस्तिका एक नए होनहार विद्वान की प्रथम कृति है। पुस्तिका अंग्रेजी में और सचित्र है। स्थान की जानकारी के पश्चात् हिन्दू, बौद्ध और जैन साहित्य के आधार पर हस्तिनापुर के इतिहास की रूपरेखा दी गई है। महाभारत और पुराणों से विख्यात पौरव कुल के प्रतापी राजाओं की राजधानी और अनेक ऐतिहासिक एवं काल्पनिक घटनाओं की रंगभूमि होने के अतिरिक्त हस्तिनापुर १७ वें, १८ वें तथा १९ वें तीर्थंकर श्री शांतिनाथ, श्री कुंथुनाथ तथा श्री अरहनाथ के चार कल्याणकों का घटनास्थल माना जाने से जैनियों का तीर्थ क्षेत्र भी है। तीनों इतिहास स्रोतों का वर्णन पृथक् दिया जाकर उनकी भिन्नताओं का समाधान करने का प्रयास नहीं किया गया है जो पूर्णता से हो सकने की संभावना भी नहीं है। न उस उलझन का स्पर्श किया गया है कि राजर्षि जनमेजय की ऐतरेय ब्राह्मण में उल्लिखित वैभवशाली राजधानी आसन्दीवान् का हस्तिनापुर एवं आधुनिक आसंध से क्या संबंध है। इस प्रश्न का निर्णय कदाचित् उस समय किया जा सकेगा जब कि भारत शासन के पुरातत्त्व विभाग द्वारा उस भूमि पर कराए गए उत्खनन का फल दृष्टिगोचर होगा।

भारत की प्राचीन राजधानी और जैनियों की त्रिविध पुण्यभूमि पर ध्यान आकर्षित करके उसके इतिहास की समस्याओं पर लक्ष्य दिलाने की दृष्टि से लेखक का प्रयास काफी सफल है।

—डॉ० श० क्राउझे

विद्याश्रम समाचार

२५०००) रु० का दान

वर्षों से इस बात का अनुभव हो रहा था कि बनारस में श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम की प्रवृत्तियों के ठीक विकास के लिए कुछ अधिक भूमि की जरूरत है। गतवर्ष वार्षिकोत्सव के समय जब इस बात का निर्णय हुआ, तो थोड़े दिन बाद ही पं० श्री सुखलाल जी संघवी और प्रो० श्री दलसुख मालवणिया को महावीरजयन्ती के अवसर पर कलकत्ता जाना पड़ा। आप दोनों की प्रेरणा से सेठ श्री सोहनलाल जी दूगड़ ने तुरन्त भूमि खरीद लेने के लिए कहा। जमींदार के साथ इस विषय में बराबर बातचीत होती रही। कुछ कानूनी उलझनों के कारण अन्त में यह निश्चय हुआ कि जमीन सरकार की मार्फत लेना ठीक होगा। इस बारे में उत्तरप्रदेश की सरकार ने शीघ्र ही कार्यवाही करके सूचित किया कि रुपया जमा करा दिया जाए। थोड़े दिन हुए अहमदाबाद में पं० श्री सुखलाल जी से मिलने के बाद फौरन ही श्री दूगड़ जी ने २५०००) रु० का चैक भेज दिया। इस तरह विद्याश्रम के लिए भूमि और उसके लिए रुपये का बड़ा प्रश्न हल हो गया है। हम श्री दूगड़ जी को उनकी इस उदारता के लिए विद्याश्रम की ओर से हार्दिक धन्यवाद देते हैं, और आशा करते हैं कि वे इसके भावी विकास में भी बहुत अधिक सहायक होंगे।

वैशाली में महावीर जयन्ती

यह सिद्ध हो चुका है कि भगवान महावीर की जन्मभूमि वैशाली थी। कुण्डलपुर इसी का एक उपनगर था। उत्तराध्ययन के छठे अध्ययन के अन्त में कहा है—**अरहा नायपुत्ते भगवं वेसालिए वियाहिए**—अर्हन्त ज्ञातृपुत्र भगवान **वैशालिक** के नाम से विख्यात थे। वैशाली बिहार में मुजफ्फरपुर जिले में बसाढ़ नाम से प्रसिद्ध है। कुछ वर्षों से बिहार सरकार की ओर से महावीर जन्मदिन बड़े उत्साह से मनाया जाता है। श्री जगदीश चन्द्र माथुर I. C. S. इस काम में बहुत ही उत्साही हैं। कुछ समय से यह योजना चल रही है कि वैशालीप्रतिष्ठान बनाया जाए, जहाँ पर नालन्दा व दरभंगा की तरह एक रिसर्च संस्था हो, जिसमें प्राकृत व जैन दर्शन के उच्चाभ्यास के लिए प्रबन्ध हो। सुना है कलकत्ता के कुछ जैन बन्धुओं ने इस काम के लिए पाँच लाख रुपया देने की घोषणा की है।

इस वर्ष वैशाली में महावीर जयन्ती विशेष उत्साह से मनाई गई। प्रसिद्ध २ विद्वान व बिहार सरकार के मुख्यमंत्री आदि सभी उपस्थित थे। पं० श्री सुखलाल जी संघवी इस समारोह के अध्यक्ष थे। आपका छपा हुआ भाषण बड़े महत्व का है। आप के साथ बनारस से प्रो० श्री दलसुख मालवणिया और डॉ० इन्द्रचन्द्र जी आदि भी गए थे। पण्डितजी अहमदाबाद से आए थे। वैशाली जाते समय और वहाँ से लौट कर कुछ दिन बनारस में भी ठहरे। इससे सभी मित्रों को एक नई प्रेरणा मिली। शारीरिक दुर्बलता होने पर भी जैन साहित्य निर्माण योजना को सफल बनाने के लिए पं० जी का सहयोग व पथपदर्शन बड़ा ही मूल्यवान है।

आरा में महावीर जयन्ती

बिहार में आरा एक अच्छा बड़ा कस्बा है। यहाँ अग्रवाल जैनों के करीब ८० घर हैं। पहले ये बड़े संपन्न थे। आदर्शमूर्ति पण्डिता चन्दाबाई ने अपना जीवन ही समाजसेवा और स्त्रीशिक्षा की साधना में लगा रखा है। ३२ वर्ष से आप जैन बाला विश्राम नाम की आदर्श संस्था का संचालन कर रही हैं। आप के साथ आप की छोटी बहन श्री ब्रजबाला जी तथा और भी कई बहनें इस कार्य में संलग्न हैं। आरा में ४० जैन मंदिर, दो सुन्दर धर्मशालाएँ, जैन हाईस्कूल,, जैन कालेज और कन्याशालाएँ आदि समाज हितकर कई कार्य जैन समाज की ओर से हो रहे हैं। जिन्हें देख-सुन कर बड़ा संतोष व हर्ष होता है।

मेरे मित्र पं० श्री नेमिचन्द्र जी ज्योतिषाचार्य ने जब मुझे महावीर जयंती के लिए आमंत्रित किया, तो मैंने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया था। भगवान महावीर की जन्मभूमि बिहार में मेरे लिए यह पहला ही सुअवसर था। इस वर्ष महावीर जयन्ती के लिए सभी में बड़ा उत्साह था। २७ मार्च की शाम को जैन सिद्धान्त भवन में भाषण और कविता प्रतियोगिताएँ थीं। निबन्ध प्रतियोगिता पहले हो चुकी थी। प्रतियोगिताओं में अजैन विद्यार्थी ही भाग ले सकते थे। यह विशेषता थी। विषय था 'महावीर संदेश'। बोलने वालों में बड़ा उत्साह था। प्रथम और द्वितीय दो-दो पुरस्कार सब में अलग अलग रखे गए थे। इसी शाम को जैन बाला विश्राम की बालाओं की भाषण प्रतियोगिता भी थी। कर्मसिद्धान्त जैसे गंभीर विषय पर बालाओं के बड़े सुंदर व मनोहर भाषण हुए। एक कन्या को पुरस्कार भी मिला।

२८ मार्च की शाम को जैन मंदिर के विशाल आँगन में सभा हुई।

हज़ारों की संख्या में जनता उपस्थित थी। अध्यक्ष के नाते सबसे पहले 'महावीर जीवन और उनके संदेश' पर मेरा भाषण हुआ। इसके बाद आरा व पटना के विद्वानों व कवियों के भाषण तथा कवितापाठ हुए। श्री रामनाथ पाठक 'प्रणयी' और पटना के श्री रामगोपाल शर्मा 'रुद्र' के कविता पाठ विशेष मनोरंजक थे। पुरस्कार प्राप्त विद्यार्थिओं और बालाओं के भी भाषण आदि हुए। अध्यक्ष के हाथ से उन्हें पुरस्कार भी इसी समय दिये गए।

मैंने देखा कि महावीर जयन्ती को सफल बनाने के लिए आरा के सभी जैनबन्धु और जैन कालेज के प्रोफेसर श्री रामेश्वर नाथ तिवारी आदि विद्वान बड़े उत्साह से भाग ले रहे थे। पं० नेमिचन्द्र जी का उत्साह व प्रयत्न विशेष प्रशंसनीय था। भगवान महावीर के लिए आपकी श्रद्धा व भक्ति बड़ी ही प्रेरक थी।

समवेदना

श्री सोहन लाल जैन धर्म प्रचारक समिति व श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम के उत्साही कार्यकर्ता अमृतसर निवासी प्रोफेसर मस्तराम जी जैन के पिता ला० लछमन दास जी का ८२ वर्ष की अवस्था में १२ मार्च को देहान्त हो गया। आप बड़े श्रद्धालु और आत्मविश्वासी व्यक्ति थे। जीवन के नियमों के पालन में बहुत सावधान थे। हम आप के परिवार के साथ समवेदना प्रकट करते हुए दिवंगत आत्मा के कल्याण की कामना करते हैं।

—कृष्णचन्द्राचार्य
अधिष्ठाता

एक स्पष्टीकरण--

श्रमण के पिछले अंक में 'एक शुभ निर्णय' शीर्षक सम्पादकीय टिप्पणी लिखी गई थी। उसमें जैन साहित्य के इतिहास के विभिन्न भागों के लिए जिन-जिन विद्वानों के नाम सम्पादक के रूप में दिए गए थे वे नाम हमने अपनी कल्पना से दिए थे। एतद्विषयक कोई अन्तिम निर्णय नहीं हुआ था। किस भाग का सम्पादन कौन करेगा, इसका अन्तिम निर्णय इसके लिए निर्मित समिति ही करेगी। उस समिति का क्या निर्णय होगा, इसके विषय में हम कुछ भी नहीं कह सकते। आशा है, इस विषय में अब किसी को भ्रम नहीं होगा।

--मोहन मेहता

'श्रमण' का मई-जून का अंक

साहित्य-संस्कृति अंक

पाठकों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि श्रमण का अगला अंक अनुसंधान-अंक के रूप में प्रकाशित हो रहा है। इसमें प्रसिद्ध विद्वानों के साहित्य व संस्कृति संबंधी लेख रहेंगे।

इस अंक के कुछ लेखक—

पं० सुखलाल जी

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल,

अध्यक्ष—कला तथा पुरातत्व विभाग, का० वि० वि०

श्री भँवरलाल नाहटा

श्री अगरचंद नाहटा

पं० बेचरदास जी

डॉ० भोगीलाल साँडेसरा

अध्यक्ष-गुजराती विभाग, बड़ौदा विश्वविद्यालय

खोजपूर्ण प्रामाणिक सामग्री से परिपूर्ण लगभग १०० पृष्ठों का यह अंक जून के पहले सप्ताह में प्रकाशित होगा।

इस विशेषाँक का मूल्य होगा—१), पर ग्राहकों से इसके लिए अतिरिक्त मूल्य न लिया जाएगा।

आज ही 'श्रमण' के ग्राहक बनकर जैन दर्शन का मर्म समझिए और जैन समाज के सांस्कृतिक विकास में सहयोगी बनिए।

व्यवस्थापक—

'श्रमण', श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस—५

बनारस हिन्दू यूनवर्सिटी प्रेस, बनारस—५

साहित्य अंक — मई-जून
प्रथम भाग — १९५३

जब पहली बार साहस करके मनुष्य ने देवों के माध्यम को हटाकर अपनी बुद्धि और कर्म के बल को पहिचाना, किस प्रकार अनेक विचारों ने इस विषय में एक दूसरे से भिड़न्त की, कैसे उन मतों के परस्पर टकराने से अन्त में कर्म की महिमा, बुद्धि की गरिमा और मानव मात्र के प्रति करुणा एवं सहानुभूति का त्रिसूत्री कार्यक्रम खोज निकाला, इसकी कथा अत्यन्त रोमांचकारिणी है। उसके उद्धार के लिए समस्त भारतीय साहित्य में मज्जन, आलोडन और अनुशीलन का व्रत मन के अदम्य उत्साह से ग्रहण करना चाहिए। इसी दृष्टि से जैन साहित्य के अनुशीलन की प्रेरणा बार बार हमारे मन में आती है। अब समय आ गया है, जब इस सुमहत् कार्य का सूत्रपात होना चाहिए।

— डा० वासुदेव शरण अग्रवाल

★

सम्पादक
डॉ० इन्द्र एम.ए., पीएच. डी.

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम
हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस–५

ज्ञानी और अज्ञानी

जं अन्नाणी कम्मं खवेइ बहुयाहिं वास कोडीहिं ।
तं नाणी तिहिं गुत्तो खवेइ उस्सासमित्तेणं ॥

अज्ञानी जिस कर्म को करोड़ों वर्षों में खपाता है, मन, वचन और शरीर तीनों पर संयम रखने वाला ज्ञानी उसे एक साँस में खपा डालता है ।

—भद्रबाहु

इस अंक में

१. अनुशीलन — १
२. एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति—पं० सुखलाल जी ३
३. जैन साहित्य का नवीन अनुशीलन—डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ११
४. जैन साहित्य का नवीन संस्करण—अध्यापक वाल्टर शुब्रिंग १३
५. जैन अनुसंधान का दृष्टिकोण—पं० महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य १५
६. असाम्प्रदायिक जैन साहित्य—डॉ० पी० एल० वैद्य १७
७. आगमों के सम्पादन में कुछ विचार योग्य प्रश्न—पं० बेचरदास जी २५
८. महावीर से पहले का जैन साहित्य—डॉ० इन्द्र ३०
९. जैन पुराण साहित्य—पं० फूलचन्द्र शास्त्री ३५
१०. कन्नड़ संस्कृति को जैनों की देन—प्रो० के० एस० धरणेन्द्रैया ३९
११. जैन कन्नड़ वाङमय—श्री के० भुजबली शास्त्री ४७
१२. नव प्रकाशित जैन साहित्य— ५२
१३. मुनि श्री पुण्यविजय जी द्वारा जैसलमेर भण्डार का उद्धार— ६३
१४. जैन व्याख्या पद्धति—पं० सुखलाल जी ७१
१५. जैन ज्ञान भंडारों के प्रकाशित सूची ग्रंथ—श्री अगरचंद नाहटा ७३
१६. स्थानीय साहित्य योजना— ८०
१७. अपनी बात— ९५

वार्षिक मूल्य ४) एक प्रति ।=)

प्रकाशक—कृष्णचन्द्राचार्य,
श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस-५
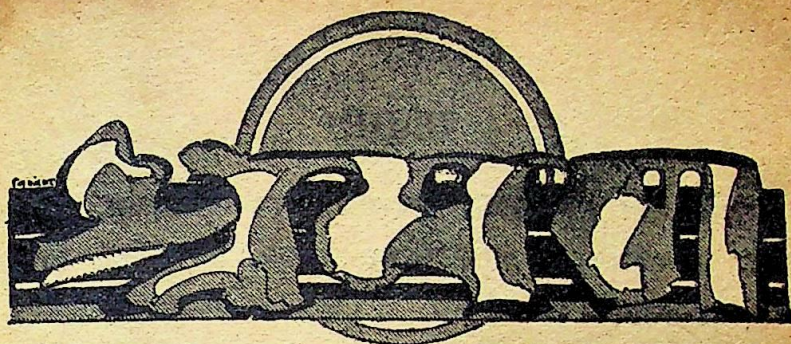
श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस का मुखपत्र

मई-जून १९५३ | वर्ष ४ अंक ७-८

अनुशीलन

सत्य

पुरिसा! सच्चमेव समभिजाणाहि। सच्चस्स आणाए से उवट्ठिए मेहावी मारं तरइ।

पुरुषो! सत्य को ही ठीक ठीक पहिचानो। सत्य की आज्ञा पर चलने वाला मेधावी मृत्यु को जीत लेता है।

× × ×

पगडं सच्चंसि धित्ति कुव्वह! एत्थोवरए मेहावी सव्वं पावकम्मं झोसइ।

निर्भय होकर सत्य पर दृढ़ रहो। सत्यनिरत मेधावी सभी पाप कर्मों को जला डालता है।

× × ×

अहिंसा

सव्वे जीवा पियायुआ, सुहसाया, दुक्खपडिकूला, अप्पियवहा, पियजीविणो जीविउकामा। सव्वेसिं जीवियं पियं। तम्हा णातिवाएज्ज किंचणं।

सभी जीवों को आयुष्य प्रिय है, सभी सुख चाहते हैं, दुःख से घबराते हैं, मरना किसी को प्रिय नहीं है, सभी जीने की कामना करते हैं। सभी को जीवन प्रिय है। इसलिए किसी को न मारना चाहिए, न कष्ट देना चाहिए।

× × ×

सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता न हंतव्वा, न अज्झावेयव्वा, न परिघेतव्वा, न उद्दवेयव्वा, एस धम्मे सुद्धे, धुवे, नीए, सासए, समेच्च लोयं खेयन्नेहिं पवेइए।

किसी प्राणी, किसी भूत, किसी जीव तथा किसी सत्त्व को न मारना चाहिए, न क्लेश देना चाहिए, न सन्ताप देना चाहिए, न उपद्रव करना चाहिए, यह धर्म शुद्ध है, ध्रुव है, न्याय है, शाश्वत है, लोकस्वभाव को समझ कर अनुभवियों द्वारा बताया गया है।

—आचारांग

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति

पं० सुखलाल जी

भारत में अनेक धर्म परम्पराएं रही हैं। ब्राह्मण परम्परा मुख्यतया वैदिक है जिसकी कई शाखाएं हैं। श्रमण परम्परा की भी जैन, बौद्ध, आजीवक, प्राचीन सांख्य-योग आदि कई शाखाएँ हैं। इन सब परम्पराओं के शास्त्र में, गुरुवर्ग और संघ में, आचार-विचार में उत्थान-पतन और विकास-ह्रास में इतनी अधिक ऐतिहासिक भिन्नता है कि उस उस परम्परा में जन्मा व पला हुआ और उस उस परम्परा के संस्कार से संस्कृत हुआ कोई भी व्यक्ति सामान्य रूप से उन सब परम्पराओं के अन्तस्थल में जो वास्तविक एकता है उसे नहीं समझ पाता। सामान्य व्यक्ति हमेशा भेदपोषक स्थूल स्तरों में ही फँसा रहता है पर तत्त्वचिंतक और पुरुषार्थी व्यक्ति जैसे जैसे गहराई से निर्भयतापूर्वक सोचता है वैसे वैसे उसको आन्तरिक सत्य की एकता प्रतीत होने लगती है और भाषा, आचार, संस्कार आदि भेद उसकी प्रतीति में बाधा नहीं डाल सकते। मानव चेतना आखिर मानव चेतना ही है, पशुचेतना नहीं। जैसे जैसे उसके ऊपर से आवरण हटते जाते हैं वैसे वैसे वह अधिकाधिक सत्य का दर्शन कर पाती है।

हम साम्प्रदायिक दृष्टि से महावीर को अलग, बुद्ध को अलग और उपनिषद् के ऋषिओं को अलग समझते हैं, पर अगर गहराई से देखें तो उन सब के मौलिक सत्य में शब्दभेद के सिवा और भेद न पायेंगे। महावीर मुख्यतया अहिंसा की परिभाषा में सब बातें समझाते हैं तो बुद्ध तृष्णात्याग और मैत्री की परिभाषा में अपना संदेश देते हैं। उपनिषद् के ऋषि अविद्या या अज्ञान निवारण की दृष्टि से चिन्तन उपस्थित करते हैं। ये सब एकही सत्य के प्रतिपादन की जुदी जुदी रीतियाँ है; जुदी जुदी भाषाएँ हैं। अहिंसा तब तक सिद्ध हो ही नहीं सकती जब तक तृष्णा हो। तृष्णात्याग का दूसरा नाम ही तो अहिंसा है। अज्ञान की वास्तविक निवृत्ति बिना हुए न तो अहिंसा सिद्ध हो सकती है और न तृष्णा का त्याग ही संभव है, धर्मपरम्परा कोई भी क्यों न हो, अगर वह सचमुच धर्मपरम्परा है तो उसका मूलतत्त्व अन्य वैसी धर्मपरम्पराओं से जुदा हो ही नहीं सकता। मूल तत्त्व की जुदाई का अर्थ होगा

कि सत्य एक नहीं। पर पहुँचे हुए सभी ऋषियों ने कहा है कि सत्य के आविष्कार अनेकधा हो सकते हैं पर सत्य तो अखण्डित एक ही है। मैं अपने छप्पन वर्ष के थोड़े बहुत अध्ययन-चिन्तन से इसी नतीजे पर पहुँचा हूँ कि पन्थ-भेद कितना ही क्यों न हो पर उसके मूल में एक ही सत्य रहता है।

महावीर के समय में वैशाली के और दूसरे भी गणराज्य थे जो तत्कालीन प्रजासत्ताक राज्य ही थे पर उन गणराज्यों की संघदृष्टि अपने तक ही सीमित थी। इसी तरह से उस समय के जैन, बौद्ध, आजीवक आदि अनेक धर्मसंघ भी थे जिनकी संघदृष्टि भी अपने अपने तक ही सीमित थी। पुराने गणराज्यों की संघदृष्टि का विकास भारतव्यापी नए संघराज्यरूप में हुआ है जो एक प्रकार से अहिंसा का ही राजकीय विकास है। अब इसके साथ पुराने धर्मसंघ तभी मेल खा सकते हैं या विकास कर सकते हैं जब उन धर्मसंघों में भी मानवतावादी संघ दृष्टि का निर्माण हो और तदनुसार सभी धर्मसंघ अपना विधान बदल कर एक लक्ष्यगामी हों। यह हो नहीं सकता कि भारत का राज्यतंत्र तो व्यापक रूप से चले और पन्थों के धर्मसंघ पुराने ढर्रे पर चलें। आखिर को राज्यसंघ और धर्मसंघ दोनों का प्रवृत्तिक्षेत्र तो एक अखण्ड भारत ही है। ऐसी स्थिति में अगर संघराज्य को ठीक तरह से विकास करना है और जनकल्याण में भाग लेना है तो धर्मसंघ के पुरस्कर्ताओं को भी व्यापक दृष्टि से सोचना होगा। अगर वे ऐसा न करें तो अपने अपने धर्मसंघ को प्रतिष्ठित व जीवित नहीं रख सकते या भारत के संघराज्य को भी जीवित रहने न देंगे। इसलिए हमें पुराने गणराज्य की संघदृष्टि तथा पन्थों की संघदृष्टि का इस युग में ऐसा सामञ्जस्य करना होगा कि धर्मसंघ भी विकास के साथ जीवित रह सके और भारत का संघराज्य भी स्थिर रह सके।

भारतीय संघराज्य का विधान असाम्प्रदायिक है। इसका अर्थ यही है कि संघराज्य किसी एक धर्म में बद्ध नहीं है। इसमें लघुमती बहुमती सभी छोटे बड़े धर्मपन्थ समान भाव से अपना अपना विकास कर सकते हैं। जब संघ राज्य की नीति इतनी उदार है तब हरेक धर्म परम्परा का कर्तव्य अपने आप सुनिश्चित हो जाता है कि प्रत्येक धर्म परम्परा समग्र जनहित की दृष्टि से संघराज्य को सब तरह से दृढ़ बनाने का ख्याल रक्खे और प्रयत्न करे। कोई भी लघु या बहुमती धर्मपरम्परा ऐसा न सोचे और न ऐसा कार्य करे कि जिससे राज्य की केन्द्रीय शक्ति या प्रान्तिक शक्तियाँ निर्बल हों। यह तभी संभव है जब कि प्रत्येक धर्म परम्परा के जवाबदेह समझदार त्यागी

या गृहस्थ अनुयायी अपनी दृष्टि को व्यापक बनावें और केवल संकुचित दृष्टि से अपनी परम्परा का ही विचार न करें।

धर्म परम्पराओं का पुराना इतिहास हमें यही सिखाता है। गणतंत्र-राजतंत्र ये सभी आपस में लड़कर अन्त में ऐसे धराशायी हो गये कि जिससे विदेशियों को भारत पर शासन करने का मौका मिला। गांधीजी की अहिंसा दृष्टि ने उस त्रुटि को दूर करने का प्रयत्न किया और अन्त में २७ प्रान्तीय घटक राज्यों का एक केन्द्रीय संघराज्य कायम हुआ जिसमें सभी प्रान्तीय लोगों का हित सुरक्षित रहे और बाहर के भय स्थानों से भी बचा जा सके। अब धर्म परम्पराओं को भी अहिंसा, मैत्री या ब्रह्म भावना के आधार पर ऐसा धार्मिक वातावरण बनाना होगा कि जिसमें कोई एक परम्परा अन्य परम्पराओं के संकट को अपना संकट समझे और उसके निवारण के लिए वैसा ही प्रयत्न करे जैसा अपने पर आये संकट के निवारण के लिए। हम इतिहास से जानते हैं कि पहले ऐसा नहीं हुआ। फलतः कभी एक तो कभी दूसरी परम्परा बाहरी आक्रमणों का शिकार बनी और कम ज्यादा रूप में सभी धर्म परम्पराओं की सांस्कृतिक और विद्या संपत्ति को सहना पड़ा। सोमनाथ, रुद्रमहालय, उज्जयिनी के महाकाल तथा काशी आदि के वैष्णव, शैव आदि धामों पर जब संकट आये तब अगर अन्य परम्पराओं ने प्राणपण से पूरा साथ दिया होता तो वे धाम बच जाते। नहीं भी बचते तो सब परम्पराओं की एकता ने विरोधियों का हौसला जरूर ढीला कर दिया होता। सारनाथ, नालन्दा, उदन्तपुरी, विक्रमशिला आदि के विद्या-विहारों को बख्तियार खिलजी कभी ध्वस्त कर नहीं पाता अगर उस समय बौद्धेतर परम्पराएं भी उस आफत को अपनी समझतीं। पाटन, तारंगा, संचोर, आबू, झालोर आदि के शिल्पस्थापत्यप्रधान जैन मंदिर भी कभी नष्ट नहीं होते। अब समय बदल गया और हमें पुरानी त्रुटियों से सबक सीखना होगा।

सांस्कृतिक और धार्मिक स्थानों के साथ साथ अनेक ज्ञानभण्डार भी नष्ट हुए। हमारी धर्म परम्पराओं की पुरानी दृष्टि बदलनी हो तो हमें नीचे लिखे अनुसार कार्य करना होगा।

(१) प्रत्येक धर्मपरम्परा को दूसरी धर्म परम्पराओं का उतना ही आदर करना चाहिए जितना वह अपने बारे में चाहती है।

(२) इसके लिए गुरुवर्ग और पण्डित वर्ग सबको आपस में मिलने जुलने के प्रसंग पैदा करना और उदारदृष्टि से विचार विनिमय करना। जहाँ

ऐकमत्य न हो वहाँ विवाद में न पड़कर सहिष्णुता की वृद्धि करना। धार्मिक और सांस्कृतिक अध्ययन अध्यापन की परम्पराओं को इतना विकसित करना कि जिसमें किसी एक धर्म परम्परा का अनुयायी अन्य धर्म परम्पराओं की बातों से सर्वथा अनभिज्ञ न रहे और उनके मन्तव्यों को गलतरूप में न समझे।

इसके लिए अनेक विश्वविद्यालय महाविद्यालय जैसे शिक्षा केन्द्र बने हैं जहाँ इतिहास और तुलना दृष्टि से धर्मपरम्पराओं की शिक्षा दी जाती है। फिर भी अपने देश में ऐसे सैकड़ों नहीं हजारों छोटे बड़े विद्याधाम, पाठशालाएं आदि हैं जहाँ केवल साम्प्रदायिक दृष्टि से उस उस परम्परा की एकांगी शिक्षा दी ज ती है। इसका नतीजा अभी यही देखने में आता है कि सामान्य जनता और हरेक परम्परा के गुरु या पण्डित अभी उसी दुनिया में जी रहे हैं जिसके कारण सब धर्म परम्पराएँ निस्तेज और मिथ्याभिमानी हो गई हैं।

विद्याकेन्द्रों में सर्व विद्याओं के संग्रह की आवश्यकता--

जैसा पहले सूचित किया है कि धर्मपरम्पराओं की अपनी दृष्टि का तथा व्यवहारों का युगानुरूप विकास करना ही होगा। वैसे ही विद्याओं की सब परम्पराओं को भी अपना तेज कायम रखने और बढ़ाने के लिए अध्ययन-अध्यापन की प्रणाली में नये सिरे से सोचना होगा।

प्राचीन भारतीय विद्यायें कुल मिलाकर तीन भाषाओं में समा जाती हैं- संस्कृत, पाली और प्राकृत। एक समय था जब संस्कृत के धुरंधर विद्वान् भी पाली या प्राकृत शास्त्रों को न जानते थे या बहुत ऊपर ऊपर से जानते थे। ऐसा भी समय था जब कि पाली और प्राकृत शास्त्रों के विद्वान् संस्कृत शास्त्रों की पूर्ण जानकारी रखते थे। यही स्थिति पाली और प्राकृत शास्त्रों के जानकारों के बीच परस्पर में भी थी। पर क्रमशः समय बदलता गया। आज तो पुराने युग ने ऐसा पलटा खाया है कि इसमें कोई सच्चा विद्वान् एक या दूसरी भाषा की तथा उस भाषा में लिखे हुए शास्त्रों की उपेक्षा करके नवयुगीन विद्यालयों और महाविद्यालयों को चला ही नहीं सकता। इस दृष्टि से जब विचार करते हैं तब स्पष्ट मालूम पड़ता है कि यूरोपीय विद्वानों ने पिछले सवा सौ वर्ष में भारतीय विद्याओं का जो गौरव स्थापित किया है, संशोधन किया है उसकी बराबरी करने के लिए तथा उससे कुछ आगे बढ़ने के लिए हम भारतवासियों को अब अध्ययन-अध्यापन, चिन्तन, लेखन और संपादनविवेचन आदि का क्रम अनेक प्रकार से बदलना होगा जिसके सिवाय हम प्राच्यविद्या-विशारद यूरोपीय विद्वानों के अनुगामी तक बनने में असमर्थ रहेंगे।

प्राच्य भारतीय विद्या की किसी भी शाखाका उच्च अध्ययन करने के लिए तथा उच्च पदवी प्राप्त करने के लिए हम भारतीय यूरोप के जुदे जुदे देशों में जाते हैं। उसमें केवल नौकरी की दृष्टि से डिग्री पाने का ही मोह नहीं है पर इसके साथ उन देशों की उस उस संस्था का व्यापक विद्यामय वातावरण भी निमित्त है। वहाँ के अध्यापक, वहाँ की कार्य प्रणाली, वहाँ के पुस्तकालय आदि ऐसे अङ्गप्रत्यङ्ग ह जो हमें अपनी ओर खींचते हैं, अपने ही देश की विद्याओं का अध्ययन करने के लिए हमको हजारों कोस दूर कर्ज ले करके भी जाना पड़ता है और उस स्थिति में जब कि उन प्राच्य विद्याओं की एक एक शाखाके पारदर्शी अनेक विद्वान् भारत में भी मौजूद हों। यह कोई अचरज की बात नहीं है। वे विदेशी विद्वान् इस देश में आकर सीख गये, अभी वे सीखने आते हैं पर सिक्का उनका है। उनके सामने पुराने भारतीय पण्डित और नई प्रणाली के अध्यापक अकसर फीके पड़ जाते हैं। इसमें कृत्रिमता और मोह का भाग बाद करके जो सत्य है उसकी ओर हमें देखना है। इसको देखते हुए मुझको कहने में कोई भी हिचकिचाहट नहीं कि हमारे उच्च विद्या के केद्रों में शिक्षण-प्रणाली का आमूल परिवर्तन करना होगा।

उच्च विद्या के केन्द्र अनेक हो सकते हैं। प्रत्येक केन्द्र में किसी एक विद्या परंपरा की प्रधानता भी रह सकती है। फिर भी ऐसे केन्द्र अपने संशोधन काय में पूण तभी बन सकते हैं जब अपने साथ संबंध रखने वाली विद्या परपराओं की भी पुस्तक आदि सामग्री वहाँ संपूर्ण तथा सुलभ हो।

पाली, प्राकृत, संस्कृत भाषा में लिखे हुए सब प्रकार के शास्त्रों का परस्पर इतना घनिष्ठ संबन्ध है कि कोई भी एक शाखा की विद्या का अभ्यासी विद्या की दूसरी शाखाओं के आवश्यक वास्तविक परिशीलन को बिना किए सच्चा अभ्यासी बन ही नहीं सकता, जो परीशीलन अधूरी सामग्रीवाले केन्द्रों में संभव नहीं।

इससे पुराना पंथवाद और जातिवाद जो इस युग में हेय समझा जाता है, अपने आप शिथिल हो जाता है। हम यह जानते हैं कि हमारे देश का उच्च वर्णाभिमानी विद्यार्थी भी यूरोप में जाकर वहाँ के संसर्ग से वर्णाभिमान भूल जाता है। यह स्थिति अपने देश में स्वाभाविक तब बन सकती है जब कि एक ही केन्द्र में अनेकों अध्यापक हों, अध्येता हों और सब का परस्पर मिलन सहज हो। ऐसा नहीं होने से साम्प्रदायिकता का मिथ्या अंश किसी न किसी रूप में पुष्ट हुए बिना रह नहीं सकता। साम्प्रदायिक दाताओं की

मनोवृत्ति को जीतने के वास्ते उच्चविद्या के क्षेत्र में भी साम्प्रदायिकता का दिखावा संचालकों को करना ही पड़ता है। मेरे विचार से तो उच्चतम अध्ययन के केन्द्र में सर्वविद्याओं की आवश्यक सामग्री होनी ही चाहिए।

शास्त्रीय परिभाषा में लोकजीवन की छाया--

अब अन्त में मैं संक्षेप में यह दिखाना चाहता हूँ कि उस पुराने युग के राज्यसंघ और धर्म संघ का आपस में कैसा चोली दामन का संबन्ध रहा है जो अनेक शब्दों में तथा तत्त्वज्ञान की परिभाषाओं में भी सुरक्षित है। हम जानते हैं कि वज्जिओं का राज्य गणराज्य था अर्थात् वह एक संघ था। गण और संघ शब्द ऐसे समूह के सूचक हैं जो अपना काम चुने हुए योग्य सभ्यों के द्वारा करते थे। वही बात धर्मक्षेत्र में भी थी। जैनसंघ भी भिक्षु-भिक्षुणी, श्रावक-श्राविका चतुर्विध अङ्गों से ही बना और सब अङ्गों की सम्मति से ही काम करता रहा। जैसे जैसे जैनधर्म का प्रसार अन्याय क्षेत्रों में तथा छोटे बड़े सैकड़ों, हजारों गाँवों में हुआ वैसे वैसे स्थानिक संघ भी कायम हुए जो आज तक कायम हैं। किसी भी एक कस्बे या शहर को लीजिए अगर वहाँ जैन बस्ती है तो उसका वहाँ संघ होगा और सारा धार्मिक कारोबार संघ के जिम्मे होगा। संघ का कोई मुखिया मनमानी नहीं कर सकता। बड़े से बड़ा आचार्य हो तो भी उसे संघ के अधीन रहना होगा। संघ से बहिष्कृत व्यक्ति का कोई गौरव नहीं। सारे तीर्थ, सारे भण्डार और सारे धार्मिक सार्वजनिक काम संघ की देख-रेख में ही चलते हैं। और उन इकाई संघों के मिलन से प्रान्तीय और भारतीय संघों की घटना भी आजतक चली आती है। जैसे गणराज्य का भारतव्यापी संघराज्य में विकास हुआ वैसे ही पार्श्वनाथ और महावीर के द्वारा संचालित उस समय के छोटे बड़े संघों के विकासस्वरूप में आज की जैन संघव्यवस्था है। बुद्ध का संघ भी वैसा ही है। किसी भी देश में जहाँ बौद्धधर्म है वहाँ संघ व्यवस्था है और सारा धार्मिक व्यवहार संघों के द्वारा ही चलता है।

जैसे उस समय के राज्यों के साथ गण शब्द लगा था वैसे ही महावीर के मुख्य शिष्यों के साथ 'गण' शब्द प्रयुक्त है। उनके ग्यारह मुख्य शिष्य जो बिहार में ही जन्मे थे वे गणधर कहलाते हैं। आज भी जैन परम्परा में 'गणी' पद कायम है और बौद्ध परम्परा में संघ स्थविर या संघनायक पद।

जैन तत्त्वज्ञान की परिभाषाओं में नयवाद की परिभाषा का भी स्थान है। नय पूर्ण सत्य की एक बाजू को जानने वाली दृष्टि का नाम है। ऐसे नय

के सात प्रकार जैन शास्त्रों में पुराने समय से मिलते हैं जिनमें प्रथम नय का नाम है 'नैगम'। कहना न होगा कि नैगम शब्द 'निगम' से बना है जो निगम वैशाली में थे और जिनके उल्लेख सिक्कों में भी मिले हैं। 'निगम' समान कारोबार करने वालों की श्रेणी विशेष हैं। उनमें एक प्रकार की एकता रहती है और सब स्थूल व्यवहार एक सा चलता है। उसी 'निगम' का भाव लेकर उसके ऊपर से नैगम शब्द के द्वारा जैन परम्परा ने ऐसी एक दृष्टि का सूचन किया है जो समाज में स्थूल होती है और जिसके आधार पर जीवन व्यवहार चलता है।

नैगम के बाद संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभूत ऐसे छह शब्दों के द्वारा आंशिक विचारसरणियों का सूचन आता है। मेरी राय में उक्त छहो दृष्टियाँ यद्यपि तत्त्व-ज्ञान से सम्बन्ध रखती हैं पर वे मूलतः उस समय के राज्य व्यवहार और सामाजिक व्यवहारिक आधार पर फलित की गई हैं। इतना ही नहीं बल्कि संग्रह व्यवहारादि ऊपर सूचित शब्द भी तत्कालीन भाषा प्रयोगों से लिए हैं। अनेक गण मिलकर राज्यव्यवस्था या समाज व्यवस्था करते थे जो एक प्रकार का समुदाय या संग्रह होता था। और जिसमें भेद में अभेद दृष्टि का प्राधान्य रहता था। तत्त्वज्ञान के संग्रह नय के अर्थ में भी वही भाव है। व्यवहार चाहे राजकीय हो या सामाजिक वह जुदे जुदे व्यक्ति या दल के द्वारा ही सिद्ध होता है। तत्त्वज्ञान के व्यवहार नय में भी भेद अर्थात् विभाजन का ही भाव मुख्य है। हम वैशाली में पाए गए सिक्कों से जानते हैं कि 'व्यावहारिक' और 'विनिश्चय महामात्य' की तरह 'सूत्रधार' भी एक पद था। मेरे ख्याल से सूत्रधार का काम वही होना चाहिए जो जैन तत्त्वज्ञान के ऋजुसूत्र नय शब्द से लक्षित होता है। ऋजुसूत्रनय का अर्थ है आगे पीछे की गली कुंजी में न जाकर केवल वर्तमान का ही विचार करना। संभव है सूत्रधार का काम भी वैसा ही कुछ रहा हो जो उपस्थित समस्याओं को तुरन्त निपटावे। प्रत्येक समाज में, सम्प्रदाय में और राज्य में भी प्रसंग विशेष पर शब्द अर्थात् आज्ञा को ही प्राधान्य देना पड़ता है। जब अन्य प्रकार से मामला सुलझता न हो तब किसी एक का शब्द ही अंतिम प्रमाण माना जाता है। शब्द के इस प्राधान्य का भाव अन्यरूप में शब्दनय में गर्भित है। बुद्ध ने खुद ही कहा है कि लिच्छविगण पुराने रीति-रिवाजों अर्थात् रूढ़ियों का आदर करते हैं। कोई भी समाज प्रचलित रूढ़ियों का सर्वथा उन्मूलन करके नहीं जी सकता। समभिरूढ़नय में रूढ़ि के

अनुसरण का भाव तात्त्विक दृष्टि से घटाया है। समाज, राज्य और धर्म की व्यवहारगत और स्थूल विचारसरणी या व्यवस्था कुछ भी क्यों न हो पर उसमें सत्य की पारमार्थिक दृष्टि न हो तो वह न जी सकती है, न प्रगति कर सकती है। एवम्भूतनय उसी पारमार्थिक दृष्टि का सूचक है जो तथागत के 'तथा' शब्द में या पिछले महायान के 'तथता' में निहित है। जैन परम्परा में भी 'तहत्ति' शब्द उसी युग से आज तक प्रचलित है। जो इतना ही सूचित करता है कि सत्य जैसा है वैसा हम स्वीकार करते हैं।

ब्राह्मण, बौद्ध, जैन आदि अनेक परम्पराओं के प्राप्य ग्रन्थों से तथा सुलभ सिक्के और खुदाई से निकली हुई अन्यान्य सामग्री से जब हम प्राचीन आचार-विचारों का, संस्कृति के विविध अंगों का, भाषा के अङ्गप्रत्यङ्गों का और शब्द के अर्थों के भिन्न-भिन्न स्तरों का विचार करेंगे तब शायद हमको ऊपर की तुलना भी काम दे सके। इस दृष्टि से मैंने यहाँ संकेत कर दिया है। बाकी तो जब हम उपनिषदों, महाभारत-रामायण जैसे महाकाव्यों, पुराणों, पिटकों, आगमों और दार्शनिक साहित्य का तुलनात्मक बड़े पैमाने पर अध्ययन करेंगे तब अनेक रहस्य ऐसे ज्ञात होंगे जो सूचित करेंगे कि यह सब किसी वट बीज का विविध विस्तार मात्र है।

अध्ययन का विस्तार

पाश्चात्य देशों में प्राच्यविद्या के अध्ययन आदि का विकास हुआ है उसमें अविश्रान्त उद्योग के सिवाय वैज्ञानिक दृष्टि, जाति और पन्थभेद से ऊपर उठकर सोचने की वृत्ति और सर्वाङ्गीण अवलोकन ये मुख्य कारण हैं। हमें इस मार्ग को अपनाना होगा। हम बहुत थोड़े समय में अभीष्ट विकास कर सकते हैं। इस दृष्टि से सोचता हूँ तब कहने का मन होता है कि हमें उच्च विद्या के वर्तुल में अवेस्ता आदि जरथुस्त परम्परा के साहित्य का समावेश करना होगा। इतना ही नहीं बल्कि इस्लामी साहित्य को भी समुचित स्थान देना होगा। जब हम इस देश में राजकीय एवं सांस्कृतिक दृष्टि से घुलमिल गये हैं या अविभाज्य रूप से साथ रहते हैं तब हमें उसी भाव से सब विद्याओं को समुचित स्थान देना होगा।*

---

* वैशाली महोत्सव पर दिए गए भाषण में से

जैन साहित्य का नवीन अनुशीलन

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल

प्राचीन जैन आगम-साहित्य, उसकी अनेक टीकाएँ, निर्युक्तियाँ, चूर्णियाँ और भाष्य एवं उनके अतिरिक्त अनेक प्रकार का काव्य-कथा-साहित्य, टीका साहित्य और वैज्ञानिक साहित्य भारतीय संस्कृति की मूल्यवान् निधि है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति की जो प्राचीन गाथा है; बौद्ध, जैन और ब्राह्मण साहित्य उसकी तीन समकक्ष धाराएँ हैं। इन तीनों के ही अमृत जल से भारतीय साहित्य धर्म और संस्कृति का स्वरूप प्रोक्षित हुआ है। इनमें से बौद्ध और ब्राह्मण साहित्य का नवीन अनुशीलन कुछ हुआ है, यद्यपि उस क्षेत्र में बहुत कुछ करना शेष है, किन्तु जैन साहित्य की ओर विद्वानों का ध्यान उस मात्रा में अभी नहीं गया। जैन साहित्य में जो सामग्री है वह उन दोनों साहित्यों की सामग्री को स्थान स्थान पर और अधिक प्रकाशित करती है। इसके अतिरिक्त इस साहित्य की स्वतन्त्र विशेषताएं हैं क्योंकि लोक के साक्षात् दर्शन और लोक जीवन में स्वयंकृत अनुभव से इस विशिष्ट साहित्य का जन्म हुआ। अतएव स्थूल भौतिक जीवन के अनेक क्षेत्रों के विषय में जैन साहित्य जो कुछ हमें बताता है उससे हमारे सांस्कृतिक ज्ञान का पर्याप्त संवर्धन हो सकता है।

आवश्यकता है अर्वाचीन ऐतिहासिक की समन्वय प्रधान चक्षुष्मत्ता से विशाल जैन साहित्य का अनुशीलन किया जाय। इस महत्वपूर्ण कार्य का हो आवश्यक अंग उन ग्रन्थों का समुचित सम्पादन और प्रकाशन है। क्योंकि इस विषय में जो सौभाग्य बौद्ध और ब्राह्मण साहित्य को प्राप्त हुआ, जैन साहित्य अधिकांश रूप में उससे वंचित ही रहा। अतएव वर्तमान युग की आवश्यकता है कि इस विशाल साहित्य का शीघ्र प्रकाशन किया जाय। यह कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण और अनेक विद्वानों और दाताओं की सहायता की अपेक्षा रखता है। अतएव कितने ही स्थानों से और कई योजनाओं के अन्तर्गत इसे पूरा करना होगा। कार्य इतना विशाल है कि इसमें सबके सहयोग की अपेक्षा है। साम्प्रदायिक संकीर्णता अथवा पारस्परिक स्पर्द्धा के लिए किसी प्रकार का अवसर न होना चाहिए। दिगम्बर साहित्य और श्वेताम्बर साहित्य दोनों ही भारतीय संस्कृति के अंग हैं, दोनों की निजी मान्यताएं हैं। अपनी अपनी विशेषताओं की रक्षा करते हुए दोनों का सम्पादन योग्य है। अतएव जहाँ तक मेरी दृष्टि जाती है, मुझे इस महत्वपूर्ण कार्य के सम्पादन में

सभी के सहयोग की नितान्त आवश्यकता ज्ञात होती है। यह कार्य मन के प्रीतियुक्त भावों से पूरा करना चाहिए। जो लोग इस कार्य को अभी आरम्भ न करेंगें वे कार्य क्षेत्र में उतने ही पिछड़े हुए रहेंगे।

वास्तविक निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाय तो हम उस सारस्वत लोक की कामना करते हैं जहाँ ज्ञान के मन्दिर में सब प्रसन्न मन और उत्सुक नेत्रों से एक दूसरे का स्वागत करते हुए तत्व तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं उस ब्राह्मी स्थिति में जैन, बौद्ध और ब्राह्मण ये तीनों साहित्य अनमोल प्रतीत होते हैं और सत्य का जिज्ञासु चाहता है कि भारतीय संस्कृति के विषय में जहाँ से भी जो रत्न प्राप्त हो, उसका स्वागत करते हुए वह अपने भण्डार को समृद्ध बनावें।

प्राचीन ज्ञान के समुत्कर्ष काल से जब विद्वज्जन नवीन चिन्तन के अनेक मार्गों का परिष्कार कर रहे थे उन दृष्टियों या मतों का बौद्ध साहित्य के ब्रह्मजाल सूत्र में, जैन साहित्य के सूत्रकृतांग में और महाभारत के शान्तिपर्व में विलक्षण संकलन किया गया है। तीन जगह तीन धाराओं से सुरक्षित यह सामग्री पारस्परिक तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से सत्य के अन्वेषक विद्वान को रोमांचक प्रतीत होती है। तीनों में अत्यधिक पारस्परिक समानताएँ हैं। एक कड़ी जो एक जगह छूटी है वह अन्यत्र उपलब्ध हो जाती है और एक एक तार कई स्थानों से बलपूर्वक संग्रह करके हम सांस्कृतिक सामग्री का पूरा पट ही बुनने में समर्थ हो जाते हैं। भारतीय इतिहास के दार्शनिक चिन्तन का वह युग यूनान के इसी प्रकार के चिन्तनात्मक युग से भी अधिक महत्वपूर्ण है। वस्तुतः यूनान और भारत में भी इस क्षेत्र में दार्शनिकों के विभिन्न मतों में पर्याप्त समानताएँ मिलेंगी। उपनिषदों के काल से कुछ और महावीर के समय तक लगभग ३०० वर्षों का युग मानवी बुद्धि के चमत्कार का युग है। जब पहली बार साहस करके मनुष्य ने देवों के माध्यम को हटाकर अपनी बुद्धि और अपने कर्म के बल को पहिचाना, किस प्रकार अनेक विचारकों ने इस विषय में एक दूसरे से भिड़न्त की, कैसे उनके मतों के आपस में टकराने से अन्त में कर्म की महिमा, बुद्धि की गरिमा, और मानवों के प्रति करुणा और सहानुभूति का त्रिसूत्री कार्यक्रम खोज निकाला। इसकी कथा अत्यन्त रोमांचकारिणी है। उसके उद्धार के लिए समस्त भारतीय साहित्य में मज्जन, आलोडन और अनुशीलन का व्रत मन के अदम्य उत्साह से ग्रहण करना चाहिए। इसी दृष्टि से जैन साहित्य के अनुशीलन की प्रेरणा बार बार हमारे मन में आती है। अब समय आ गया है, जब इस सुमहत् कार्य का सूत्रपात होना चाहिए।

जैन साहित्य का नवीन संस्करण

अध्यापक वाल्टर शुब्रिंग

पाली टैक्स्ट सोसायटी ने अनेक भागों में त्रिपिटकों का प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित किया है। उनके आधार पर भारतेतर देशों के विद्वान् प्राचीन बौद्धधर्म के सिद्धान्तों को सरलता से समझ सकते हैं। किन्तु महावीर के उपदेशों के लिए यह सुविधा नही है। इसके कई कारण हैं। अभी तक जैन टैक्स्ट सोसायटी के रूप में ऐसी कोई संस्था नहीं बनी है जिसकी आवश्यकता प्रोफेसर पिशल ने १९०३ में बताई थी। आगमों के सम्बन्ध में विद्वानों ने जो कार्य किया है उसके पीछे कोई निश्चित योजना नहीं है। अकस्मात जो जिसके जँच गया, कर डाला। प्रोफेसर ग्लासनप, गेरिनोल, किरफेल तथा दूसरे विद्वानों ने उत्तरकालीन साहित्य के आधार पर जैनधर्म का सुन्दर परिचय दिया है किन्तु उनमें प्राचीन मूलग्रन्थों का स्पर्श नहीं किया गया। इसका एक खास कारण था।

प्राचीन बौद्धधर्म की अपेक्षा महावीर के सिद्धान्त में एकरूपता कहीं अधिक हैं। जिस विशाल रूप में उसकी योजना हुई और सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों द्वारा उसे पूर्ण एवं सुसंगत बनाया गया, उसे देखकर आश्चर्य होता है। इसप्रकार का सिद्धान्त, जिसका निर्माण बुद्धिपूर्वक अनुभव तथा कल्पना के आधार पर होता है, सदियाँ बीत जाने पर भी उसमें परिवर्तन की सम्भावना कम रहती है। वह प्रायः ऐसा ही रहता है जैसा जन्मकाल में था। आगमोत्तर कालीन विशाल साहित्य इस बात का प्रमाण है कि यद्यपि बाह्य बातों में थोड़ा बहुत फेरफार हुआ है किन्तु मूल तत्त्व अभी तक वैसे ही हैं। इसीलिए ऊपर बताए गए विद्वानों ने उत्तरकालीन साहित्य को, जो सुलभ था, अपना आधार बनाया। किन्तु यह स्पष्ट है कि भारतीय पुरातत्त्व वर्तमान स्थिति से सन्तुष्ट नहीं हो सकता। किसी विशाल भवन के निर्माण पर विचार करते समय केवल ऊपरी चिनाई की योजना बना लेने से काम नहीं चलता। उसके लिए गहरी नींव खोदनी होगी और फिर क्रमशः एक ईंट पर दूसरी ईंट रखनी होगी।

इसका अर्थ है सर्वप्रथम मूल आगमों का प्रामाणिक एवं आलोचनात्मक संस्करण निकालना। आगम शब्द को व्यापक अर्थ में लिया जाय तो उनके

समकक्ष कुछ दूसरे ग्रन्थ भी लिए जा सकते हैं। साथ ही उनकी प्राकृत टीकाएं भी प्रकाशित होनी चाहिए। यह बात इसलिए और भी आवश्यक हो जाती है कि आगमों के जैसे तैसे संस्करण भी जो छपे थे, बहुत दिनों से समाप्त हो चुके हैं।

इन पंक्तियों द्वारा मैं पाठकों का ध्यान जैन अनुसंधान के इस महत्वपूर्ण कार्य की ओर खींचना चाहता हूँ। मैंने "The Doctrine of the Jains according to the old Sources" (प्राचीन आधारों के अनुसार जैनधर्म के सिद्धान्त) पुस्तक लिखकर भूमिका तैयार करने का प्रयत्न किया है। यह पुस्तक जर्मन भाषा में १९३५ के आरम्भ में प्रकाशित हुई है। पाठकों को उसमें सर्वप्रथम आगमों के व्यवस्थित अवलोकन पर संशोधन मिलेगा। इस विषय में अगला कदम होना चाहिए कि उनका एक सुख संवाह संस्करण। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इससे भारत तथा विदेश में जैन साहित्य संबन्धी अनुसंधान को बहुत प्रोत्साहन मिलेगा। चालीस वर्ष पहिले प्रोफेसर ल्यूमन ने कहा था कि जैन टीका साहित्य का अनुसन्धान किया जाय तो ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों के भारतीय इतिहास पर बहुत प्रकाश पड़ेगा। आगम साहित्य का अध्ययन भी भारतीय धर्मसंस्था के इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालेगा। आगमों के सुलभ तथा सुपाठ्य प्रामाणिक संस्करणों के प्रकाशित होते ही महावीर का महान् व्यक्तित्व, जो प्राचीन भारत के शक्तिशाली प्रवर्तक थे, पूर्वीय तथा पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में उपयुक्त स्थान प्राप्त कर लेगा। इससे विद्वानों को महावीर के सिद्धान्त परम्परा द्वारा स्वीकृत उन्हीं के शब्दों में पढ़ने को मिलेंगे।

इस उच्च ध्येय को प्राप्त करने के लिए मैं अपने जैन मित्रों से अपील करूँगा कि सबसे पहले आगम, निर्युक्ति, भाष्य तथा चूर्णियों की प्राचीन प्रतियों का संग्रह करें, जो कि ताडपत्र या कागज पर लिखी हुई बहुत से पुराने भण्डारों में बन्द पड़ी है। भण्डारों के अधिपतियों को, जो अब तक अपने ग्रन्थरत्नों को अप्रकाशित रखना ही ठीक समझते हैं,[1] समझाया जाय कि संसार

[1] यह हर्ष की बात है कि मुनि पुण्यविजयजी के प्रयत्न एवं अनवरत परिश्रम के कारण अब स्थिति बदल गई है। उन्होंने प्रायः सभी भण्डारों की सूचियाँ बना ली हैं और जैसलमेर सरीखे महत्वपूर्ण भण्डार के फोटो भी लिए हैं।

(शेष पृष्ठ २१ पर)

जैन अनुसंधान का दृष्टिकोण

पं० महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य

यह एक सिद्ध बात है कि साहित्य अपने युग का प्रतिबिम्ब होता है। उसके निर्माताओं का एक अपना दृष्टिकोण रहने पर भी साहित्य को तत्कालीन सामयिक समानतन्त्रीय या प्रतितन्त्रीय साहित्य के प्रभाव से अछूता नहीं रखा जा सकता। युद्ध क्षेत्र की तरह दार्शनिक साहित्य का क्षेत्र तात्कालिक सन्धियों के अनुसार मित्रपक्ष और शत्रुपक्ष में विभाजित होता रहता है। जैसे ईश्वरवाद के खंडन में जैन, बौद्ध और मीमांसक मिलकर काम करते हैं यद्यपि उन सबके अपने दृष्टिकोण जुदा जुदा हैं पर वेद के अपौरुषेयत्व के विचार में मीमांसक विरोध पक्ष में खड़ा हो जाता है और जैन बौद्ध साथ चलते हैं। क्षणिकत्व के खंडन के प्रसंग में जैन और बौद्ध दोनों परस्पर विरोधी बनते हैं और मीमांसक जैन का साथ देता है। तात्पर्य यह कि किसी भी सम्प्रदाय के साहित्य में विभिन्न तत्कालीन साहित्यों का विरोध या अविरोध रूप में प्रतिबिम्ब अवश्यंभावी है। अतः किसी भी साहित्य का संशोधन करते समय तत्कालीन सभी साहित्य का अध्ययन नितान्त अपेक्षणीय है। बिना इसके वह संशोधन एकदेशीय होगा।

अनेक आचार्यों ने तत्कालीन परिस्थितियों के कारण, जैन संस्कृति के पीछे जो मूल विचार धारा है उसे भी गौण कर दिया है और वे प्रवाह पतित हो गये हैं। ऐसे तथ्यों का पता लगाने के लिये प्रत्येक विचार विकास का परीक्षण हमें ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दोनों दृष्टिकोणों से करना होगा। जैन विचार धारा का मूल रूप क्या था और किन किन परिस्थितियों से उसमें क्या क्या परिवर्तन आये इसके लिये बौद्ध पिटक और वैदिक ग्रन्थों का गंभीर आलोड़न किये बिना हम सत्य स्थिति के पास नहीं पहुँच सकते।

अवान्तर सम्प्रदायों के भेदक मुद्दों की विकास परम्परा और उनके उद्भव के कारणों पर प्रकाश भी इसी प्रकार के बहुमुखी अध्ययन से संभव हो सकता है। यद्यपि इस प्रकार के अध्ययन के आलोक में अनेक प्रकार के पूर्वग्रहरूपी

अन्धकार स्थलों का भेदन होने से कुछ ऐसा लगेगा कि हमारा सब कुछ गया, पर उससे चित्र हलका ही होगा और संशोधन का क्षेत्र मात्र विद्या और विचार की पुनीत ज्योति से मानवना के विकास में सहायक होगा।

संशोधन के क्षेत्र में हमें पूर्वग्रहों से मुक्त होकर जो भी विरोध या अविरोध दृष्टिगोचर हों उन्हें प्रामाणिकता के साथ विचारक जगत् के सामने रखना चाहिये। किसी संदिग्ध स्थल का खींच कर किसी पक्ष विशेष के साथ मेल बैठाने की वृत्ति संशोधन के दायरे को संकुचित कर देती है। संशोधन के पवित्र विचारपूत स्थान पर बैठकर हमें उन सभी साधनों की प्रामाणिकता की जाँच कठोरता से करनी होगी जिनके आधार से हम किसी सत्य तक पहुँचना चाहते हैं। पट्टावली, शिलालेख, दानपत्र, ताम्रपत्र, ग्रन्थों के उल्लेख आदि सभी साधनों पर संशोधक पहिले विचार करेगा। कपड़ा नापने के पहिले गज को नाप लेना बुद्धिमानी की बात है।

जैन संस्कृति का पर्यवसान चारित्र में है। विचार तो वहीं तक उपयोगी हैं जहाँ तक वे चारित्र का पोषण और उसे भाव प्रधान रखने में सहायक होते हैं। चारित्र अर्थात् ऐसी आचार परम्परा जो प्राणिमात्र में समता और वीतरागता का वातावरण बनाकर अहिंसा की मौलिक प्रतिष्ठा कर सके। व्यक्ति को निराकुलता और अहिंसक समाज रचना के द्वारा विश्व शांति की ओर बढ़ावे। इस सांस्कृतिक दृष्टिकोण से हमें अपने अवान्तर सम्प्रदायों की अब तक की धाराओं को जाँचना परखना होगा और आदर्श की जगह उन मूल विचारों को देनी होगी जो निर्ग्रन्थ परम्परा की रीढ हैं। भले ही उनका व्यवहार मनुष्य के जीवन में अंशतः ही हो पर आदर्श तो अपनी ऊँचाई के कारण आदर्श ही होगा। व्यवहार उसकी दिशा में होकर अपने में सफल है। इस मूल सांस्कृतिक दृष्टिकोण की रक्षा किस समय कहाँ तक हुई, इस छान बान का कार्य बड़ी जबाबदारी का है। जैन संशोधन तभी सार्थक सिद्ध हो सकता है जब वह अपनी सांस्कृतिक भूमि पर बैठकर विचार ज्योति को जलाये। हमें अपने साहित्य में से उन शिथिल अंशों को सामने लाना ही होगा जिनने इस पवित्र दृष्टकोण को धुंधला किया है और उनके कारणों पर सयुक्ति प्रकाश भी डालना ही होगा। जैन संशोधन संस्थाएं तभी अपनी सांस्कृतिक चेतना को जगाने की दिशा में अग्रसर बन सकती हैं।

असाम्प्रदायिक जैन साहित्य

डॉ० पी० एल० वैद्य०

जैन परम्परा ने भारतीय साहित्य में अत्यन्त महत्त्व का और मौलिक योगदान दिया है। इसमें का कुछ भाग प्रकाशित हुआ है तो कुछ अभी भी अप्रकाशित है। और कितना ही अज्ञात और असंशोधित भाग हस्तलिखित रूप में अभी भी विभिन्न भाण्डारों में पड़ा है। जैन विद्वानों ने उसकी कोई सुधि नहीं ली है, इसलिए उसका नाश भी हो जाना सम्भव है। इस साहित्य का स्वरूप विविध है और वह विविध भाषाओं में लिखा हुआ है। एकदम प्राचीन साहित्य अर्धमागधी की प्राकृत भाषा में है। श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय के आगम इसी भाषा में लिखे हुए हैं। आगम ग्रन्थों में कहा गया है कि महावीर ने अपने उपदेश भी उसी भाषा में दिये। इनमें से कुछ पर प्राकृत भाषा में ही 'निर्युक्ति' नाम से प्रसिद्ध पद्यमय टीका हैं, संस्कृत-प्राकृत-मिश्र भाषा में 'चूर्णि' नाम के विवरण हैं; और शीलांक, अभयदेव, मलयगिरि आदि प्राचीन आचार्यों की संस्कृत भाषा में लिखी हुई टीकाएँ भी हैं। 'टब्बा' नाम से परिचिति में आने वाले प्राचीन गुजराती-हिन्दी-राजस्थानी-मिश्र भाषा में लिखे हुए भाषांतर भी उपलब्ध हैं। इन सबके अतिरिक्त आगम ग्रन्थों में प्रतिपादित विषयों पर प्राकृत, संस्कृत, पुरानी गुजराती, पुरानी हिन्दी, प्राचीन कन्नड, अपभ्रंश आदि भाषाओं में लिखा हुआ साहित्य भी विशाल मात्रा में है। इस सब साहित्य का एक व्याख्यान में विहगावलोकान भी असम्भव है। प्रो० विण्टरनिट्ज द्वारा लिखा हुआ प्राचीन जन साहित्य का इतिहास प्रसिद्ध ही है। उस इतिहास को यहाँ व्याख्यान में दोहराना श्रोताओं का मन उबा देगा। इसलिए मैं उस इतिहास को यहाँ नहीं कहूँगा; मैंने उसके स्थान पर उस साहित्य में से कुछ ऐसे प्रश्न लेकर यहाँ विचार करना सोचा है जो भाषा साहित्य के अध्ययन करने वालों को प्रिय और मनोरंजक लगें। मुख्यतया मुझे यह बात बतानी है कि देश-भाषाओं की वृद्धि में जैन साहित्य अत्यंत उपकारक रहा है।

१—श्वेताम्बर जैनों के आगम ग्रन्थ

वर्तमान जैन धर्म के प्रवर्तक महावीर ने अपने उपदेश अर्धमागधी भाषा में किए। यह अर्धमागधी प्राकृत मगध देश के एक भाग में प्रचलित थी। इस भाषा का वर्तमान स्वरूप मुख्य प्राकृत में मागधी प्राकृत के मिश्रण से बनी एक प्रादेशिक भाषा है। यह भाषा उस समय सबकी समझ में आनेवाली देशभाषा थी। प्राकृत सभी जैनों की समझ में आने जैसी भाषा थी, उसमें मागधी भाषा का थोड़ा विशेष मिश्रण करें तो जो भाषा बनेगी उसे समझने में इतर प्रान्त के लोगों को बहुत अड़चन न होगी। यह अर्धमागधी भाषा इसी प्रकार की है। धर्म-संस्थापकों को अपने धर्म का प्रसार करना हो तो उन्हें लोकभाषा का ही आश्रय लेना चाहिए। जैन और बौद्ध धर्मों के संस्थापक यह बात जानते थे। इसी लिए उन दोनों ने लोक भाषा का आश्रय लिया, दोनों धर्मों के ग्रन्थों में इस बात के भरपूर पुरावे हैं।

महावीर ने अपने जीवन-काल में जो धर्मोपदेश किए और उसके शिष्यों ने स्मरण द्वारा जिनका संग्रह किया उन्हें 'निग्गन्थ पावयण' [संस्कृत में 'निर्ग्रन्थ प्रवचन'] नाम दिया हुआ मिलता है। उस काल में लेखन-कला का प्रचार न होने से इस प्रकार के उपदेश मुखोद्गत कर लेना ही उनके संग्रह का उस समय का उपाय था। महावीर ने अपने दीर्घ जीवनकाल में ऐसे उपदेश अनेक स्थानों पर किए और उसके ग्यारह पट्टधर शिष्यों अर्थात् गणधरों ने मुखोद्गत किए। इन ग्यारह शिष्यों में से पाँचवें शिष्य सुधर्म स्वामी ने मुखोद्गत किए हुए महावीर के धर्मोपदेश अपने जम्बू नामक शिष्य को सुनाए, फिर अनेक शतकों बाद वे लिपिबद्ध हुए। यह संक्षेप में श्वेताम्बर जैनों के आगमों का इतिहास है। महावीर के ये धर्मोपश वेदों के समान शब्द प्रधान न होकर अर्थ-प्रधान होने के कारण, आज उपलब्ध होनेवाले आगमों में स्वयं महावीर के मुख से निकले शब्द कितने होंगे यह कहना कठिन है, तो भी यह सिद्ध किया जा सकता है कि उस उपदेश की विचार-पद्धति अथवा उसके अर्थ का उद्गम महावीर तक जा पहुँचता है। महावीर के ये धर्मोपदेश शिष्य-परम्परा द्वारा अनेकों शतक चले, और ईस्वी सन् की पाँचवीं शती में देवर्धिगणि ने वलभी में उनका स्वरूप-निश्चय कराके उन्हें लिपिबद्ध कर डाला। आज हमारे सामने श्वेताम्बर जैनों के जो आगम-ग्रन्थ हैं

उनका स्वरूप वीर निर्वाण के लगभग हजार वर्ष बाद निश्चित किया हुआ है। इन आगमों में ऐसे उल्लेख भी मिलते हैं कि इन हजार वर्षों की दीर्घ अवधि में वे मूल उपदेश जैसे के तैसे नहीं रहे, उनमें का बहुत कुछ भाग लुप्त हो गया। उदाहरण के लिए, आचारांगसूत्र के 'महावरिन्ना' नामक सातवें अध्ययन के लुप्त होने का उल्लेख उसी पुस्तक में है। इससे प्रतीत होता है कि श्वेताम्बर जैनों के आगमों में अपूर्ण भाग हैं। इसी प्रकार "दृष्टिवाद" नाम का बारहवाँ अंग (पुस्तक) तथा चौदह पूर्व (प्राचीन ग्रन्थ) भी लुप्त हो गये। मेरा मत है कि श्वेताम्बरों के आगम का कुछ भाग लुप्त हो जाने के ये उल्लेख अत्यन्त प्रामाणिक हैं। इसका अर्थ यह है कि आगम ग्रन्थों का शेष भाग अत्यन्त प्राचीन काल से शिष्य-परम्परा द्वारा चला आया है। इसमें कुछ नये भाग आ गये हैं। कुछ ग्रन्थों में आगमों के विभिन्न भागों में बिखरे हुए महत्त्व के विषयों का संग्रह किया हुआ मिलता है। शय्यंभवाचार्य ने अपने अल्पायुषी मणक नामक पुत्र के लिए जो 'दशवैकालिक सूत्र' लिखा वह इसी प्रकार का एक संग्रह-ग्रन्थ है और आज उसे आगम ग्रन्थों में महत्त्व का स्थान प्राप्त है। 'उत्तराध्ययन सूत्र' भी नये-पुराने विशृंखलित प्रकरणों का एक संग्रह ही है।

श्वेताम्बरों में मूर्तिपूजक और स्थानकवासी दो उपभेद हैं, उनमें मूर्तिपूजक श्वेताम्बरों के मत से आगम ग्रन्थों की संख्या ४५ है और स्थानकवासियों के मत से केवल ३२ प्रमाणभूत हैं। ये ४५ आगम ग्रन्थ वर्गानुसार इस प्रकार हैं: आचारांग आदि ११ अंग, औपपातिक आदि १२ उपांग, १० प्रकीर्णक, ६ छेदसूत्र, ४ मूलसूत्र, और नन्दीसूत्र तथा अनुयोगद्वार सूत्र नामक दो पुस्तकें जो ऊपर के किसी भी वर्ग में नहीं आतीं। इनमें के सभी ग्रन्थ ज्यों के त्यों महावीर के मुख से निकले हुए नहीं, तो भी यह कहा जा सकता है कि उनमें उनके उपदेशों के सार संगृहीत हैं। आचारांगसूत्र का पहिला श्रुतस्कन्ध बहुत पुराने भागों में से दीखता है। उत्तराध्ययन सूत्र भी काफ़ी पुराना भाग है। स्थानांग और समवायांग ग्रन्थ बहुत काल बाद आये लगते हैं। दशवैकालिकसूत्र नामक पुस्तक संग्रह रूप है; उसके रचयिता महावीर की शिष्य-परंपरा में पांचवीं पीढ़ी के शय्यंभवाचार्य है। नंदीसूत्र और दशाश्रुतस्कंध एवं कल्पसूत्र में महावीर की शिष्य-परंपरा दी हुई है; इसलिए ये दोनों ग्रन्थ उस हिसाब से अर्वाचीन ही ठहरेंगे। दृष्टिवाद नामक बारहवाँ अंग, जो नष्ट (लुप्त) हो गया है, उसकी विषया-

नुक्रमणिका समवायांग और नन्दीसूत्र में दी हुई है; इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ये दोनों ग्रन्थ दृष्टिवाद के लुप्त होने के बाद तैयार हुए होंगे। उपर्युक्त विवेचना से यह बात सिद्ध होती है कि श्वेताम्बर जैनों के जो ४५ अथवा ३२ आगमग्रन्थ आज समझे जाते हैं वे सभी महावीर कालीन नहीं गए जा सकते। उनमें पुराना भाग बहुत कुछ है, पर नवीन भी है। इसी प्रकार, उनमें महावीर के सभी उपदेश अन्तर्भूत नहीं हो गये, उनमें काफी रह भी हैं। इस समय जो आगम-ग्रन्थ प्राप्त हैं उनका स्वरूप देवर्धिगणी ने ईस्वी सन् की पाँचवीं शती में निश्चित किया, और उन्हें ही आज श्वेताम्बरीय जैन आगम ग्रन्थ रूप में मान्यता देते हैं। स्थानकवासी जैन-पन्थ में उपरोक्त ४५ ग्रन्थों में से केवल ३२ को मान्यता दी जाती है।

दिगम्बर सम्प्रदाय के मत से जैनों के मूल आगम ग्रन्थ नष्ट हो जाने से उनका सारांश जैसा स्मरण रहा उसे ध्यान में रखकर प्राचीन आचार्यों ने सिद्धान्त ग्रन्थों की रचना की, और ये सिद्धान्त-ग्रन्थ ही अब प्रमाणभूत हैं। उनके इस कथन का यह अर्थ होता है कि मूल आगम सम्पूर्णतः नष्ट हो गये और अब उनका अवशेष भी उपलब्ध नहीं। दूसरे शब्दों में कहना चाहें तो कहेंगे कि दिगम्बरों का ऐसा मत लगता है कि श्वेताम्बर सम्प्रदाय जिन्हें आगम ग्रन्थ कहता है वे प्रमाण नहीं। इस मत की संक्षेप में विवेचना करें, पर पहिले यह देखें कि आगम ग्रन्थों के बारे में दिगम्बरों की अपनी क्या कल्पना है।

दिगम्बर परम्परा की 'गोम्मट सार' नामक एक प्रसिद्ध पुस्तक है जिसे नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने लिखा है। इस पुस्तक के 'जीवकाण्ड' विभाग में उस पन्थ के आगम ग्रथों की सूची दी हुई मिलती है। इस सूची के अनुसार दिगम्बरों के १२ अंग (इनके नाम श्वेताम्बर अंगों जैसे ही हैं), प्रकीर्णक, सूत्र, प्रथमानुयोग (पुराण आदि), १४ पूर्व (इनके नाम भी श्वेताम्बरी पूर्वों जैसे ही हैं), और ५ चूलिका (इनके नामों जैसे नाम श्वेताम्बर सम्प्रदाय में नहीं मिलते) को 'अंग प्रविष्ट आगम' यह संज्ञा दी हुई मिलती है; और 'अंग बाह्य श्रुतों में १४ प्रकीर्णकों का समावेश हुआ है। इन १४ प्रकीर्णकों की सूची के ग्रन्थों में से कुछ ग्रन्थों—जैसे दशवैकालिक, उत्तराध्ययन—के नाम ज्यों के त्यों श्वेताम्बरी पन्थ में हैं; और सामायिक आदि ६ प्रकीर्णक मिलकर श्वेताम्बरों का आवश्यक सूत्र बनता है। दिगम्बरों के आगमों में से आज एक भी मूल स्वरूप में उपलब्ध नहीं। श्वेताम्बरों

के आगम सम्पूर्णतया नहीं तो बहुत बड़े अंश में उपलब्ध हैं, यह बात साम्प्रदायिक आग्रह छोड़ देने पर दिगम्बरों को भी माननी पड़ेगी। इसलिये उपलब्ध श्वेताम्बर आगमग्रन्थों को सम्पूर्ण रूप से अप्रमाण मानना योग्य नहीं।

दिगम्बर लोग भी ऐसा कहते हैं कि महावीर-निर्वाण के बाद कई शतकों तक आगम ग्रन्थ विद्यमान थे। दिगम्बरी ग्रन्थों में कुछ स्थानों पर इन ग्रन्थों की विषयानुक्रमणिका दी हुई है। इसलिए इस सम्प्रदाय के ग्रन्थों में मिलने वाली दिगम्बरी आगमग्रन्थों की विषयानुक्रमणिका और श्वेताम्बरों के विद्यमान ग्रंथों से उपलब्ध विषयानुक्रमणिका की हम तुलना करें और देखें कि उस तुलना पर से क्या अनुमान किये जा सकते हैं। श्वेताम्बर सम्प्रदाय में 'ज्ञाताधर्म कथा' (प्राकृतः नायाधम्मकहाओं) नाम की एक पुस्तक 'छठा अंग' करके प्रसिद्ध है, और वह आज सम्पूर्ण रूप से उपलब्ध है। इस पुस्तक के दो विभाग (श्रुतस्कंध) हैं उनमें से पहिले विभाग के १९ अध्याय अथवा अध्ययन हैं। इन १९ अध्यायों में उतनी ही (१९) कथाएँ हैं; और उन कथाओं का तात्पर्य एक विशिष्ट शब्द द्वारा दिखाया है। दिगम्बरों के विनष्ट आगमों में भी ज्ञाताधर्मकथा नाम की पुस्तक है और अंग-ग्रन्थों की सूची में उसका भी अनुक्रमांक छठा है। इस ग्रन्थ के ज्ञात (प्राकृत में 'णाय') नामक विभाग में के अध्ययनों की संख्या दिगम्बर सम्प्रदायी ग्रन्थ में बारम्बार उल्लेखित पायी जाती है, वह भी १९ ही है। इन दोनों सम्प्रदायों के ग्रन्थों में कितना साम्य मिलता है वह यहाँ तक स्पष्ट हो जाता है, पर हम इससे आगे भी जा सकते हैं। दिगम्बर ग्रन्थों में १९ कथाओं के नाम जिन विशिष्ट शब्दों द्वारा दर्शाये गये हैं वे श्वेताम्बरी आगम के शब्दों से मिलते जुलते हैं। दोनों में भेद है तो केवल कथाओं के अनुक्रम संबन्ध में। मुझे लगता है कि किन्हीं दो ग्रन्थों के वर्णनों में यदि इतना साम्य हो और भेद केवल अध्यायों के अनुक्रम में हो तो उन दोनों ग्रन्थों को समान ही समझना योग्य है। उनमें का यदि एक ग्रन्थ उपलब्ध हो और दूसरा नष्ट हो गया हो तो भी यह अनुमान निकालने में मैं कोई दोष नहीं समझता कि दोनों में विषय-प्रतिपादन एकरूप ही रहा होगा। जिनके आगम शब्द-प्रधान न होकर अर्थ-प्रधान हैं उनका अपने सम्प्रदाय के ग्रन्थ नष्ट हो जाने मात्र से सार्धमिक भिन्न सम्प्रदाय के ग्रन्थों का प्रामाण्य स्वीकार न होना निष्पक्षपात का लक्षण नहीं। कम-से-कम

हमें तो यह बात अयोग्य लगती है। इसलिए हमारे मत से विद्यमान श्वेताम्बरी आगम ग्रन्थों में की 'ज्ञाताधर्म कथा' नामक पुस्तक दिगम्बर मत की उसी नाम की पुस्तक जैसी प्रमाणभूत मानने में कोई अड़चन नहीं दीखती। और जिस अर्थ में एक बड़ी पुस्तक के विषय-प्रतिपादन में इतना साम्य पाया जाता है तो अन्य पुस्तकों में भी ऐसा ही साम्य होना चाहिए, ऐसा अनुमान निकालने में कोई दोष नहीं।

अब एक और भिन्न प्रकार का उदाहरण लें, अंग-ग्रन्थों की सूची में दृष्टिवाद नाम की पुस्तक दोनों सम्प्रदायों को बारहवाँ अंग करके मान्य है। श्वेताम्बरी सम्प्रदाय में इस पुस्तक के नष्ट हो जाने की धारणा आज कई शतकों से प्रचलित है। देवर्धिगणी द्वारा निश्चित किए हुए श्वेताम्बर आगम ग्रंथ में तो "सामाइयभाइयाइं एककारस अंगाइं अहिज्जइ" अर्थात् उसने सामायिक अर्थात् आचारांग आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया' ऐसा उल्लेख बार बार आता है, और अनेक बार तो वर्णन के आवेग में कितने ही प्राचीन काल के साधुओं के विषय में अवर निश्चित किए हुए साँचे का वर्णन (निश्चित प्रकार का वर्णन) काल-विपर्यास-दोष (anachronism) मान कर भी किया हुआ मिलता है। यदि दोनों सम्प्रदायों में 'दृष्टिवाद' नामक अंग के नष्ट हो जाने की धारणा कितनी ही शतकों से रूढ़ है तो उस ग्रंथ के विषयों की विस्तृत सूची तो दोनों सम्प्रदायों के ग्रन्थों में पायी ही जाती है। श्वेताम्बरी पंथ के समवायांगसूत्र और नन्दीसूत्र में यह विषयानुक्रमाणिका दी है, और दिगम्बर मत के 'षट्खंडागम' पर की 'धवला' टीका में भी यह दी है। इसी प्रकार दोनों सम्प्रदायों के मत से नष्ट हो गए १४ पूर्व ग्रन्थों में वर्णित सूची भी उपयुक्त स्थानों में मिलती है। प्रो० डॉ० हीरालाल जैन ने इन दोनों सम्प्रदायों की विषयानुक्रमाणिका की तुलना अपने सम्पादित 'षखंट्डागम' के दूसरे विभाग की प्रस्तावना में खूब विस्तार से की है (देखिए 'प्रस्तावना' पृष्ठ ४१-६८)। हमारा यह कहना नहीं कि ये दोनों विषयानुक्रमणिकाएँ सर्वथा एक रूप हैं; पर इससे यह भी कहे बिना नहीं रहा जाता कि उन में बहुत ही साम्य है; और इसलिए एक का दूसरे सम्प्रदाय के ग्रन्थ को अप्रमाण मानना योग्य नहीं।

इसी विषय पर एक अन्य प्रकार से भी विचार किया जा सकता है। आज के दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में मतभेद के कुछ विषय-आधार है, यह हमें स्वीकार है, पर निश्चित रूप से वे इतने महत्त्व के नहीं कि वे

मतभेद तात्त्विक हो जाएँ और उनके परिणाम व्यवहार में अथवा श्रावकों के दैनंदिन आचरण में उतर आए। जिन विषयों में दोनों पन्थ सम्मत हैं उनकी संख्या बहुत अधिक है। उदाहरण के लिए साधुओं के महाव्रत, श्रावकों के अणुव्रत, स्याद्वाद अथवा सप्त-भंगी-नय, पदार्थ, नवतत्त्व आदि अनेक विषयों पर दोनों सम्प्रदायों के मत एक ही प्रकार के हैं। उमास्वामी के 'तत्त्वार्थाधिगम सूत्र' के समान कुछ ग्रन्थ भी हैं जो दोनो पन्थों को एक जैसे मान्य हैं और जिन पर दोनों पन्थों के आचार्यों ने भाष्य-टीका आदि लिखें हैं। पाठ भेद अथवा साम्प्रदायिक मतभेद के कुछ प्रसंग छोड़कर इस ग्रन्थ की संहिता दोनों सम्प्रदायों को मान्य ही है। इस तत्त्वार्थसूत्र में श्वेताम्बरों के आगमों का कितना प्रतिबिंब पड़ा है यह जानने के लिए स्थानकवासी संप्रदाय के मुनि उपाध्याय आत्माराम जी की अत्यन्त परिश्रम द्वारा लिखी हुई पुस्तक 'तत्वार्थसूत्र—जैनागम समन्वयः' देखें। इस पुस्तक पर से यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्त्वार्थसूत्र के अधिष्ठान सर्वथा आगमग्रन्थों पर हुए हैं और उसमें के प्रत्येक सूत्र का श्वेताम्बर सम्प्रदाय के वर्तमान आगमों में आधार है। यदि तत्त्वार्थ सूत्र ग्रंथ दोनों सम्प्रदायों को मान्य है और उसके प्रत्येक सूत्र का यदि स्वेतांबर आगमों में आधार मिल जाता है तो हमारी समझ में नहीं आता कि श्वेताम्बरों के आगम फिर भी दिगम्बर क्यों अप्रमाण मानते हैं। साम्प्रदायिक आग्रह के अतिरिक्त इसके यदि कुछ और कारण हों तो हों, पर यह आग्रह जितना ही जल्दी छोड़दें उतना ही समाज का हित साधन होगा।

दिगम्बर जैन समाज की ओर से श्वेताम्बरों के आगमों का प्रामाण्य अस्वीकार करने के जो कारण उपस्थित किए जाते हैं उनमें से कुछ का विवेचन ऊपर किया ही है। परन्तु उनके मत से इसका एक और भी कारण होने की सम्भावना है। वह कारण है श्वेताम्बरों के आगमों में दिगम्बरों के मान्य सिद्धान्तों के विरुद्ध उल्लेख। मेरे मत से यह कारण निरा आधारहीन है। क्योंकि एक तो दिगम्बर समाज के पण्डितों ने इस प्रकार से श्वेताम्बरों के आगमों का संशोधन और परिशीलन नहीं किया; और इस प्रकार के संशोधन से दिगम्बर सम्प्रदाय के विरुद्ध कुछ विषय प्रतिपादन यदि मिले भी तो वह मात्र कुछ विषय संबन्ध का ही होगा। दिगम्बरों को निरुत्तर कर देने वाले भरपूर पुरावे (प्रमाण) 'तत्त्वार्थसूत्र–जैनागमसमन्वय' पर उल्लेखित ग्रन्थों में मिल जाते हैं। अस्तु।

दिगम्बरों के मत से यद्यपि उनके आगम नष्ट हो गये पर उनके प्रतिपाद्य

विषय शिष्य-परम्परा द्वारा बराबर चलते चले आये और उन विषयों पर विभिन्न आचार्यों ने ग्रन्थ रचना की। यही ग्रन्थ आज उनके लिए आगमों जैसे प्रमाणभूत हुए, इतना ही नहीं बल्कि उनका 'चार वेद' रूपक भी प्रचार में आया। ये चार वेद हैं :—

(१) प्रथमानुयोग—इसमें ऐतिहासिक कथा, महापुराण और पुरुषों का समावेश है। जिस ग्रन्थ में २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्त्ती, और ९-९ बलदेव-वासुदेव-प्रतिवासुदेव इन ६३ महापुरुषों का वर्णन आता है उन्हें 'महापुराण' और जिनमें इनमें से एकाध का ही वर्णन रहता है उन्हें 'पुराण' कहते हैं। जैन ग्रन्थकारों के ऐसे महापुराण संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, कन्नड़, गुजराती आदि भाषाओं में लिखे हुए प्रसिद्ध हैं।

(२) करणानुयोग—यह दूसरा वेद है। इसमें गणित का वर्णन आता है। श्वेताम्बरों के चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थों की तरह दिगम्बर पन्थ के भी ग्रन्थ हैं। उनका नाम त्रिलोकप्रज्ञप्ति और त्रिलोकसार आदि हैं। करणानुयोग में इन्हीं ग्रन्थों का अन्तर्भाव होता है।

(३) द्रव्यानुयोग—यह तीसरा वेद है। इस विभाग में जैन तत्त्वज्ञान और तर्कशास्त्र होने से प्रवचनसार, तत्त्वार्थसूत्र आदि ग्रन्थ अन्तर्भूत हैं।

(४) चरणानुयोग—यह चौथा वेद है। इस विभाग में यति और श्रावक के आचरण संबन्धी नियम आते हैं। आचार्य वट्टकेर (वट्टरेक) की लिखी हुई मूलाचार अथवा आचारसूत्र तथा इसी प्रकार की अन्य पुस्तकें अब इस विभाग में आती हैं।

आगमों के सम्पादन में कुछ विचार योग्य प्रश्न

पं० बेचरदास जी

[पं० बेचरदास जी प्राकृत भाषा एवं आगम साहित्य के पारदर्शी विद्वान हैं। उनका सारा जीवन इसी साधना में व्यतीत हुआ है इस समय जैन समाज में आगमों के आधुनिक संस्करण प्रकाशित करने की प्रवृत्तियाँ कई संस्थाओं की ओर से चल रही हैं। स्थानीय जैन साहित्य निर्माण योजना में आगमों के इतिहास का भाग पण्डित जी को सौंपा गया है। उन्होंने आगम साहित्य से संबन्ध रखने वाले कुछ मुद्दों के रूप में ८७ विषय भेजे हैं। आशा है आगमों पर लिखने वाले उन से लाभ उठाएँगे। —सम्पादक]

आगमिक साहित्य के इतिहास के विषय में कुछ मुद्दे—

१—जिनशासन के उत्थान की भूमिका और आगम साहित्य।

२—आगमों में संकलित भगवान महावीर की देशनाएँ।

३—आगमों में सूचित भगवान पार्श्वनाथ और भगवान महावीर की देशनाओं का वैविध्य।

४—आगमों में निर्दिष्ट भगवान महावीर तथा तत्कालीन अन्य धर्म तीर्थङ्कर।

५—आगमों के मूलस्रोत का उद्गम स्थान।

६—गणधरों की भिन्न भिन्न वाचनाओं का अर्थ।

७—श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु, स्कंदिल, नागार्जुन तथा देवर्द्धिगणि की वाचनाएँ।

८—माथुरी तथा बलभी वाचना के बीच का भेद।

९—चौदह पूर्वों का वृत्तान्त। उनके नाम, चर्चित विषय तथा आकार

१०—अंग तथा अंगबाह्य की व्यवस्था का आधार। यह व्यवस्था सर्वप्रथम किसने की ?

११—अंग तथा उपांगो की व्यवस्था का प्राचीन आधार तथा दोनों के परस्पर संबंध का औचित्य।

१२—आगमों का नामकरण।

१३—आगमों में आए हुए अध्ययन तथा उद्देशों का नामकरण।

१४—आगमों पर रची गई प्राचीनतम व्यवस्थाओं से लेकर अन्तिम टबे तक की व्याख्याओं में आई हुई विशेष चर्चाएँ, भिन्न भिन्न शैलियाँ तथा उनका परिचय।

१५—आगमों की भाषा का ढांचा तथा उसका वैविध्य।

१६—भाषा की दृष्टि से आगमों का परीक्षण तथा उस आधार पर समय समीक्षा की संभावना।

१७—प्राचीन से प्राचीन शिला लेखों (खतों) की प्राकृत तथा आगमों की प्राकृत—इनका परस्पर साम्य वैषम्य।

१८—पिटकों की मागधी भाषा तथा आगमों की अर्द्धमागधी भाषा के बीच का साम्य वैषम्य।

१९—पिटकों की भाषाशैली तथा आगमों की भाषाशैली।

२०—पिटकों की वर्णनशैली और आगमों की वर्णनशैली।

२१—आगमों के सूत्र तथा उपनिषद आदि के सूत्र।

२२—आगम शब्दबद्ध कब से हुए ?

२३—आगम वर्णित विविध विषयों की चर्चाओं के अतिरिक्त—अजैन प्राचीन साहित्य में वर्णित विविध विषयों की चर्चाओं का साम्यवैषम्य तथा उसका ऐतिहासिक मूल्याङ्कन।

२४—आगम वर्णित धर्मसंवाद, धमकथाएँ, आलंकारिक पद्य तथा सुभाषित।

२५—आगमिक धर्मसंवाद तथा धर्मकथाओं की अन्य प्राचीन साहित्यगत धर्मसंवादों तथा धर्मकथाओं के साथ तुलना।

२६—क्या व्याख्याकारों के पास आगमों के अध्ययन अध्यापन की परम्परा अविच्छिन्न थी ?

२७—आगमों में आए हुए आगमिक तथा अन्य मत मतान्तरों के उल्लेख।

२८—उक्त दोनों उल्लेखों का ऐतिहासिक मूल्याङ्कन।

२९—जैन तथा अजैन आचारों के संबंध में आगमिक वर्णन।

३०—जैन तथा अजैन कर्मकाण्डों के विषय में आगमिक उल्लेख।

३१—आगम वर्णित राज्य व्यवस्था, लोक व्यवस्था, कुटुम्ब व्यवस्था, शिक्षण प्रथा, वर्ण व्यवस्था, रहन सहन, खानपान आदि द्वारा बनने वाला इतिहास।

३२—श्रावक धर्म के विषय में आगमिक वर्णन।

३३—वर्तमान जैन आचारों का संबंध मूल आगमों से कहां तक है।

३४—भगवान महावीर से लेकर आजतक प्रचलित परम्परागत आचारों में आए हुए परिवर्तन तथा उसका कारण।

३५—जिन कल्प, स्थविर कल्प, तथा जीतकल्प वगैरह कल्पों की समझ तथा उनके उद्भव का कारण।

३६—जिनकल्प तथा केवल ज्ञान आदि के विच्छेद का वृतान्त तथा आशय।

३७—आगमों में वर्णित कथाओं में आई हुई राजदण्ड, जेल, युद्ध, चोर, डाकू, सासबहू, एवं अन्य प्रकार के परस्पर व्यवहार आदि लौकिक परिस्थिति का चित्रण।

३८—आगमकालीन व्यापार व्यवहार, लेनदेन, धीरधार वगैरह व्यवहारों का परिचय तथा भिन्न भिन्न कारीगरों की कारीगरी का परिचय।

३९—प्रतिबोध देने के लिए आगमिक कथाओं में जन्मान्तर की शुभ अशुभ प्रवृत्तियों के उपयोग की प्रथा।

४०—धर्म तथा अधर्म के परिणामों का जन्मान्तर के साथ संबंध जोड़ने की प्रथा।

४१—वर्तमान प्रत्यक्ष जीवन में धर्म तथा अधर्म के परिणामों का तथा उनके द्वारा सामाजिक प्रत्यक्ष उन्नति एवं अवनति के चित्रण न होने के कारणों पर विचार।

४२—वैदिक साहित्य तथा बौद्ध साहित्य में भी प्रतिबोध देने के लिए उपयोग में आने वाली शैली का विचार (ऊपर के मुद्दे को ध्यान में रखकर)।

४३—गृह्यसूत्र, श्रौतसूत्र, मनुस्मृति वगैरह प्राचीन स्मृतियाँ तथा महाभारत, पुराण, रामायण वगैरह ग्रथों में आए कुछ खास शब्दों के साथ कुछ खास आगमिक शब्दों की तुलना।

४४—इन्हीं ग्रन्थों में आई हुई कुछ घटनाओं के साथ आगम वर्णित घटनाओं की तुलना।

४५—इसी दृष्टि से बौद्ध साहित्य में प्रयुक्त कुछ खास शब्द तथा कुछ खास घटनाओं के साथ आगमिक शब्द तथा घटनाओं की तुलना।

४६—भिन्न भिन्न धर्मों तथा सम्प्रदायों के प्रति आगमों में वर्णित घृणा-अरुचि।

४७—प्रत्येक आगम का अन्तरंग एवं बाह्य सम्पूर्ण परिचय।

४८—आगमों में वर्णित पौराणिक वार्ताएँ जैसे कि देवासुरसंग्राम वगैरह की बातें।

४९—महाराजा खारवेल के शिलालेख में जैन आगमों के संबंध में आई हुई बातें।

५०—आगमों में वर्णित वर्णाश्रम की हकीकत में वैदिक प्रणाली का संबंध कहाँ तक है।

५१—आगमों के आधार पर वर्णव्यवस्था तथा आश्रम व्यवस्था।

५२—परमाणु वगैरह की भौतिक चर्चाएँ।

५३—केवल अहिंसामूलक जीवविचारों का वर्णन।

५४—आगमिक जीवविचार तथा प्रत्यक्ष वैज्ञानिक जीवजन्तु शास्त्र।

५५—आगमों में व्याकरण शास्त्र का वर्णन।

५६—आगमों में निर्दिष्ट जैन तथा अजैन ग्रन्थों के नाम तथा उनका परिचय।

५७—अनुयोगों की व्यवस्था तथा उनके पृथक्त्व एवं अपृथक्त्व का ऐतिहासिक वृतान्त।

५८—प्राचीन दृष्टि से तथा वर्तमान दृष्टि से आगमों के विषय का वर्णन।

५९—इसी दृष्टि से आगमों की श्लोक संख्या का निर्णय।

६०—प्राचीन दिगम्बर ग्रंथ तथा आगमों में तात्त्विक भेद कहाँ है ?

६१—दिगम्बर ग्रंथों में वर्णित आगमों का परिचय (विषय तथा श्लोक संख्या की दृष्टि से)।

६२—वर्तमान आगमों की प्राचीनता के लिए मुख्य प्रमाण क्या हैं ?

६३—आगम वर्णित राजा, रानियाँ, राजवंशीय वगैरह उच्च वर्ग का वर्णन।

६४—क्या आगम सुत्तरूप हैं ? सुत्त का अर्थ क्या है ? सूत्र, श्रुत या सूक्त ?

६५—श्रुत और सूक्त के स्वरूप की चर्चा।

६६—क्या शीलाङ्क वगैरह टीकाकारों ने सूत्र का शब्दार्थ करने के लिए संस्कृत भाषा द्वारा होने वाली शब्द रचना को अधिक प्राधान्य नहीं दिया है ?

६७—छेद सूत्रों का खास पृथक् परिचय, वह भी सविस्तर उनके ऐतिहासिक मूल्य के साथ।

६८—छेदसूत्रों में वर्णित तत्तत्समय का वृत्तान्त।

६९—आगमों की व्याख्या में जैन आचार्यों का मतभेद।

७०—आगमों में श्री श्रमण भगवान महावीर का परिचय।

७१—आगमों द्वारा अन्यान्य आचार्यों की वंशपरम्परा, उनके कुल, गण तथा भिन्न २ शाखाओं का परिचय।

७२—आगमों में साध्वी संस्था।

७३—आगमों में श्राविका संस्था।

७४—आगमों में वर्णित पुरुष प्राधान्य क्या वैदिक परम्परा का प्रभाव है ?

७५—आगमों में भगवान महावीर के विशेषण, भगवान महावीर के भिन्न भिन्न नाम ।

७६—भगवान महावीर के लिए प्रयुक्त सर्वज्ञ विशेषण तथा वैदिक एवं बौद्ध परम्परा में जिस किसी के लिए प्रयुक्त सर्वज्ञ विशेषण।

७७—आगम नित्य हैं, ध्रुव हैं; शाश्वत हैं, इस प्रकार कहने में क्या अपौरुषेयवाद का प्रभाव नहीं है ।

७८—आगम तथा अनेकान्तवाद, आगमों में अनेकान्तवाद का साक्षात् निर्देश।

७९—आगमों में नय तथा निक्षेप की चर्चा ।

८०—आगमों में निह्नवों की चर्चा ।

८१—आगमों का समय तथा उनकी रचना का कालक्रम ।

८२—गोशालक का वृत्तान्त । इसीसे संबंध रखने वाला बौद्धसाहित्य तथा बौद्ध परम्परा का मस्करी शब्द क्या सूचित करता है ?

८३—आगमों में वर्णित भगवान महावीर का मानव स्वभाव ।

८४—आगमों में वर्णित श्री ऋषभ आदि तीर्थंकरों का परिचय ।

८५—वेद, उपनिषद तथा मनुस्मृति आदि वैदिक ग्रंथों में तथा बौद्ध ग्रंथों में जैन तीर्थङ्करों का नाम निर्देश ।

[पृष्ठ १४ का शेष]

को महावीर की वाणी तथा धर्म से परिचित करना धर्म की सबसे बड़ी सेवा है। यदि वे उन प्रतियों की सूची बनाने तथा उनका फोटो उतारने की अनुमति दे देते हैं तो इसमें उनको किसी प्रकार की आर्थिक हानि नहीं उठानी पड़ती। इस विशाल एवं महत्वपूर्ण कार्य के लिए किस प्रकार कदम उठाया जाय तथा निश्चित रूप कैसे तैयार किया जाय इत्यादि बातों के लिए मेरे मन में जो कल्पनाएँ हैं उनके लिए यह स्थान नहीं है। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इसप्रकार का सर्वोपयोगी कार्य अनिवार्य है।

महावीर से पहले का जैन साहित्य

—डॉ० इन्द्र

देवर्द्धि गणी ने जैन आगमों का विभाजन अंगप्रविष्ट तथा अनंगप्रविष्ट के रूप में किया है। अंगों मे बारहवाँ दृष्टिवाद है। उसके पाँच भेद दिए गए हैं—परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत, अनुयोग तथा चूलिका। पूर्वगत के चौदह भेद हैं जिसका निर्देश हम आगे करेंगे।

यहाँ यह प्रश्न होता है, क्या चौदह पूर्व द्वादशाङ्गी के बारहवें अंग में एक प्रकरण मात्र थे। शास्त्रों में चतुर्दश पूर्वधर को श्रुतकेवली कहा है। अर्थात् जहाँ तक शास्त्रीय ज्ञान का सम्बन्ध है, चतुर्दश पूर्वधर उसे पूर्णरूपेण प्राप्त कर लेता है। उपरोक्त बात के साथ इस बात की संगति नहीं बैठती।

पूर्व शब्द का क्या अर्थ है, यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। नन्दी चूर्णी में उन्हें पूर्व इसलिए बताया है क्योंकि वे सर्व प्रथम रचे गए थे। इससे इतना तो प्रतीत होता है कि द्वादशाङ्गी की रचना से पहले पूर्वों की रचना हुई। यदि यही बात है तो बारहवें अंग दृष्टिवाद में पूर्वों के समावेश का क्या अर्थ है ?

भगवती सूत्र में जहाँ भगवान् महावीर के शाशनवर्ती साधुओं का वर्णन आता है वहाँ यह बताया जाता है कि उन्होंने द्वादशाङ्गी का अध्ययन किया। जहाँ भ० पार्श्वनाथ या उनसे पूर्ववर्ती तीर्थङ्करों के शासनवर्ती मुनियों का वर्णन है वहाँ चौदह पूर्वों के अध्ययन का निर्देश है। इससे यह प्रतीत होता है कि महावीर से पहले जैन साहित्य चौदह पूर्वों में विभक्त रहा होगा। पूर्व शब्द भी इसी बात को प्रकट करता है।

शीलाङ्काचार्य ने आचाराङ्ग की टीका में पूर्वों को सिद्धसेन कृत सम्मति तर्क के समान द्रव्यानुयोग में गिना है। इसका अर्थ यह है कि पूर्वों का मुख्य विषय जैन मान्यताओं का दार्शनिक पद्धति से प्रतिपादन रहा होगा। प्रत्येक पूर्व के अन्त में प्रवाद शब्द का लगना एवं उनका दृष्टिवाद में समावेश होना भी इसी बात को प्रकट करता है। पूर्वों के परिमाण के विषय में पौराणिक मान्यता है कि अम्बारी सहित खड़े हाथी को ढकने में जितनी स्याही लगेगी उतनी से एक पूर्व लिखा जा सकता है। इससे भी यही निष्कर्ष निकलता है कि शास्त्रार्थ में जिन युक्तियों का प्रयोग किया जाता था उनका परिमाण

बहुत विशाल था। दृष्टिवाद तथा पूर्वों का संस्कृत भाषा में होना भी इसी बात को पुष्ट करता है कि उनका प्रयोग विद्वत्सभा में होता होगा।

भगवान् महावीर को भी कैवल्य प्राप्ति के पश्चात् कुछ समय तक विद्वानों से शास्त्रार्थ करने पड़े। उनकी तत्कालीन वाणी भी पूर्वसाहित्य में सम्मिलित कर ली गई होगी।

किन्तु महावीर को विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ की यह प्रणाली पसन्द नहीं आई। उन्होंने इसे व्यर्थ का वाग्जाल समझा। परिणामस्वरूप सर्वसाधारण में उपदेश देना प्रारम्भ किया और उसके लिए जनता की बोली अर्द्धमागधी को अपनाया अब भगवान् का उपदेश पण्डितों को पराजित करने के लिए नहीं होता था। अब उसका ध्येय था जन साधारण को धर्म के तत्त्व से अवगत करना। उस समय उन्होंने जो उपदेश दिए वे अंग साहित्य में उपनिबद्ध हुए। उनमें दार्शनिक भूमिका होने पर भी शैली पूर्णतया जनपदीय थी। इसीलिए जिनभद्र ने विशेषावश्यक भाष्य में कहा है कि स्त्री तथा मन्द बुद्धि वाले लोगों के लिए पूर्वों के आधार पर द्वादशाङ्गी की रचना हुई।

अब हम दृष्टिवाद में पूर्वसाहित्य के सन्निविष्ट होने के प्रश्न को लेते हैं। नन्दीसूत्र में जहाँ दृष्टिवाद के प्रकरणों का उल्लेख है वहाँ 'पूर्वगत' शब्द आया है। इसका अर्थ यह है कि दृष्टिवाद का वह प्रकरण पूर्व साहित्य के आधार पर रचा गया या उसका सार रहा होगा। पूर्वों में जिन जिन विषयों तथा मतमतान्तरों को लेकर विस्तृत चर्चा रही होगी, इसमें इन्हीं का संक्षिप्त परिचय रहा होगा।

अब हमारे सामने प्रश्न आता है पूर्व साहित्य तथा दृष्टिवाद के लोप का। यह स्पष्ट है कि भगवान् महावीर स्वामी के बाद एक हजार वर्ष तक जैन परम्परा का मुख्य लक्ष्य आत्मसाधना, चरित्र तथा साधारण जन सम्पर्क ही रहा है। मत मतान्तरों के खण्डन मण्डन तथा विद्वानों में प्रयुक्त संस्कृत भाषा की ओर जैन मुनियों ने कोई ध्यान नहीं दिया। जिस प्रकार कबीर, सूरदास, आदि सन्तों ने संस्कृत को कोरा वाग्जाल समझ कर जनमानस तक पहुँचने के लिए स्थानीय बोली को अपनाया, वही दृष्टि जैन सन्तों की भी रही है। तत्कालीन जैन साहित्य में शास्त्रार्थ पद्धति तथा हेतुविद्या सम्बन्धी उल्लेख आते हैं, इससे यह तो नहीं कहा जा सकता कि जैन आचार्य उनसे अनभिज्ञ थे, किन्तु उनकी स्वाभाविक रूचि दूसरी ओर थी। पूर्व तथा दृष्टिवाद का

संस्कृत भाषा में होना तथा उनका मत मतान्तरों के खण्डन मण्डन से संबन्ध रखना ही उनके लोप का कारण हुआ।

श्वेताम्बर तथा दिगम्बर दोनों परम्पराओं के अनुसार अन्तिम श्रुत केवली भद्रबाहु स्वामी थे।

वीर निर्वाण के १६० वर्ष पश्चात् पाटलिपुत्र में लम्बे समय का दुर्भिक्ष पड़ा। भिक्षु संघ तितर बितर हो गया। आगमों का ज्ञान भी छिन्न भिन्न हो गया। दुर्भिक्ष समाप्त होने पर जब भिक्षु फिर एकत्र हुए तो उन्होंने परस्पर पूछ कर ११ अंगों को व्यवस्थित किया किन्तु बारहवें अंग दृष्टिवाद को जानने वाला कोई न मिला। उस समय भद्रबाहु बारह वर्ष के लिए नेपाल में योग साधना के लिए गए हुए थे। संघ ने पूर्वों का ज्ञान प्राप्त प्राप्त करने के लिए स्थूलभद्र तथा दूसरे मुनियों को उनके पास भेजा। उनमें से केवल स्थूलभद्र ही उस ज्ञान को प्राप्त करने में समर्थ हुए। वे भी पूर्ण रूप से नहीं। दस पूर्वों का ज्ञान प्राप्त करने के बाद उन्होंने श्रुतलब्धि का प्रयोग किया। भद्रबाहु को इसका पता चल गया और उन्होंने आगे पढ़ाना बन्द कर दिया। स्थूलभद्र के बहुत प्रार्थना करने पर वे राजी हुए। किन्तु शेष चार पूर्वों की केवल शब्दतः वाचना दी। अर्थ नहीं समझाया। साथ ही वाचना दी किन्तु अनुज्ञा नहीं दी। उन पर यह प्रतिबन्ध लगा दिया गया कि वे अन्तिम चार पूर्वों का ज्ञान किसी और को न दें।

भद्रबाहु की मृत्यु वीरनिर्वाण के १७० वर्ष पश्चात् हुई। उसी समय चतुर्दश पूर्वधर या श्रुतकेवली का लोप हो गया। दिगम्बर मान्यतानुसार यह लोप वीरनिर्वाण के १६२ वर्ष बाद माना जाता है। इस प्रकार दोनों में ८ वर्ष का अन्तर है।

आचार्य भद्रबाहु के बाद दस पूर्वधरों की परम्परा चली। उसका अन्त आर्यवज्र के साथ हुआ। उनकी मृत्यु वीरनिर्वाण के ५८४ वर्ष पश्चात् अर्थात् ११४ वि० में हुई। दिगम्बर मान्यतानुसार अन्तिम दशपूर्वधर धरसेन हुए और उनकी मृत्यु वीरनिर्वाण के २४५ वर्ष पश्चात् हो गई। श्रुतकेवली के संबन्ध में श्वेताम्बर और दिगम्बर मान्यताओं में विशेष भेद नहीं है। दोनों की मान्यताओं में अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु थे। समय में भी केवल ८ वर्ष का अन्तर था। इसका अर्थ यह है कि उस समय तक दोनों परम्पराएँ प्रायः एक थीं। किन्तु दशपूर्वधर के विषय में नाम का भेद है और समय में भी २३९ वर्ष का भेद है। दिगम्बर परम्परानुसार भद्रबाहु के बाद दस पूर्वधरों

की परम्परा केवल १८३ वर्ष रही। श्वेताम्बर परम्परानुसार यह परम्परा ४१४ वर्ष तक चलती रही।

वज्र के बाद आर्यरक्षित थे। वे ९ पूर्व सम्पूर्ण और दसवें पूर्व के २४ यविक जानते थे। ज्ञान का उत्तरोत्तर ह्रास होता गया। आर्यरक्षित के शिष्यों में केवल दुर्बलिका पुष्पमित्र नौ पूर्व सीख सके किन्तु वे भी अनभ्यास के कारण नवम पूर्व को भूल गए। वीर निर्वाण के एक हजार वर्ष पश्चात् पूर्वों का ज्ञान सर्वथा लुप्त हो गया। दिगम्बर मान्यतानुसार यह स्थिति वीरनिर्वाण के ६८३ वर्ष पश्चात् हो गई।

पूर्वाश्रित साहित्य—पूर्वों के लुप्त हो जाने पर भी उनके आधार पर बना हुआ या उनमें से उद्धृत साहित्य अब भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। इस प्रकार के साहित्य को निर्यूहित (प्रा० णिज्जूहिय) कहा गया है। इस प्रकार के ग्रन्थों के कुछ नाम निम्नलिखित हैं—

ग्रन्थ का नाम	पूर्व का नाम
१. उवसग्गहथोत्त	अज्ञात
२. ओहणिज्जुत्ति	पच्चक्खणप्पवाय
३. कम्मपयडी	कम्मप्पवाय
४. प्रतिष्ठाकल्प	विज्जप्पवाय
५. स्थापनाकल्प	पच्चक्खाणप्पवाय
*६. सिद्धप्राभृत	अग्गाणीय
७. पज्जोयाकप्प	पच्चक्खाणप्पवाय
८. धम्मपण्णत्ति	आयप्पवाय
९. पिंडेसणा	कम्मप्पवाय
१०. वक्कसुद्धि	सच्चप्पवाय
११. दशवैकालिक के दूसरे अध्ययन	पच्चक्खाणप्पवाय
१२. परिसहज्झयण	कम्मप्पवाय
१३. पंचकप्प	अज्ञात
१४. दशाश्रुतस्कन्ध कल्प व्यवहार	पच्चक्खाणप्पवाय
१५. महाकप्प	अज्ञात
१६. निशीथ	पच्चक्खाणप्पवाय
१७. नयचक्र	नाणप्पवाय
१८. सयग	अज्ञात

ग्रंथ का नाम	पूर्व का नाम
१९. पंचसंग्रह	अज्ञात
२०. सत्तरिया (कर्मग्रन्थ)	कम्मप्पवाय
२१. महाकर्मप्रकृति प्राभृत	,,
२२. कषायप्राभृत	अग्गाणीय
२३. जीवसमास	अज्ञात

दिगम्बरों में आगम रूप से माने जाने वाले षट्खण्डागम और कषाय-प्राभृत भी पूर्वों से उद्धृत कहे जाते हैं।

चौदह पूर्वों के नाम तथा विषय

१. उत्पाद—द्रव्य तथा पर्यायों की उत्पत्ति।

२. आग्रयणी—सब द्रव्यों तथा जीवों के पर्यायों का परिमाण। अग्र का का अर्थ है परिमाण और अयन का अर्थ है परिच्छेद।

३. वीर्यप्रवाद—सकर्म एवं अकर्म जीव तथा पुद्गलों की शक्ति।

४. अस्तिनास्ति प्रवाद—धर्मास्तिकाय आदि वस्तुएँ स्वरूप से हैं और पररूप से नहीं हैं, इस प्रकार स्याद्वाद का वर्णन।

५. ज्ञान प्रवाद—मति आदि पाँच ज्ञानों का स्वरूप एवं भेद प्रभेद।

६. सत्यप्रवाद—सत्य, संयम अथवा सत्य वचन और उसके प्रतिपक्ष असत्य का निरूपण।

७. आत्मप्रवाद—जीवन का स्वरूप विविध नयों की अपेक्षा से।

८. कर्मप्रवाद या समय प्रवाद—कर्मों का स्वरूप भेद प्रभेद आदि।

९. प्रत्याख्यानप्रवाद—व्रतनियमों का स्वरूप।

१०. विद्यानुप्रवाद—विविध प्रकार की आध्यात्मिक सिद्धियाँ और उनके साधन।

११. अवन्ध्य—ज्ञान, तप, संयम आदि का शुभ एवं पापकर्मों का अशुभ फल। इसे कल्याणपूर्व भी कहा जाता है।

१२. प्राणायुः—इन्द्रियाँ, श्वासोच्छ्वास, मन आदि प्राण तथा आयुष्य।

१३. क्रिया विशाल—कायिक, वाचिक आदि विविध प्रकार की शुभाशुभ क्रियाएँ।

१४. बिन्दुसार—लोकबिन्दुसार लब्धि का स्वरूप एवं विस्तार।

पूर्व साहित्य इस बात का द्योतक है कि जैन परम्परा महावीर से पहले भी विद्यमान थी और उस समय उसके पास विशाल साहित्य था।

जैन पुराण साहित्य

पं० फूलचन्द्र शास्त्री

भारतीय धर्मग्रंथों में पुराण शब्द का प्रयोग इतिहास के साथ आता है। कितने ही लोगों ने इतिहास और पुराण को पञ्चम वेद माना है। चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में इतिहास की गणना अथर्ववेद में की है और इतिहास में इतिवृत्त, पुराण, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र तथा अर्थशास्त्र का समावेश किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि इतिहास और पुराण दोनों ही विभिन्न हैं, इतिवृत्त का उल्लेख समान होने पर भी दोनों अपनी अपनी विशेषता रखते हैं। कोषकारों ने पुराण का लक्षण निम्न प्रकार माना है--

'सर्गश्च, प्रतिसर्गश्च, वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥'

जिसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, और वंशपरम्पराओं का वर्णन हो, वह पुराण है। सर्ग प्रतिसर्ग आदि पुराण के पाँच लक्षण हैं।

इतिवृत्त केवल घटित घटनाओं का उल्लेख करता है परन्तु पुराण महापुरुषों की घटित घटनाओं का उल्लेख करता हुआ उनसे प्राप्य फलाफल पुण्य-पाप का भी वर्णन करता है तथा साथ ही व्यक्ति के चरित्र निर्माण की अपेक्षा बीच बीच में नैतिक और धार्मिक भावनाओं का प्रदर्शन भी करता है। इतिवृत्त में केवल वर्तमानकालिक घटनाओं का उल्लेख रहता है परन्तु पुराण में नायक के अतीत अनागत भावों का भी उल्लेख रहता है और वह इसलिये कि जनसाधारण समझ सके कि महापुरुष कैसे बना जा सकता है। अवनत से उन्नत होने के लिए क्या क्या त्याग और तपस्याएं करनी पड़ती हैं? मनुष्य के जीवन निर्माण में पुराण का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। यही कारण है कि उसमें जन साधारण की श्रद्धा आज भी यथापूर्व अक्षुण्ण है।

जैनेतर समाज का पुराण साहित्य बहुत विस्तृत है। वहाँ १८ पुराण माने गए हैं जिनके नाम निम्न प्रकार है--१ मत्स्य पुराण, २ मार्कण्डेय पुराण, ३ भागवत पुराण, ४ भविष्य पुराण, ५ ब्रह्माण्ड पुराण, ६ ब्रह्मवैवर्त पुराण, ७ ब्राह्म पुराण, ८ वामन पुराण, ९ वराह पुराण, १० विष्णु पुराण, ११ वायु

वा शिव पुराण, १२ अग्नि पुराण, १३ नारद पुराण, १४ पद्म पुराण, १५ लिंग पुराण, १६ गरुण पुराण, १७ कूर्म पुराण और १८ स्कन्द पुराण ।

ये अठारह महापुराण कहलाते हैं । इनके सिवाय गरुड पुराण में अठारह उपपुराणों का भी उल्लेख आया है जो कि निम्न प्रकार हैं—

१ सनत्कुमार, २ नारसिंह, ३ स्कन्द, ४ शिवधर्म, ५ आश्चर्य, ६ नारदीय, ७ कालिक, ८ वामन, ९ औशनस, १० ब्रह्माण्ड, ११ वारुण, १२ कालिका, १३ माहेश्वर, १४ साम्ब, १५ सौर, १६ पाराशर, १७ मारीच और १८ भार्गव ।

देवी भागवत में उपर्युक्त स्कन्द, वामन, ब्रह्माण्ड, मारीच और भार्गव के स्थान में क्रमशः शिव, मानव, आदित्य, भागवत, और वाशिष्ठ, इन नामों का उल्लेख आया है ।

इन महापुराणों और उपपुराणों के सिवाय अन्य भी गणेश, मौद्गल, देवी, कल्की आदि अनेक पुराण उपलब्ध हैं। इन सबके वर्णनीय विषयों की तालिका देने का अभिप्राय था परन्तु विस्तार वृद्धि के भय से उसे छोड़ रहा हूँ। कितने ही इतिहासज्ञ लोगों का अभिमत है कि इन आधुनिक पुराणों की रचना प्रायः ई० ३०० से ८०० के बीच में हुई है ।

जैसा कि जैनेतर धर्म में पुराणों और उपपुराणों का विभाग मिलता है वैसा जैन समाज में नहीं पाया जाता है । परन्तु जैन धर्म में जो भी पुराण साहित्य विद्यमान है, वह अपने ढंग का निराला है । जहाँ अन्य पुराणकार इतिवृत्त की यथार्थता सुरक्षित नहीं रख सके हैं, वहाँ जैन पुराणकारों ने इतिवृत्त की यथार्थता को अधिक सुरक्षित रखा है इसलिए आज के निष्पक्ष विद्वानों का यह स्पष्टमत हो गया है कि 'हमें प्राक्कालीन भारतीय परिस्थिति को जानने के लिए जैन पुराणों से उनके कथा-ग्रंथों से जो साहाय्य प्राप्त होता है वह अन्य पुराणों से नहीं ।' कतिपय दि० जैन पुराणों के नाम इस प्रकार हैं—

	पुराण नाम	कर्त्ता	रचना संवत
१.	पद्मपुराण-पद्म चरित	रविषेण	७०५
२.	महापुराण (आदि पुराण)	जिनसेन	नवीं शती
३.	उत्तर पुराण	गुणभद्र	दसवीं शती
४.	अजित पुराण	अरुण मणि	१७१६
५.	आदि पुराण (कन्नड़)	कवि पंप	

	पुराण नाम	कर्त्ता	रचना संवत
६.	आदि पुराण	भट्टारक चन्द्रकीर्ति	१७ वीं शती
७.	आदि पुराण	,, सकल कीर्ति	१५ वीं शती
८.	उत्तर पुराण	,, ,,	
९.	कर्णामृत पुराण	केशवसेन	१६८८
१०.	जय पुराण	ब्र० कामराज	१५५५
११.	चन्द्रप्रभु पुराण	कवि अगासदेव	
१२.	चामुण्ड पुराण (क)	चामुण्डराय	शक सं० ९८०
१३.	धर्मनाथ पुराण (क)	कवि बाहुबलि	
१४.	नेमिनाथ पुराण	ब्र० नेमिदत्त	१५७५ के लगभग
१५.	पद्मनाभ पुराण	भ० शुभचन्द्र	१७ शती
१६.	पदुमचरिय (अपभ्रंश)	चतुर्मुख देव	अनुपलब्ध
१७.	,, ,,	स्वयंभूदेव	
१८.	पद्म पुराण	भ० सोमसेन	
१९.	पद्म पुराण	भ० धर्मकीर्ति	१६५६
२०.	,, (अपभ्रंश)	कवि रइधू	१५-१६ शती
२१.	,,	भ० चन्द्रकीर्ति	१७ शती
२२.	,,	ब्रह्म जिनदास	१५-१६ शती
२३.	पाण्डव पुराण	भ० शुभचंद्र	१६०८
२४.	,, (अपभ्रंश)	भ० यशकीर्ति	१४९७
२५.	,,	भ० श्री भूषण	१६५७
२६.	,,	भ० वादिचंद्र	१६५८
२७.	पार्श्वपुराण (अपभ्रंश)	पद्मकीर्त्ति	९९९
२८.	,, ,,	कवि रइधू	१५-१६ शती
२९.	,,	चन्द्रकीर्त्ति	१६५४
३०.	,,	वादिचन्द्र	१६५८
३१.	महापुराण	आचार्य मल्लिषेण	११०४
३२.	महापुराण (आदि पुराण-उत्तरपुराण) अपभ्रंश	महाकवि पुष्पदंत	
३३.	मल्लिनाथ पुराण (कन्नड़)	कवि नागचंद्र	

	पुराण नाम	कर्त्ता	रचना संवत
३४.	पुराणसार	श्री चंद्र	
३५.	महावीर पुराण	कवि असग	९१०
३६.	महावीर पुराण	भ० सकल कीर्ति	१५ शती
३७.	मल्लिनाथ पुराण	,,	,,
३८.	मुनिसुव्रत पुराण	ब्रह्म कृष्णदास	......
३९.	,,	भ० सुरेन्द्रकीर्त्ति	......
४०.	वागर्थ संग्रह पुराण	कवि परमेष्ठी	आचार्य जिनसेन के महापुराण से प्राग्वर्ती
४१.	शान्तिनाथ पुराण	कवि असग	१० शती
४२.	,,	भ० श्री भूषण	१६५९
४३.	श्री पुराण	भ० गुणभद्र	......
४४.	हरिवंश पुराण	पुन्नाट संघीय जिनसेन	शक संवत ७०५
४५.	हरिवंशपुराण (अपभ्रंश)	स्वयंभूदेव	......
४६.	,, ,,	चतुर्मुख वेद	अनुपलब्ध
४७.	,,	ब्र० जिनदास	१५–१६ शती
४८.	हरिवंशपुराण (अपभ्रंश)	भ० यशकीर्ति	१५०७
४९.	,, ,,	भ० श्रुतकीर्ति	१५५२
५०.	,, ,,	कवि रइधू	१५–१६ शती
५१.	,,	भ० धर्मकीर्त्ति	१६७१
५२.	,,	कवि रामचंद्र	१५६० से पूर्व का रचित

इनके अतिरिक्त चरितग्रंथ हैं जिनकी संख्या पुराणों की संख्या से अधिक है। और जिनमें 'वराङ्ग चरित' 'जिनदत्त चरित', 'जसहर चरिउ', 'णाग-कुमार चरिउ' आदि कितने ही महत्वपूर्ण ग्रंथ सम्मिलित हैं।

कन्नड़ संस्कृति को जैनों की देन

प्रो० के० एस० धरणेन्द्रैया, एम० ए०, बी० टी०

कर्णाटक देश का इतिहास अन्तिम श्रुतकेवली भगवान् श्री भद्रबाहु के आगमन से आरम्भ होता है। ये ईसा के पूर्व तीसरी शताब्दी में उत्तर से दक्षिण की ओर आये, जब मैसूर की इस भूमि को संस्कृत में कटवप्र और कन्नड़ में कलबप्पू नाम से पुकारा जाता था। सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य ने १२००० शिष्यों के साथ अपने गुरु श्री भद्रबाहु का अनुगमन किया। इनमें राजपुत्र, व्यापारी पुरोहित कवि, मुनि और दार्शनिक थे। जब श्री भद्रबाहु वर्तमान श्रवणबेलगोला स्थान में पहुँचे तो उन्होंने भविष्यवाणी की कि उनका अन्त निकट है। और "सल्लेखन" की प्रतिज्ञा करके स्वर्ग प्राप्त किया। चन्द्रगुप्त, जिन्होंने अब जैन यतिधर्म स्वीकार किया था, अपने गुरु के अनन्तर जीवन यापन करते हुए उनकी पूजा में संलग्न थे। चन्द्रगुप्त ने अपने नाम पर पुकारी जानेवाली चन्द्रगिरि नामक छोटी पहाड़ी पर चन्द्रगुप्त बसती नामक मन्दिर बनवाया। दसवीं ईसवी में चामुण्डराय इस स्थान में पहुँचे और उन्होंने श्री भद्रबाहु के पवित्र चरणों की पूजा की। इस स्थान का नाम अब "भद्रबाहुगुफा" पड़ा। भगवान् नेमिनाथ स्वामी और भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी की शासनदेवी क्रमशः कूष्माण्डिनी देवी और पद्मावती देवी के आशीर्वाद से उन्होंने ईसवी सन् ९८३ में गोमटेश्वर की मूर्ति की प्रतिष्ठा की। इस प्रकार श्रवणबेलगोला अति प्राचीन काल से जैन संस्कृति का केन्द्र रहा है। किसी भी देश की संस्कृति जानने के साधन हैं—उसका साहित्य, कला, धर्म, दर्शन और वह जीवन जिसका मार्ग प्रदर्शन उसने (संस्कृति ने) किया है तथा सन्देश जो उसने विश्व को दिया है।

जैनों ने दक्षिण में बड़े राज्यों का निर्माण करके उन पर शताब्दियों तक राज्य किया। वे बहुत उदार शासक थे और दूसरे धर्मों के लिए पराकाष्ठा की क्षमा उनमें थी। धर्म और सत्य के संस्थापन के लिए बड़ी से बड़ी लड़ाइयाँ वे लड़े। प्राचीन भारत के ऐतिहासिकों का मत है कि जैन राज्य के समय में धार्मिक उपद्रव का एक भी उदाहरण नहीं था। जैन सम्राट विद्या और कला

के पोषक थे और उन्होंने महती संस्कृति के निर्माण में बड़ी सहायता पहुँचायी है, जिस संस्कृति का गर्व वास्तव में एक भारतीय को हो सकता है।

बहुत से दूसरे वत्सल राजा और मुखियों को छोड़कर, हमें कर्नाटक में जैनों के चार बड़े राजवंश मिलते हैं—(१) राष्ट्रकूट, (२) गङ्ग, (३) होयसाल और (४) संतर। ये बड़े जैन राज्य जिन बड़े जैन यतियों के आशीर्वाद और मार्गप्रदर्शन से स्थापित हुए थे उनके नाम क्रमशः (१) श्री वीरसेन और जिनसेन, (२) श्री सिंह नन्दी, (३) श्री वर्धमान मुनि और (४) श्री सिद्धान्त कीर्ति थे। कर्णाटक देश का प्रथम सम्राट् नृपतुङ्ग था जो अमोघवर्ष या अतिशय धवज के नाम से भी प्रसिद्ध था। वह संस्कृत में लिखे हुए महापुराण नामक प्रसिद्ध ग्रंथकर्ता जिनसेन आचार्य का शिष्य था। वह उस प्रदेश में राज्य करता रहा जो उत्तर में गोदावरी और दक्षिण में कावेरी नदी तक फैला हुआ था। उसकी राजधानी मान्यखेटपुर थी, जो अब हैदराबाद राज्य में मालखेड़ नाम का एक ग्राम है। प्राचीन विद्या का पोषक होने के अतिरिक्त वह कन्नड़ भाषा का एक महान् कवि था। उसने कन्नड़ पद्यशास्त्र पर कविराजमार्ग (Rogal Road to Poets) नामक ग्रन्थ लिखा है। आज तक कन्नड़ साहित्य में जितने ग्रन्थ मिले हैं उनमें यह ग्रन्थ सबसे अधिक प्राचीन है और यह नवीं ईसवी में लिखा गया था। इस ग्रन्थ में कर्नाटक संस्कृति के केन्द्रों और उसकी सीमा के साथ इस देश का विस्तार कहाँ तक हुआ था यह स्पष्टतया वर्णित है। नवीं सदी के पूर्व जो कन्नड़ कवि तथा गद्यलेखक हुए उनकी चर्चा इसमें की गई है। इनमें श्री पूज्यपाद, श्री कवि परमेष्ठी और श्री समन्त भद्र आचार्य जैसे प्रसिद्ध व्यक्तियों का नाम लिया जा सकता है। ये लोग कन्नडिग तो थे परन्तु कन्नड़ भाषा में इनके ग्रंथों का पता अब तक नहीं लगा है।

दसवीं शताब्दी कन्नड़ साहिप्य का "स्वर्णयुग" कहा जा सकता है। इस शताब्दी में हमें सबसे बड़े जैन कवि मिलते हैं। पोन्न ने जो राष्ट्रकूटराज कन्नर का राजकवि था, कन्नड़ में दो अद्वितीय ग्रन्थ लिखे हैं, इनमें (१) शान्ति पुराण और (२) भुवनक रामाभ्युदय (इसका पता अब तक नहीं लगा है) हैं। अनुमान किया जाता है कि कवि ने यह ग्रन्थ अपने संरक्षक कन्नर राज को समर्पण किया था जिसने कवि को "कविचक्रवर्ती" (the emperor of poets) की पदवी से विभूषित किया।

शान्तिपुराण प्रस्तावना और टीकाओं के साथ प्रकाशित हुआ है और

कन्नड़ विद्वानों ने इसे कन्नड़ भाषा में अत्युत्तम पद्यग्रन्थ स्वीकार किया है। पोन्न ९५० ईसवी के लगभग रहे। मालूम होता है कि पोन्न एक जैन यति थे और इनके सिर पर बालों की जटाएँ थीं।

इसके अनन्तर जैन साहित्य के जनक पम्प का नाम हमें ज्ञात होता है। इनका जन्म दुन्दुभि संवत्सर—९०२ ई० में हुआ था और इन्होंने अपनी ३९ वर्ष की अवस्था में ९४१ ई० में (१) आदिपुराण और (२) पम्पभारत नामक अपने अत्युत्तम ग्रन्थ कन्नड़ में लिखे। पम्प चालुक्यनायक अरिकेसरी के प्रधान मंत्री, सेनापति और राजकवि थे। इनका राज्य पुलिगिरि (लक्ष्मेश्वर) वर्तमान मिरज राज्य के अन्तर्गत था। ये राष्ट्रकूट वंश के वत्सलराज थे। पम्प के पूर्वपुरुष ब्राह्मण थे और उनके पिता श्री अभिराम-देवराय ने, विश्व को यह सन्देश देते हुए कि सबसे उच्चस्थान प्राप्त किए हुए ब्राह्मण के लिए जैनधर्म ही अनुकरण करने योग्य सबसे अच्छा धर्म है, जैनधर्म स्वीकार किया। इससे स्पष्ट है कि उन दिनों में लोगों को धर्म की स्वतंत्रता थी। पम्प एक सुसंस्कृत सभ्य व्यक्ति था, उसने ब्राह्मण और जैन दोनों संस्कृतियों का लाभ प्राप्त किया था। वह वैदिक धर्म, दर्शन, शास्त्र तथा जैनागम और सूत्रों में प्रवीण था। उसने दो ग्रंथ लिखे। इनमें से एक तो उसने जैन धर्म को समर्पण किया और दूसरा अपने राजा और मित्र अरिकेसरी को। ये दो प्रसिद्ध ग्रन्थ कन्नड़ साहित्य के दो बहुमूल्य रत्न सर्वत्र माने गए हैं और पिछले हजार वर्षों में रचनाशैली तथा विद्वत्ता में और कन्नड़ साहित्य में इनकी बराबरी करने वाला कोई ग्रंथ नहीं हुआ है।

पम्प का आदि पुराण में वर्णित बाहुबलि ऐश्वर्यवान व्यक्ति है। भरत और बाहुबलि की कथा का भारतीय साहित्य में अद्वितीय स्थान है। इस प्रसङ्ग का उत्तम रीति से पम्प ने वर्णन किया है। उसी प्रकार दूसरे ग्रंथ भारत में पम्प के कर्ण का स्थान श्रेष्ठ है। पम्प ने जोरदार शब्दों में कहा है कि उसका भारत पढ़ने वाले लोगों को कर्ण का चरित्र दूसरे किसी के चरित्र से सर्वदा अधिक ध्यान में रखना चाहिये। संपूर्ण भारत कन्नड़ शब्दों का एक पवित्र भाण्डागार है और पम्प का शब्दकोष अद्भुत और विस्तृत है। पम्प अपने भारत में अपने राजा अरिकेसरी का चरित्र अर्जुन के चरित्र से मिलाता है और अपने ग्रन्थ का "विक्रमार्जुनविजय" नामकरण करता है। महाभारत का यह प्रसङ्ग पूरी पुस्तक में कल्पक बुद्धि से अरिकेसरी की कथा से आपस में गुथा हुआ है। यह ग्रन्थ उदाहरण देता है कि पम्प का

अपनी मातृभूमि "बनवासी" के लिए बहुत प्रेम था। उसके कर्नाटक देश के सौन्दर्य, संपत्ति तथा संस्कृति पर रचे हुए पद्य बहुत ही सुन्दर हैं। पम्प के बाद के कन्नड कवियों ने उसकी कल्पना शक्ति का सबसे अधिक गौरव किया है और उसे अपना गुरु स्वीकार किया है। जिस प्रकार प्रत्येक दिन का प्रातः-काल बहुत पुराना होते हुए भी सर्वदा नवीन प्रतीत होता है, उसी प्रकार पम्प के ग्रन्थ पूरी चमक दमक तथा नवीनता से बराबर चमक रहे हैं। पम्प के अनन्तर दूसरे एक बड़े कवि रन्न हुए जो कर्नाटक सम्राट तैलप चक्रवर्ती के दरबार में राजकवि थे। रन्न के संरक्षक थे—(१) गङ्गराज रचमल्ल के प्रधान मंत्री तथा सेनापति चामुंडराय जिन्होंने श्रवणबेलगोला में गोमटेश्वर की भव्य मूर्ति की स्थापना की और (२) तैलप चक्रवर्ती के सेनापति नागदेव की स्त्री अहिमाब्बे। रन्न ने बहुत से ग्रन्थ लिखे जिनमें कन्नड़ व्याकरण भी एक था, परन्तु कालगति से केवल दो ही ग्रन्थ उपलब्ध हैं। उनके नाम हैं—(१) गदायुद्ध (भीमविजय) और (२) अजिततीर्थंकर पुराण। पहला ग्रन्थ उसने अपने राजा सत्याश्रय को समर्पित किया है और दूसरा अपनी संरक्षिका अहिमाब्बे को जो एक पवित्र व उदार महिला थी और जिसने जैन तपस्विनी का अपना जीवन यापन किया।

रन्न का 'गदायुद्ध' नामक ग्रन्थ कन्नड़ साहित्य में अद्वितीय स्थान रखता है। इस ग्रन्थ में दुर्योधन के चरित्र का वर्णन बहुत ही प्रशंसनीय है। एक उत्तम श्रेणी के वीर जैसा गुणवान् होने का उसका चित्र खींचा गया है, लेकिन पाण्डवों के प्रति ईर्ष्या और घृणा रखने तथा अपने मूर्खतापूर्ण निर्णयों पर दृढ़ और अटल रहने की कमी उसमें पाई गई है। उसकी इस नीति से उसका तथा उसके कुटुम्ब का नाश हुआ है। दूसरे प्रकार से दुर्योधन का महान चरित्र दिखलाया गया है। अपने कट्टर शत्रु अभिमन्यु की वीरता की प्रशंसा करने की उदारता उसने दिखलाई है। दुर्योधन के भाई दुःशासन के प्रति उसका प्रेम, कर्ण के प्रति मित्रता और युद्धस्थल पर संग्राम के नियमों के प्रति आदर का भाव रन्न ने दिखलाया है। रन्न के कथनानुसार हमारी दृष्टि में दुर्योधन एक बड़ा दुःखी वीर जैसा दिखलाई देता है। श्रीकृष्ण के प्रभाव में रहे हुए उसके शत्रु भीम द्वारा वंचित जब वह एक वीर की मृत्यु मरता है तो हमें यह मालूम होता है कि दुर्योधन पातकियों में एक बड़ा पापी है। भीम की अपेक्षा दुर्योधन को ही इस कथानक का वीर मानने के लिए हम बाध्य किये जाते हैं। अन्त में भीम राजगद्दी पर बैठाया गया और यही रन्न का राजा सत्याश्रय प्रमाणित

हुआ है। दूसरी अत्युत्तम रचना अजित पुराण में रन्न दूसरे तीर्थङ्कर अजितनाथ और दूसरे सम्राट् सागर चक्रवर्ती की कथा का वर्णन करता है। वह प्रायः संपूर्ण प्रथमाध्याय में अपनी संरक्षिका श्री अहिमाब्बे, जिसे वह दान चिन्तामणि के नाम से पुकारता है, की प्रशंसा करता है। यह संपूर्ण ग्रन्थ उत्तम प्रकार से लिखा गया है। अजितनाथ के वैराग्य और त्याग पर लिखे हुए रन्न के पद्य बहुत ही प्रशंसा के योग्य हैं। यह बहुत दुख का विषय है कि रन्न के दूसरे ग्रन्थ "परशुराम चरित" जिसमें संभवतः उसने अपने संरक्षक चामुण्डराय जिसको परशुराम की पदवी थी, के जीवन तथा कार्य के सम्बन्ध में वर्णन किया है, अबतक पता नहीं लगा है। यदि यह ग्रन्थ उपलब्ध होता तो इससे चामुण्डराय के जीवन और कार्य तथा श्री गोमटेश्वर की दिव्य मूर्ति की स्थापना के संबंध में बहुत सी बातों पर प्रकाश पड़ता—ये विषय अन्वेषण का का कार्य करने वालों छात्रों के लिए कूट प्रश्न (पहेली) हो गये हैं। ऐसी ही एक पहेली है कि उस प्रसिद्ध संगतराश का नाम, जिसने गोमटेश्वर की बड़ी मूर्ति बनाई, नहीं मालूम हो रहा है। संभवतः उस अज्ञात कलाकार की अधिक प्रशंसा करना उचित होगा क्योंकि उसने संपूर्ण भाग और सुन्दरता कायम रखते हुए ईश्वर तुल्य आकृति और तेजस्वी स्थिति के साथ खोदकर मूर्ति बनाई है। रन्न उस समय उपस्थित था जब चामुण्डराय ने श्रवण-बेलगोला में उस बड़ी मूर्ति की स्थापना की। इस यथार्थता के उदाहरण स्वरूप हम छोटी पहाड़ियों की चट्टानों पर चामुण्डराय और रन्न के नाम क्रमशः श्री चामुण्डराय तथा श्री कविरत्न देखते हैं। रन्न के दूसरे ग्रन्थ कालपिशाच ने छीन लिये और यह कन्नड़ भाषा तथा कन्नड़ साहित्य की बड़ी हानि है। जैन साहित्यरूपी आकाश में रन्न एक सर्वदा प्रकाशमान होने वाला तारा है। उसके ग्रन्थों में कन्नड़ संस्कृति और संस्कार के भरपूर उदाहरण मिलते हैं।

चामुण्डराय के श्रेष्ठ नाम का उल्लेख किए बिना, जो जैन संस्कृति और ईश्वरभक्ति की मूर्ति था, दसवीं शताब्दी समाप्त करना उचित नहीं है। विद्या और कला का बड़ा पोषक होने के अतिरिक्त वह स्वयं महान् कवि तथा प्रसिद्ध कन्नड़ गद्य लेखक था। वह रछमल्ल नामक महान् गङ्ग राजा का, जिसने अत्यधिक सतर्कता से जैनधर्म का अनुसरण किया, प्रधान मंत्री तथा सेनापति था। यहाँ यह लिखना रोचक होगा कि मारसिंह—दूसरे गङ्ग राजा ने सल्लेखन का व्रत ग्रहण कर समाधि मरण लिया। चामुण्डराय ने "त्रिषष्टि शलाका पुरुष पुराणम्" नामक ग्रन्थ गद्य में लिखा जिसमें जैन-धर्मग्रन्थ के

६३ प्रसिद्ध व्यक्तियों की जीवनी उल्लिखित है। प्रथम भाग अर्थात् आदि-पुराण बँगलोर की "कन्नड़ लिटररी एकेडेमि" द्वारा प्रकाशित किया गया है और दूसरे भाग अभी अप्रकाशित हैं। चामुण्डराय ने अपने गुरु श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त-चक्रवर्ती द्वारा अर्द्धमागधी में लिखे हुए गोम्मटसार पर एक कन्नड़ टीका भी लिखी है। इस प्रकार चामुण्डराय ने बहुत प्रकार से कन्नड़ संस्कृति के निमित्त मनुष्य जाति की सेवा की है। उसकी स्थापित गोमटेश्वर की मूर्ति से हमें साधारणतया जैन संस्कृति और विशेषतया कन्नड़ संस्कृति की महानता पर बहुत सी बातें मालूम होती हैं। यह महान् त्याग सांसारिक सुखों से वैराग्य, शरीर पर आत्मा का राज्य, विषयों की तुष्टि की निरर्थकता और आत्मा, संस्कृति तथा आध्यात्मिक संस्कार की प्रधानता की मूर्ति रूप में दिखलाता है। भगवान् गोमटेश्वर ने लोभ, अपकार, घृणा और हर प्रकार की ईर्ष्या से रहित आध्यात्मिक जीवन की प्रसन्नता और पवित्रता से संसार में घोषणा की और मन्द स्मिति करता हुआ गोमटेश्वर का मुख प्रभुत्व, प्रतिष्ठा और सम्पत्ति के लिए लालायित और प्रयत्नशील मानवता के व्यवहार के प्रति अपनी घृणा प्रकट करता है। उसके पास संसार के लिए बहुत से संदेश हैं। वह मूर्ति सांसारिक वस्तुओं के लिए रक्तपात करने वाले युद्धों की निरर्थकता पर परस्त्री की इच्छा करने वाले, असत्य भाषण करने वाले और छल तथा चौर्यकर्म में प्रवृत्त लोगों पर हँसती है। शान्ति और सन्तोष का यह सन्देश इस संसार के सब दुःखों का वास्तविक उपाय है। इस प्रकार चामुण्डराय ने विश्व को अध्यात्म विद्या, प्रेम तथा प्राणिमात्र के लिए स्नेह का प्रकाश दिया है और गोमटेश्वर ने मानव जाति को अहिंसा का तत्वज्ञान सिखाया जो जैन संस्कृति का सार है।

इसके अनन्तर दूसरे बड़े कन्नड़ कवि नागचन्द्र मिलते हैं जो अपने को अभिनव पम्प कहते हैं। वह होयसाल सम्राट् विष्णुवर्द्धन के दरबार में राजकवि थे। उन्होंने कन्नड़ में मल्लिनाथपुराण और रामचन्द्रचरितपुराण नामक दो ग्रन्थ लिखे है। इनमें से दूसरा ग्रन्थ साधारणतया पम्प रामायण के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें कवि ने नई टिप्पणी लिखी है और वाल्मीकि रामायण के विषय से इस ग्रन्थ का विषय पूर्णतः भिन्न है। वहाँ रावण राक्षस नहीं है और न तो वह दुष्ट व्यक्ति था। उसने बड़ी सतर्कता से अहिंसा तत्त्व का अनुसरण किया था और अपने गुरु सुगुप्ति आचार्य के चरणों पर नतमस्तक होकर एक प्रण किया था जिसे परदारात्यागव्रत कहते हैं। वह उच्चकोटि का

सुसंस्कृत व्यक्ति था और खेचर राज्य का महान् सम्राट् था। रावण के चरित्र-बल पर एक घटना से प्रकाश पड़ता है। जब उसने नलकूबर के राज्य पर आक्रमण किया तो उसकी स्त्री उपरम्भे रावण से प्रेम करती है, किंतु उसे परदारात्यागव्रत का स्मरण होता है और वह आत्मसंयम की अपनी महती शक्ति प्रकट करता है। वह उपरम्भे को उपदेश देता है कि जैननीति उपदेशों में वर्णित नियमों के अनुसार उसे आचरण करना चाहिए। उसे अपने पति के प्रति, जो सुन्दर होने के अतिरिक्त बड़ा वीर भी था, विश्वासयोग्य होना चाहिए। सीता पर कुदृष्टि रखने का ही केवल पातक रावण ने किया। सीता के महान् सौन्दर्य से वह मोहित हुआ और संयम के उसके सब भाव नष्ट हो गए। कवि यहाँ कहता है कि रावण तो एक मानव ही था और उसमें मानवीय दोष थे। जब उसे सीता की भक्ति का विश्वास हुआ तो उसने महान सती के गुणों को मानना शुरू किया। तब उसके मन में क्रान्ति हुई और उसने सीता को अपने पति से भगा ले जाने के पाप के लिए शुद्ध हृदय से पश्चाताप किया। उसके पश्चात्ताप से उसका मन पवित्र हो जाता है। वह युद्ध में राम लक्ष्मण को हराकर तब सीता को उन्हें वापस देने का निश्चय करता है। वह एक वीर की तरह युद्धस्थल में मरता है। उसके भाग्य और उसकी दुर्बलता पर हमें दया आती है। इस प्रकार जैन कवियों ने दो भारतीय महाकाव्य रामायण और महाभारत पर नवीन प्रकाश डाला है।

बारहवीं शताब्दी में जैन राज्यों का नाश होना दिखलाई देता है यद्यपि ये राज्य दक्षिण कनारा के सन्थर राजाओं के वंशजों के राज्य में कर्नाटक के पश्चिमी भाग में कुछ शक्तिशाली थे। पन्द्रहवीं शताब्दी में कारकल में गोमटेश्वर की दूसरी मूर्ति स्थापित की गई और १७ वीं शताब्दी में जैन राजाओं ने वेनुर में गोमटेश्वरी मूर्ति की स्थापना की। इसके अनन्तर हमें वृत्त-विलास धर्मपरीक्षा नामक ग्रन्थ के लेखक ब्रह्मशिव, समय परीक्षा के लेखक तथा नयसेन धर्मामृत और जैन यशोधरा चरित के लेखक मिलते हैं। इन ग्रन्थों में दूसरे धर्मों की दुर्बलताएँ दिखाई गई हैं और विशेषतः यज्ञ और याग के नाम पर देवताओं को शान्त करने के लिए होने वाली पशुहिंसा को दोषपूर्ण ठहराया गया है। उनमें सृष्टि की कल्पना और ईश्वर के अवतार को झूठा ठहराया गया है। उन्होंने तर्क से ठहराया है कि जैनों की कर्म की कल्पना, ईश्वरतत्त्व, नीतिशास्त्र और अध्यात्म विद्या उच्च कोटि के थे। भाग्य की कल्पना सीमित थी। इस काल में अन्य धर्म के राजाओं ने भी जैन विद्वानों

को आश्रय दिया। और बहुत से जैन उनके दरबारों में प्रतिष्ठित स्थानों पर थे। १३वीं शताब्दी में हमें केशिराज नामक कन्नड़ वैयाकरण मिलते हैं। दूसरे वैयाकरण भट्टकालङ्क ने १७वीं शताब्दी में कर्नाटक शब्दानुशासन लिखा और कन्नड व्याकरण ग्रन्थों के पहले नागवर्मा प्रथम ने कन्नड़ छन्दःशास्त्र पर एक ग्रन्थ लिखा और बाणभट्ट की कादम्बरी का कन्नड़ भाषा में अनुवाद किया और नामवर्मा द्वितीय ने ११४५ ईसवी में कन्नड़ पद्यशास्त्र पर काव्यावलोकन, कर्नाटक भाषाभूषण नामक कन्नड़ व्याकरण और वस्तुकोष (संस्कृत कन्नड़ डिक्शनरी)। इन कवियों के अतिरिक्त नेमिचन्द्र अग्गल, असग, गुणनन्दी कुमुदेनन, मंगरस आदि दूसरों का उल्लेख किया जा सकता है, जिन्होंने तीर्थंकरों की जीवनी और उनके उपदेशों का वर्णन करते हुए अनेक पुराण लिखे हैं। अन्तिम प्रसिद्ध जैन कवि रत्नाकर वर्णी (१५५७ ईसवी) था, जिसने भरतेश वैभव और शतकत्रय लिखा है। यह कन्नड़ में उसका एक अत्युत्तम ग्रन्थ है और उसकी शैली सरल और उत्तम है। उसके ग्रन्थ सम्पूर्ण कर्नाटक देश में बहुत प्रसिद्ध हैं उसने अपने वीर भरत का वर्णन एक महान् राजा यति अर्थात् राजर्षि कह करके किया है। उसने भोग और योग दोनों को गृहस्थ के जीवन रूपी रथ के दो चक्र कहा है। भरत एक आदर्श राजा, एक स्नेह युक्त पिता, एक प्रेमी पति, एक उदार स्वामी, एक विश्वास पात्र ईश्वर का भक्त और अकृत्रिम तथा महान् गुणों वाला आदमी है। उसकी दृष्टि में रत्नाकर महाकवि आधुनिकतम है और उसके विषय का व्यवहार स्वयं अपूर्व है। यह ग्रन्थ वास्तव में एक कोषगृह है जिसमें कन्नड़ संस्कृतिरूपी रत्न पड़े हुए हैं। उस ग्रंथ में संगीत तथा नाटकीय कला का प्रदर्शन आश्चर्यजनक रीति से किया गया है। जैनों ने साहित्य और कला द्वारा कर्णाटक देश की सांस्कृतिक प्रगति के लिए बहुत कुछ किया है और इसके द्वारा अहिंसा, त्याग, सत्य और क्षमा का संदेश भी दिया है।

अनुवादक—वि० भि० घाणेकर

जैन कन्नड वाङ्मय

श्री के० भुजबली शास्त्री, विद्याभूषण, मूडबिद्री

दक्षिण भारत की विश्रुत पंच द्राविड भाषाओं में कन्नड एक है। इस भाषावर्ग की अवशिष्ट चार भाषाएं तमिल, तेलुगु, मलयालम एवं तुलु हैं। द्राविड भाषाएं संस्कृत, प्राकृत आदि आर्य भाषाओं से भिन्न मानी जाती हैं। इसका पहला कारण है कि इन भाषाओं में व्यवहार पर्याप्त स्वतंत्र शब्द प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। अर्थात् इन भाषाओं को किसी भी आर्य भाषा से उधार लेने की जरूरत नहीं पड़ती है। दूसरा कारण है कि इस भाषावर्ग का व्याकरण संस्कृत आदि आर्यभाषाओं के व्याकरणों से बहुत कुछ भिन्न है। इसके लिये कतिपय उदाहरण निम्न प्रकार दिये जा सकते हैं।

द्राविड भाषाओं में लिंग अर्थपरक है; सन्धिक्रम भिन्न है; संज्ञाओं के एकवचन तथा बहुवचन में एक ही प्रकार की विभक्तियां हैं; गुणवाचक शब्दों में तरतम भाव नहीं है; सम्बन्धार्थक सर्वनाम का सर्वथा अभाव है; कर्मणि प्रयोग कम है; क्रियाओं में निषेधरूप है, कृत्तद्धित प्रत्यय स्वतंत्र हैं।

ऊपर कहा गया है कि द्राविड भाषावर्ग में व्यवहार पर्याप्त स्वतंत्र शब्द प्रचुर परिमाण में पाये जाते हैं। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि इस भाषावर्ग में संस्कृत, प्राकृत आदि आर्य भाषाओं के शब्द हैं ही नहीं। हाँ, बाद में समय के प्रभाव से संस्कृत, प्राकृत आदि आर्य भाषाओं के शब्दों को कौन कहे, क्रमशः इनमें उर्दू, अंग्रेजी आदि विदेशी भाषाओं के शब्द भी आ मिले हैं। विदेशी शब्दों की यह रफ्तार केवल द्राविड भाषाओं में ही नहीं, प्रत्युत सभी भारतीय भाषाओं में इसी प्रकार जारी रही। इस प्राकृतिक अचल नियम को कोई रोक नहीं सकता। एक दृष्टि से यह है भी उपादेय। अन्यथा किसी भी भाषा के शब्द भण्डार की वृद्धि नहीं हो सकती। इतना ही नहीं, प्रत्येक भाषा की सीमित शब्दावली से काम भी नहीं चल सकता। बल्कि भाषा तत्त्व के धुरंधर विद्वान् डा० काल्डीवेल के मतानुसार अक्क, अत्त, कुटि, कोट, नीर, वल्लि, नीन, एड, मरुत्त, हेरंब, अट्ट, आम्, मुकुल, कुंतल, पालि, मंड, वल्लि, काक, माचल, मेक, सीर, ताल, वरुक, उल्क, तटित् या

तडित्, मलय, आलि, कलि, गंड, मुन्दि, खलीन, तल्प, कस्य और खर्जु आदि शब्द द्राविड भाषाओं से ही संस्कृत कोशों में लिये गये हैं।[१] इसी प्रकार दीनार, होरा आदि शब्द संस्कृत में लेटिन, ग्रीक आदि भाषाओं से लिये गये हैं। कई पाश्चात्य भाषा शास्त्रियों का यह भी मत है कि संस्कृत व्याकरण में प्रचलित ध्वनिविषयक खास कर टवर्गाक्षर द्राविड़ भाषाओं से ही लिये गये हैं।

यों तो मोहनजोदडो, हडप्पा आदि स्थानों में प्राप्त चित्र लिपियों से द्राविड भाषाओं का मूल वेद पूर्वकाल सिद्ध होता है। ब्राह्मी लिपि की तरह उस समय भी इन भाषाओं की स्वतंत्र लिपि मौजूद थी।[२] फिर भी खेद की बात है कि दूसरी शताब्दी के पूर्व का कन्नड साहित्य अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है। हां, दूसरी शताब्दी के कुछ कन्नड शिलालेख हमें अवश्य प्राप्त हुए हैं। साथ ही साथ ज्ञात हुआ है कि मिश्र में इसी शताब्दी में लिखे गये एक नाटक में भी कुछ कन्नड शब्द वर्तमान हैं।[3] इसमें संदेह नहीं है कि दीर्घ-काल से कन्नड साहित्य की ओर ध्यान दिया गया है। फलस्वरूप जिस समय हिंदी, बंगला, मराठी एवं गुजराती आदि भाषाओं का यहां पर जन्म भी नहीं हुआ था, उस समय भी कन्नड साहित्य का भण्डार अनेक बहुमूल्य ग्रंथ रत्नों से भरा पड़ा था।

प्राचीन कन्नड साहित्य को उच्च एवं प्रौढ़ बनाने का सारा श्रेय जैन आचार्यों एवं मान्य कवियों को दिया जाता है। यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि जैनों के ही द्वारा कन्नड भाषा का उद्धार तथा प्रसार हुआ है। उन्होंने ही इस भाषा के साहित्य को एक उच्च श्रेणी की भाषा के गौरव योग्य बनाया है। कन्नड साहित्य को उन्नति के चरम शिखर पर पहुँचाने में असीम प्रयत्न करके जैनों ने इस साहित्य में सदा के लिये अपना नाम अमर कर दिया है। इसीसे आज भी अखण्ड कर्णाटक बड़े आदर के साथ इनके सुयश के गीत गा गाकर अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है। १३ वीं शताब्दी तक कन्नड भाषा के जितने उद्भट ग्रंथकर्ता हुए हैं वे प्रायः सब के सब जैन हैं।

'जैन ही कन्नड भाषा के आदि कवि हैं। आजतक की उपलब्ध सभी

[१] 'कर्णाटक कवि चरिते' भाग ३ की प्रस्तावना देखें।

[२] 'कन्नड संस्कृति' पृष्ठ ८० देखें।

[3] 'कर्णाटक कवि चरिते' भाग १ एवं २ की प्रस्तावना देखें।

प्राचीन एवं उत्तम कृतियाँ जैन कवियों की ही हैं। ग्रंथरचना में जैनों के प्राबल्य का काल ही कन्नड साहित्य की उच्च स्थिति का काल मानना होगा। प्राचीन जैन कवि ही कन्नड भाषा के सौंदर्य एवं कांति के विशेषतया कारणभूत हैं। उन्होंने शुद्ध और गंभीर बोली में ग्रंथ रच कर ग्रंथरचना कौशल को उन्नत स्तर पर पहुँचाया है। प्रारंभिक कन्नड साहित्य उन्हीं की लेखनी द्वारा लिखा गया है। कन्नड भाषाध्ययन के सहायभूत छन्द, अलंकार, व्याकरण और कोश आदि ग्रंथ विशेषतः जैनों के द्वारा ही रचे गए हैं।'

बोल-चाल की भाषा को ग्रंथ रूप देने का सारा श्रेय जैन कवियों को प्राप्त है। उपलब्ध कन्नड साहित्य में नृपतुंग का 'कवि राजमार्ग' ही आदिम ग्रंथ एवं 'कविता गुणार्णव' महाकवि आदि पंप ही आदि कवि हैं। कर्णाटक के के राजकीय इतिवृत्त से भी जैनों का निकट संबन्ध है। 'कवि चक्रवर्ती' महाकवि रन्न काव्यनिर्माण कला में महकवि भवभूति से कम नहीं था। 'जिन समय दीपक' यह रन्न वस्तुतः कन्नड साहित्य का एक समुज्ज्वल रत्न था। कन्नड काव्य में 'कविचक्रवर्ती' उपाधि प्राप्त पोन्न, रन्न तथा जन्न ये तीनों वस्तुतः जैन रत्नत्रय थे। विलक्षण कविता सामर्थ्य प्राप्त पूर्वोक्त महाकवि पंप अनन्य कीर्तिशाली कवि था। इसी प्रकार महाकवि नागचन्द्र के द्वारा प्रशंसित 'अभिनववाग्देवी' उपाधिधारिणी कंति आदि कवयित्री रहीं।

कन्नड जैन पुराणों में आदि पंप (ई० सन् ९४१) का आदि पुराण, पोन्न (ई० सन् लगभग ९५०) का शान्तिनाथ पुराण, रन्न (ई० ९६०) का अजितनाथ पुराण, चामुण्डराय (ई० सन् ९७८) का त्रिषष्टिशलाका पुराण, नागचन्द्र (ई० सन् लगभग ११००) का मल्लिनाथ पुराण. कर्णपार्य (ई० सन् लगभग ११४०) का नेमिनाथ पुराण, अग्गल (ई० सन् ११८९) चन्द्रप्रभु पुराण, आचण्ण (ई० सन् लगभग ११९५) का वर्धमान पुराण, नेमिचन्द्र (ई० सन् लगभग ११७०) का अर्धनेमिपुराण, बन्धुवर्मा (ई० सन् लगभग १२००) का हरिवंशपुराण, पार्श्व पण्डित (ई० सन् १२०५) का पार्श्वनाथ पुराण, जन्न (ई० सन् १२०९) का अनन्तनाथपुराण, द्वितीय गुणवर्मा (ई० सन् लगभग १२२५) का पुष्पदन्तपुराण, कमलभव (ई० सन् लगभग १२३५) का शान्तीश्वरपुराण, मधुर (ई० सन् लगभग १३८५) का धर्मनाथपुराण, मंगरस (ई० सन् १५०८) का नेमिजिनेशसंगति, शान्तिकीर्ति (ई० सन् १५१९) का शान्तिनाथपुराण, दोड्डय्य (ई० सन् १५५०) का चन्द्रप्रभपुराण और

रत्नाकर वर्णी (ई० सन् १५५७) का भरतेशवैभव प्रमुख हैं। इनमें पद लालित्य प्रसाद और सौष्ठव आदि काव्योचित सभी गुण भरे पड़े हैं।

इसी प्रकार षट्पदि ग्रंथों में कुमुदेन्दु (ई० सन् लगभग १२७५) का रामायण, कवि भास्कर (ई० सन् १४२४) का जीवन्धरचरित, कल्याणकीर्ति (ई० सन् १४३९) का ज्ञानचन्द्राभ्युदय, बोम्मरस (ई० सन् १४८५) का सनत्कुमारचरित, कोटेश्वर (ई० सन् १५००) का जीवन्धरषट्पदि, मंगरस (ई० सन् १५०८) का सम्यक्त्व कौमुदि[1] तथा जयनृप काव्य; सांगत्य में रत्नाकर वर्णी (ई० सन् १५५७) का भरतेश वैभव, पद्मनाथ (ई० सन् लगभग १६८०) का रामपुराण, चन्द्रभ (ई० सन् १६४५) का गोम्मटेश्वर चरित; शतक ग्रंथों में रत्नाकर वर्णी (ई० सन् १५५७) का शतकत्रयि; व्याकरण ग्रंथों में नागवर्मा (ई० सन् लगभग ११४५) का भाषाभूषण तथा शब्दस्मृति, केशिराज (ई० सन् लगभग १२६०) का शब्द मणिदर्पण, भट्टा कलंक (ई० सन् १६०४) का शब्दानुशासन; छन्दश्शास्त्र में नागवर्मा (ई० सन् लगभग ९९०) का छन्दोम्बुधि एवं अलंकार ग्रंथों में नृपतुंग (ई० सन् ८१४–८७७) का कविराजमार्ग, नागवर्मा (ई० सन् लयभग ९९०) का काव्यावलोकन, उदयादित्य (ई० सन् लगभग ११५०) का उदयादित्यालंकार और साल्व (ई० सन् लगभग १५५०) का रसरत्नाकर आदि बहुत प्रसिद्ध हैं।

उल्लिखित ग्रंथों के अतिरिक्त जैन कवियों ने वैद्यक, ज्योतिष आदि लोकोपकारी विद्याओं पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है। वैद्यक ग्रंथों में सोमनाथ (ई० सन् लगभग ११५०) का कल्याणकारक, मंगराज (ई० सन् लगभग १३६०) का खगेन्द्रमणिदर्पण, श्रीधर देव (ई० सन् लगभग १५००) का वैद्यामृत, साल्व (ई० सन् लगभग १५५०) का वैद्यसांगत्य, अभिनवचन्द्र (ई० सन् लगभग १४००) का अश्वशास्त्र, कीर्तिवर्मा (ई० सन् लगभग ११२५) का गोवैद्य; ज्योतिष ग्रंथों में श्रीधराचार्य (ई० सन् १०४९) का जातकतिलक; गणित ग्रंथों में राजादित्य (ई० सन् लगभग ११२०) के व्यवहार गणित, क्षेत्रगणित, व्यवहार-रत्न, लीलावति, चित्रहसुगे, जैनगणितटीकोदाहरण एवं सूपशास्त्र सम्बन्धी ग्रंथों में मंगरस का सूपशास्त्र आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

महाकवि नागचन्द्र अगर उपासना प्रिय था तो कवि नेमिचन्द्र पक्का शृंगारोपासक था। कवि चक्रवर्ती जन्न अगर अहिंसा प्रेमी था तो विरक्त

[1] संस्कृत का ईकारान्त शब्द कन्नड में इकारान्त होता है।

कवि बन्धुवर्मा अध्यात्म प्रिय था। इसी प्रकार महाकवि अग्गल अगर संस्कृत पक्षपाती था तो कवि अंडय्य कन्नड पक्षपाती रहा। सर्व प्रथम संस्कृत भाषा के बहुमूल्य भूषणों को पहना कर कन्नड वाग्देवी को सजाने का श्रेय एवं पीछे उस अलंकार भार से दुःखी उसे उस भार से मुक्त करने का यश इन दोनों जैन कवियों को ही प्राप्त हैं।

साथ ही साथ कन्नड भाषा में जब क्रमशः शिथिलता आने लगी, तब उसमें दृढ़ता लाने वाला वैयाकरण केशिराज भी जैन ही था। इस प्रकार प्रत्येक पहलुओं से जैन कवियों ने कन्नड भाषा की अटूट सेवा की है। यह अनुपम सेवा कभी भी भुलाई नहीं जा सकती। जैन काव्यों में हमें केवल काव्यधर्म ही नहीं; किंतु आत्मवाद, साम्यवाद, अपेक्षावाद, अहिंसावाद, और स्याद्वाद आदि सभी मिल रहे हैं। पुराणों में भी हमें अभी महापुरुष की जीवनी के साथ साथ अनुकरणीय आदर्श चरित्र का संकेत भी मिलता है। अगर इन पुराणों के पूर्वार्ध में शृंगार-रस की स्वच्छ यमुना बहती है तो उत्तरार्ध में नियम से शांतरस की निर्मल गंगा बहती मिलेगी। जैन पुराण एवं काव्यों में यह एक उल्लेखनीय ख़ास बात है।

इसमें शक नहीं हैं कि पंप, पोन्न, रन्न, नागचन्द्र तथा जन्न इन जैन कवियों के नाम कन्नड़ साहित्य में आचन्द्रार्क अमर रहेंगे। अंडय्य, नेमिचन्द्र जैसे उद्भट कवियों के द्वारा लिखी गई कथाएं इस बीसवीं शताब्दी के नामी उपन्यास या कादंबरियों से कम नहीं हैं। रसिक कवि रत्नाकर का भरतेश वैभव तो एक अमूल्य रत्न ही है। इससे रत्नाकरके विशाल अध्ययन एवं व्यापक ज्ञान का यथेष्ट परिचय मिलता है। पंप तथा रन्न का महाभारत एवं नागचन्द्र की रामायण दुर्योधन और रावण जैसे व्यक्तियों पर भी हमें आदर बुद्धि उत्पन्न कराती है। सारांशतः जैन कवियों ने देश या जनता को काव्य, काव्यलक्षण, जीवनोपयुक्त ज्ञान आदि सब कुछ दिया है।

गंग, राष्ट्रकूट, चालुक्य, होयसल विजयनगर, और मैसूर आदि शासक सदा उपर्युक्त मान्य कवियों के पोषक एवं प्रोत्साहक बने रहे। इन्हीं राजा महाराजाओं का आश्रय पाकर पंप, रन्न, पोन्न और जन्न जैसे महाकवियों ने अपनी अमर कृतियों के द्वारा कन्नड वाग्देवी का मुख उज्जवल किया है। बस यही कन्नड वाङ्मय का संक्षिप्त परिचय हैं।

नव प्रकाशित जैन साहित्य

पिछले कुछ वर्षों में जैन साहित्य की जो प्रगति हुई है, वह प्रेरक और उत्साहवर्द्धक है नीचे कुछ सुसम्पादित ग्रंथ तथा प्रकाशन संस्थाओं का परिचय दिया जा रहा है ।

जीवराज जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर द्वारा प्रकाशित दो ग्रन्थ खास महत्त्व के हैं। पहला है 'यशस्तिलक एण्ड इन्डियन् कल्चर्'। इसके लेखक हैं प्रोफेसर के० के० हाण्डीकी। श्री हाण्डीकी ने, ऐसे संस्कृत ग्रन्थों का किस प्रकार अध्ययन किया जा सकता है उसका एक रास्ता बताया है। यशस्तिलक के आधार पर तत्कालीन भारतीय संस्कृति के सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक आदि पहलुओं से संस्कृति का चित्र खींचा है। लेखक का यह कार्य बहुत समय तक बहुतों को नई प्रेरणा देने वाला है। दूसरा ग्रन्थ है 'तिलोयपण्णत्ति' द्वितीय भाग। इसके संपादक हैं ख्यातनामा प्रो० हीरालाल जैन और प्रो० ए० एन्० उपाध्ये। दोनों संपादकों ने हिन्दी और अंग्रेजी प्रस्तावना में मूलसम्बद्ध अनेक ज्ञातव्य विषयों की सुविशद चर्चा की है।

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी अपने कई प्रकाशनों से सुविदित है। इसके नये प्रकाशन निम्नलिखित हैं—पहला है 'न्यायविनिश्चय विवरण' प्रथम भाग। इसके संपादक है प्रसिद्ध पं० महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य। अकलंक के मूल और वादिराज के विवरण की अन्य दर्शनों के साथ तुलना करके संपादक ने ग्रन्थ का महत्त्व बढ़ा दिया है। ग्रन्थ की प्रस्तावना में संपादक ने स्याद्वादसंबंधी विद्वानों के भ्रमों का निरसन करने का प्रयत्न किया है। उन्हीं का दूसरा संपादन है तत्त्वार्थ की 'श्रुतसागरी टीका'। उसकी प्रस्तावना में अनेक ज्ञातव्य विषयों की चर्चा सुविशद रूप से की गई है। खास कर 'लोक वर्णन और भूगोल' संबंधी भाग बड़े महत्त्व का है। उसमें उन्होंने जैन, बौद्ध, वैदिक परंपरा के मन्तव्यों की तुलना की है। ज्ञानपीठ का तीसरा प्रकाशन है—'समयसार' का अंग्रेजी अनुवाद। इसके संपादक हैं वयोवृद्ध विद्वान् प्रो० ए. चक्रवर्ती। इस ग्रन्थ की भूमिका जैन दर्शन के महत्त्वपूर्ण विषयों से परिपूर्ण है। पर उन्होंने शंकराचार्य पर कुन्दकुन्द और अमृतचन्द्र

के प्रभाव की जो संभावना की है वह चिन्त्य है।[1] इसके अलावा 'महापुराण' का नया संस्करण हिन्दी अनुवाद के साथ भी प्रकाशित हुआ है। अनुवादक हैं पं० पन्नालाल, साहित्याचार्य। संस्कृत-प्राकृत छन्दःशास्त्र के सुविद्वान् प्रो० एच्. डी. वेलणकर ने सभाष्य 'रत्नमंजूषा' का संपादन किया है। इस ग्रन्थ में उन्होंने टिप्पण भी लिखा है।

आचार्य श्री मुनि जिनविजय जी के मुख्य संपादकत्व में प्रकाशित होने वाली 'सिंधी जैन ग्रन्थ माला' से शायद ही कोई विद्वान् अपरिचित हो।

प्रो० दामोदर धर्मानन्द कोसंबी संपादित 'शतकत्रयादि', प्रो० अमृतलाल गोपाणी संपादित 'भद्रबाहु संहिता', आचार्य जिनविजयजी संपादित 'कथा कोष-प्रकरण', मुनि श्री पुण्यविजय जी सम्पादित 'धर्माभ्युदय महाकाव्य' इन चार ग्रन्थों के प्रास्ताविक व परिचय में साहित्य, इतिहास तथा संशोधन में रस लेने वालों के लिए बहुत कीमती सामग्री है।

'षट्खण्डागम' की 'धवला' टीका के नव भाग प्रसिद्ध हो गए हैं। यह अच्छी प्रगति है। किन्तु 'जयधवला' टीका के अभी तक दो ही भाग प्रकाशित हुए हैं। आशा की जाती है कि ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के प्रकाशन में शीघ्रता होगी। भारतीय ज्ञानपीठ ने 'महाबंध' का एक भाग प्रकाशित किया किन्तु इसकी भी प्रगति रुकी हुई है। यह भी शीघ्रता से प्रकाशित होना जरूरी है।

'यशोविजय जैनग्रन्थ माला' पहले काशी से प्रकाशित होती थी। उसका पुनर्जन्म भावनगर में स्व० मुनि श्री जयन्तविजय जी के सहकार से हुआ है। पिछले वर्षों में जो पुस्तकें प्रसिद्ध हुई हैं उनमें से कुछ का परिचय देना आवश्यक है। 'न्यायावतार-वार्तिक-वृत्ति' यह जैन न्याय विषयक ग्रन्थ है। इसमें मूल कारिकाएँ सिद्धसेन कृत हैं। उनके ऊपर पद्यबद्ध वार्तिक और उसकी गद्य वृत्ति शान्त्याचार्य कृत है। इसका संपादन पं० दलसुख मालवणिया ने किया है। संपादक ने जो विस्तृत भूमिका लिखी है उसमें आगम काल से लेकर एक हजार वर्ष तक के जैन दर्शन के प्रमाण-प्रमेय विषयक चिन्तन का ऐतिहासिक व तुलनात्मक निरूपण है। ग्रन्थ के अन्त में संपादक ने अनेक विषयों पर टिप्पण लिखे हैं जो भारतीय दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन करने वालों के लिए ज्ञातव्य हैं।

[1] देखो, प्रो० विमलदास कृत समालोचना; ज्ञानोदय—सितम्बर १९५१।

उस ग्रन्थमाला में स्व० मुनि श्री जयन्तविजय जी के कुछ ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं उनका निर्देश करना आवश्यक है। "तीर्थराज आबु" यह 'आबु' नाम से प्रथम प्रकाशित पुस्तक का तृतीय संस्करण है। इसमें ८० चित्र हैं। और संपूर्ण आबू का पूरा परिचय है। इस पुस्तक की यह भी एक विशेषता है कि आबू के प्रसिद्ध मंदिर विमल वसही और लूणिग वसही में उत्कीर्ण कथा-प्रसंगों का पहली बार यथार्थ परिचय कराया गया है। 'अर्बुदाचल प्राचीन जैन लेख संदोह' यह भी उक्त मुनि जी का ही संपादन है। इसमें आबू में प्राप्त समस्त जैन शिलालेख सानुवाद दिये गए हैं। इसके अलावा इसमें अनेक उपयोगी परिशिष्ट भी हैं। उन्हीं की एक अन्य पुस्तक 'अचलगढ़' है जिसकी द्वितीय आवृत्ति हाल में ही हुई है। उन्हीं का एक और ग्रन्थ 'अर्बुदाचल प्रदक्षिणा' भी प्रकाशित हुआ है। इसमें आबू पहाड़ के और उसके आसपास के १७ गाँवों का वर्णन है, चित्र हैं और नक्शा भी दिया हुआ है। इसी का सहचारी एक और ग्रन्थ भी मुनि जी ने 'अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह' नाम से संपादित किया है। इसमें प्रदक्षिणा गत गाँवों के शिलालेख सानुवाद हैं। ये सभी ग्रन्थ ऐतिहासिकों के लिए अच्छी खोज की सामग्री उपस्थित करते हैं।

वीरसेवा मंदिर, सरसावा के प्रकाशनों में से 'पुरातन जैन वाक्य सूची' प्रथम उल्लेख योग्य है। इसके संग्राहक-संपादक हैं वयोवृद्ध कर्मठ पंडित श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार। इसमें मुख्तार जी ने दिगम्बर प्राचीन प्राकृत ग्रन्थों की कारिकाओं की अकारादि-क्रम से सूची दी है। संशोधक विद्वानों के लिए बहुमूल्य पुस्तक है। उन्हीं मुख्तार जी ने 'स्वयंभूस्तोत्र' और 'युक्त्यनुशासन, का भी अनुवाद प्रकाशित किया है। संस्कृत नहीं जानने वालों के लिए श्री मुख्तार जी ने यह अच्छा संस्करण उपस्थित किया है। इसी प्रकार मंदिर की ओर से पं० श्री दरबारी लाल कोठिया कृत 'आप्तपरीक्षा' का हिन्दी अनुवाद भी प्रसिद्ध हुआ है। वह भी जिज्ञासुओं के लिए अच्छी सामग्री उपस्थित करता है।

'श्री दिगम्बर जैन क्षेत्र श्री महावीर जी' यह एक तीर्थं रक्षक संस्था है किन्तु उसके संचालकों के उत्साह के कारण उसने जैन साहित्य के प्रकाशन के कार्य में भी रस लिया है और दूसरी वैसी संस्थाओं के लिए भी वह प्रेरणादायी सिद्ध हुई है। उस संस्था की ओर से प्रसिद्ध आमेर (जयपुर) भंडार की सूची प्रकाशित हुई है। और 'प्रशस्तिसंग्रह' नाम से उन हस्तलिखित

प्रतियों के अंत में दी गई प्रशस्तिओं का संग्रह भी प्रकाशित हुआ है। उक्त सूची से प्रतीत होता है कि कई अपभ्रंश ग्रन्थ अभी प्रकाशन की राह देख रहे हैं। उसी संस्था की ओर से जैनधर्म के जिज्ञासुओं के लिए छोटी छोटी पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित हुई हैं। 'सर्वार्थ सिद्धि' नामक 'तत्त्वार्थसूत्र' की व्याख्या का संक्षिप्त संस्करण भी प्रकाशित हुआ है।

माणिकचन्द्र दि० जैन-ग्रन्थ माला, बंबई की ओर से कवि हस्तिमल्ल के शेष दो नाटक 'अंजना-पवनंजय नाटक and सुभद्रा नाटिका' के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। उनका संपादन प्रो० एम्. वी. पटवर्धन ने एक विद्वान् को शोभा देने वाला किया है। ग्रन्थ की प्रस्तावना से प्रतीत होता है कि संपादक संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ पंडित हैं।

वीर शासन संघ, कलकत्ता की ओर से "The Jaina Monuments and Places of First class Importance" यह ग्रन्थ श्री टी० एन्० रामचन्द्र द्वारा संगृहीत होकर प्रकाशित हुआ है। श्री रामचन्द्र इस विषय के मर्मज्ञ पंडित हैं अतएव उन्होंने अपने विषय को सुचारु रूप से उपस्थित किया है। लेखक ने पूर्व बंगाल में जैनधर्म—इस विषय पर उक्त पुस्तक में जो लिखा है वह विशेषतया ध्यान देने योग्य है।

डॉ० महाण्डले ने 'Historical Grammar of Inscriptional Prakrits (पूना १९४८) में प्रमुख प्राकृत शिलालेखों की भाषा का अच्छा विश्लेषण किया है। और अभी अभी Dr. Bloch ने 'Les Inscriptions d' Asoka (Paris 1950) में अशोक के शिलालेखों की भाषा का अच्छा विश्लेषण किया है।

भारतीय पुरातत्त्व के सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ० विमलाचरण लॉ ने कुछ जैन सूत्रों के विषय में लेख लिखे थे। उनका संग्रह 'सम् जैन केनोनिकल सूत्राज्' इस नाम से रॉयल एशियाटिक सोसायटी की बंबई शाखा की ओर से प्रसिद्ध हुआ है, जैन सूत्रों के अध्ययन की दिशा इन लेखों से प्राप्त होती है। लेखक ने इस पुस्तक में कई बातें ऐसी भी लिखी हैं जिनसे सहमत होना संभव नहीं।

प्रो० कापड़िया ने गुजराती भाषा में 'पाइय भाषाओ अने साहित्य' नामक एक छोटी सी पुस्टिका लिखी है। इसमें ज्ञातव्य सभी बातों के समावेश का

प्रयत्न होने से पुस्तिका उपयोगी सिद्ध हुई है। किन्तु इसमें भी कई बातें ऐसी लिखी हैं जिनकी जाँच होना जरूरी है। उन्होंने जो कुछ लिखा है उसमें बहुत सा ऐसा भी है जो उनके पुरोगामी लिख चुके हैं किन्तु प्रो० कापड़िया ने उनका निर्देश नहीं किया।

जैन मूर्तियों पर उत्कीर्ण लेखों का एक संग्रह 'जैन धातु प्रतिमा लेख' नाम से मुनि श्री कान्तिसागर जी के द्वारा संपादित होकर सूरत से प्रकाशित हुआ है। इसमें तेरहवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक के लेख हैं।

. जैन ग्रन्थ प्रकाशक सभा, अहमदाबाद भी एक पुरानी प्रकाशन संस्था है। यद्यपि इसके प्रकाशन केवल पुरानी शैली से ही होते रहते हैं तथापि उसके द्वारा प्रकाशित प्राचीन और नव निर्मित अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन अभ्यासी के लिए उपेक्षणीय नहीं है।

जैन कल्चरल रिसर्च सोसायटी, बनारस को स्थापित हुए सात वर्ष हुए हैं। उसने इतने अल्प काल में तथा अतिपरिमित साधनों की हालत में संशोधनात्मक दृष्टि से लिखी गई जो अनेक पत्रिकाएँ तथा कई पुस्तकें हिन्दी व अंग्रेजी में प्रसिद्ध की हैं एवं भिन्न भिन्न विषय के उच्च उच्चतर अभ्यासियों को तैयार करने का प्रयत्न किया है वह आशास्पद है। डॉ० नथमल टाटिया का D. Litt. उपाधि का महानिबन्ध 'स्टडीज् इन् जैन फिलॉसॉफी' छपकर तैयार है। इस निबंध में डा० टाटिया ने जैन दर्शन से सम्बद्ध तत्त्व, ज्ञान, कर्म, योग जैसे विषयों पर विवेचनात्मक विशिष्ट प्रकाश डाला है। शायद अंग्रेजी में इस ढंग की यह पहली ही पुस्तक है।

आचार्य हेमचन्द्र कृत 'प्रमाण-मीमांसा' मूल और हिन्दी टिप्पणियों के साथ प्रथम सिंघी सिरीज़ में प्रकाशित हो चुकी है। पर उसका प्रामाणिक अंग्रेजी अनुवाद न था। इस अभाव की पूर्त्ति डॉ सातकोड़ी मुखर्जी और डॉ० नथमल टाटिया ने की है। 'प्रमाण-मीमांसा' के प्रस्तुत अनुवाद द्वारा जैन दर्शन व प्रमाण शास्त्र की परिभाषाओं के लिए अंग्रेजी समुचित रूपान्तर की सामग्री उपस्थित की गई है, जो अंग्रेजी द्वारा शिक्षा देने और पाने वालों की दृष्टि से बहुत उपकारक है।

प्रो० भोगीलाल सांडेसरा का Ph. D. का महानिबन्ध 'कन्ट्रीब्यूशन टु संस्कृत लिटरेचर ऑफ वस्तुपाल एण्ड हिज लिटरेरी सर्कल' प्रेस में है और

शीघ्र ही सिंघी सिरीज से प्रकाशित होने वाला है। यह निबन्ध साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से जितना गवेषणापूर्ण है उतना ही महत्त्व का भी है।

प्रो० विलास आदिनाथ संघवे ने Ph. D. के लिए जो महानिबन्ध लिखा है उसका नाम है Jaina Community–A Social Survey—इस महानिबन्ध में प्रो० संघवे ने पिछली जनगणनाओं के आधार पर जैन संघ की सामाजिक परिस्थिति का विवेचन किया है। साथ ही जैनों के सिद्धान्तों का भी संक्षेप में सुंदर विवेचन किया है। यह ग्रन्थ 'जैन कल्चरल रिसर्च सोसायटी' की ओर से प्रकाशित होगा। उसी सोसाइटी की ओर से डॉ० बागची की पुस्तक Jain Epistemology छप रही है।

डॉ० जगदीशचन्द्र जैन की Ph.D. की पुस्तक 'लाइफ़ इन् एन्शयन्ट इण्डिया, एज डिपिक्टेड् जैन केनन्स्', बंबई की न्यू बुक कंपनी ने प्रकाशित की है। न केवल जैन परंपरा के बलिक भारतीय परंपरा के अभ्यासियों एवं संशोधकों के सम्मुख बहुत उपयोगी सामग्री उक्त पुस्तक में है। उन्हीं की एक हिन्दी पुस्तक 'भारत के प्राचीन जैन-तीर्थ' शीघ्र ही 'जैन कल्चरल् रिसर्च सोसायटी' से प्रकाशित हो रही है।

गुजरात विद्यासभा (भो० जे० विद्याभवन) अहमदाबाद की ओर से तीन पुस्तकें यथासंभव शीघ्र प्रकाशित होने वाली हैं जिनमें से पहली है—'गणधर-वाद'–गुजराती भाषान्तर। अनुवादक पं० दलसुख मालवणिया ने इसका मूल पाठ जैसलमेर स्थित सबसे अधिक पुरानी प्रति के आधार से तैयार किया है और भाषान्तर के साथ महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना भी जोड़ी है। 'जैन आगममां गुजरात' और 'उत्तराध्ययन' का पूर्वार्ध-अनुवाद, ये दो पुस्तकें डॉ० भोगीलाल सांडेसरा ने लिखी हैं। प्रथम में जैन आगमिक साहित्य में पाये जाने वाले गुजरात संबंधी उल्लेखों का संग्रह व निरूपण है और दूसरी में उत्तराध्ययन मूल की शुद्ध वाचना के साथ उसका प्रामाणिक भाषान्तर है।

श्री साराभाई नवाब, अहमदाबाद के द्वारा प्रकाशित निम्नलिखित पुस्तकें अनेक दृष्टियों से महत्त्व की हैं—'कालकाचार्य कथासंग्रह' संपादक पं० अंबालाल प्रेमचन्द्र शाह। इसमें प्राचीन काल से लेकर मध्यकाल तक लिखी गई कालका-चार्य की कथाओं का संग्रह है और उनका सार भी दिया हुआ है। ऐतिहासिक गवेषकों के लिए यह पुस्तक महत्त्व की है। डॉ० मोतीचन्द्र की पुस्तक—'जैन मिनियेचर पेइन्टिंग्ज फ्रॉम वेस्टर्न इण्डिया' यह जैन हस्तलिखित प्रतियों में

चित्रित चित्रों के विषय में अभ्यासपूर्ण है। उसी प्रकाशक की ओर से 'कल्पसूत्र' शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। इसका संपादन श्री मुनि पुण्यविजय जी ने किया है और गुजराती अनुवाद पं० बेचरदास जी ने।

मूलरूप में पुराना, पर इस युग में नये रूप से पुनरुज्जीवित एक साहित्य संरक्षक मार्ग का निर्देश करना उपयुक्त होगा। यह मार्ग है शिला व धातु के ऊपर साहित्य को उत्कीर्ण करके चिरजीवित रखने का। इसमें सबसे पहले पालीताना के आगममंदिर का निर्देश करना चाहिए। उसका निर्माण जैन साहित्य के उद्धारक, समस्त आगमों और आगमेतर सैकड़ों पुस्तकों के संपादक आचार्य सागरानन्द सूरि जी के प्रयत्न से हुआ है। उन्होंने ऐसा ही एक दूसरा मंदिर सूरत में भी बनवाया है। प्रथम में शिलाओं के ऊपर और दूसरे में ताम्रपटों के ऊपर प्राकृतिक जैन आगमों को उत्कीर्ण किया गया है। हम लोगों के दुर्भाग्य से ये साहित्यसेवी सूरि अब हमारे बीच नहीं हैं। ऐसा ही प्रयत्न षट्खंडागम की सुरक्षा का हो रहा है। वह भी ताम्रपट पर उत्कीर्ण हो रहा है। किन्तु आधुनिक वैज्ञानिक तरीके का उपयोग तो मुनि श्री पुण्य विजय जी ने ही किया है। उन्होंने जैसलमेर के भंडार की कई प्रतियों का सुरक्षा और सर्व सुलभ करने की दृष्टि से माइक्रोफिल्मिंग कराया है।

संशोधकों व ऐतिहासिकों का ध्यान खींचने वाली एक नई संस्था का अभी प्रारंभ हुआ है। राजस्थान सरकार ने मुनि श्री जिनविजय जी की अध्यक्षता में 'राजस्थान पुरातत्त्व मंदिर' की स्थापना की है। राजस्थान में सांस्कृतिक व ऐतिहासिक अनेकविध सामग्री बिखरी पड़ी है। इस संस्था द्वारा वह सामग्री प्रकाश में अएगी तो संशोधन क्षेत्र का बड़ा उपकार होगा।

प्रो० एच० डी० वेलणकर ने हरितोषमाला नामक ग्रन्थ माला में 'जयदामन्' नाम से छन्दःशास्त्र के चार प्राचीन ग्रन्थ संपादित किए हैं। 'जयदेव छन्दस्', जयकीर्ति कृत—'छन्दोनुशासन', केदार का 'वृत्तरत्नाकर', और आ हेमचन्द्र का 'छन्दोनुशासन' इन चार ग्रन्थों का उसमें समावेश हुआ है।

'Studien zum Mahanisiha' नाम से हेमबर्ग से अभी अभी एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है। इसमें महानिशीथ नामक जैन छेदग्रन्थ के छठे से आठवें अध्ययन तक का विशेषरूप से अध्ययन Frank Richard Hamm और डॉ० शुब्रिंग ने करके अपने अध्ययन का जो परिणाम हुआ उसे लिपिबद्ध कर दिया है।

अन्य मुद्रित ग्रन्थ

भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

१—वर्द्धमान (महाकाव्य)—महाकवि अनूप शर्मा ।
२—नाममाला (सभाष्य) धनञ्जयकृत ।
३—कन्नड़ प्रान्तीय ताड़पत्रीय ग्रन्थ सूची—के. भुजबली शास्त्री ।
४—थिरू कुरल काव्य (तामिल लिपि में)—ए. चक्रवर्ती ।
५—केवल ज्ञान प्रश्न चूड़ामणि ।
६—जातकट्ट कथा (प्रथम भाग)
७—महाबन्ध (दृष्टि बन्धाधिकार) द्वि. पुस्तक ।
८—तत्त्वार्थ राजवार्त्तिक—पं० महेन्द्रकुमार द्वारा सम्पादित, प्रथम भाग ।
९—वसुनन्दी श्रावकाचार ।
१०—भारतीय ज्योतिष—पं० नेमिचन्द्र जैन ।
११—आधुनिक जैन कवि ।
१२—जैन शासन ।
१४—सभाष्य रत्न मंजूषा ।
१५—मदन पराजय ।
१६—जैन जागरण के अग्रदूत ।

विजयवल्लभ सूरीश्वर ज्ञान मन्दिर, कोटा

१—तिलकमंजरी, शान्त्याचार्य टिप्पण एवं लाभ विजयकृत टीका सहित ।
२—सिद्धहेमशब्दानुशासन बृहद्वृत्ति लाभविजयकृत टीका सहित ।

कान्ति तत्त्वज्ञान सिरीज़, बम्बई

१—तत्वार्थ प्रश्नोत्तर ।

सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा

श्रमण सूत्र—कवि अमरचन्द्र जी महाराज
सामायिक सूत्र— ,,
सत्य हरिश्चन्द्र ,,
जैनत्व की झाँकी ,,
भक्तामर स्तोत्र ,,
कल्याण मन्दिर स्तोत्र ,,
वीर स्तुति ,,

मंगलवाणी—अमोलचन्द्र जी महाराज

उज्ज्वल वाणी—महासती उज्वकुँवर जी के प्रवचन

जितेन्द्रस्तुति—कवि अमरचन्द जी महाराज

काँटों के राही— डॉ० इन्द्र चन्द्र

भारतीय संस्कृति की दो धाराएं ,,

अहिंसा दर्शन—कवि अमरचन्द जी महाराज।

सेठिया जैन ग्रन्थमाला, बीकानेर

१—श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह—आठ भाग, जैनागमों की बातों का सरल हिन्दी में संग्रह।

२—दस पइन्ना

३—जैनदर्शन

महावीर जैन विद्यालय, बम्बई

१—अध्यात्मकल्पद्रुम

जैन कल्चरल रिसर्च सोसायटी, बनारस-५

१—गुजरात का जैन धर्म—मुनि श्री जिनविजय जी

२—जैन ग्रन्थ और ग्रन्थकार—श्री फतहचन्द्र बेलानी

3—Jainism—The Oldest Living Religion—J. P. Jain; M. A, LL. B.

श्री चारित्र स्मारक ग्रन्थमाला के प्रकाशन—

१—जैन तीर्थोंनो इतिहास—स्व० मुनि श्री न्यायविजय जी

२—पट्टावली समुच्चय, भाग दूसरा—श्री दर्शनविजय जी

३—क्षत्रियकुंड—श्री दर्शनविजय जी

श्री यशोविजय जैन ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित—

१—पूर्व भारत जैनतीर्थ भूमिओ—स्व० मुनि श्री जयन्तविजय जी

अन्य प्रकाशन—

१—योगदृष्टि समुच्चय (विवेचन)—विवेचक—डॉ० भगवान दास मेहता

२—द्वादशारं नयचक्र, दो भाग—सं० लब्धिसूरि

३—अपभ्रंश प्रकाश—प्रो० देवेन्द्रकुमार M. A.,

४—महावीर स्मृति ग्रन्थ—सं० श्री कामताप्रसाद जैन

५—तत्त्वसमुच्चय—सं० प्रो० हीरालाल जैन

६—तरंगवती कथा

७—जैनागमों में स्याद्वाद—सं० उपाध्याय आत्माराम जी

शीघ्र ही प्रकाशित होने वाले सिंघी जैन ग्रन्थमाला के ग्रन्थ—

१—खरतरगच्छ बृहद् गुर्वावली

२—कुमारपाल चरित्र

३—विविध गच्छीय पट्टावली संग्रह

४—जैन पुस्तक प्रशस्ति भाग २

५—विज्ञप्ति संग्रह

६—गुणपालकृत जंबूचरित्र (प्राकृत)

७—जयपाहुड़

८—गुणचन्द्रकृत— मंत्री कर्मचन्द्र वंश प्रबंध

९—नयचन्द्र कृत हम्मीर महाकाव्य

१०—नर्मदा सुन्दरी कथा

११—काव्य प्रकाश, खंड १ (सिद्धिचन्द्र)

१२—तिलोय पण्णत्ति—उपाध्ये।

१३—कल्पसूत्र—साराभाई नवाब।

१४—जैसलमेर की चित्र समृद्धि।

१५—महावीर चित्रावली।

१६—प्रवचन किरणावली।
१७—अनेकान्त व्यवस्था
१८—जैन तर्कभाषा।
१९—सिद्धसेन कृत द्वात्रिंशिकाएं
} लावण्य विजय जी म०।

२०—खण्डहरों का वैभव—मुनि कान्तिसागर।

२१—योगदृष्टि समुच्चय विवरण—डॉ० भगवान दास।

२२—बृहत्कल्प छठा भाग।

पत्र पत्रिका आदि में लेख:—

Jain Antiquary. Vol XV 1. 2.

(1) The Jain Critique of the Buddhist Theories of Pramāna

Prof H. M. Bhattacharya

(2) History of Mathematics in India
From Jaina Sources
—Dr. A. N. Singh

(Cont. Vol XVI)

Vol XVI. 1—2

(3) Three New Kushan Inscriptions
—Syt K. D. Bajpai

(4) Jaina temples, monks and nuns in Poona
—Syt S. B. Deo

(5) Authors of the Names of Pūjyapad
—J. P. Jain

Indian Historical Quarterly Sept. 1950

(1) Gleanings from the Kharatargaccha Pattavali
—Dasharath Sharma

(2) Dramaturgy found in the Mahapurāna of Puspadanta
March 1951.

(3) Sources of Hemchandra's Apabhranśa quotations
—S. N. Ghosal

New Indian Antiquary (April-June 1947)

(1) Further Contribution to the History of Jaina Cosmography and Mythology
—Dr. Z. Alsdorf

श्री विश्वबन्धु द्वारा संपादित 'सिद्ध भारती' में जैनधर्म और प्राकृत भाषा से संबद्ध अनेक लेख हैं। उनके लेखक हैं डॉ० एस० के चटर्जी, डॉ० बनारसी दास जैन, डॉ० सुकुमार सेन, डॉ० उपाध्ये, श्री प्रभुदत्त शास्त्री, डॉ० मिराशी, डॉ० राघवन्।

एम्० एम्० पोद्दार स्मारक ग्रन्थ में डॉ० उपाध्ये का 'जैन और जैनधर्म' के विषय में एक लेख है।

श्री वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ में अनेक लेख जैनधर्म से संबंध रखते हैं।

मुनि श्री पुण्यविजय जी
द्वारा
जैसलमेर भण्डार का उद्धार

जैन साहित्य के उद्धार के लिए मुनि श्री पुण्यविजय जी जिस लगन तथा परिश्रम के साथ कार्य कर रहे हैं वह साहित्यिक तपस्वियों के लिए जीता जागता आदर्श है। उन्होंने लीम्बडी, पाटन, बड़ौदा आदि आदि अनेक स्थानों के भण्डारों को सुव्यवस्थित किया और सुरक्षित बनाया है। अनेक विद्वानों के लिए सम्पादन-संशोधन में उपयोगी हस्तलिखित प्रतियों को सुलभ बनाया है। स्वयं संस्कृत एवं प्राकृत के अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का संपादन भी किया है। लम्बे और परिपक्व अनुभव के बाद ई० स० १९४५ में वे 'जैन आगम संसद' की स्थापना करके देश तथा विदेश में प्राप्य उपयोगी सामग्री जुटाने में लग गए। आगमों के संशोधन की दृष्टि से ही वे अपना विहारक्रम तथा अन्य कार्यक्रम बनाते हैं। इसी दृष्टि से बड़ौदा, खम्भात, अहमदाबाद आदि स्थानों में रहे और वहाँ के भंडारों को सुव्यवस्थित करते हुए आगमों के संशोधन में उपयोगी सामग्री एकत्रित की। भण्डारों से पर्याप्त सामग्री मिली। किन्तु उन्हें सन्तोष न हुआ। १९५० के आरम्भ में दलबल के साथ वे जैसलमेर पहुँचे और वहाँ के प्रसिद्ध भण्डार का उद्धार किया। अनेक अप्राप्य ग्रंथों की फिल्म ली और उन्हें विद्वानों के लिए सुलभ बना दिया।

उस सामग्री का महत्व अनेक दृष्टियों से है। विशेषावश्यक भाष्य कुवलय माला, ओघनिर्युक्ति वृत्ति, आदि अनेक ताडपत्र और कागज पर लिखे ग्रन्थ ९०० वर्ष तक के पुराने हैं और प्रायः शुद्ध हैं। जैन परम्परा के अतिरिक्त बौद्ध और ब्राह्मण परम्परा के भी अनेक ग्रन्थ मिले हैं। उनमें खण्ड खण्ड खाद्य (शिष्य हितैषिणी वृत्ति तथा टिप्पणी आदि सहित), न्यायमंजरी ग्रन्थिभंग, भाष्यवार्तिक विवरण पंजिका, तत्त्वसंग्रह (पंजिका सहित) आदि उल्लेखनीय है। न्याय टिप्पणक—श्री कंठीय, कल्पलता विवेक (कल्प पल्लव शेष) बौद्धाचार्यकृत धर्मोत्तरीय टिप्पण आदि कुछ ग्रन्थ तो अपूर्व हैं।

सोलह मास के अल्प समय में मुनि श्री ने रात दिन लगकर, गरमी और सरदी की तनिक भी परवाह किए बिना जैसलमेर सरीखे दुर्गम स्थान के भण्डारों का जीर्णोद्धार किया। इस विशाल कार्य के लिए उन्होंने जो तपस्या की है उसे दूर बैठा शायद ही कोई समझ सके। उस समय मुनि श्री की कार्यपद्धति को देखनें तथा अभिप्रेत साहित्यिक कृतियों की प्राप्ति के लिए अनेक भारतीय तथा विदेशी विद्वान वहाँ पहुँचे। उनमें हेम्बर्ग यूनिवर्सिटी के प्रसिद्ध प्राच्य विद्या विशारद डॉ०आल्सफोर्ड का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने भी मुनि जी के साथ प्राच्य वस्तु तथा साहित्य के सैकड़ों फोटो लिए।

मुनि श्री काम जैन ही नहीं भारतीय एवं मानव संकृति की दृष्टि से भी महत्व रखता है। वह भारतीय साहित्यक तपस्वी की दीर्घ कालीन कठोर साधना है।

भण्डारों का उद्धार करते समय मुख्यतया नीचे लिखी तीन बातें करनी पड़ती है :—

१—अधूरे और बिखरे हुए ग्रन्थों के एक दूसरे में मिश्रित ताड़पत्रीय व कागजी पत्रों को लिपि, कद, भाषा, विषय, पत्रांक आदि के आधार पर संकलित करके उनका उस उस ग्रंथ के रूप में एकीकरण।

२—उन एकीकृत ग्रन्थों की तथा पूरे या अधूरे पर शृंखलाबद्ध उपलब्ध ग्रन्थों की वर्गीकरण पूर्वक सूची; जिसमें रचयिता, लेखनकाल, विषय, विशेष ज्ञातव्य आदि आवश्यक बातों का समावेश।

३—असली सामग्री को प्राचीन परंपरा के अनुसार जैसलमेर में रखकर भी उसकी सार्वत्रिक सुलभता की दृष्टि से तथा अपनें अभिप्रेत संपादन में सीधा उपयोग करने की दृष्टि से अनेक ताड़पत्रीय व कागजी ग्रन्थों का माइक्रोफिल्म में अवतरण।

निम्नलिखित ग्रन्थों का माइक्रोफिल्म हुआ है

१—समवाय सूत्र
२—भगवती सूत्र
३—ज्ञाताधर्मकथांक सूत्र
४—जीवाभिगम सूत्र तथा लघुवृत्ति
५—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति उपांग सूत्र तथा चूर्णी
६—कल्पबृहद्भाष्य प्रथमखंड
७—जम्बूप्रज्ञप्ति उपांग सूत्र
८—सिद्धप्राभृत
९—निरयावलिकादि पंचोपांग सूत्र
१०—ज्योतिष्करंडक वृत्ति तथा मूल
११—दशाश्रुतस्कंध चूर्णि आदि

१२—दशाश्रुतस्कंध चूर्णि
१३—दशाश्रुतस्कंध सूत्र
१४ दशाश्रुतस्कंध निर्युक्ति
१५—कल्पबृहद्भाष्य प्रथम खंड
१६—कल्पबृहद्भाष्य प्रथम खण्ड
१७—व्यवहार सूत्र
१८—व्यवहार-भाष्य
१९—व्यवहार चूर्णी
२०—निशीथ सूत्र
२१—निशीथ भाष्य
२२—निशीथ सूत्र चूर्णी प्रथम खंड दशम उद्देश पर्यंत
२३—निशीथसूत्र चूर्णी द्वितीय खंड
२४—निशीथ चूर्णी विंशोद्देशक व्याख्या
२५—ओघनिर्युक्ति वृत्ति
२६—दशवैकालिक चूर्णी
२७—पिंडनिर्युक्ति वृत्ति सह
२८—पिंडनिर्युक्ति लघुवृत्ति
२९—विशेषावश्यक महाभाष्य
३०—विशेषावश्यक वृत्ति प्रथम खंड
३१—विशेषावश्यक वृत्ति द्वितीय खंड
३२—ओघनिर्युक्ति बृहद्भाष्य
३३—आवश्यकनिर्युक्ति-भद्रबाहु स्वामी
३४—षडावश्यक सूत्रवृत्ति-नमिसाधु
३५—ललित विस्तरा वृत्ति संक्षेप (चैत्यवंदन सूत्रवृत्ति-हरिभद्र सूरि)
३६—चैत्यवंदना सूत्र चूर्णी (यशोदेव सूरि)
३७—वंदनक सूत्र चूर्णी (यशोदेवसूरि)
३८—ईरियावहिया वंडक चूर्णी
३९—प्रत्याख्यान-स्वरूप-प्रकरण गाथाबद्ध (यशोदेव)
४०—पाक्षिकसूत्र चूर्णी
४१—सर्वसिद्धांत विषमपद-पर्याय
४२—प्रकण पोथी
४३—सूक्ष्मार्थ विचार चूर्णी
४४—कर्म प्रकृति चूर्णी
४५—कर्म प्रकृति चूर्णी विशेष वृत्ति
४६—शतक चूर्णी
४७—शतक चूर्णी
४८—जम्बूद्वीपक्षेत्रसमास वृत्ति (हरिभद्र सूरि)
४९—पिंड विशुद्धि प्रकरण सटीक
५०—चैत्यवंदन भाष्य संघाचार टीका सह
५१—पंचाशक प्रकरण लघुवृत्ति अष्टादश पंचाशकपर्यंत (यशोभद्र सूरि)
५२—उपदेश पद प्रकरण लघु टीका (वर्धमान सूरि
५३—उपदेश प्रकरण लघु टीका
५४—दर्शनशुद्धिप्रकरण विवरण सह
५५—संवेग रंग शाला
५६—धर्म विधि प्रकरण
५७—त्रिष्टिशलाका पुरुष चरित्र गद्यबद्ध शांतिनाथ चरित्र पर्यंत
५८—नेमिनाह चरित्र अपभ्रंश
५९—अतिमुक्तक चरित्र

६०—अतिमुक्तक चरित्र आदि (पूर्णभद्र)

६१—अणुव्रत विधि

६२—लपोटमतकुट्टनशत आदि

६३—कातंत्र व्याकरण दुर्गसिही वृत्ति दुर्गपद प्रबोध

६४—पंचग्रन्थी-बुद्धिसागर व्याकरण

६५—सिद्ध० शब्दा० लघुन्यास (दुर्गपद व्याख्या) चतुष्काव-चूर्णि षष्टपाद पर्यंत

६६—सिद्ध० शब्दा० रहस्य वृत्ति (सिद्ध० शब्दा० लघुवृत्ति संक्षेप)

६७—अनेकार्थकोश अनेकार्थकैरवाकर कौमुदी वृत्ति सह द्विस्वर कांड पर्यंत

६८—अनेकार्थकोश त्रिस्वर कांड द्वितीय खंड

६९—अनेकार्थकोश चतुःस्वर कांड का सम्पूर्ण तृतीय खंड

७०— कल्पलता विवेक (कल्प पल्लव शेष)

७१—काव्यादर्श (काव्यप्रकाशसंकेत)

७२—काव्य प्रकाश संकेत

७३—काव्य प्रकाश

७४—अलंकार दर्पण

७५—निर्वाण लीलावती महाकथा उद्धार (लीलावती सार)

७६—मुद्राराक्षस नाटक टिप्पणी सह

७७—प्रबोधचंद्रोदय नाटक टिप्पणी सह

७८ —अनर्घराघव नाटक

७९—वेणीसंहार नाटक

८०—चन्द्रलेखा विनय प्रकरण नाटक

८१—सन्मति तर्क प्रकरण तत्त्वबोध-विधायिन्याख्य वृत्ति सह

८२—न्यायावतारसूत्रवृत्ति टिप्पणी सह

८३—सर्व सिद्धांत प्रवेश (षड्दर्शन समुच्चय जैसा)

८४—न्यायप्रवेश सूत्र आदि

८५—तत्त्व संग्रह पञ्जिका वृत्ति (कमल शील वृत्ति)

८६—तत्त्वसंग्रह मूल

८७—खंडनखंड खाद्य

८८—खंडनखंड खाद्य शिष्य हितैषिणी वृत्ति टिप्पण्यादि युक्त

८९—न्यायमंजरी ग्रंथिभंग

९०—गौतमीय न्यायसूत्र वृत्ति

९१—भाष्य वार्तिक विवरण पंजिका द्वितीय अध्याय तथा पंचम अध्याय पर्यंत

९२—इष्टसिद्धि वृत्ति सह सम्पूर्ण

९३—सांख्यसप्ततिका वृत्तिसह

९४—सांख्य सप्ततिका वृत्तिसह

९५—सांख्य सप्ततिका आदि

९६—सांख्य सप्ततिका भाष्य आदि

९७—अर्थशास्त्र (चाणक्य)

९८—निशीथ सूत्रचूर्णी प्रथम खंड

९९—नंदी दुर्गपदवृत्ति

१००—उपदेशपद प्रकरण

१०१—प्रकरण पुस्तिका

१०२—सार्धं शतक प्रकरण वृत्तिसह

१०३—सप्ततिका कर्मग्रंथ टिप्पणक गाथाबद्ध
१०४—भगवद्गीता भाष्यसह
१०५—बृहत्संग्रहणी प्रकरण सटीक
१०६—महावीर चरित्र प्राकृत गाथा-बद्ध
१०७—मुनिसुव्रत स्वामि चरित्र संस्कृत
१०८—पउम चरिउ प्राकृत गाथा
१०९—समराइच्च कहा—प्राकृत
११०—कुवलयमाला कथा
१११—विलासवई कहा—अपभ्रंश
११२—विलासवई कहा—अपभ्रंश
११३—पृथ्वीचन्द्र चरित्र
११४—सुखबोधा सामाचारी
११५—कातंत्र व्याकरण दुर्गसिंह वृत्ति विवरण पंजिका
११६—त्रिलोचन दास कृद्वृत्ति
११७—कातंत्रोत्तर विद्यानंदि वृत्ति पंचसंधिपर्यंत
११८—कातंत्रोत्तर विद्यानंदि वृत्ति द्वितीयपाद पर्यंतटिप्पण सह
११९—कातंत्रोत्तर विद्यानंदि वृत्ति कारक प्रकरण
१२०—कातंत्रोत्तर विद्यानंदि वृत्ति तद्धित प्रकरण पर्यंत
१२१—सिद्धहेम शब्दानुशासन लघु-वृत्ति पंचमाध्याय
१२२—स्याद्यंत प्रक्रिया
१२३—प्राकृत प्रकाश
१२४—जयदेव छंदः शास्त्र
१२५—जयदेव छंदः शास्त्र वृत्ति सह
१२६—कइसिट्ठ कृत छंदः शास्त्र वृत्ति
१२७—छंदोनुशासन
१२८—वृत्तरत्नाकर
१२९—काव्यप्रकाश टिप्पण सह
१३०—व्यक्तिविवेक काव्यालंकार
१३१—काव्यादर्श तृतीय परिच्छेद पर्यंत
१३२—उद्भटालंकार लघुवृत्ति
१३३—अभिधा वृत्ति मातृका
१३४—रुद्रटालंकार तृतीयाध्याय तथा पंचमाध्याय पर्यंत
१३५—वामनीय काव्यालंकार स्वोपज्ञ वृत्ति टिप्पणसह
१३६—कविरहस्य टीका
१३७—भट्टिकाव्य
१३८—नैषधचरित महाकाव्य
१३९—नैषधीय महाकाव्य साहित्यवि-द्याधरा टीका
१४०—नैषधीय महाकाव्य
१४१—वृंदावन काव्य सटीक
१४२—घटकर्पर काव्य सटीक
१४३—शिवभद्र काव्य सटीक
१४४—मेघाभ्युदय काव्य सटीक
१४५—चंद्रदूत काव्य सटीक
१४६—राक्षस काव्य सटीक
१४७—घटकर्पर काव्य सटीक
१४८—वासवदत्ता आख्यायिका
१४९—चक्रपाणि विनय महाकाव्य
१५०—लीलावती कथा प्राकृतगाथा-बद्ध-महाराष्ट्रीय देशीभाषामय
१५१—गउड वहो महाकाव्य सटीक

१५२—मुद्राराक्षस नाटक टिप्पणी सह
१५३—प्रबोध चंद्रोदय नाटक टिप्पणी सह
१५४—अनर्घ राघव नाटक
१५५—वेणीसंहार नाटक
१५६—हम्मीरमदमर्दन नाटक
१५७—वस्तुपाल प्रशस्ति
१५८—वस्तुपाल स्तुति काव्य
१५९—अनेकान्त जयपताका टिप्पणक
१६०—प्रमालक्ष्म सटीक
१६१—धर्मोत्तर टिप्पणक
१६२—धर्मोत्तर टिप्पणक
१६३—मीमांसा दर्शन शाबर भाष्यसह
१६४—प्रमाणान्तर्भाव
१६५—पातंजल योगदर्शन भाष्यवृत्ति
१६६—पातंजल योगदर्शन भाष्यवृत्ति
१६७—तिलक मंजरी
१६८—सूक्ष्मार्थ विचारसार प्रकरण (सार्ध शतक प्रकरण)
१६९—श्रावक धर्मविधि तत्र प्रकरण
१७०—श्रावक विधि प्रकरण-प्राकृत
१७१—ओंकार पंचाशिका
१७२—सुभाषित पद्य संग्रह
१७३—शृंगार मंजरी
१७४—न्याय कंदली टीका
१७५—प्रशस्तपाद– भाष्य पदार्थ धर्म-संग्रह
१७६—न्याय कंदली
१७७—धर्मबिंदु प्रकरण
१७८—प्रकरण पुस्तिका
१७९—प्रकरण पोथी
१८०—श्राद्धदिन कृत्य प्रकरण
१८१—धर्मरत्न प्रकरण
१८२—नवतत्त्व प्रकरण भाष्य सह
१८३—धर्मोपदेश माला प्रकरण
१८४—शालिभद्र चरित्र प्राकृत बद्ध
१८५—गाथा श्रावकव्रत-भंगकुलक
१८६—उपदेशमाला प्रकरण पुष्पमाला
१८७—तपश्चरण भेद स्वरूप प्रकरण
१८८—त्रयोदशभेद नवकार स्वरूप कुलक
१८९—विचारसुख प्रकरण
१९०—बृहत्संग्रहणी प्रकरण
१९१—प्रकरण पोथी
१९२—श्रावक वक्तव्यता (षट् स्थानक प्रकरण)
१९३—पंचलिंगी प्रकरण
१९४—आगमोद्धार गाथा
१९५—मिथ्यात्वमथना कुलक
१९६—कल्प चूर्णि
१९७—आवश्यक टिप्पणक
१९८—पंच वस्तुक प्रकरण
१९९—उपासकदशांग सूत्र वृत्ति
२००—अंतकृद्दशांग सूत्र वृत्ति
२०१—अनुत्तरौपपातिक दशांग सूत्र वृत्ति
२०२—प्रश्न व्याकरण दशांग सूत्र वृत्ति
२०३—विपाक सूत्र वृत्ति
२०४—उपासकदशाँग सूत्र
२०५—अंतकृद्दशांग सूत्र
२०६—अनुत्तरौपपातिक दशांग सूत्र
२०७—प्रश्न व्याकरण दशांग सूत्र
२०८—विपाक सूत्र

२०९—प्रज्ञापना सूत्र
२१०—प्रज्ञपना लघु वृत्ति
२११—भगवती मूल
२१२—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति
२१३—पिंड निर्युक्ति
२१४—बाल शिक्षा व्याकरण

नोट—इस सूची में कई नाम अनेक बार आए हैं। उसका यह अर्थ है कि उन ग्रन्थों की अनेक प्रतियों का माइक्रोफिल्म हुआ है

४—जीर्ण शीर्ण हुई और बहुत कम समय टिकने वाली पोथियों की नई वैज्ञानिक पद्धति से मरम्मत की गई उसमें निम्नलिखित बहुमूल्य प्रतियाँ शामिल हैं। इन सभी प्रतों के मार्जिन में किसी ने टिप्पणी भी लिखी है।

(१) न्यायभाष्य
(२) न्यायवार्तिक
(३) न्यायवार्तिक तात्पर्य टीका
(४) तात्पर्य परिशुद्धि

इन चारों ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रत सं० १२७९ की है।

५—भंडार वाले स्थान की मरम्मत

६—ग्रन्थ आदि प्राच्य वस्तुओं के संरक्षणार्थ नए सिरे से उत्तम लोहे की अलमारियों का निर्माण।

७—ग्रन्थ के छोटे बड़े नाप के अनुसार एल्यूमिनियम् के डिब्बों को बनवा कर उनमें ग्रंथों का स्थापन।

८—जैसलमेर में उपलब्ध एक एक ग्रन्थ की अनेक प्रतियों के आधार पर निम्नलिखित ग्रन्थों का संशोधन पाठान्तर लेकर किया गया—

(१) अनुयोगद्वार सूत्र, हारिभद्री और मलधारीया वृत्ति और चूर्णी
(२) नंदिसूत्र—मलयगिरीया वृत्ति, चूर्णी, हरिभद्रीय वृत्ति टिप्पणक (श्री चन्द्रीय दुर्गपद वृत्ति)
(३) सूर्यप्रज्ञप्ति वृत्ति
(४) ज्योतिष्करंडक प्रकीर्णक-पादलिप्तकृत वृत्ति, मलयगिरि कृत वृत्ति
(५) विशेष्यावश्यक भाष्य—कोट्याचार्य कृत टीका
(६) आवश्यक सूत्र, चूर्णी, मलयगिरि कृत टीका, हरिभद्रकृत टीका मलधारिकृत टिप्पण
(७) बृहत्कल्प सूत्र—लघुभाष्य
(८) दश वैकालिक सूत्र, हरिभद्रवृत्ति,
(९) प्रज्ञापनोपांग सूत्र, मलयगिरि टीका हरिभद्रकृत टीका
(१०) सूत्रकृतांगसूत्र टीका
(११) समवायांग सूत्र टीका
(१२) दशाश्रुतस्कंध चूर्णी

(१३) कल्पसूत्र टिप्पणक, चूर्णी निर्युक्ति
(१४) पंच कल्प महाभाष्य
(१५) प्रश्न व्याकरण सूत्र, टीका
(१६) उपासक दशांग सूत्र, टीका
(१७) अन्तकृद्दशा सूत्र, टीका
(१८) अनुत्तरौपपातिक सूत्र, टीका
(१९) विपाक सूत्र, टीका
(२०) भवभावना प्रकरण, स्वोपज्ञ सटीक।
(२१) पंचाशक प्रकरण सटीक
(२२) धर्मबिन्दु प्रकरण सटीक
(२३) बृहत्संग्रहणी, मलयगिरिकृत टीका
(२४) बृहत्क्षेत्र समास प्रकरण
(२५) विभक्ति विचार
(२६) प्रवचनसारोद्धार सटीक
(२७) मुनिसुव्रत स्वामि चरित्र
(२८) समराइच्च कहा
(२९) धन्य शालिभद्र चरित्र
(३०) पउम चरियं
(३१) त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र
(३२) पार्श्वनाथ चरित्र (देवभद्र)
(३३) सिद्धहैमशब्दानुशासन लघुवृत्ति
(३४) छन्दोग्रन्थ २ जयदेव आदिकृत
(३५) काव्य प्रकाश सटीक
(३६) अभिधा वृत्ति मातृका
(३७) अलंकार दर्पण
(३८) कविकल्पलता विवेक
(३९) गौडवध महाकाव्य (वाक्पति-राज) सटीक
(४०) वासवदत्ताख्यायिका
(४१) तत्त्वसंग्रह पंजिका समेत
(४२) न्याय कन्दली, टिप्पणक
(४३) प्रशस्तपाद भाष्य
(४४) न्यायावतार वृत्ति, टिप्पणक
(४५) न्याय प्रवेश, वृत्ति, पंजिका
(४६) पंच प्रस्थान न्यायटीका
(४७) अनेकान्तजयपताका टिप्पणक
(४८) प्रमालक्ष्म
(४९) प्रमालक्ष्म धर्मोत्तर टिप्पणक

८—कुछ ग्रन्थों की नकल करवाई गई। ये ग्रन्थ या तो अपूर्व हैं या प्रति की दृष्टि से मूल के निकट है। वे ये हैं—

(१) प्रज्ञापना सूत्र
(२) ओघ निर्युक्ति महाभाष्य
(३) विशेषावश्यक महाभाष्य
(४) ज्योतिष्करंडकटीका पादलिप्तकृत
(५) दशवैकालिक चूर्णी अगस्त्य सिंह
(६) पृथ्वीचन्द्र चरित्र (प्राकृत)
(७) सर्व सिद्धान्त प्रवेश
(८) प्रमाणान्तर्भाव (बौद्ध)
(९) सांख्य सप्ततिका (सटीक)
(१०) सांख्य सप्ततिका (दूसरी टीका)
(११) कविकल्पलता पल्लव विशेष-विवेक
(१२) प्रकरण स्तोत्रादि संग्रह इसमें अनेक प्रकरण ग्रन्थ हैं।
(१३) नंदि चूर्णी
(१४) सन्मतितर्क (द्वितीय खण्ड)
(१५) मुनि सुव्रत चरित्र (प्राकृत)
(१६) अनुयोग द्वार सूत्र

[शेष पृष्ट ७९ पर देखिए।]

जैन व्याख्या पद्धति

पं० सुखलाल जी

जैन परम्परा में 'अनुगम' शब्द प्रसिद्ध है जिसका अर्थ है व्याख्यान विधि। अनुगम के छह प्रकार आर्यरक्षित सूरि ने अनुयोगद्वार सूत्र (सूत्र० १५५) में बतलाए हैं। जिनमें से दो अनुगम सूत्रस्पर्शी और चार अर्थस्पर्शी हैं। अनुगम शब्द का निर्युक्ति शब्द के साथ सूत्रस्पर्शिक निर्युक्त्यनुगम रूप से उल्लेख अनुयोग द्वार सूत्र से प्राचीन है इसलिए इस बात में तो कोई संदेह रहता ही नहीं कि कि यह अनुगम पद्धति या व्याख्यानशैली जैन वाङमय में अनुयोग द्वार सूत्र से पुरानी और निर्युक्ति के प्राचीनतम स्वर का ही भाग है। जो संभवतः श्रुत-केवली भद्रबाहुकर्तृक मानी जाने वाली निर्युक्ति का ही भाग होना चाहिए। निर्युक्ति में अनुगम शब्द से जो व्याख्याविधि का समावेश हुआ है वह व्याख्या-विधि भी वस्तुतः बहुत पुराने समय की एक शास्त्रीय प्रक्रिया रही है। हम जब आर्य परम्परा के उपलब्ध विविध वाङमय तथा उनकी पाठशैली को देखते हैं तब इस अनुगम की प्राचीनता और भी ध्यान में आ जाती है। आर्य परम्परा की एक शाखा जरथोस्थियन को देखते हैं तब उनमें भी पवित्र माने जाने वाले अवेस्ता आदि ग्रन्थों का प्रथम विशुद्ध उच्चार कैसे करना, किस तरह पद आदि का विभाग करना इत्यादि क्रम से व्याख्यानविधि देखते हैं। भारतीय आर्य परम्परा की वैदिक शाखा में जो वैदिक मंत्रों का पाठ सिखाया जाता है और क्रमशः जो उसकी अर्थविधि बतलाई गई है, उसकी जैन परम्परा में प्रसिद्ध अनुगम के साथ तुलना करें तो इस बात में कोई संदेह ही नहीं रहता कि यह अनुगमविधि वस्तुतः वही है जो जरथोस्थियन धर्म में तथा वैदिक धर्म में भी प्रचलित थी और आज भी प्रचलित है।

जैन और वैदिक परम्परा की पाठ तथा अर्थविधि विषयक तुलना—

१. वैदिक	२. जैन
१—संहितापाठ (मंत्रपाठ)	१—संहिता (मूलसूत्रपाठ) १
२—पदच्छेद (जिसमें पद, क्रम, जटा आदि आठ प्रकार की विविधानुपूर्विओं का समावेश है)	२—पद २
३—पदार्थ विज्ञान	३—पदार्थ ३, पदविग्रह ४
४—वाक्यार्थज्ञान	४—चालना ५
५—तात्पर्यार्थनिर्णय	५—प्रत्यवस्थान ६

जैन वैदिक परम्परा में शुरू में मूलमंत्र को शुद्ध तथा अस्खलित रूप में सिखाया जाता है; अनन्तर उनके पदों का विविध विश्लेषण, इसके बाद जब अर्थविचारणा—मीमांसा का समय आता है तब क्रमशः प्रत्येक पद के अर्थ का ज्ञान; फिर पूरे वाक्य का अर्थ ज्ञान अन्त में साधक-बाधक चर्चापूर्वक तात्पर्यार्थ का निर्णय कराया जाता है—वैसे ही जैनपरम्परा में भी कम से कम निर्युक्ति के प्राचीन समय में सूत्रपाठ से अर्थ निर्णय तक का वही क्रम प्रचलित था जो अनुगम शब्द से जैन परम्परा में व्यवहृत हुआ। अनुगम के ६ विभाग जो अनुयोगद्वारसूत्र में हैं उनका परम्पराप्राप्त वर्णन जिनभद्र क्षमाश्रमण ने विस्तार से किया है। संघदासगणि ने "बृहत्कल्पभाष्य" में उन छह विभागों के वर्णन के अलावा मतान्तर से पाँच विभागों का भी निर्देश किया है। जो कुछ हो, इतना तो निश्चित है कि जैन परम्परा में सूत्र और अर्थ सिखाने के संबंध में एक निश्चित व्याख्यान विधि चिरकाल से प्रचलित रही। इसी व्याख्यान विधि को आचार्य हरिभद्र ने अपने दार्शनिक ज्ञान के नए प्रकाश में कुछ नवीन शब्दों में नवीनता के साथ विस्तार से वर्णन किया है। हरिभद्रसूरि की उक्ति में कई विशेषताएँ हैं जिन्हें जैन वाङमय को सर्वप्रथम उन्हीं की देन कहना चाहिए। उन्होंने उपदेशपद में अर्थानुगम के चिर प्रचलित चार भेदों को कुछ मीमांसा आदि दर्शनज्ञान का ओप देकर नए चार नामों के द्वारा निरूपण किया है। दोनों की तुलना इस प्रकार है—

१ प्राचीन परंपरा	२ हरिभद्रीय
१ पदार्थ	१ पदार्थ
२ पदविग्रह	२ वाक्यार्थ
३ चालना	३ महावाक्यार्थ
४ प्रत्यवस्थान	४ ऐदम्पर्यार्थ

हरिभद्रीय विशेषता केवल नए नाम में ही नहीं है। उनकी ध्यान देने योग्य विशेषता तो चारों प्रकार के अर्थबोध का तरतमभाव समझाने के लिए दिए गए लौकिक तथा शास्त्रीय उदाहरणों में है। जैन परम्परा में अहिंसा, निर्ग्रन्थत्व, दान और तप आदि का धर्मरूप से सर्वप्रथम स्थान है। अतएव जब एक तरफ से उन धर्मों के आचरण पर आत्यन्तिक भार दिया जाता है, तब दूसरी तरफ से उसमें कुछ अपवादों का या छूटों का रखना भी अनिवार्य रूप से प्राप्त हो जाता है। इस उत्सर्ग और अपवाद विधि की मर्यादा को लेकर आचार्य हरिभद्र ने उक्त चार प्रकार के अर्थ बोधों का वर्णन किया है।

जैन ज्ञान भण्डारों के प्रकाशित सूची ग्रंथ

श्री अगरचन्द नाहटा

जैन साहित्य में ज्ञान आत्मा का विशेष गुण बतलाया है और इसीलिए ज्ञान को जैनागमों में अत्यधिक महत्व दिया गया है। नंदी सूत्र नामक आगम ग्रंथ तो ज्ञान के विवेचन रूप में ही बताया गया है। स्वाध्याय-अध्ययन को अभ्यान्तर तप माना गया है। उसका फल परम्परा से मोक्ष है अतः जैन मुनियों को स्वाध्याय करते रहने का दैनिक कर्त्तव्य बतलाया गया है। जैनागमों में प्रतिपादित ज्ञान के इस अपूर्व मह व ने मुनियों की मेधा का खूब विकास किया। उन्होंने अपने अमूल्य समय को विशेषतः विविध ग्रन्थों के अध्ययन, अध्यापन एवं प्रणयन में लगाया, फलतः साहित्य (वाङ्मय) का कोई ऐसा अङ्ग बच नहीं सका जिसपर जैन विद्वानों ने अपनी गौरव-शालिनी लेखनी नहीं चलाई हो। वीरनिर्वाण के ९८० वर्ष में विशेष रूप से जैनसाहित्य पुस्तकारुढ़ हुआ। उससे पहले आगम कंठस्थ रहते थे, अत अध्ययन अध्यापन ही जैन मुनियों का प्रमुख कार्य था। इसके बाद लेखन भी आवश्यक कार्यों में सम्मिलित हुआ और अधिकांश समय साधारण मुनियों ने, जिनमें ग्रन्थ प्रणयन का सामर्थ्य कम था, ग्रंथों के लिखने में ही लगा दिया। इसी कारण से लाखों प्रतियाँ जैन मुनियों द्वारा लिखित यत्र-तत्र उपलब्ध हैं। लिखने वाले पठित तो होते ही थे अतः ये प्रतियाँ दूसरों द्वारा लिखित प्रतियों से प्रायः शुद्ध पाई जाती है। साहित्य के प्रणयन एवं संरक्षण में जैन विद्वान विशेषतः श्वेताम्बर विद्वान तो बड़े ही उदार रहे हैं। फलस्वरूप जैनेतर ग्रन्थों पर सैकड़ों जैन टीकाएँ उपलब्ध हैं * और जैन भंडारों में जैनेतर साहित्य प्रचुर परिमाण में सुरक्षित है। उनमें कई ग्रन्थों की प्रतियाँ तो ऐसी भी हैं

* देखें मेरा "जैनेतर ग्रन्थ पर जैन विद्वानों की टीकाएँ" नामक निबंध। प्र० भारतीय वि० भा०, भां० २ अं० ३-४।

जिनकी प्रतियाँ जैनेतर संग्रहालयों में भी नहीं पाई जाती अर्थात् उनको बचाये रखने का श्रेय जैनों को ही प्राप्त है। †

जिस प्रकार जैन-मुनियों ने लेखन एवं ग्रन्थनिर्माण में अपने अपूर्व समय एवं शक्ति का सदुपयोग किया उसी प्रकार जैन उपासकों (श्रावकों) ने भी लाखों करोड़ों रुपयों का सद्व्यय ग्रंथों को विविध चित्रों से विभूषित करने तथा सोने चाँदी की स्याही से लिखाने में किया। आज भी जैन भंडारों में सुरक्षित हजारों प्रतियाँ ऐसी हैं जिन्हें श्रावकों ने उदारतापूर्वक बहुत सा धन खर्च करके लिखाया है। उनमें से कल्पसूत्र दि की कई प्रतियाँ तो लेखन, चित्रकला, एवं नाना विविधताओं के कारण ऐसी अद्भुत हैं कि अपनी तुलना नहीं रखतीं। अहमदाबाद के भंडार में एक कल्पसूत्र की प्रति है जिसका मूल्य लाख रुपये से अधिक आंका जाता है। कई प्रतियाँ स्वर्णाक्षरी और कई रौप्याक्षरी लेख में हैं। इस काल की सुन्दरता एवं विविधिता जैसी जैन प्रतियों में है, अन्यत्र दुर्लभ है। त्रिपाठ, पंचपाठ, बीच में स्थान छोड़ कर बनाए हुए विविध चित्र, कला-प्रदर्शन, नामादि लेखन आदि अनेकानेक विविधताएँ जैन भंडारों की प्रतियों में है[१]। लेखक एवं लिखाने वालों की प्रशस्तियाँ भी जैनप्रतियों के अंत में ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्व की हैं।[२]

जैन भंडारों की प्रचुरता—

जैन मुनियों के लिए चातुर्मास (आषाढ़ से कार्तिक) के अतिरिक्त एक

---

† उदाहरणार्थ १ राजशेखर कृत काव्य मीमांसा २ भोजरचित श्रृंगारमंजरी ३ बिल्हण कृत विक्रमांकदेव चरित, ४ जयराशि का तत्त्वोपप्लव ५ उदयसुंदरी ६ बौद्धधर्मकीर्ति का न्यायबिंदु, हेतुबिंदु टीका ७ कमलशील का तत्वसंग्रह ८ प्रमाणसंग्रह ९ अब्दुलरहमान रचित संदेश रास (इसे जैन विद्वानों ने बचाया ही नहीं, टीका भी लिखी है) १० वीसलदेवरासो (इसकी जितनी प्रतियाँ मिली हैं जैनों की लिखित ही हैं) इत्यादि।

[१] विशेष जानने के लिए देखें मुनि पुण्यविजय जी का "भारतीय जैन श्रमण संस्कृति अने लेखन कला" ग्रन्थ।

[२] देखें मुनि जिनविजय जी सं० जैनपुस्तक प्रशस्ति संग्रह भाग १ की प्रस्तावना और मेरा लेख प्रशस्ति संग्रह एवं दि० समाज (प्र० अनेकान्त वर्ष ५ अं० १-२) एवं प्रशस्ति संग्रह में जै० जाति के इतिहास की सामग्री (प्र० ओसवाल वर्ष ५ अं० २)

मास से अधिक एक स्थान पर रहने का निषेध है। जितना भार वे स्वयं उठा कर चल सकें उतनी ही पुस्तकें रखने का नियम होता है अतः निरन्तर भ्रमणशील जैन मुनियों ने भारत के कोने-कोने में पहुँच कर जैन धर्म का प्रचार किया। परिणामस्वरूप भारत के सभी प्रान्तों में जैन-ज्ञान-भण्डार स्थापित हैं। नीचे प्रान्तवार कुछ प्रमुख स्थानों के नामों की सूची दी जा रही है जहाँ जैन भण्डार हैं।

श्वेताम्बर जैन ज्ञान भंडार—

राजपूताना व मालवा—जैसलमेर, बीकानेर, जोधपुर, पीपाड़, आहोर, फलौधी, सरदारशहर, चूरू, जयपुर, झुंझनूं, फतहपुर, लाडणूं, सुजानगढ़, पाली, उज्जैन, कोटा, उदयपुर, इंदौर, रतलाम, बालोतरा, किसनगढ़, नागौर, मंदसौर, व्यावर, लोहावट आदि।

गुजरात, काठियावाड़—पाटण, खंभात, बड़ौदा, छाणी, पादरा, बीजापुर, अहमदाबाद, सूरत, पालनपुर राधनपुर, डमोई मांगरोल, ईडर, सीनोर, साणन्द, वीसनगर, कपड़वंज, चाणस्मा, वीरमगांव, बिलीमोरा, झींझुवाड़ा, खेड़ा, वढ़वाण, धोलेरा, पाटडी, दशाढ़ा, लींबण, पूना, बम्बई, भरौंच आदि।

काठियावाड़—पालीताणा, भावनगर, राजकोट, जामनगर, लीम्बड़ी

कच्छ—कच्छकोड़ाय, मांडवी, मोरवी।

दक्षिण—मालेगाम, मइसोर, मद्रास।

संयुक्तप्रान्त—आगरा, बनारस, लखनऊ।

मध्यप्रान्त—नागपुर, रायपुर, बालापुर।

बङ्गाल—कलकत्ता, अजीमगञ्ज, जियागञ्ज, राजगृह (बिहार)।

पञ्जाब—अम्बाला, जीरा, रोपड़, सामाना, मालेरकोटला, लुधियाना, होशियारपुर, जालन्धर, नकोदर, अमृतसर, पट्टी, जंडियाला, लाहौर, गुजरांवाला, स्यालकोट, रावलपिंडी, जम्मू।

विशेष जानने के लिए देखें जैनसत्यप्रकाश वर्ष ४ अङ्क १०-११, वर्ष ५ अङ्क १, वर्ष ६ अङ्क ५ में प्र० "आपणी ज्ञानपरबो" लेख।

दिगम्बर जैन भंडार—

यों तो इनके जहाँ जहाँ मन्दिर हैं, वहीं थोड़ा बहुत पुस्तक संग्रह है पर प्रमुख स्थानों के नाम इस प्रकार हैं—

१ आरा २ झालरापाटन ३ बम्बई ४ ब्यावर ५ दिल्ली ६ जयपुर ७ नागौर ८ कारंजा ९ कलकत्ता १० नागपुर ११ ललितपुर १२ वासौदा १३ भेलसा १४ ईडर १५ करमसर १६ सोजित्रा १७ अजमेर १८ कामा १९ ग्वालियर २० लश्कर २१ सोनगिरि २२ सीकर २३ मूडबिद्री २४ जैनबिद्री २५ इन्दौर २६ हूमसपद्मावती २७ प्रतापगढ़ २८ उदयपुर २९ सागवाडा ३० आमेर ३१ आगरा ३२ लखनऊ ३३ दरियाबाद ३४ चंदेरी ३५ सिरोज ३६ कोल्हापुर ३७ श्रवणवेलगोला ३८ कारकल ३९ अहोम्बुचा ४० वारंगा ४१ काँची ४२ अलवर ४३ सम्मेदशिखर ४४ सागर ४५ शोलापुर इत्यादि।

विशेष जानने के लिये देखें 'भारतवर्षीय दिगम्बर जैन डिरेक्टरी' आदि ग्रंथ। इन स्थानों में से कई कई स्थानों में तो एक ही नगर में ५।१० भंडार तक हैं।

प्रकाशित सूचियाँ—

उपरोक्त भण्डारों में से कई जैन भण्डारों के सूचीपत्र भी प्रकाशित हो गये हैं। कई भण्डारों के ग्रन्थों का परिचय रिपोर्टों में प्रकाशित हुआ है। हजारों जैन प्रतियाँ भारत के बाहर एवं भारत में गवर्नमेण्ट के संग्रहालयों में पहुँच चुकी है जिनका कुछ विवरण उन संग्रहालयों की सूचियों में प्रकाशित है। यहां यथाज्ञात सूचियों की नामावली दी जा रही है जिससे साहित्य प्रेमियों को विशेष लाभ होगा।

१ जैन ग्रन्थावलि—प्रकाशित श्री जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेन्स, बम्बई वि० सम्वत् १९६५।

इसमें पाटण के ६ अहमदाबाद के २ जैसलमेर, लींबड़ी, भावनगर, बम्बई, कोड़ाय, खंभात और पूना डेकन कालेज एवं बृहत् टिप्पणिका (५०० वर्ष पूर्व लिखित जैन ग्रन्थों की सूची) में आये हुए ग्रन्थों की सूची प्रकाशित है।

२ जैसलमेर भांडागारीय* ग्रन्थानां सूची: (प्र०) बड़ौदा ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा सन् १९२३।

* इस सूची में ताड़पत्रीय एवं कुछ अन्य ग्रन्थों का भी विवरण है। हमने कुछ वर्ष पूर्व जैसलमेर की यात्रा कर १५ ताड़पत्रीय प्रतियाँ एवं २०० अन्यत्र अलभ्य ग्रन्थों का नवीन पता लगाया था। जिनके सम्बन्ध में दो लेख लिखे गये हैं। तत्पश्चात् मुनि पुण्यविजय जी ने बड़े भण्डार की विवरणात्मक सूची प्रतियों सहित तैयार की है जो छपने वाली है।

३ पत्तनस्थ प्राच्य जैन भांडागारीय ग्रन्थसूची (ताडपत्रीय प्रतियों की) प्र० बड़ौदा ओरियन्टल सीरीज, बड़ौदा सन् १९३७।

(नं० २-३ के सं० चिम्मनलाल दलाल व लालचन्द गांधी)

४ लींबड़ी भंडार सूची (सं० चतुरविजय) प्र० आगमोदयसमिति, सूरत सं० १९८५ बम्बई।

५ पंजाब भंडार सूची (सं० बनारसीदास जी) प्र० पंजाब युनिवरसिटी लाहौर ई० सन् १९३९।

६ खंभात शांतिनाथ प्रा० ताडपत्रीय जैन भंडार सूचीपत्र, प्र० शा० प्रा० ता० जैन ज्ञान भंडार, खंभात सन् १९४२।

७ सूरत भंडार सूची (ग्रन्थ नाम मात्र) सं० केशरीचन्द झवेरी प्र० जैन साहित्य फंड, सूरत सन् १९३८।

८ मोहनलाल जी जैन भंडार सूची (सूरत) ग्रन्थ नाम मात्र प्र० झवेरचंद रायचन्द, गोपीपुरा सूरत सन् १९१८।

९ यति प्रेमविजय भंडार सूची (उज्जैन) (ग्रन्थ नाम मात्र) प्र० उज्जैन

१० रत्नप्रभाकर ज्ञान भंडार सूची (ओसियां) प्र० वीरतीर्थ ओसियां वीर सं० २४४६।

११ जैनधर्म प्रसारक सभा संग्रह सूची प्र० जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर

१२ सुरामा लाइब्रेरी (चुरू) सूची छप रही है।

१३ जैन केटलोगस केटलोग्राम (सं० एच० डी० वेलणकर—भांडारकर इन्स्टीट्यूट, पूना से छप रहा है।)

१४ जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास, सं० मोहनलाल द० देसाई प्र० जैन श्वेताम्बर कान्फ्रेन्स, बम्बई, तीसरा भाग छप रहा है।

१५-१७ जैन गुर्जर कविओं भा० १-२-३ (भाषा-साहित्य) सं० मोहनलाल द० देसाई।

(नं० १५ से १७ के ३ ग्रन्थ श्वेताम्बर जैन साहित्य की जानकारी के के लिये अत्यन्त ही महत्व के हैं।)

इनका कुछ परिचय मैंने अपने "जैन साहित्य के ऐ० गुजराती ग्रन्थ" प्र० सम्मेलन पत्रिका वर्ष २८ अं० ९-१० में दिया है।

'जैन गुर्जर कविओं' तीनों भीगों की पूर्ति के रूप में मैंने एक ग्रंथ तैयार किया है। कोई संस्था उसे प्रकाशित करना चाहे तो भेज सकता हूँ। सैकड़ों जैन अज्ञात ग्रंथों का इन पंक्तियों के लेखक ने पता लगाया है जिनमें से हिन्दी के ग्रंथों के विवरण दो भागों में दिए हैं।

दि० संग्रहालय—

१८ जैन सिद्धान्त भवन आरा का केटलोग प्र० जैन सिद्धान्त भवन, आरा सन् १९१३।

१९ ,, ,, का प्रशस्ति संग्रह।

२० पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन, बम्बई की रिपोर्टों में प्रकाशित ग्रन्थसूची

२१ दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ (सं० नाथूराम प्रेमी) प्र० जैन हितैषी में व स्वतन्त्र भी।

२२ देहली, मूडबिद्री, इंदौर, आमेर, जयपुर, श्रवणबेलगोल, बम्बई, सोनीपत, नागौर आदि के दि० भंडारों की सूचियाँ प्र० अनेकान्त वर्ष ४, वर्ष ५।

२३ कारंजा आदि के दि० भंडारों की सूची रायबहादुर हीरालाल नें मध्यप्रान्त C. P. और बरार के सूचीपत्र में दी है, सन् १९२९।

२४ दि० जैन भाषा ग्रन्थ नामावलि (हिन्दी के ११० कवियों के) प्र० ज्ञानचंद्र जैन, दि० जैन पुस्तकालय, लाहोर सन् १९०१

२५ आमेर भंडार की सूची व प्रशस्तिसंग्रह प्रकाशित हो चुका है।

२६ दि० जैन ग्रन्थ सूची वीर सेवा मंदिर, सरसावा।

रिपोर्ट एवं गवर्नमेन्ट संग्रहालयों की सूचियाँ जिनमें जैन ग्रन्थों का विशेष परिचय प्रकाशित है।

१ भांडारकर इन्स्टीट्यूट—पूना की जैन प्रतियों के तीन भाग (सं० हीरालाल रसिकदास कापड़िया एम० ए०) स्वतन्त्र छपे हैं, अवशेष छपेंगे व काव्यादि अन्य केटलगों में भी जैन ग्रन्थों की सूची प्रकाशित है।

२ कलकत्ता संस्कृत कालेज के संग्रहस्थ जैन ग्रन्थों के ३ भाग छपे हैं।

३ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी कलकत्ता के संग्रह के जैन ग्रन्थों की एक छोटी सूची छपी है एवं उसके अन्य सूचीपत्रों में भी जैन ग्रन्थों का विवरण प्रकाशित है।

४ रॉयल एशियाटिक सोसाइटी--बम्बई के सूचीपत्र

५ ओरियन्टल मैनुस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, उज्जैन के सूचीपत्रों में जैन ग्रन्थों का विवरण है।

६ इंडिया आफिस, बर्लिन के केटलौग, राजेन्द्रमित्र के केटलौग, तंजोर, मद्रास काश्मीर बनारस, आदि के सूचीपत्र।

७ पीटर्सनकी ६ रिपोर्ट, भांडारकर को ६, कोल्हार्न की ३, बूल्हर की ८ काथवटे की २ में अनेक जैन भंडारों की प्रतियों का विवरण प्रकाशित हुआ है।

पूना से जिनरत्न कोश नामक एक बृहद सूची प्रकाशित हुई है जो महत्त्वपूर्ण है।

[पृष्ठ ७० का शेष]

इन वर्णन से यह ज्ञात हो जायगा कि केवल लिखित-मुद्रित ग्रन्थों में से अवतरण लेकर उनके आधार से निबन्ध लिख देना इतना ही संशोधन का अर्थ नहीं है। बल्कि प्रतियों की प्राचीनता का यथावत् मूल्यांकन करके तदनुसार पाठशुद्धि की व्यवस्था करना और उस उस विषय से सम्बद्ध सब बातों की गवेषणा करना एवं संशोधन की आधारभूत प्राचीन सामग्री की खोज, उसकी सुरक्षा एवं सर्वोपयोगी सुलभता की दृष्टि से व्यवस्था इत्यादि बातों का भी उसमें समावेश होता है।

मुनि श्री की साधना जैन साहित्य को तो प्रकाश में लाएगी ही, साथ ही भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के एक अज्ञात अध्ययन को प्रकट करेगी।

उनके द्वारा सम्पादित आगमों के संस्करण जैन परम्परा की अमूल्य निधि होंगे।

स्थानीय साहित्य-योजना

पूर्व इतिहास

श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति अमृतसर की ओर से बनारस में पार्श्वनाथ विद्याश्रम नाम की संस्था कई वर्षों से चल रही है। पिछले कुछ वर्षों से इसने जैन साहित्य के अनुशीलन एवं नवनिर्माण को अपने कर्यक्रम में प्रमुख स्थान देना प्रारम्भ किया है। परिणाम स्वरूप कई विद्वान् डाक्टरेट के लिए अनुशीलन अथवा स्वतन्त्र ग्रन्थ-निर्माण कर रहे हैं। संस्था के पास अपना पुस्तकालय है जिसमें जैन अनुशीलन के लिए पर्याप्त सामग्री है। हिन्दू विश्वविद्यालय के अध्यापक भी इस से लाभ उठाते रहते हैं। अनुशीलन करने वालों में दो विद्यार्थी जैन दर्शन संबन्धी विषय लेकर डाक्टरेट कर चुके हैं। दो अपने महानिबन्ध को शीघ्र ही विश्वविद्यालय में उपस्थित करने वाले हैं। पं० महेन्द्र कुमार जी न्यायाचार्य जैनदर्शन पर एक प्रामाणिक ग्रन्थ लिख रहे हैं। एक दूसरे सज्जन जैन मनोविज्ञान पर अनुशीलन कर रहे हैं। संस्था के अधिष्ठाता श्री कृष्णचन्द्राचार्य आगमों पर कार्य करने की सोच रहे हैं।

मार्च १९५२ में संस्था का वार्षिकोत्सव हुआ। विश्वविद्यालय के अधिकारी तथा अमृतसर से आए हुए समिति के कर्णधारों को विद्याश्रमकी कार्य प्रणाली से सन्तोष हुआ और सभी ने उसे आगे बढ़ाने के लिए उत्साह दिखाया। उत्सव में दिए गए व्याख्यानों एवं विद्वानों के मार्गदर्शन से प्रेरणा प्राप्त करके समिति के मन्त्री लाला हरजसराय जी कुछ लब्ध प्रतिष्ठ एवं जैन-अनुशीलन में रुचि रखने वाले विद्वानों से वैयक्तिक रूप में मिले और उनसे एक निश्चित योजना के रूप में मार्गदर्शन चाहा। उनमें डॉ० पी. एल. वैद्य, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल के नाम विशेषतया उल्लेखनीय हैं। डॉ. वैद्य ने आगमों का एक छोटा शुद्ध एवं सुखोद्वह संस्करण निकालने का परामर्श दिया। उनका कहना था, यदि आगमों में आए हुए पुनरुक्त पाठों को निकाल दिया जाय तो सभी आगम एक जिल्द में प्रकाशित किए जा सकते हैं। जो लोग अनुशीलन के लिए

आगमों का उपयोग करना चाहते हैं, इससे उन्हें सुविधा हो जाएगी। आगमों का सुलभ एवं सुख-पाठ संस्करण न होने के कारण विद्वान लोग उन्हें नहीं देख पाते और इतिहास, तत्त्वज्ञान तथा आगमों में आए हुए अन्य विषयों से संबन्ध रखने वाली बहुत सी बातें अस्पष्ट एवं अपर्यालोचित रह जाती हैं। डॉ० द्विवेदी ने अपभ्रंश साहित्य की ओर लक्ष्य खींचा। डॉ० अग्रवाल ने बताया—यदि आप लोग चाहते हैं कि विद्वज्जगत् जैन साहित्य की ओर आकृष्ट हो तो सबसे पहले जैन साहित्य का सर्वाङ्गीण इतिहास तैयार होना चाहिए। इसी प्रकार जैन विचारधारा का भी क्रमबद्ध इतिहास समय की मांग है। जैन विशेषनामों का कोश भी उतना ही आवश्यक है। इससे विद्वानों को जैन साहित्य का आलोडन करने में सुविधा हो जाएगी। डॉ० अग्रवाल की योजना निम्नलिखित छह भागों में विभक्त थी :—

१. व्यक्तिवाचक शब्दकोश (Dictionary of Proper Names)—लङ्का के डॉक्टर मलाल शेखर ने (Dictionary of Pali Proper Names) बनाई है। उससे विद्वानों के लिए बौद्ध साहित्य का अध्ययन सुगम हो गया है। उसी पद्धति पर अर्द्धमागधी, प्राकृत एवं संस्कृत भाषा के समस्त जैन साहित्य में आए हुए व्यक्तिवाचक एवं भौगोलिक शब्दों का परिचय देते हुए एक कोश तैयार करना चाहिए। इसके लिए कम से कम चार विद्वानों को चार वर्ष तक लगातार काम करना होगा। ग्रन्थ के निर्माण में लगभग ५००००) पचास हजार रुपए खर्च होंगे। उसके बाद प्रकाशन के लिए २५०००) पच्चीस हजार की आवश्यकता होगी।

२. जैनदर्शन और धार्मिक विचारधारा का क्रमवद्ध इतिहास (History of Jaina Philosophy and religion) जिस प्रकार सर राधाकृष्णन ने "हिस्ट्री ऑफ इंडियन फिलोसोफी" तैयार की है, कुछ वैसी ही वस्तु दो हजार पृष्ठों में जैन दर्शन एवं धर्म के लिए तैयार होनी चाहिए। इस रूप में जैनदर्शन के सामने आने पर न केवल जैन समाज के लिए वह वस्तु अत्यन्त उपयोगी होगी, बल्कि भारतीय दर्शन की जो इतिहास-कथा है उसमें जैन दर्शन अत्यन्त समुचित स्थान प्राप्त कर सकेगा। वस्तुतः आने वाले समय में जैन दार्शनिक और धार्मिक दृष्टिकोण की व्याख्या करने के कारण यह ग्रन्थ एक विशेष स्थान की पूर्ति करेगा।

यह कार्य संस्था भवन में नियमित रूप से विद्वानों को नियुक्त करने की अपेक्षा विद्वानों के स्वतन्त्र प्रयत्न के द्वारा अधिक अच्छी तरह पूरा हो सकता

है। लेकिन कार्य की सिद्धि के लिए यह आवश्यक है कि ऐसे विद्वानों के साथ संस्था कार्य के संबन्ध में किसी प्रकार का समझौता करले। जिससे नियत समय के भीतर योजना के अनुसार कार्य पूरा हो जाय। आर्थिक दृष्ट्या संस्था विद्वानों को मासिक न देकर ग्रन्थ के लिए पृष्ठों के आधार पर समुचित पुरस्कार प्रदान करे। बड़ी साइज के लगभग दो हजार पृष्ठों का यह ग्रन्थ पाँच वर्ष में पूरा किया जाय। पुरस्कार विद्वान् लेखक की अनुरूपता देखते हुए १०) प्रतिपृष्ठ रखना चाहिए। इस प्रकार २००००) रु० ग्रन्थ-लेखन में लगेंगे और उतने ही प्रकाशन में।

३. योजना का तीसरा भाग जैन साहित्य के सांगोपांग इतिहास से संबन्ध रखता है। इसके तीन भाग हो सकते हैं। पहले भाग में आगमों का परिचय, दूसरे में तदतिरिक्त प्राकृत-संस्कृत साहित्य का इतिहास तथा तीसरे में अपभ्रंश एवं लोक भाषाओं में विरचित जैन साहित्य का इतिहास रहे। इस प्रकार लगभग एक एक सहस्र पृष्ठ की तीन जिल्दों में यह कार्य पूरा हो सकता है। इस कार्य को भी वैतनिक आधार पर न रख कर संस्था को पृथक् पृथक् विद्वानों द्वारा कराना होगा। इसके लिए ५) रु० प्रति पृष्ठ दक्षिणा देनी चाहिए। इस प्रकार १५०००) रु० में यह ग्रन्थ तैयार होगा और लगभग ३००००) तीस हजार रुपया छपाने में खर्च होगा।

४–५. चौथी और पाँचवीं योजना जैन साहित्य में उपलब्ध सांस्कृतिक सामग्री के पूर्ण संकलन और संचय से सम्बन्ध रखती हैं। इस संबन्ध में डॉ० जगदीशचन्द्र जैन तथा श्री गुलाबचन्द जैन ने कुछ कार्य किया भी है। यह कार्य भविष्य में अनुशीलन (Research) करने वालों के लिए छोड़ देना ठीक होगा। किसी नियमित योजना के द्वारा इसकी पूर्ति उतनी सफलता के साथ नहीं की जा सकती। भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से जैन सामग्री का संकलन, उसकी व्याख्या और मूल्यांकन भारतीय इतिहास विषयक अनुसन्धान से संबन्ध रखता है। समयानुसार भिन्न भिन्न विद्वान् इसकी पूर्ति करेंगे, ऐसी आशा है।

६. योजना का छठा भाग जैन दार्शनिक शब्दावली (Dictionary of Jaina Philosophical Terms) से संबन्ध रखता है। यह ग्रन्थ भी विद्वानों और साधारण जनता के लिए बड़े काम की वस्तु होगी। लगभग दो हजार पृष्ठों में इस प्रकार का कोश तैयार हो सकता है। इसके लेखन और प्रकाशन में लगभग तीस हजार ३००००) रु० की आवश्यकता होगी।

संस्था के मन्त्री लाला हरजसराय जी तीनों विद्वानों के विचारों को लेकर अमृतसर गए और अपनें साथियों के साथ ऊहापोह किया। समिति की मर्यादा तथा साथियों के उत्साह को देखकर उन्होंने योजना के दूसरे या तीसरे भाग को हाथ में लेनें की स्वीकृति प्रकट की और डाक्टर अग्रवाल को पत्र लिखा कि इन दोनों में से किसे हाथ में लिया जाय, इस पर वे अपना निर्णय दें और भविष्य का कार्यक्रम निश्चित करें।

तदनुसार ता० २५ जनवरी १९५३ को डॉ० अग्रवाल की अध्यक्षता में विद्याश्रम की प्रवृत्तियों से संबन्ध रखनें वाले सज्जनों की एक बैठक हुई और उसमें जैन साहित्य के पूर्णाङ्ग इतिहास (योजना नं० ३) को हाथ में लेने का निश्चय किया गया। उसी में यह भी निश्चय हुआ कि योजना पर विचार करने के लिए विद्वानों की एक परिषद् बुलाई जाय और उसके लिए उनतीस नाम चुने गए। आवश्यकतानुसार और विद्वानों को बुलाने की भी गुंजायश रखी गई। मार्ग व्यय के लिए बाहर से आनें वाले विद्वानों को तीन सेकेंड क्लास का किराया देना उचित समझा गया। परिषद् के लिए स्थान तथा समय संबन्धी निर्णय के लिए उसे अहमदाबाद में मुनि श्री पुण्यविजय जी की सुविधानुसार रखना उचित समझा गया।

ता० २७-१-५२ को फिर एक बैठक हुई जिसमें साहित्य के इतिहास को भाग तथा खण्डों में विभाजित किया गया और प्रत्येक खण्ड के लिए विस्तृत रूपरेखा बनाने तथा तत्संबन्धी कार्य को हाथ में लेने के लिए कुछ विद्वानों के नाम निर्दिष्ट किए गए। विभाजन की रूपरेखा निम्नलिखित है :—

भाग १—(Vol. 1) आगमिक साहित्य का इतिहास

(खंड १) मूल आगम (अंग-अंगेतर) और उनकी निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका और टबाओं का ऐतिहासिक क्रम से सांगोपांग परिचय।

—पं० बेचरदास जी

(खंड २) षट् खंडागम, कषाय पाहुड, एवं महाबन्ध और उन पर रचित धवला, जयधवला, महाधवला आदि समस्त टीकाओं का परिचय।

—डॉ० हीरालाल जैन

नोट—दोनों खंड एक हजार पृष्ठ के लगभग होंगे।

(खंड ३) कर्मशास्त्र, कम्मपयडी, पंचसंग्रह, गोम्मटसार, प्राचीन और नवीन कर्मग्रन्थ तथा समस्त कर्मसाहित्य। —पं० फूलचन्द्र जी

(खंड ४) आगमिक प्रकरण साहित्य। —श्री दलसुख मालवणिया

भाग २—(Vol. II) दार्शनिक और वैज्ञानिक साहित्य का इतिहास

(खंड १) दर्शन साहित्य—प्रमाण, नय, निक्षेप संबन्धी तथा द्रव्य, गुण, पर्याय संबन्धी इत्यादि। —श्री दलसुख मालवणिया

(खंड २) वैज्ञानिक साहित्य—व्याकरण, कोष, अलंकार, छन्द, ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद, संगीत, शिल्प, मुद्रा, रत्नशास्त्र, ऋतुविज्ञान, शकुन, सामुद्रिक, लक्षणशास्त्र, धातु उत्पत्ति (Metallurgy) इत्यादि।

—श्री ए० एन० उपाध्ये

भाग ३—(Vol. III) साहित्य का इतिहास

(खंड १) पुराण, चरित, कथा, प्रबन्ध, साहित्य।

(खंड २) काव्य, नाटक, चम्पू, स्तुति-स्तोत्र और साहित्यिक टीकाएँ।

—डॉ० भोगीलाल सांडेसरा बड़ौदा

भाग ४—(Vol. IV) लोकभाषाओं का इतिहास

(खण्ड १) हिन्दी, गुजराती आदि। —श्री अगरचन्द नाहटा

(खण्ड २) कन्नड, तामिल, तेलगु आदि। —श्री के० भुजबलि शास्त्री

विद्वत्परिषद् के लिए अहमदाबाद के अतिरिक्त काशी और पंजाब के दो सुझाव और थे। काशी में योजना समिति का प्रधान कार्यालय था और आमन्त्रित विद्वानों में से कई यहीं रहते थे। पं० सुखलाल जी भी उन दिनों इधर आनें वाले थे, इस लिए काशी की ओर विशेष झुकाव था।

ता० ११–२–५३ को योजना समिति की फिर एक बैठक हुई और अन्य बातों के अतिरिक्त रूपरेखा से संबन्धित विद्वानों से स्वीकृति एवं रूपरेखा प्राप्त करनें के लिए पत्र व्यवहार करनें का निश्चय हुआ। साथ में यह भी तय हुआ कि रूपरेखाएँ प्राप्त होने पर उन्हें छपा लिया जाय और परिषद् से दस दिन पहले आमन्त्रित विद्वानों के पास भेज दिया जाय।

ता० २८–२–५३ को एक बैठक मन्त्री जी की उपस्थिति में हुई। उसमें निश्चय हुआ कि विद्वत्परिषद् काशी में १६-१७-१८ एप्रिल को रखी जाय और तदनुसार सारी व्यवस्था की जाय।

परिषद् के लिए तैयारी प्रारम्भ हो गई और आमन्त्रण भेज दिए गए। दूसरी ओर से निर्दिष्ट विद्वानों की उत्साहवर्धक स्वीकृतियाँ तथा रूपरेखाएँ भी

आने लगीं। इन्हीं दिनों पं० सुखलाल जी वैशाली महोत्सव की अध्यक्षता के लिए वैशाली जाते हुए काशी आए और लगभग १५ दिन ठहरे। योजना संबन्धी सभी प्रश्नों एवं पूर्व तैयारी की चर्चा की। उन्हें यह प्रतीत हुआ कि विद्वत्परिषद् में मुनिश्री पुण्यविजय जी और मुनि श्री जिनविजय जी की उपस्थिति आवश्यक है। गर्मी तथा लू के कारण काशी में ऋतु भी कठोर होती जा रही थी। विद्वत्परिषद् में विचार के लिए कुछ पूर्व भूमिका भी आवश्यक थी। इन्हीं सब कारणों को ध्यान में रखकर उन्होंनें सलाह दी कि विद्वत्परिषद् को अहमदाबाद में प्राच्यविद्या परिषद् (Oriental Conference) के साथ रखा जाय। उन दिनों डाक्टर अग्रवाल कार्यवश बाहर गए थे। दूसरी ओर स्वास्थ्य संबन्धी कारणों से पण्डित जी शीघ्र रवाना होना चाहते थे। फलस्वरूप वे अपने विचार एक पत्र में लिखित रूप से दे गए और अहमदाबाद के लिए रवाना हो गए।

पूर्वनिश्चित कार्यक्रम के अनुसार पण्डित जी परिषद् की तिथि तक रुकने वाले थे। इसलिए डा० अग्रवाल निश्चिन्त थे। उन्हें पारिवारिक परिस्थिति-वश बाहर रुकना पड़ा। दूसरी ओर मूडबिद्री, कोल्हापुर, अहमदाबाद, पूना इत्यादि सुदूर प्रदेशों से आने वाले विद्वानों को निश्चित सूचना भेजनी आवश्यक थी। परिणामस्वरूप ता० ६-४-५३ को एक अत्यावश्यक बैठक बुलाई गई और उसमें परिषद् को स्थगित करने का निश्चय किया गया और आमंत्रित सदस्यों को तार द्वारा सूचना दे दी गई। यहाँ इस बात का उल्लेख कर देना आवश्यक है कि परिषद् के स्थगन का अर्थ किसी प्रकार का कार्य शैथिल्य नहीं था। कार्य को अत्यधिक सुन्दर और सुव्यवस्थित बनाने के लिए ही ऐसी किया गया। कार्य में वेग होना चाहिए किन्तु उस का सुविचारित होना भी आवश्यक है।

वर्तमान स्थिति

(१) भाग--आगम साहित्य का इतिहास

पहला खण्ड—मूल आगम और उनकी निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका और और टबाओं का ऐतिहासिक क्रम से सांगोपांग परिचय।

इस खण्ड के लिए पं० वेचरदास जी को लिखा गया। उन्होंने सहर्ष स्वीकृति देकर हमारे उत्साह को बढ़ाया है। पण्डित जी ने आगम संबन्धी लेखन

के लिए संभावित प्रश्नों की एक विस्तृत सूची बनाकर भेजी है। उन प्रश्नों को पाँच भागों में बाँट कर पाँच अधिकारी लेखकों के नाम सुझाए हैं। सूची इसी अंक में अन्यत्र छापी है। उसका वर्गीकरण निम्न प्रकार है--

१. इतर साहित्य के साथ आगमों का संबन्ध---इस विषय से संबन्ध रखने वाले सभी प्रश्न— पं० बेचरदास जी
२. भाषा विज्ञान संबन्धी प्रश्न---डॉ० प्रबोध पण्डित
३. सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक प्रश्न---डॉ० वा० श० अग्रवाल
४. सामाजिक प्रश्न---डॉ० जगदीश चन्द्र जैन
५. दार्शनिक विचार तथा विकास---प्रो० दलसुख भाई मालवणिया
डॉ० नथमल टॉटिया

निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य तथा टीका साहित्य के लिए उन्होंने मुनि श्री पुण्यविजय जी महाराज का नाम सुझाया है।

विभागीय लेखकों की स्वीकृति के लिए पत्रव्यवहार किया जा रहा है। इस प्रकरण के अध्यायों की रूपरेखा पण्डित जी शीघ्र भेजने वाले हैं।

दूसरा खण्ड—षट् खण्डागम, कषायपाहुड, एवं महाबन्ध और उन पर रचित धवला, जयधवला, महाधवला आदि समस्त टीकाओं का परिचय।

इसके लिए डॉ० हीरालाल जैन नागपुर की स्वीकृति तथा रूपरेखा प्राप्त हो गई है।[1]

तीसरा खण्ड---कर्म शास्त्र, कम्मपयडी पंचसंग्रह गोम्मटसार, प्राचीन तथा नवीन कर्मग्रन्थ तथा समस्त कर्म साहित्य।

इसके लिए पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्त शास्त्री की स्वीकृति और रूपरेखा प्राप्त हो चुकी है। इस की रूपरेखा तैयार है।

चौथा खण्ड---आगमिक प्रकरण साहित्य। इसकी भी रूपरेखा तैयार है।

(२) भाग-दार्शनिक और लाक्षणिक साहित्य का इतिहास

पहला खण्ड---दर्शन-प्रमाण, नय, निक्षेप संबन्धी तथा द्रव्य, गुण, पर्याय संबन्धी-साहित्य का परिचय। रूपरेखा तैयार है।

---

[1] सभी रूपरेखाएं इसी लेख के अन्त में दी गई हैं।

दूसरा खण्ड—लाक्षणिक साहित्य—व्याकरण, कोष, अलङ्कार, छन्द, ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद, संगीत, शिल्प, मुद्रा, रत्नशास्त्र, ऋतुविज्ञान, शकुन, सामुद्रिक, लक्षणशास्त्र, धातु उत्पत्ति (Metallurgy) इत्यादि ।

इसके लिए डॉ० ए. एन. उपाध्ये को लिखा गया था, उन्होंने अन्य सभी प्रकार के सहयोग का आश्वासन दिया किन्तु दूसरे कार्य में व्यस्त होने के कारण मुख्य लेखन का उत्तरदायित्व लेने में असमर्थता प्रकट की। परिणाम-स्वरूप बड़ोदा के पं० लालचन्द्र भगवान् गांधी को लिखा गया। पण्डित जी ओरिएण्टल इंस्टिट्यूट बड़ोदा में दीर्घकाल तक अनुशीलन का कार्य करते रहे हैं तथा जैन भण्डारों एवं विविध साहित्य के पुराने अभ्यासी हैं। हर्ष की बात है कि वृद्धावस्था होने पर भी पण्डित जी ने हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया है और अपने अनुभव का लाभ देने का आश्वासन दिया है। आशा है, इस साहित्य की रूपरेखा भी शीघ्र ही प्राप्त हो जाएगी।

(३) भाग—साहित्य का इतिहास

पहला खण्ड—पुराण, चरित, कथा, प्रबन्ध साहित्य।

दूसरा खण्ड—काव्य नाटक, चम्पू, स्तुति स्तोत्र और साहित्यिक टीकाएं।

इसके लिए डॉ० भोगीलाल सांडेसरा को लिखा गया था। उन्होंने दोनों खण्डों की रूपरेखा भेज दी है।

(४) भाग—लोकभाषाओं का साहित्य

पहला खण्ड—अपभ्रंश साहित्य। पहले वाली रूपरेखा में अपभ्रंश साहित्य को अलग स्थान न देकर तत्तद् विषयों के साहित्य में अन्तर्भाव कर लेने का निश्चय किया गया था। किन्तु ता० २८–४–५३ की बैठक में यह निर्णय किया गया कि अपभ्रंश साहित्य का खण्ड अलग रखा जाय। इसकी रूपरेखा के लिए श्री केशवलाल काशीप्रसाद शास्त्री, गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद का निर्देश किया गया है। उनकी स्वीकृति प्राप्त की जा रही है।

दूसरा खण्ड—हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी आदि।

इसके लिए श्री अगरचन्द जी नाहटा ने रूपरेखा भेजी है। हिन्दी साहित्य के लिए श्री नाथूराम जी प्रेमी को लिखा गया था। उन्होंने जबलपुर के हिन्दी साहित्य-सम्मेलन में पढ़ने के लिए 'हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास' नामक विस्तृत निबन्ध लिखा था। उसके बाद ३०–३५ वर्षों में जो नई खोज

हुई है उसको सम्मिलित करके अब उन्होंने नया ग्रन्थ लिखने का आश्वासन दिया है। वृद्धावस्था तथा अन्य व्यस्तताओं के कारण वे पूरा काम अपने हाथ से न कर सकेंगे किन्तु किसी योग्य सहायक को रख कर अपने मार्गदर्शन में सारा काम करा सकेंगे। समिति ने उनकी सुविधानुसार व्यवस्था करने का वचनासन देते हुए कार्य को हाथ में लेने की प्रार्थना की है।

राजस्थानी के लिए नाहटा जी योग्यतम व्यक्ति हैं। गुजराती के लिए भी वे स्वयं लिखेंगे या योग्य व्यक्ति का सुझाव करेंगे।

तीसरा खण्ड—कन्नड, तामिल, तेलुगु आदि दक्षिणी भाषाओं का साहित्य।

इसके लिए श्री के० भुजबली शास्त्री ने रूपरेखा बनाकर भेजी है, साथ ही कुछ लेखकों का नाम सुझाया है।

तामिल जैन साहित्य पर श्री ए० चक्रवर्ती की लेखमाला जैन सिद्धान्त भास्कर में प्रकाशित हुई है। उससे भी सहायता ली जाएगी।

भावी कार्यक्रम

अहमदाबाद में प्राच्यविद्या परिषद् (Oriental Conference) अक्टूबर में होगी। उसी समय जैन विद्वानों का भी एक सम्मेलन किया जाएगा जो योजना को अन्तिम रूप देगा। उससे पहले हमें नीचे लिखी तैयारी कर लेनी है :—

१. विभिन्न खण्डों के अन्तर्गत विभागीय लेखकों से स्वीकृति प्राप्त करना।
२. लेखक द्वारा अपेक्षित सूची या अन्य सामग्री को जुटाना।
३. परिषद् में विचारणीय प्रश्न तथा अन्य बातों को ऊहापोह द्वारा एक निश्चित भूमिका पर लाना।
४. ग्रन्थ से संबन्ध रखने वाली अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करना।
५. साहित्यिक पत्रों में आए जैन साहित्य संबन्धी लेखों की सूची बनाना।

हम चाहते हैं, परिषद् में योजना अपना अन्तिम रूप ले ले और तत्काल कार्य प्रारम्भ कर दिया जाय।

रूपरेखाएं

(१) भाग—आगमिक साहित्य

पहला खण्ड—श्वेताम्बर आगम (रूपरेखा नहीं मिली)

दूसरा खण्ड—दिगम्बर आगम साहित्य—

कर्म प्राभृत और कषाय प्राभृत तथा उनकी टीकाएँ

(क) कर्म प्राभृत (षटखंडागम)

१. कर्मप्राभृत की आगमिक परम्परा

२. सूत्र और उनकी टीकाओं के रचियता और उनका रचना काल

३. सूत्र और टीकाओं की भाषा व रचना शैली

४. विषय परिचय—

खण्ड–१. जीवट्ठाण २. खुद्दाबंध ३. बन्धस्वामित्वविपय ४. वेदना ५. वर्गणा ६. महाबंध

(कृति, स्थिति, अनुभाग व प्रदेशबंध)

(ख) कषाय प्राभृत (पेज्जदोस पाहुड)

१. कषाय प्राभृत की आगमिक परम्परा

२. क० प्रा० के गाथाकार व टीकाकार और उनका रचनाकाल

३. गाथा व टीकाओं की भाषा और रचनाशैली

४. विषय परिचय

(१) पेज्जदोस विभक्ति (२) स्थिति विभक्ति (३) अनुयाग विभक्ति (४) प्रदेश विभक्ति (५) बंधक (६) वेदक (७) उपयोग (८) चतुःस्थान (९) व्यञ्जन (१०) दर्शन मोहोपशः (११) दर्शन मोह क्षपणा (१२) देशविरत (१३) संयम लब्धि (१४) चरित्र मोहोपश (१५) चारित्र मोह + क्षपणा

तीसरा खण्ड—कर्म साहित्य

१. कर्मवाद की पृष्ठभूमि

१. दर्शन साहित्य और कर्मवाद

२. पुराण साहित्य और कर्मवाद

३. नीति ग्रन्थ और कर्मवाद

४. कारण मीमांसा और कर्मवाद

स्वभाव, काल, नियति, ईश्वर, कर्म,

५. जगदुत्पत्ति की विविध मान्यताऐं और कर्मवाद

६. पुनर्जन्म की विविध मान्यताऐं और कर्मवाद

७. आधुनिक मत और कर्मवाद डार्वनिज्म, मेंडेलिज्म आदि

८. समीक्षा

२. कर्म साहित्य और उसका क्रमिक विकास

१. अङ्गसाहित्य और पूर्व साहित्य

२. सूत्र ग्रन्थ और उनकी चूर्णियां

३. टीका ग्रन्थ,

४. अन्य साहित्य—कर्म प्रकृति, पञ्चसंग्रह (दि० श्वे०), कर्मग्रन्थ (प्रा० अ०), कर्मकाण्ड आदि

३. कर्ममीमांसा

अन्य आवश्यक विषय जिनका प्रस्तुत खण्ड में विवेचन करना इष्ट होगा।

चौथा खण्ड—आगमिक प्रकरण साहित्य

प्र० १ आगमिक प्रकरणों का उद्भव

प्र० २ आगमसार और द्रव्यानुयोग संबंधी साहित्य

प्र० ३ औपदेशिक साहित्य

प्र० ४ योग और अध्यात्म्

प्र० ५ अनगार और अगार के आचार संबंधी साहित्य

प्र० ६ विधि-विधान-कल्प-मंत्र-तंत्र संबंधी साहित्य

प्र० ७ पर्वों और तीर्थों के संबंध में

(२) भाग—दर्शन और लाक्षणिक साहित्य

पहला खण्ड—दार्शनिक साहित्य

प्र० १ भूमिका—दार्शनिक साहित्य रचना की भूमिका

(क) आगमों का प्रभाव (ख) जैनेतर दार्शनिक साहित्य का प्रभाव (ग) अन्य प्रभाव

प्र० २ विषय प्रवेश .

(क) अनेकान्तवाद (ख) प्रमाण-प्रमेय विचार—प्राचीन और नवीन (ग) सांप्रदायिक खण्डन-मंडन (घ) जैनेतर दार्शनिक टीका ग्रन्थ

प्र० ३ वि० १०० से वि० ६५०

आचार्य कुन्दकुन्द, उमास्वाति, भद्रबाहु पूज्यपाद, सिद्धसेन, समन्तभद्र, मल्लवादी, जिनभद्र, सिंहसूर आदि के ग्रन्थ

प्र० ४ ६५१—१०००

हरिभद्र, अकलंक, श्रीदत्त, कुमारनंदी, पात्र केसरी, सिद्धसेन गणि, विद्यानन्द, शाकटायन, अनन्तवीर्य (१) माइल्लधवल, सिद्धर्षि, देवसेन आदि

प्र० ५ १००१—१२५०

सोमदेव, अभयदेव, माणिक्यनंदी, कनकनंदी जयराम, हरिषेण, अमितगति, जिनेश्वर, वादिराज, प्रभाचन्द्र, पद्मसिंह, कीर्ति, शान्त्याचार्य, आनन्दसूरि अमरसूरि, अनन्तवीर्य, वसुनन्दी, चन्द्रप्रभ, मुनिचन्द्र मलधारी हेमचन्द्र, वादीदेव, अनन्तवीर्य (२), शुभचन्द्र, हेमचन्द्र, मलयगिरि, पार्श्वदेव, चन्द्रसूरि, समन्तभद्र (२), श्रीचन्द्र, जिनदत्त, देवभद्र, रत्नप्रभ, अमृतचन्द्र देवभद्र-यशोदेव, यशोवर्धन, रामचन्द्र गुणचन्द्र, रविप्रभ, चन्द्रसेन, प्रद्युम्न, चक्रेश्वरसूरि, जिनपति

प्र० ६ १२५१—१७००

परमानन्द, जिनपाल, माघनंदी, धर्मघोष, नरसिंह, आशाधर, महेन्द्रसूरि, ब्रह्मशांतिदास, अभयतिलक, प्रबोधचन्द्र, मल्लिषेण जिनप्रभ, राजशेखर, सोमतिलक, ज्ञानचन्द्र, सूरचंद्र (१६७९)

ज्ञानकलश, जयसिंहसूरि, मेरुतुंग जयशेखर, साधुरत्न, गुणरत्न, धर्मभूषण, मुनिसुंदर, जिनवर्धन जिनमंडन साधुविजय, भुवनसुंदर, सिद्धांतसार, ज्ञानभूषण, श्रुतसागर, सौभाग्यसागर, विजयदानसूरि, हीरविजय,

धर्मसागर, वर्नाष, शुभचन्द्र (२), राजमल्ल, पद्मसागर, दयारत्न, शांतिचन्द्र, सिद्धिचन्द्र, शुभविजय, भावविजय, रत्नचन्द्र, राजहंस, विमलदास, गुणविजय (गुणविनय)

प्र० ७ १७९१—२०००

विनय विजय, यशोविजय, मानविजय, दानविजय, यशस्वतसागर, मेघविजय, अमृतसागर, भावप्रभ, देवचन्द्र, मयाचन्द्र, भोजसागर क्षमाकल्याण, वाचकसंयम, गंभीरविजय, आनन्दसागर, मंगलविजय*

(३) भाग—साहित्य का इतिहास

पहला खण्ड—चारित्रात्मक तथा कथात्मक साहित्य

(१) जैन चारित्रात्मक तथा कथात्मक साहित्य के विषय में प्रास्ताविक
डा० उपाध्ये ।

---

* कई ऐसे आचार्य हैं जिनका समय मालूम नहीं हो सका और कई ऐसे ग्रन्थ हैं जिनके लेखक का पता नहीं चला । इन सबका निर्देश करना इस भाग में तभी संभव होगा जब वे ग्रन्थ देखे जायँ । देखकर यथासंभव शताब्दि निर्णय करके उन्हें यथास्थान रख देना चाहिए ।

(२) दिगम्बर पुराण, चारित्र तथा कथाग्रन्थ

डॉ० उपाध्ये अथवा श्री पद्मनाभ जैनी।

(३) श्वेताम्बर चारित्र तथा कथाग्रन्थ

पं० बेचरदास जी अथवा पं० लालचन्द्र गांधी।

प्रबंध साहित्य

(४) प्रबन्ध साहित्य (जिसमें ऐतिहासिक चारित्र, प्रशस्तियाँ, तथा तत्सम्बद्ध ऐतिहासिक साहित्य का समावेश हो जाय ।

आ० जिनविजय जी अथवा डॉ० सांडेसरा

दूसरा खण्ड—ललित वाङ्मय

(५) महाकाव्य, खण्ड काव्य, नाटक, चम्पू, सुभाषित संग्रह आदि ललित वाङ्मय

(इस प्रकार के ललित वाङ्मय का धार्मिक चरित्रों के साथ वस्तुगत साम्य होने पर भी भेद बताना आवश्यक है। जैसे कि 'नेमिनाथ चरित' सरीखा ग्रन्थ प्रकरण ३ में जाएगा और 'नेमि-निर्वाण काव्य' यहाँ आएगा)

प्रो० रसिकलाल पारीख अथवा मधुसूदन मोदी।

(६) स्तोत्र श्री उमाकान्त शाह अथवा हीरालाल कापडिया

(७) साहित्यिक टीकाएँ श्री अगरचन्द नाहटा।

(४) भाग—लोक भाषाओं का साहित्य

पहला खण्ड—अपभ्रंश साहित्य (अभी रूपरेखा नहीं मिली)

दूसरा खण्ड—(क) राजस्थानी जैनसाहित्य

१ भूमिका—राजस्थान क्षेत्रविस्तार

१. राजस्थान से जैन धर्म का संबंध
२. राजस्थान में जैन ग्रन्थों की रचना का प्रारंभ
३. राजस्थानी भाषा का विकास
४. राजस्थानी जैन साहित्य का विकास
५. राजस्थानी जैन साहित्य का महत्व-प्रकार (विविधता, विशालता, विशेषता)
६. राजस्थानी जैन साहित्य की देन

२ राजस्थानी--साहित्य के निर्माता जैन ग्रंथकार व उनके ग्रंथ

१. प्रारम्भ--ग्रंथकार १३ वीं से १६ वीं का प्रारम्भ
(प्राचीन गुजराती राजस्थानी का साहित्य)

२. उत्थानकाल—सोलहवीं सत्रहवीं अठारहवीं सदी

३. अवनतिकाल—१९ वीं से २० वीं के पूर्वार्द्ध तक

३ राजस्थानी ग्रंथ, ग्रंथकार व उनकी रचनाएँ

१. ग्रंथ का प्रारम्भ व प्रकार (प्रारम्भ, टीकाएँ, वर्णनात्मक)
१४ वीं से १६ वीं पूर्वार्द्ध

२. १७ वीं से २० वीं के प्रारम्भ तक के ग्रंथकार

उपसंहार

(ख) गुजराती जैन साहित्य

१ भूमिका—१. गुजरात से जैनों का संबंध

२. गुजरात में जैन साहित्य रचना का प्रारम्भ

३. गुजराती एवं राजस्थान की भाषागत एकता

४. गुजराती का पृथक्करण

गुजराती भाषा के जैन कवि व उनके ग्रंथ

१. सोलहवीं से १८ वीं सदी का गुजराती जैन साहित्य

२. १९ वीं से २० वीं तक

गुजराती गद्य ग्रंथ--

आरम्भ से २० वीं तक

उपसंहार

(ग) हिन्दी जैन साहित्य

१. भूमिका—१. हिन्दी भाषा की उत्पत्ति—अपभ्रंश से परम्परा
हिन्दी प्रदेश

२. हिन्दी जैन साहित्य का प्रारंभ, विकास, प्रकार, पदादि

३. विविध विषयक हिन्दी जैन साहित्य

२. हिन्दी जैन साहित्यकार व उनके ग्रंथ—

१. सोलहवीं से—(दि० श्वे०)

२. १८ वीं १९ वीं

३. २० वीं से वर्तमान तक

३. जैन हिन्दी गद्य—प्रारम्भ विकास
  १. सत्रहवीं—१८ वीं
  २. १९ वीं से २० वीं

तीसरा खण्ड—कन्नड भाषा का इतिहास

१ कन्नड भाषा की प्राचीनता

२ कन्नड में जैन साहित्य

(१) आगम : (क) तत्त्व (ख) आचार
  (क) तत्त्व : सिद्धान्त, अध्यात्म, न्याय, योग, कर्म साहित्य इत्यादि ।
  (ख) आचार : व्रतविधान, आराधना, प्रतिष्ठा पाठ, स्तोत्र, भजन, क्रिया काण्ड इत्यादि ।

(२) साहित्य : (क) लौकिक (ख) धार्मिक
  (क) लौकिक : रामायण, भारत, कादंबरी, लीलावती, इत्यादि ।
  (ख) धार्मिक : पुराण, काव्य, नाटक, चम्पू, चरित, कथा, प्रबन्ध, नीति, सुभाषित, समीक्षा, स्तुति, स्तोत्र, इत्यादि ।

(३) लाक्षणिक : व्याकरण, कोश, अलंकार, छंद इत्यादि ।

३ शास्त्र (वैज्ञानिक) : (क) ज्योतिष (ख) गणित (ग) आयुर्वेद (घ) शकुन (च) सामद्रिक इत्यादि ।

४ कलाएं : (क) स्मरणशास्त्र, (ख) सूपशास्त्र (ग) शिल्पशास्त्र (घ) संगीतशास्त्र (च) रत्नशास्त्र इत्यादि ।

५ ऐतिहासिक : (क) चरित्र (ख) शासन इत्यादि ।
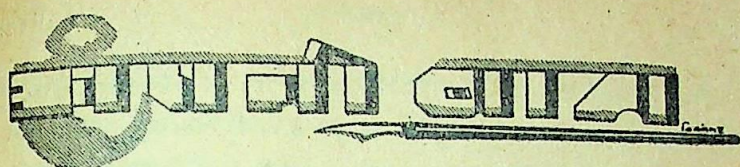
जैन साहित्य और अनुशीलन

वर्तमान अनुयायिओं की संख्या पर ध्यान दिया जाय तो जैन समाज एक छोटा सा समाज है। नई जनगणना के अनुसार इस के सदस्य चौबीस लाख से अधिक नहीं हैं। किन्तु भारत के जनमानस पर इस परम्परा की जो गहरी छाप है उसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी और कच्छ एवं सौराष्ट्र से लेकर बंगाल तक इसके मानने वाले महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। भारतीय व्यवसाय तथा उद्योग धन्धों में तो अग्रणी स्थान है ही, स्वाधीनता संग्राम में भी वे किसी से पीछे नहीं रहे।

किन्तु जैन परम्परा की सबसे अधिक मूल्यवान देन है उसका साहित्य। ईसा के ८०० वर्ष पहले भगवान् पार्श्वनाथ से लेकर आजतक जैन साहित्य का भण्डार बराबर बढ़ता रहा है। आर्यों की इस भूमि नें इतनें लम्बे काल में जो क्रान्तियाँ थी, परस्पर विचारों के संघर्ष से जीवन के जो नए सूत्र प्राप्त किए, विदेशियों के सम्पर्क में आकर जो लेन देन की, सम्प्रदायवाद तथा खण्डन मण्डन के युग में पड़कर जिस अमृत और विष की सृष्टि की, वे सब इस साहित्य में प्रतिबिम्बित हैं। न्याय, व्याकरण, साहित्य, दर्शन अर्थशास्त्र, धर्म, मूर्तिकला, स्थापत्य, शिल्पशास्त्र, मन्त्रशास्त्र, ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद पशुशास्त्र आदि एक भी ऐसा विषय नहीं है जिस पर जैन आचार्यों की महत्वपूर्ण रचनाएँ न हों। जहाँ सांस्कृतिक देन का प्रश्न है जैन परम्परा बौद्ध और वैदिक परम्पराओं के साथ कन्धे से कन्धा भिड़ाकर चली है। इसने भारतीय मस्तिष्क को अहिंसा, संयम और तप की त्रिवेणी से सींचा है। भावनाओं के सात्विक विकास में महत्वपूर्ण योग दिया है तथा जन साधारण को दया, परोपकार, भगवद्भक्ति, त्यागी तथा तपस्वियों की सेवा, प्राणिमात्र से मैत्री आदि समाज तथा धर्म के मूल सिद्धान्तों की ओर प्रेरित किया है। यह दुर्भाग्य की बात है कि इस विशाल साहित्य का अनुशीलन जैसा चाहिए था, अभी नहीं हुआ। अब भी सैकड़ों ग्रन्थ अन्धकार में छिपे हुए हैं जो सामने आनें पर भारतीय साहित्य पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाल सकते हैं। जो छपे उनके भी प्रामाणिक संस्करण नहीं निकले। भाषा, दर्शन, इतिहास, अलङ्कार, स्थापत्य आदि शास्त्रों के विकास की दृष्टि से उनका अध्ययन तो बिल्कुल ही नहीं हुआ।

इसके मुख्य दो कारण हैं—भारतीय साहित्य क्षेत्र में साम्प्रदायिक संकुचित मनोवृत्ति तथा जैन परम्परा के वर्तमान अनुयायिओं का अर्थ प्रधान होना। जिस प्रकार भारत के मन्दिर तथा देवता सम्प्रदायों में बँटे हुए हैं उसी प्रकार साहित्य भी बँटा हुआ है। पिछले दिनों तक वैदिक परम्परा का अनुयायी बौद्ध या जैन ग्रन्थों को अस्पृश्य के समान देखता रहा है। व्याकरण, न्याय, काव्य आदि के कुछ प्रारम्भिक ग्रन्थों को छोड़कर जैन विद्वानों की भी यही वृत्ति रही है। इतना ही नहीं, श्वेताम्बर विद्वानों ने दिगम्बर ग्रन्थों की ओर ध्यान नहीं दिया और दिगम्बर विद्वानों ने श्वेताम्बर ग्रन्थों को हेय समझा। एक ही विषय का विविध धाराओं में जो विकास हुआ उस का सर्वाङ्गीण परिचय रखने वाले विद्वान् बहुत थोड़े हुए। फल स्वरूप भारतीय सांस्कृतिक विकास की क्रमबद्ध कथा अधूरी ही रह गई।

इस दिशा में प्रज्ञाचक्षु पं० सुखलाल जी ने एक नए युग को जन्म दिया। उन्होंने एक ओर जैन ग्रन्थों के प्रामाणिक एवं आलोचनात्मक संस्करण निकाल कर जैनेतर विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया, दूसरी ओर जैन विद्वानों में उदार अध्ययन की परम्परा स्थापित की। प्रमाणमीमांसा, ज्ञानबिन्दु, तर्कभाषा, सन्मति तर्क, अकलङ्कग्रन्थत्रय, प्रमाणवार्तिक, प्रमेयकमल मार्तण्ड, न्यायविनिश्चय विवरण, न्यायकुमुदचन्द्र, धवला साहित्य तथा गणधरवाद आदि ग्रन्थों के नए संस्करण भारतीय दार्शनिक साहित्य में एक नई दृष्टि का निर्माण करते हैं। आनन्द शङ्कर बापूभाई ध्रुव, डॉ० पी· एल वैद्य, सातकड़ी मुकर्जी, घोषाल, हरिसत्य भट्टाचार्य आदि अजैन विद्वानों ने भी जैन साहित्य का अनुशीलन करके महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। जब साहित्य का क्षेत्र संकुचित साम्प्रदायिक मनोवृत्ति से ऊपर उठ जाएगा, जैन विद्वान् बौद्ध, तथा वैदिक धाराओं का परिशीलन करेंगे और वैदिक परम्परा के समर्थक जैन एवं बौद्ध साहित्य के अन्तस्तल तक पहुँचेंगे, तभी भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का सच्चा दर्शन होगा। पूर्णाङ्ग दर्शन करने के लिए त्रिवेणी की तीनों धाराओं का अवगाहन आवश्यक है।

जैन समाज का अर्थ प्रधान होना भी विद्या के क्षेत्र में अवनति का कारण है। हमारे यहाँ गृहस्थ समाज मुख्यतया व्यापार या वाणिज्य की ओर लक्ष्य रखता है और साधु समाज त्याग की ओर। विद्या को जीवन का लक्ष्य बनाकर चलने वाला कोई वर्ग नहीं है। साधु के लिए चरित्र पहले है और ज्ञान पीछे। चरित्रहीन होने पर उसकी प्रतिष्ठा समाप्त हो जाएगी किन्तु

ज्ञानहीन होने पर कोई कहने वाला नहीं है। इसी प्रकार गृहस्थ के पास पैसा होना चाहिए, ज्ञान रहे या न रहे। किन्तु ब्राह्मण समाज में आज तक विद्या की अपेक्षा रही है। मिथिला में एक कहावत है :—

अचीकमत् यो न जानाति यो न जानात्यपस्पशा।
अजर्घाः यो न जानाति तस्मै कन्या न दीयते।

'अचीकमत्' आदि व्याकरण के ऐसे प्रयोग हैं, जिन पर विद्वानों का शास्त्रार्थ होता था। शादी करने से पहले उन का परिज्ञान आवश्यक माना जाता था। क्या जैन समाज भी केवल विद्या के बल पर प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाले वर्ग की रचना कर सकता है ?

कुछ सुझाव—

जैन साहित्य के विकास के लिए अभी जो प्रयत्न हो रहे हैं उनमें कोई व्यवस्था नहीं है। एक ग्रन्थ कई स्थानों से छप जाता है तो दूसरे ग्रन्थ यों ही पड़े रह जाते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि सभी प्रकाशन संस्थाएँ मिल कर एक योजना बना लेवें और आपस में काम को बाँट लेवें। इससे समय, धन और शक्ति का दुरुपयोग बच जाएगा। योग्य हाथों में योग्य कार्य देने से कार्य भी सुन्दर होगा। इसके लिए हम नीचे लिखे सुझाव समाज के सामने रखना चाहते हैं :—

१—श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानकवासी तथा तेरापंथी परम्परा से संबन्ध रखने वाले जितने ग्रंथ हैं उनकी एक सूची बनाई जाय। उसमें नीचे लिखी बातों का उल्लेख रहे :—

१—ग्रन्थ का नाम।
२—कर्ता का नाम।
३—समय।
४—भाषा।
५—विषय।
६—प्रकाशित या अप्रकाशित।
७—उपलब्धि स्थान।

२—सूची तैयार होने के बाद विद्वानों की एक समिति प्रकाशन योग्य ग्रन्थ तथा उनके लिए उपयुक्त सम्पादकों का चुनाव करे।

३—यदि सभी ग्रन्थों को प्रकाशित करने के लिए जैन ग्रन्थ प्रकाशन समिति (Jain Text Society) के रूप में एक संस्था बन जाय तो अत्युत्तम है, अन्यथा विभिन्न प्रकाशन संस्थाएँ उन ग्रन्थों को आपस में बाँट लेवें।

४—सम्पादन तथा प्रकाशन के लिए समय की अवधि पहले से निश्चित कर दी जाय।

इस प्रकार सामूहिक प्रयत्न द्वारा थोड़े समय में अधिक कार्य हो सकेगा। आशा है, विभिन्न संस्थाओं के अग्रणी इस ओर ध्यान देंगे। सूची निर्माण का कार्य तो कोई एक संस्था भी ले सकती है।

श्वेताम्बर जैन आगमों के प्रकाशन के लिए कई संस्थाओं की ओर से प्रयत्न हो रहा है। उसे भी व्यवस्थित करने की आवश्यकता है। साम्प्रदायिकता के व्यामोह में पड़कर धन और शक्ति का दुरुपयोग न करना चाहिए।

श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति अमृतसर ने निम्नलिखित तीन कार्य अपने हाथ में लिए हैं:—

१—जैन साहित्य का इतिहास।
२—जैन तत्त्वज्ञान का इतिहास।
३—पारिभाषिक एवं व्यक्तिवाचक शब्द कोश।

इन कार्यों के लिए विद्वानों की एक समिति बन गई है और प्रयत्न किया जा रहा है कि प्रत्येक विषय अधिकारी विद्वान् के द्वारा लिखा जाय।

इसके अतिरिक्त आगमों के पुनरुक्त पाठों को कम करके उनका एक जिल्द में एक सुवाच्य एवं सुलभ शुद्ध संस्करण निकालने की आवश्यकता है। इससे जैन अनुशीलन करने वाले जैन एवं जैनेतर सभी विद्वानों को सुविधा हो जायगी। जैन साहित्य का परिशीलन करने वाले भारतीय तथा विदेशी सभी विद्वानों ने इस मांग को प्रकट किया है।

आगमों के विषय में श्वेताम्बर तथा दिगम्बर मान्यताओं में भेद है। फिर भी बहुत सा साहित्य ऐसा है जो उभयमान्य है। ज्ञाताधर्म कथा का जो वर्णन दिगम्बर ग्रन्थों में आता है, श्वेताम्बरों में प्रचलित आगम ठीक उससे मिलता है। दशवैकालिक उत्तराध्ययन आदि सूत्रों का भी बहुत सा भाग उभयमान्य है। इसी प्रकार कहानी साहित्य का बहुत सा भाग है। डा० उपाध्ये ने अपने प्रवचनसार की भूमिका (पृ० ३३ फुटनोट) में इसका निर्देश किया है। प्रस्तुत अंक में डॉ० वैद्य का लेख भी इस दिशा में मननीय है। यदि इस प्रकार के उभयमान्य समस्त साहित्य को एक साथ प्रकाशित कर दिया जाय तो हम संसार के सामने ऐसा साहित्य रख सकेंगे जो श्वेताम्बर या दिगम्बर का न होकर अखण्ड जैन समाज का साहित्य होगा। हम भारत जैन महामण्डल

सरीखी अखण्ड जैनत्व का प्रचार करने वाली संस्था का ध्यान इस ओर आकृष्ट करते हैं।

जैन कथा साहित्य का महत्त्व बौद्ध तथा वैदिक कथा साहित्य से भी अधिक है। जैन साधुओं का सम्पर्क मुख्यतया साधारण जनता से रहा है। इस लिए उनकी कथाओं में प्राचीन भारतीय जन जीवन का चित्रण मिलता है। वह भारत का प्राचीन जन-साहित्य है। उसको प्रकाश में लाना भारतीय इतिहास की अमूल्य सेवा होगी। बहुत सी कथाएँ तो फारसी, ग्रीक तथा लैटिन साहित्य में ज्यों की त्यों मिलती हैं। राज्याश्रय या अन्य किसी साधन के बिना ये कथाएँ किस प्रकार समुद्र यात्रा करके दूर देशों में पहुँची, यह भी एक रोचक कथा है।

जैन देवता, जैन गणित, जैन स्थापत्य, धर्म, दर्शन भाषा विज्ञान आदि विविध विषयों में अनुशीलन के लिए योग्य विद्यार्थी एवं विद्वानों को प्रोत्साहन देना भी साहित्य-प्रकाशन की योजना के अन्तर्गत होना चाहिए।

विश्वविद्यालयों में प्राकृत तथा जैनदर्शन के पाठ्यक्रम का होना भी महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए समाज के अग्रणी व्यक्तियों को प्रयत्न करना चाहिए।

वैदिक परम्परा में महाभारत, पुराण आदि ऐसा विपुल साहित्य है जिसमें त्याग मार्ग पर विस्तृत रूप से लिखा गया है, वह जैन मान्यता से बिल्कुल मिलता है। उन सब की खोज करके जैन धर्म के तत्त्वों का पता लगाना भी जैन अनुशीलन का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है।

आध्यात्मिक उत्थान के लिए ध्यान, लेश्या, गुणस्थान आदि की मान्यताएँ जैनदर्शन का महत्त्वपूर्ण अंग हैं। यह खेद का विषय है कि धर्मध्यान और शुक्लध्यान का आज्ञाविचय आदि विस्तार शास्त्रों में मिलता है किन्तु उसका अभ्यास लुप्त हो गया है। बौद्धों में अब भी ध्यान परम्परा चल रही है। हमें अपनी परम्परा को पुनर्जीवित करना चाहिए।

वैशाली इंस्टिट्यूट की स्थापना

बिहार सरकार ने वैशाली इंस्टिट्यूट की योजना को मूर्तरूप देने का निश्चय कर लिया है। इस समाचार से जैन ही नहीं भारती के उपासक समस्त विद्वत्समाज को प्रसन्नता होगी। आशा है, अब यह कार्य शीघ्र ही प्रारम्भ हो जाएगा। संस्था का नाम रखा गया है :—

"The Vaishali Institute of Post graduate Studies and Research in Prakrit, Jainology and Ahinsa"

संस्था का नाम अपने कार्य को स्वयं प्रकट करता है। इसमें मुख्यतया प्राकृत, जैन भारती तथा अहिंसा विषयों पर रिसर्च एवं अध्ययन अध्यापन होगा। बिहार विश्वविद्यालय के एम. ए., पीएच. डी. तथा डी. लिट के लिए विद्यार्थियों को तैयार करना, अप्रकाशित जैन साहित्य का संग्रह, सम्पादन एवं प्रकाशन करना, लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों को उपरोक्त विषयों पर व्याख्यान देने के लिए आमन्त्रित करना, पुरातत्त्व संबन्धी खोज एवं खुदाई तथा ग्रामीण जनता में अहिंसा एवं भारत की प्राचीन विद्याओं के प्रति रुचि जागृत करना इसके मुख्य ध्येय रखे गए हैं।

भारत की प्राचीन परम्परा है "तेन त्यक्तेन भुंजीथा"। अर्थात् भोग करो किन्तु त्याग के साथ। इस परम्परा का सूत्रपात कब हुआ, यह तो नहीं कहा जा सकता किन्तु इसका सफल प्रयोग बिहार में प्राचीन काल से होता आया है। इसी के कारण मिथिला के राजा जनक राजवैभव के होते हुए भी विदेह कहे गए। उत्तराध्ययन के नमि राजर्षि ने योग के साथ भोग की साधना इसी भूमि में की। बुद्ध की महाकरुणा और महावीर का कठोर त्याग इसी भूमि के वरदान हैं।

यहीं पर लिच्छवियों ने गणतन्त्र का सफल प्रयोग किया। यहीं पर अशोक ने सम्प्रदाय हीन धर्मराज्य का उज्ज्वल आदर्श उपस्थित किया। यहीं पर महात्मा गांधी ने राजनीतिक विजय के लिए अहिंसा के सफल प्रयोग किए। भारतीय स्वाधीनता संग्राम के दिव्य अस्त्र सत्याग्रह का प्रयोग यहीं प्रारम्भ हुआ। वास्तव में देखा जाय तो बिहार भूमि भारतीय आदर्शों की प्रयोग भूमि रही है।

वही भूमि अब नवभारत में नए प्रयोग करने जा रही है। भारतीय प्राचीन संस्कृति का जैन, बौद्ध तथा वैदिक परम्परा रूप तीन धाराओं में विकास हुआ। तीनों परस्पर संघर्ष से आगे बढ़ीं और एक दूसरी की पूरक भी बनीं। किन्तु साम्प्रदायिक संकुचित वृत्ति का युग आया और परस्पर घृणा का सूत्रपात हुआ। सांस्कृतिक विकास में रोग के कीटाणु लग गए। शुद्ध ज्ञान की उपासना सम्प्रदायवाद से अभिभूत हो गई। आध्यात्मिक तथा भौतिक उत्थान में लगने वाली शक्ति परापवाद और परपरिभव में नष्ट होते

लगी। परिणाम स्वरूप साहित्यिक प्रगति तो रुक ही गई, राष्ट्र की जड़ें भी खोखली हो गईं। यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि हमारे राष्ट्र की निर्बलता का मुख्य कारण सम्प्रदायवाद है।

बिहार सरकार उन तीनों धाराओं में जो सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् है उसे प्रकाश में लाना चाहती है। परिणाम स्वरूप साम्प्रदायिकता की संकुचित दीवारें ढह जाएँगी और एक स्वस्थ परम्परा का स्वयं निर्माण होगा। वही नवीन भारत की सांस्कृतिक परम्परा होगी। उसमें महावीर बुद्ध, जनक, याज्ञवल्क्य तथा अन्य तपस्वियों की साधना, लिच्छवियों का स्वावलम्बन तथा अशोक की धर्मनिष्ठा ओतप्रोत होंगे।

उपरोक्त तीन संस्थाओं में से नालन्दा और दरभंगा तो उन्हीं स्थानों पर स्थापित की गई हैं जहाँ वे प्राचीन समय में अपने गौरव के साथ प्रतिष्ठित थीं। दरभंगा में उद्योतकर, वाचस्पति मिश्र, उदयन आदि हुए। दूसरी ओर नालन्दा में धर्मकीर्ति, शान्तरक्षित, कमलशील आदि हुए। उनके ग्रन्थ भारतीय दर्शन साहित्य के उज्वल रत्न हैं। वैशाली इंस्टिट्यूट भगवान् महावीर की जन्मभूमि और लिच्छवियों की गौरवपूर्ण राजधानी वैशाली में स्थापित की जा रही है। यद्यपि वर्तमान अवस्था की दृष्टि से इन स्थानों का विशेष महत्व नहीं है किन्तु उनके साथ जो प्राचीन परम्पराएँ जुड़ी हुई हैं वे और किसी स्थान का चुनाव नहीं होने देतीं। उनके साथ जो अस्मितापूर्ण भावनाएँ बनी हुई हैं वे कम महत्व नहीं रखतीं।

भिन्न भिन्न स्थानों पर होने पर भी तीनों संस्थाओं में इतनी दूरी नहीं है कि विचारों का आदान प्रदान न हो सके। हमें आशा है, संस्थाओं के कार्यक्रम में विचारों के आदान प्रदान का पर्याप्त स्थान रहेगा। जिससे दृष्टिकोण संकुचित न होने पावे।

वैशाली इंस्टिट्यूट के साथ अहिंसा का रखा जाना इसके महत्त्व को बढ़ा देता है। अहिंसा जैन परम्परा का प्राण है। भारतीय संस्कृति का निचोड़ है और राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के नव भारत की रीढ़ है। उसका सर्वाङ्गीण अध्ययन सिद्धांत और व्यवहार दोनों दृष्टियों से होना चाहिए। आशा है, जैन साधु इस विषय में अपना कर्तव्य सोचेंगे।

ग्रामीण जनता के साथ सम्पर्क और उसे भारतीय पुरातत्त्व एवं अहिंसा की ओर आकृष्ट करना राष्ट्रनिर्माण का महत्वपूर्ण कार्य है। इस विषय में

वैशाली संघ पहले से महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। महावीर जयन्ती के अवसर पर हमने अपनी आँखों से देखा कि किस प्रकार वहाँ जागृति आ रही है। परदे में दबा हुआ बिहार का स्त्री समाज अब उसे समाप्त करके खुल्लमखुल्ला सामाजिक सुधार तथा ग्राम सेवा के कार्य में प्रवृत्त हो रहा है। शराब, ताड़ी, हुक्का आदि दुर्व्यसन हट रहे हैं। ग्रामीण जनता अपने अपने ग्राम तथा मार्गों को उत्तम बनाने में लगी है। छोटे छोटे बच्चों के लिए बाल शालाएँ, बड़ों के लिए प्रौढ़ शालाएँ तथा अन्य प्रकार के कार्य हो रहे हैं। छुआछूत समाप्त हो रही है और उच्च कुलों के ब्राह्मण एवं क्षत्रिय हरिजनों के बीच बैठकर कार्य कर रहे हैं। इसके साथ एक विनोद मंडल है, जो देहातों में घूम घूमकर महावीर, बुद्ध तथा जनक आदि की कथाएँ नाटक, नृत्य, व्याख्यान आदि के द्वारा प्रस्तुत करता है। उन लोगों में अपने प्राचीन गौरव की भावना जागृत करता है। इसके अतिरिक्त हमने वहाँ के मछुओं का नृत्य देखा। वह भी भारतीय नृत्यकला का एक अद्‌भुत निदर्शन था। जैन शास्त्रों में नौ मल्ली तथा नौ लच्छियों का निर्देश आता है। मछुए उन्हीं मल्लों के वंशज हैं। मल्ल और लिच्छवियों का यह प्रदेश अंगड़ाई लेता सा दिखाई दिया। हम समझते हैं, इन सब प्रवृत्तियों को संचालित करने के लिए वैशाली इंस्टिट्‌यूट केन्द्र का काम करेगा। उपरोक्त प्रवृत्तियाँ अभी बाईस गावों में चल रही हैं। धीरे धीरे अस्सी ग्रामों तक पहुँचने की योजना है। क्षेत्र विस्तृत होने पर वैशाली इंस्टिट्‌यूट पुरातत्त्व के साथ ग्राम-विश्वविद्यालय भी बन जाएगा।

संस्थाओं के इस सूत्रपात के लिए बिहार सरकार के शिक्षा-सचिव श्री जगदीश प्रसाद माथुर को सबसे अधिक श्रेय है। वैशाली मुजफ्फरपुर जिले की हाजीपुर तहसील में पड़ती है। वे वहाँ पर एस० डी० ओ० थे। उसी समय उनके उर्वर मस्तिष्क में यह कल्पना आई। सर्वप्रथम उन्होंने वैशाली में महावीर जयन्ती के अवसर पर एक मेले का सूत्रपात किया। आठ साल में वह इतना विशाल रूप धारण कर गया कि अब वह अपने आप लगने लगा है, देहातों से हजारों स्त्री पुरुष इकट्ठे होते हैं। दुकानें लग जाती हैं। प्रदर्शनी, देहाती स्कूलों के सम्मेलन, मनोरंजन के विविध कार्यक्रम तथा उद्योग संबन्धी विविध प्रदर्शनों के कारण मेले में जीवन आ जाता है। उसी समय देहाती जनता वैशाली के भग्नावशेषों में चक्कर लगाती है। वहाँ की पुष्करिणियों में स्नान करती है और प्राचीन गौरव को याद करती है। इस प्रकार देहाती जनता महावीर के साथ अपना खून का संबन्ध अनुभव करने लगी है। जनमानस

का अपने आप निर्माण हो रहा है। माथुर साहब के सरल एवं प्रेमपूर्ण व्यवहार के कारण दूसरे अधिकारी भी इस कार्य में पर्याप्त रुचि लेने लगे हैं हाजीपुर के वर्तमान एस० डी० ओ० तथा मजिस्ट्रेट इस विषय में विशेष उल्लेखनीय हैं। देहातों में रचनात्मक कार्य के लिए श्री जनार्दन मिश्र, जो वैदिक जी के नाम से ख्यात हैं, का नाम उल्लेखनीय है। हिन्दू विश्वविद्यालय से वेदाचार्य करके संकुचित वातावरण में रहते हुए भी उन्होंने अपने को जिस प्रकार बदला है, वह सचमुच प्रशंसनीय है।

वैशाली इंस्टिट्यूट के लिए बहुत बड़ा श्रेय तेरापंथी सभा को है जिसने पाँच लाख रुपए की व्यवस्था करके सरकार को सक्रिय कदम उठाने के लिए प्रेरित किया। योजना बहुत दिनों से बनी हुई थी, किन्तु रुपए के अभाव में काम अटका हुआ था। तेरापंथी समाज में शक्ति है, संगठन है, तुलसी गणि सरीखे प्रतिभाशाली आचार्य की प्रेरणा है। जैन साहित्य तथा संस्कृति के विकास के लिए उसका अग्रसर होना शुभ लक्षण है। हमें यह जानकर और भी हर्ष हुआ कि तेरापंथी सभा ने यह दान समस्त जैन समाज की ओर से दिया है और उसमें किसी प्रकार की साम्प्रदायिकता को नहीं आने दिया। यदि हम कम से कम सरकार के सामने एक होकर उपस्थित होना सीख लें तो बहुत बड़ा कार्य हो सकता है।

यदि समस्त जैन समाज इस कार्य में सरकार का साथ दे तो यह संस्था अन्तरराष्ट्रीय महत्त्व प्राप्त कर सकती है। भारत के स्वतन्त्र होते ही विदेशियों का ध्यान भारतीय संस्कृति की ओर गया है। बड़े बड़े राष्ट्र भारतीय दर्शन धर्म एवं साहित्य का अध्ययन करने के लिए अपने विद्यार्थियों को भारत में भेज रहे हैं। बिहार ने प्राचीन भारत की तीन प्रमुख धाराओं का अध्ययन केन्द्र बनकर इस विषय में दूरदर्शितापूर्ण कदम बढ़ाया है। इसमें सरकार तो अपने कर्तव्य का पालन करेगी ही किन्तु जनता की सहायता भी आवश्यक है। बौद्ध और वैदिक केन्द्रों के पीछे विदेशी राष्ट्र, राजा, महाराजा, बड़े बड़े उद्योगपति तथा विशाल समाज है। जैन केन्द्र में भी विद्या, अनुशीलन संबन्धी सामग्री तथा योग्य अध्यापकों का ऐसा आकर्षण होना चाहिए जिससे विदेशी एवं भारतीय विद्यार्थी जैन परम्परा को समझने के लिए खिंचे चले आयें। जैन परम्परा को प्रामाणिक एवं आकर्षक रूप में विश्व के सामने प्रस्तुत करना भी इसी संस्था का कार्य होगा।

इस अवसर पर हम एक बात और लिखना चाहते हैं। प्राकृत तथा जैन

दर्शन में एम० ए० का पाठ्यक्रम स्वीकृत करते समय प्राकृत को द्वितीय भाषा के रूप में मैट्रिक, एफ० ए० तथा बी० ए० में भी स्थान मिलना चाहिए। इससे दो लाभ होंगे। (१) एम०ए० तथा रिसर्च के लिए ऐसे विद्यार्थी मिल सकेंगे जिनकी प्राकृत भाषा सम्बन्धी नींव पक्की हो। (२) स्कूल तथा कालेजों का विषय बन जाने पर प्राकृत में एम० ए० करने वालों के लिए स्थान का प्रश्न न रहेगा। इसके बिना विद्यार्थियों का आकृष्ट होना कठिन है। बम्बई में अर्द्धमागधी का पाठ्यक्रम पहले से है। उसे देखा जा सकता है। आशा है, बिहार विश्वविद्यालय इस ओर भी ध्यान देगा।

दिगम्बर भाइयों का मिथ्या भय—

वैशाली इंस्टिट्यूट, स्थानीय साहित्य-निर्माण-योजना तथा देहली की प्राकृत टैक्स्ट सोसायटी आदि प्रवृत्तियों से कुछ दिगम्बर पण्डितों के मन में मिथ्या भय उत्पन्न हो गया है। उनको डर है कि इन प्रवृत्तियों द्वारा श्वेताम्बर परम्परा को पोषण दिया जाएगा और दिगम्बर परम्परा के विरुद्ध लिखा जाएगा। वास्तव में देखा जाय तो इस प्रकार का भय नहीं होना चाहिए।

वैशाली इंस्टिट्यूट के लिए मुख्य प्रयत्न करने वाली संस्था वैशाली संघ है। उसके सभापति हैं बिहार के मुख्य मन्त्री माननीय डॉक्टर श्री कृष्ण सिंह। उपसभापतियों में सेठ शान्तिप्रसाद जी भी हैं। अन्य सदस्यों में श्वेताम्बर दिगम्बर अथवा जैन अजैन की कोई गणना नहीं है। जो उसमें उत्साहपूर्ण भाग ले रहे हैं वे ही अधिकारी हैं। उनमें अधिकतर तो अजैन ही हैं। महावीर जयन्ती के अवसर पर वैशाली संघ अपना वार्षिकोत्सव मनाता है और अध्यक्षता के लिए किसी सम्मानित व्यक्ति को बुलाता है। इसके पहले श्री के० एस० मुंशी, डॉ० आल्टेकर, डॉ० सरकार आदि आ चुके हैं। इस बार पं० सुखलाल जी को आमन्त्रित किया गया।

यह ठीक है कि तेरापंथी सभा ने ५ लाख रुपए का वचन देकर कार्य को आगे बढ़ा दिया किन्तु वह रुपया समस्त जैन समाज की ओर से दिया गया है और उसी में से इकट्ठा किया जाएगा। उसमें तेरापंथियों की कोई साम्प्रदायिक शर्त नहीं है। पाठ्यक्रम के लिए हिन्दू विश्वविद्यालय तथा गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस के स्पष्ट उदाहरण हैं। इन दोनों स्थानों पर जिस प्रकार श्वेताम्बर दिगम्बर का भेद न करते हुए योग्य ग्रन्थों को रखा गया है उसी प्रकार वैशाली में भी रहेगा। आशा है, इस पुनीत कार्य में

श्वेताम्बर दिगम्बर का संकुचित प्रश्न न खड़ा करते हुए जैन वाङमय एवं परम्परा के सभी उपासक हृदय से सहयोगी बनेंगे।

काशीस्थ पार्श्वनाथ विद्याश्रम की ओर से जो साहित्य निर्माण की योजना प्रकाशित हुई है उसमें भी साम्प्रदायिकता को कोई स्थान नहीं दिया गया है। यह ठीक है कि श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति, जो कि पार्श्वनाथ विद्याश्रम की मातृसंस्था है, मुख्यतया स्थानकवासियों का संगठन है। इसका अर्थ इतना ही है कि अर्थ व्यवस्था के लिए उसका क्षेत्र अब तक मुख्यतया स्थानकवासी समाज रहा है। उद्देश्य और कार्य की दृष्टि से उसने साम्प्रदायिकता को कभी प्रश्रय नहीं दिया। विद्याश्रम ने ग्रन्थलेखन या रिसर्च के लिए जिन विद्वानों या विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता द्वारा प्रोत्साहन दिया है उसमें श्वेताम्बरों की अपेक्षा दिगम्बर अधिक हैं। हम यह भी नहीं कहना चाहते कि दिगम्बरों के प्रति कोई विशेष उदारता दिखाई जाती है। इसका अर्थ इतना ही है कि संस्था जैन वाङमय के उद्धार को सामने रखकर चल रही है। उसमें श्वेताम्बर तथा दिगम्बर परम्पराओं से संबन्ध रखने वाला समस्त साहित्य आ जाता है, जो विद्यार्थी इस ओर रुचि प्रकट करता है, या जो विद्वान् संस्था द्वारा अपेक्षित ग्रन्थ लेखन के लिए योग्य है उसे श्वेताम्बर दिगम्बर का भेद किए बिना स्वीकार कर लिया जाता है।

साहित्य-योजना में भी यही दृष्टि सामने रखी गई है। डॉ० हीरालाल जैन, ए. एन उपाध्ये, श्री नाथूराम जी प्रेमी, पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री आदि दिगम्बर समाज के प्रतिष्ठित विद्वानों को लेखनकार्य में सम्मिलित किया गया है। उनके लिए यह कहना कि वे पैसे द्वारा खरीदे जा सकते हैं, या पैसे लेकर कोई ग़लत बात लिख देंगे सूर्य पर धूल फेंकने के समान है। उनके अतिरिक्त और विद्वान भी जो इस कार्य में सहयोगी बनना चाहें, समिति उनका सहर्ष स्वागत करेगी। हम तो यह चाहेंगे कि दिगम्बर श्रीमन्तों को भी इस योजना में सम्मिलित होकर अखण्ड जैनत्व का मंच तैयार करना चाहिए। पारस्परिक सन्देह, ईर्ष्या तथा अन्य संकुचित वृत्तियों के कारण हम बहुत हानि उठा चुके हैं। अब स्वतन्त्र भारत में हमें राष्ट्र के सामने दिगम्बर श्वेताम्बर के रूप में नहीं किन्तु श्रमण संस्कृति के उपासक जैन के रूप में आना चाहिए।

आशा है, साम्प्रदायिक भावनाओं को उत्तेजित करने वाले हमारे बन्धु इस ओर ध्यान देंगे। उन्हें यह समझना चाहिए कि दिगम्बरत्व की रक्षा के

लिए भी जैनत्व की रक्षा पहले करनी होगी। यदि जैन न रहा तो श्वेताम्बर दिगम्बर कहाँ रहेंगे। भविष्य में हमें ऐसी कोई बात नहीं करनी चाहिए जिससे साम्प्रदायिकता या परस्पर वैमनस्य को स्थान मिले।

हम यह मानते हैं कि आगम-साहित्य के विषय में श्वेताम्बर तथा दिगम्बर मान्यताओं में भेद है। इसके लिए भी हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि समिति को कोई आग्रह नहीं है कि श्वेताम्बर परम्परा को रखा जाय या दिगम्बर परम्परा को। दोनों परम्पराओं के विद्वान् इतिहास तथा अन्य प्रमाणों के आधार पर जो निर्णय करेंगे समिति को वह मान्य होगा। यह भी हो सकता है कि इसके लिए दोनों परम्पराओं का पृथक् पृथक् उल्लेख कर दिया जाय। यह प्रश्न इतना विकट नहीं है कि मूल योजना पर ही प्रहार होने लगें। इसे परस्पर प्रेम से सरलतापूर्वक सुलझाया जा सकता है। हमें विश्वास है, इस स्पष्टीकरण के बाद भ्रम दूर हो जाएगा और सभी विद्वान् हमारे सहयोगी बनेंगे।

श्री महावीर जैन विद्यालय का स्तुत्य निश्चय

बम्बई का श्री महावीर जैन विद्यालय जैन समाज की एक आदर्श संस्था है। लगभग तीस वर्ष पहले आचार्य श्री विजयवल्लभ सूरि के प्रयत्न से उसकी स्थापना हुई थी। कला, विज्ञान, उद्योग आदि विषयों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों के भोजन निवास आदि की योग्य व्यवस्था करना तथा उन्हें प्रत्येक प्रकार से प्रोत्साहन देना इस संस्था का ध्येय है। इसका आश्रय लेकर सैकड़ों की संख्या में जैन विद्यार्थी डाक्टर, इंजीनियर, वकील, प्रोफेसर आदि बन चुके हैं तथा राष्ट्र के विविध क्षेत्रों में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त कर चुके हैं। विद्यालय की अहमदाबाद और पूना में शाखाएं हैं। सवा लाख से अधिक वार्षिक आय है।

विद्यालय के संचालन एवं उसे उत्कर्ष पर लाने का श्रेय स्व०श्री मोतीचन्द्र गिरिधरलाल कापड़िया तथा उनके साथियों को है। कापड़िया जी की उत्कट इच्छा रही है कि विद्यालय में जैन संस्कृति के संशोधन तथा साहित्य प्रकाशन के लिए भी कार्य होना चाहिए। विद्यार्थियों को जैन साहित्य के अध्ययन की ओर प्रवृत्त करने के लिए वे प्रत्येक प्रकार की सुविधा प्रस्तुत करने को तैयार रहते थे। फिर भी इस विषय में कोई ठोस कदम नहीं उठाया जा सका।

हर्ष की बात है, विद्यालय के वर्तमान अधिकारियों ने आचार्य श्री विजय वल्लभ सूरि से प्रेरणा प्राप्त करके इस ओर ठोस कदम उठाया है। उन्होंने जैन धर्म तथा इतिहास के संशोधन एवं विकास के लिए एक केन्द्र बनाने का निश्चय किया है। साथ ही एक केन्द्रीय पुस्तकालय, जहाँ जैनधर्म, तत्वज्ञान, इतिहास आदि प्रत्येक विषय की प्रत्येक पुस्तक मिल सके, स्थापित करने का निश्चय किया है।

दोनों बातें अत्यावश्यक एवं शीघ्र करणीय हैं। इस शुभ निश्चय के लिए विद्यालय के अधिकारियों को बधाई है।

प्रस्तुत अंक

प्रस्तुत अंक का लक्ष्य है जैन साहित्य के अनुशीलन की ओर विद्वत्समाज एवं सर्वसाधारण का ध्यान आकृष्ट करना। सोचा गया था इसमें जैन साहित्य का सर्वांगीण परिचय रहे, किन्तु कुछ कारणों से ऐसा न हो सका। सबसे बड़ा कारण 'श्रमण' की आर्थिक स्थिति है। छोटे से रूप में निकलने पर भी इसे प्रतिवर्ष दो हजार का घाटा उठाना पड़ता है। अब यह घाटा और भी बढ़ गया है। श्री सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति ने दूसरी कई महत्वपूर्ण प्रवृत्तियाँ अपने हाथ में ले रखी हैं। ऐसी स्थिति में 'श्रमण' का अधिक बोझ उठाना उसके सामर्थ्य से बाहर है। जब भी विशेषांक या अन्य किसी प्रकार के खर्च का प्रश्न आता है तो हमें रुक जाना पड़ता है। फिर भी समिति के मन्त्री इसे हिम्मत के साथ निभाए जा रहे हैं। हम चाहते हैं, समाज के उदार सज्जन इसका घाटा पूरा कर दें। ऐसी दशा में हम और भी अधिक उपयोगी सामग्री दे सकेंगे। 'श्रमण' की नीति को पसन्द करने वाले बुद्धिमान वर्ग से हमारी प्रार्थना है कि वे इसकी ग्राहक संख्या बढ़ाने का प्रयत्न करें। कम से कम एक हजार ग्राहक होने पर यह अपने पैरों पर खड़ा हो जाएगा।

हम चाहते थे, प्रस्तुत अंक दो सौ पृष्ठों का रहता और जैन साहित्य का सर्वाङ्गीण परिचय दे सकता। इसके लिए सामग्री भी प्रायः संगृहीत हो गई थी। किन्तु आर्थिक कारणों से रुक जाना पड़ा। अब यह दो भागों में प्रकाशित किया जायगा। पहला भाग पाठकों के सामने है। दूसरा भाग इसी वर्ष कुछ मास पश्चात् निकाला जाएगा। आशा है, पाठक धैर्य रखेंगे और श्रमण के अधिक से अधिक सहयोगी बना कर हमें प्रोत्साहित करेंगे।
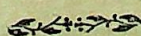
नूतन जनगणना में जैनियों की संख्या

सन् ५१ में जो जनगणना हुई थी उसके आंकड़े अब प्रकाशित हो गए हैं। उसके अनुसार जैनियों की कुल संख्या २३, ९३, ३१८ है। कुछ प्रान्तों के विषय में सन्देह भी किया जा सकता है। उदाहरणार्थ मद्रास प्रान्त में ३५७७८ संख्या बताई गई है। हमारे खयाल से मद्रास सरीखे विस्तृत प्रान्त में इससे अधिक संख्या तो मारवाड़, गुजरात तथा अन्य प्रान्तों से गए जैनियों की होगी। उनके अतिरिक्त मद्रास के मूलनिवासी भी पर्याप्त संख्या म जैन हैं। इसके लिए जैन समाज को अपनी जनगणना स्वयं करनी चाहिए।

अण्डमान और निकोबार द्वीप की लगभग ४० हजार की आबादी में केवल एक जैन है। जैन समाज भयङ्कर अपराधों से कितना दूर रहता है, उसका यह स्पष्ट उदाहरण है।

मध्यभारत में जैनियों की संख्या सबसे अधिक है। वहाँ १००२३८७ जैन हैं। बम्बई, राजस्थान, सौराष्ट्र, मध्यप्रदेश तथा उत्तरप्रदेश में भी अच्छी संख्या है। देहली की १७४४०७२ जन संख्या में २०१७४ जैन हैं। इनमें बम्बई और सौराष्ट्र को छोड़कर किसी जगह जैन साहित्य का पाठ्यक्रम में स्थान नहीं हैं। उपरोक्त दो प्रान्तों में भी इसका अध्ययन अर्द्धमागधी भाषा तक सीमित है। जैन समाज को इस ओर लक्ष्य देना चाहिए।

विभिन्न प्रान्तों के आंकड़े निम्नलिखित हैं:—

उत्तरप्रदेश	९७७४४	भोपाल	५९८५
बिहार	८६५६	हिमाचल प्रदेश और बिलासपुर	३४
उड़ीसा	१२४८	अन्दमाननिकोबार द्वीप	१
पश्चिमी बंगाल	१९११	सिक्किम	१९
आसाम	४४४५	पंजाब	३७५१८
मद्रास	३५७७८	मैसूर	२२९३६
बम्बई	५७२०९३	त्रिवांकुर कोचीन	३५४
मध्यप्रदेश	९६२५१	सौराष्ट्र	१२३९१६
देहली	२०१७४	मध्यभारत	१००२३८७
अजमेर	३२००४	हैदराबाद	३०२८७
मणिपुर	१५०	राजस्थान	३२७७६३
कुर्ग	५४	पेप्सू	७५७८
कच्छ	२३९७		
विन्ध्यप्रदेश	११८३५		२३,९३,३१८

(केवल आँकड़े काशी के दैनिक 'आज' से)

श्रमण साहित्य का अरुणोदय

काले काले बादल भयङ्कर गर्जना करते हुए आए। बिजलियाँ चमकने लगीं। चारों ओर पानी ही पानी हो गया। दो पैरों वाला मानव प्राणी संकटों से घिर गया और अपने को विवश तथा असहाय अनुभव करने लगा। समझ में नहीं आया यह सब क्यों हो रहा है। समझा किसी महाशक्ति का कोप है। उसने घुटने टेक दिए।

आँधी चली। बाँसों के परस्पर टकराने से अग्नि भभक उठी। सारा बन भयङ्कर ज्वाला से भस्म हो गया। लकड़ी, बाँस तथा पत्तों से बने छोटे छोटे घर भी न बच पाए। समझा, कोई दूसरे देवता कुपित हो उठे। विवश होकर फिर घुटने टेक दिए और मानव उसे प्रसन्न करने का उपाय सोचने लगा।

श्रद्धा का पुतला मानव हार गया। भयभीत होकर देवताओं को मनाने लगा। किन्तु बुद्धि नहीं हारी। उसने रक्षा के नए साधन खोज निकाले। वर्षा से बचने के लिए पर्वत की कन्दराओं में जा बसा। मकान की दीवारें तथा छतें अधिक मज़बूत बनाईं। अग्नि से बचने के लिए घास फूस के स्थान पर पत्थर और ईंटों का प्रयोग प्रारम्भ किया। घर के चारों ओर भूमि को साफ कर डाला और उसने सुख की सांस ली।

वह अपने को सुरक्षित मानने लगा। धीरे धीरे उसने यह भी अनुभव किया कि सुरक्षा किसी देवता से प्राप्त नहीं हुई है। यह उसके अपने पुरुषार्थ और अपनी प्रतिभा का फल है। उसे सन्देह होने लगा—कौन जानता है देवता हैं या नहीं?

जिस दिन मानव ने इस प्रकार सन्देह करना प्रारम्भ किया, जिस दिन मस्तिष्क ने देवताओं की गुलामी से मुक्ति पाई, जिस दिन उसने स्वतन्त्र होकर सोचना सीखा, वह माननीय प्रतिभा का प्रथम उन्मेष था। वही श्रमण साहित्य का अरुणोदय था।

—इन्द्र

———

श्रमण का साहित्य-अंक

प्रथम भाग

जैन साहित्य कितना समृद्ध, विशाल एवं सर्वस्पर्शी है, प्रस्तुत अंक में इस की एक झांकी देने का प्रयत्न किया गया है। द्वितीय भाग में शेष विषयों की चर्चा की जाएगी। उसका प्रकाशन इसी वर्ष सितम्बर या अक्टूबर में होगा।

जैन इतिहास, साहित्य, तत्त्वज्ञान एवं अन्य विषयों का प्रामाणिक परिचय देना ही श्रमण का मुख्य ध्येय है।

इसके ग्राहक बनकर जैन साहित्य के विषय में होने वाले नए अन्वेषणों की जानकारी प्राप्त कीजिए। साथ ही इस साहित्यिक अनुष्ठान में सहयोगी बनिए।

श्रमण का वार्षिक मूल्य सिर्फ ४) रु० है। प्रस्तुत अंक का मूल्य १) रु० है किन्तु वार्षिक ग्राहकों से अतिरिक्त न लिया जाएगा।

व्यवस्थापक—

'श्रमण', श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस-५

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी प्रेस, बनारस—५

अगस्त १९५३

तं लोगम्मि सारभूयं, गंभीरतरं महासमुद्दाओ थिरतरगं मेरुपव्वयाओ, सोमतरगं चंदमंडलाओ, दित्ततरं सूरमंडलाओ, विमलतर सरयनहयलाओ, सुरभितरं गंधमादणाओ ॥

सत्य लोक में सारभूत है। वह महासमुद्र से भी अधिक गंभीर है। मेरुपर्वत से भी अधिक स्थिर है। चन्द्रमण्डल से भी अधिक सौम्य है। सूर्यमण्डल से भी अधिक तेजस्वी है। शरद ऋतु के आकाश से भी अधिक निर्मल है। गन्धमादन पर्वत से भी अधिक सुगन्धित है।

— प्रश्न व्याकरण

★

सम्पादक

डॉ० इन्द्र चन्द्र एम.ए., पीएच. डी.

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम
हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस–५

इस अंक में

१. आचारांग की दार्शनिक मान्यताएँ—डॉ० इन्द्र — १

२. प्राचीन मथुरा में जैन धर्म का वैभव—डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल — ७

३. गीत—श्रीमती कमला जैन 'जीजी' — १२

४. जैन मूर्त्तिकला—डॉ० विनयतोष भट्टाचार्य — १३

५. पर काँटे देखो रोते हैं (कविता)—श्री नरेन्द्रकुमार भनावत — २०

६. अहमदाबाद के भामाशाह (कहानी)—श्री जयभिक्खु — २१

७. सिद्धसेन दिवाकर—डॉ० इन्द्र — २५

८. श्रमण की परिभाषा— — ३२

९. गीत—श्री ज्ञानचन्द्र भारिल्ल — ३३

१०. जैन आगमों का मंथन—डॉ० इन्द्र — ३५

११. अपनी बात (सम्पादकीय)— — ३८

श्रमण के विषय में—

१. श्रमण प्रत्येक अंगरेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है।
२. ग्राहक पूरे वर्ष के लिए बनाए जाते हैं।
३. श्रमण में सांप्रदायिक कदाग्रह को स्थान नहीं दिया जाता।
४. विज्ञापनों के लिए व्यवस्थापक से पत्र व्यवहार करें।
५. पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।
६. वार्षिक मूल्य मनिऑर्डर से भेजना ठीक होगा।
७. समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी चाहिये।

वार्षिक मूल्य ४) एक प्रति ।=)

प्रकाशक—कृष्णचन्द्राचार्य,
श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस-५

श्रमण

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस का मुखपत्र

वर्ष ४ अगस्त १९५३ अंक १०

आचारांग की दार्शनिक मान्यताएं

डॉ० इन्द्र

आचारांग सूत्र का प्रथम श्रुत स्कन्ध कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। भाषा तथा अन्य प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह उपलब्ध आगम साहित्य में सबसे प्राचीन है। भगवान् महावीर ने अपनी उग्र तपस्या तथा कठोर साधना द्वारा जीवन के जो सूत्र प्राप्त किए वे इसमें उन्हीं के शब्दों में प्रतिध्वनित प्रतीत होते हैं। अपने शरीर से निर्दय व्यवहार करने वाला किस प्रकार समस्त प्राणियों के लिए अभय की घोषणा करता है, किस प्रकार देवी, देवता ईश्वर आदि के सामने गिड़गिड़ाते हुए मानव को अपने ही पैरों पर खड़ा रहने का सन्देश देता है, किस प्रकार उच्च और नीच के भेदों को मिटा कर प्राणिमात्र में समता का उपदेश देता है; किस प्रकार वह कहता है कि तुम्हें अपना त्राण स्वयं करना है; भाई, बन्धु, मित्र आदि कोई भी तुम्हें मृत्यु के मुख से नहीं बचा सकते; महावीर के ये अमर सन्देश आचारांग के फुटकर वाक्यों द्वारा मिलते हैं।

ग्रन्थ रचना की दृष्टि से देखा जाय तो आचारांग के प्रथम श्रुत स्कन्ध में कोई व्यवस्था नहीं प्रतीत होती। फिर भी उसका महत्व कम नहीं होता। उसका प्रत्येक वाक्य जीवन का एक सूत्र है और अपने आप में स्वतन्त्र पुस्तक है। आवश्यकता है, उसके अन्तस्तल में पहुँच कर गम्भीर अध्ययन की। और अध्ययन से भी अधिक अनुभव की। आचारांग का मुख्य विषय आचार या चरित्र है। इन्द्रियों की तृप्ति, सगे सम्बन्धियों को प्रसन्न करना, लोगों की वाहवाही लेना आदि स्वार्थों से अभिभूत होकर मानव किस प्रकार स्थावर

तथा त्रस जीवों की हिंसा करता है, किस प्रकार वह हिंसा उसके लिए अनिष्टकर होती है, किस प्रकार जीवों का स्वरूप जान कर उसे छोड़ना चाहिए आदि बातों का निरूपण इसमें अत्यन्त आकर्षक शैली में किया गया है।

दर्शन शास्त्र की पाश्चात्य परिभाषा के अनुसार यदि तत्त्वज्ञान के साथ साथ आचार को भी दर्शन का विषय माना जाय तो आचारांग भी एक दर्शन ग्रन्थ कहा जाएगा। किन्तु भारतीय दर्शनों ने मोक्ष को ध्येय मानते हुए भी, आचार विषयक चर्चा को अपने क्षेत्र से बाहर रखा है। उस दृष्टि से आचारांग दार्शनिक साहित्य में नहीं आता। फिर भी इसमें स्थान स्थान पर ऐसे उल्लेख हैं जो साक्षात् या परम्परया दर्शन शास्त्र से सम्बद्ध हैं। प्रस्तुत लेख में उन्हीं के दिग्दर्शन का प्रयत्न किया जाएगा।

आचारांग प्रथश्रुतस्कन्ध के प्रथम अध्ययन का नाम शस्त्र परिज्ञा है। इसके प्रथम उद्देश में यह बताया गया है कि मानव किन कारणों से जीवहिंसा करता है। उन्हीं कारणों को शस्त्र नाम दिया गया है। प्रारम्भ में जीवों के अज्ञान की चर्चा करते हुए कहा है—"बहुत से जीवों को यह पता नहीं रहता कि हम किस दिशा से आए हैं, पूर्व से आए हैं, पश्चिम से आए हैं, दक्षिण से आए हैं, या उत्तर से आए हैं। इसी प्रकार ऊपर नीचे या और किसी दिशा से आए हैं। वे यह भी नहीं जानते कि आत्मा मर कर उत्पन्न होता है या नहीं। मैं कौन था। यहाँ से मर कर कहाँ उत्पन्न होऊँगा।"

उपरोक्त पाठ में आत्मा की अमरता तथा परलोकगमन के उसी प्रश्न को उपस्थित किया गया है जो भारतीय दर्शन शास्त्र की शाश्वत एवं प्रधान समस्या है।

इसके पश्चात् इसे जानने के तीन मार्ग बताए हैं—कोई व्यक्ति उपरोक्त तत्त्व को अपनी सहज स्फूर्ति (Intuition) से जानता है, कोई अरिहन्तों के उपदेश से और कोई अन्य व्यक्ति से सुनकर। उपनिषदों में आया है—"तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्, समित्पाणिः श्रोत्रियं, ब्रह्मनिष्ठम्" अर्थात् ब्रह्मज्ञान के लिए जिज्ञासु योग्य गुरु के पास जाय। इसके बिना ज्ञान प्राप्ति नहीं हो सकती। किन्तु आचारांग में तीन बातें बताई गई हैं। जन्मान्तर कृत तपस्या के कारण कोई व्यक्ति अपने आप भी बिना किसी गुरु की सहायता के प्रतिबोध प्राप्त कर सकता है। गुरु भी दो प्रकार के बताये गए हैं। जिस व्यक्ति ने आत्मा का साक्षात्कार कर लिया है वह अपने अनुभवों द्वारा दूसरे को ज्ञान लाभ करा सकता है। इसी प्रकार जिस व्यक्ति ने स्वयं तो

साक्षात्कार नहीं किया किन्तु वह साक्षात् करने वालों की वाणी को जानता है। उससे सुनकर भी प्रतिबोध प्राप्त किया जा सकता है।

उपरोक्त तीन कारणों में से किसी के द्वारा परलोक के साथ संबन्ध जान लेने के बाद व्यक्ति चार बातों में विश्वास करने लगता है। वह माननें लगता है कि आत्मा है, संसार है, कर्म है तथा क्रिया है।

इन चार तत्त्वोंकी स्वीकृति तत्कालीन मतान्तरों का निराकरण करती है। चार्वाक तथा बौद्ध दर्शन आत्माको नहीं मानते, अद्वैत वेदान्त संसार को मिथ्या कहता है, नियतिवादी गोशालक के कथनानुसार सभी वस्तुएं नियत हैं। क्रिया और फलभोग का कोई अर्थ नहीं है। इसके विपरीत जैन दर्शन इन चारों बातों को मानता है। वह आत्मवादी, लोकवादी, कर्मवादी और क्रियावादी है। इन चार मान्यताओं द्वारा जैन दृष्टि को प्रकट कर दिया गया है। पहले उद्देश में आत्मा तथा कर्मो का सिद्धान्ततः प्रतिपादन करने के बाद शेष छः उद्देशों में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति तथा त्रस के भेद से जीवों के छः भेद बताए गए हैं और उनकी हिंसा का निषेध किया गया है।

एक बात यहाँ ध्यान देनें योग्य है। उपनिषदों में आत्मतत्त्व का अन्वेषण 'तत्त्वमसि' के रूप में किया गया है। अर्थात् स्व को आत्मा समझ कर अपने में ही उसे खोजने पर जोर दिया गया है। इसके विपरीत जैन आगमों में आत्मा की गवेषणा जीव द्वारा होती है। विविध शरीरों में जीवन है, इसलिए जीव है और वही आत्मा है।

जैन आगमों में भी तर्क की अपेक्षा आगम को अधिक आदरणीय माना गया है। यद्यपि बाद में जाकर आगम का यह प्राधान्य नहीं रहा और हरिभद्र ने यहाँ तक कह दिया "मेरा न महावीर के प्रति पक्षपात है और न कपिल आदि के प्रति द्वेष। जिसका वचन युक्तिसंगत हो, उसी को स्वीकार करना चाहिए।" फिर भी आगमों में स्पष्ट रूप से शास्त्राज्ञा को ही धर्म बताया गया है। इसमें वेदाज्ञा को धर्म मानने वाले मीमांसक का स्पष्ट प्रभाव प्रतीत होता है। बाद में दिङ्नाग तथा धर्मकीर्ति सरीखे बौद्धाचार्यों ने जब आगम की अपेक्षा तर्क को अधिक महत्त्व दिया तो जैन आचार्यों की ध्वनि भी बदल गई। आचारांग यह स्पष्ट रूप से कहता है—वही सत्य तथा शङ्कारहित है जो जिनों ने कहा है।" (५—५)

सर्वज्ञत्व के विषय में आचारांग का दृष्टिकोण अत्यन्त स्पष्ट और महत्वपूर्ण है। कालान्तर में जब अपने अपने धर्म-प्रवर्तकों के महत्व को बढ़ाने के

लिए प्रतिस्पर्द्धा प्रारम्भ हुई तो वह अर्थ बिल्कुल बदल गया। आचारांग में लिखा है—"जो एक को जानता है वह सब कुछ जानता है। जो सब कुछ जानता है वह एक को जानता है।" टीकाकारों ने एक का अर्थ आत्मतत्त्व किया है। उपनिषदों में भी एक विज्ञान से सर्व विज्ञान का निरूपण किया गया है। ब्रह्मरूप तत्त्व को ऐसा बताया गया है जिसके जानलेने पर जो भी अज्ञात है वह ज्ञात हो जाता है, जो अमत (मनन बिना का) है वह मत हो जाता है। जो अश्रुत है वह श्रुत हो जाता है। यदि उपनिषदों की तुलना में आचारांग के वाक्य को रखा जाय तो दोनों का अर्थ एक ही निकलता है।

तर्क दृष्टि से देखा जाय तो दोनों में अन्तर भी है। वेदान्त का कथन है कि कारण जान लेने से कार्य अपने आप ज्ञात हो जाता है। मिट्टी के जान लेने से उससे बनी हुई वस्तुएं अपने आप ज्ञात हो जाएंगी। साथ ही उसका यह भी कथन है कि मिट्टी ही सत्य है और उससे बनी वस्तुएं वाचारम्भण मात्र हैं। अर्थात् केवल कारण सत्य है और कार्य मिथ्या है। ब्रह्म सबका कारण है। इसलिए वही सत्य है और उसके जान लेने से समस्त ब्रह्माण्ड का ज्ञान हो जाएगा। जैन दर्शन कारण तथा कार्य दोनों को सत्य मानता है। इसी प्रकार यह भी नहीं मानता कि कारण को जान लेने मात्र से समस्त कार्य का ज्ञान हो जाएगा। साथ ही साथ उसकी यह मान्यता भी नहीं है कि आत्मा समस्त संसार का कारण है इन सब बातों को लक्ष्य में रख कर उपरोक्त वाक्य का पर्यालोचन किया जाय तो यही प्रतीत होगा कि इसमें आत्मा के ज्ञान पर जोर दिया गया है और उसे ज्ञान की अन्तिम भूमि माना है।

आचार शास्त्र की दृष्टि से देखा जाय तो आचारांग में हिंसक कर्मों के त्याग पर अधिक बल दिया गया है। मैत्री, करुणा, मुदिता आदि विध्यात्मक गुणों की ओर विशेष लक्ष्य नहीं दिया गया। इसका दृष्टिकोण निवृत्ति प्रधान है।

दूसरे अध्ययन का नाम लोक विजय है। इसमें सांसारिक संबन्धों पर विजय प्राप्त करने का उपदेश दिया गया है। मनुष्य माता, पिता, भार्या भगिनी, पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू आदि के मोह में फँस कर कर्तव्य को भूल जाता है। किन्तु समय आने पर कोई किसी की रक्षा नहीं कर सकता।

इस अध्ययन के तीसरे उद्देश में जन्मकृत उच्चता नीचता का खण्डन किया गया है। विद्वान् पुरुष को कुल विशेष में जन्म के कारण न हृष्ट होना चाहिए,

न दुखी होना चाहिए। तीसरा शीतोष्णीय अध्ययन है, जिसमें अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थिति में समभाव रखने का उपदेश है। इसके तीसरे उद्देश में कहा है—हे पुरुषो! तुम्हीं तुम्हारे मित्र हो। बाह्य मित्रों को क्यों चाहते हो? पुरुषो! आत्मा का निग्रह करो, इस प्रकार दुःखों से छूट जाओगे। पुरुषो! सत्य को पहिचानो, सत्य की आज्ञा पर चलने वाला मेधावी मृत्यु को जीत लेता है। चौथे उद्देश में कषायों पर विजय प्राप्त करने का उपदेश है।

चौथा सम्यक्त्व अध्ययन है। इसके प्रथम उद्देश में जैन परम्परा के सारभूत अहिंसा तत्त्व की घोषणा की गई है। भगवान कहते हैं—

मैं यह कहता हूँ—"जो अरिहन्त भगवान् भूत काल में हो चुके, जो इस समय विद्यमान हैं, जो भविष्य में होंगे सभी इसी प्रकार कहेंगे, यही भाषण देंगे, यही प्रज्ञापना तथा प्ररूपणा करेंगे कि किसी प्राण भूत, जीव या सत्त्व को नहीं मारना चाहिए, न सताना चाहिए, न कष्ट देना चाहिए, न त्रास देना चाहिए। यही धर्म शुद्ध है, नित्य है, शाश्वत है, संसार का स्वरूप समझ कर अनुभवी व्यक्तियों द्वारा कहा गया है।" दूसरे उद्देश में हिंसा का समर्थन करने वालों का मत देकर उन्हें अनार्य कहा है। तीसरे में यह बताया है कि जिस प्रकार अग्नि पुरानी लकड़ियों को जला डालती है इसी प्रकार तुम अपनी आत्मा कस डालो और तपाओ।"

पाँचवां अध्ययन लोकसार है। इसमें यह बताया गया है कि जीवन कुशाग्र पर पड़े हुए जलबिन्दुके समान अस्थिर है। इसलिये मनुष्यको सांसारिक विषयों में गृद्ध नहीं होना चाहिए। मुनि को मौन का अवलम्बन करके कर्म शरीर का नाश करना चाहिए।

वहीं पर कहा गया है—"जो आत्मा है वही विज्ञाता है, जो विज्ञाता है वही आत्मा है। जिसके द्वारा जानते हैं वह भी आत्मा है।" यह वाक्य महावीर के ज्ञान सिद्धान्त को प्रकट करना है। इसका अर्थ है ज्ञान और आत्मा अभिन्न हैं। ज्ञान का साधन आत्मा के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

इसके छठे उद्देश में बताया गया है कि कुछ लोग शास्त्राज्ञा से बाहर होते हुए भी मोक्ष के लिए प्रयत्न करते हैं। कुछ लोग शास्त्राज्ञा में रहते हुए भी प्रयत्न नहीं करते। ये दोनों बातें ठीक नहीं है। आज्ञानुसार प्रयत्न करने पर ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। मोक्षार्थी को पूर्ण रूप से आचार्य की आज्ञा में रहना चाहिए।

मोक्ष का स्वरूप बताते हुए कहा है कि वहाँ जरा और मृत्यु का चक्कर

छूट जाता है। कर्मरज दूर हो जाता है। वास्तव में देखा जाय तो उसके स्वरूप का प्रतिपादन शब्दों द्वारा नहीं किया जा सकता। सभी शब्द वहाँ से लौट जाते हैं। तर्क वहाँ नहीं पहुँचता। मति उसको ग्रहण नहीं कर सकती।" उपनिषदों में भी ब्रह्म को वाणी और मन से परे बताया गया है।

फिर कहा गया है—न वह दीर्घ है, न लम्बा है, न वर्तुल है, न त्र्यस्र है, न चतुरस्र है, न परिमण्डल है, न कृष्ण है, न नील है, न लोहित है, न हारिद्र है, न शुक्ल है, न सुरभिगन्ध है, न दुरभिगन्ध है, न तिक्त है, न कटु है, न कषाय है, न अम्ल है, न मधुर है, न कठोर है, न मृदु है, न गुरु है, न लघु है, न शीत है, न उष्ण है, न स्निग्ध है, न रूक्ष है, न शरीर है, न रूप है, न रंग है, न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है। वह ज्ञान दर्शन रूप है। उसकी कोई उपमा नहीं है। वह अरूपी है, निरुपाधि है। शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि सबसे अतीत है। मोक्ष का यह स्वरूप उपनिषदों के शुद्ध ब्रह्म से मिलता है।

छठें अध्ययन का नाम 'धूत' है। इसमें कर्मों के कटु फल तथा उन्हें नष्ट करने का उपाय बताया गया है। इसमें भी तपस्या पर अधिक जोर दिया गया है। कहा है—प्रज्ञावान् की बाहें कृश होती हैं तथा शरीरमें मांस और रक्त अत्यल्प रह जाता है।

सातवाँ अध्ययन लुप्त माना जाता है।

आठवें अध्ययन का नाम विमोह है। इसमें मुख्य रूपसे साधु की चर्या का वर्णन है। साधु को निर्दोष आहार, पानी तथा वस्त्र पात्र आदि किस प्रकार लेने चाहिए और किस प्रकार न लेने चाहिए, इसी का स्पष्टीकरण है।

नवें अध्ययन में भगवान् महावीर की तपश्चर्या का वर्णन है। दार्शनिक दृष्टि से उसका विशेष महत्व नहीं है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि महावीर की साधना में मौन, आत्मचिन्तन, उपवास, कायक्लेश तथा उपसर्ग-सहन का विशेष स्थान है। मैत्री, करुणा, परसेवा रुग्णपरिचर्या आदि सामाजिक गुणों को अधिक महत्व नहीं दिया गया। इसी आधार पर महावीर का धर्म व्यक्ति प्रधान कहा जाता है।

आचारांग का दूसरा श्रुतस्कन्ध दार्शनिक दृष्टि से विशेष महत्व नहीं रखता। रचना की दृष्टि से भी वह प्रथम श्रुतस्कन्ध की अपेक्षा अर्वाचीन है। उसमें साधु की चर्या का ही विशेष वर्णन है।

प्राचीन मथुरा में जैनधर्म का वैभव

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल

मथुरा में ईस्वी सन से लगभग चार-पाँच शताब्दी पूर्व, जैनधर्म के स्तूपों की स्थापना हुई। आज कंकाली टीले के नाम से जो भूमि वर्तमान मथुरा संग्रहालय से पश्चिम की ओर करीब आध मील दूर पर स्थित है, वह पवित्र स्थान ढाई सहस्त्र वर्ष पहले जैनधर्म के जीवन का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था। उत्तर भारत में यहाँ के तपस्वी आचार्य सूर्य की तरह तप रहे थे। यहाँ की स्थापत्य और भास्कर कला के उत्कृष्ट शिल्पों को देखकर दिग्दिगन्त के यात्री दाँतों तले उँगली दबाते थे। यहाँ के श्रावक और श्राविकाओं की धार्मिक श्रद्धा अनुपम थी। अपने पूज्य गुरुओं के चरणों में धर्मभीरु भक्त लोग सर्वस्व अर्पण करके नाना भांति की शिल्पकला के द्वारा अपनी अध्यात्म साधना का परितोष करते थे। अन्त में यहाँ के स्वाध्यायशील भिक्षु और भिक्षुणियों द्वारा संगठित जो अनेक विद्यापीठ थे उनकी कीर्ति भी देश के कोने कोने में फैल रही थी। उन विद्या स्थानों को गण कहते थे जिनमें कई कुल और शाखाओं का विचार था। इन गण और शाखाओं का विस्तृत इतिहास जैनग्रंथ कल्पसूत्र तथा मथुरा के शिलालेखों से प्राप्त होता है। अब हम कुछ विशदता से जैनधर्म के इस अतीत गौरव का यहाँ उल्लेख करेंगे।

देवनिर्मित स्तूप

कंकाली टीले की भूमि पर एक प्राचीन जैनस्तूप और दो मंदिर या प्रासादों के चिह्न मिलते थे। अर्हत नन्द्यावर्त्त अर्थात अठारहवें तीर्थंकर अर की एक प्रतिमा की चौकी पर खुदे हुए लेख में लिखा है (E. I. Vol. II Ins.no.20) कि कोहिय गण की वज्री शाखा के वाचक आर्य वृद्धहस्ती की प्रेरणा से एक श्राविका ने देवनिर्मितस्तूप में अर्हत की प्रतिमा स्थापित की।

यह लेख सं० ७९ अर्थात कुषाण सम्राट वासुदेव के राज्यकाल ई० १६७ का है, परन्तु इसका देवनिर्मित शब्द महत्वपूर्ण है; जिस पर विचार करते हुए बूलर, स्मिप आदि विद्वानों ने (Jain Stupa, P. 18) निश्चय किया है कि यह स्तूप ईस्वी दूसरी शताब्दि में इतना प्राचीन समझा जाता था कि

लोग इसके वास्तविक निर्माणकर्ताओं के इतिहास को भूल चुके थे और परम्परा के द्वारा इसे देवों से बना हुआ मानते थे। इस स्तूप का नाम बौद्ध स्तूप लिखा हुआ है। हमारी सम्मति में देवनिर्मित शब्द साभिप्राय है और इस स्तूप की अतिशय प्राचीनता को सिद्ध करता है। तिब्बतीय विद्वान तारानाथ ने अशोककालीन तक्षकों और शिल्पियों को यक्षों के नाम से पुकारा है और और लिखा है कि मौर्यकालीन शिल्पकला यक्षकला है। उससे पूर्व युग की कला देवनिर्मित थी। अतएव शिलालेख का देवनिर्मित शब्द यह संकेत करता है कि मथुरा का स्तूप मौर्यकाल से पहले अर्थात लगभग छट्ठी या पांचवीं शताब्दी ई० पू० में बना होगा। जैन विद्वान् जिनप्रभ द्वारा रचित तीर्थकल्प किंवा राजप्रासाद ग्रंथ में मथुरा के इस स्तूप के निर्माण और जीर्णोद्धार का इतिहास दिया हुआ है। उसके आधार पर बूलर ने (A legend of the Jain Stupa at Mattura) निबंध लिखा था। उसमें कहा है कि मथुरा का स्तूप, आदि में स्वर्णमय था, जिसे कुबेरा नाम की देवी ने सप्तम तीर्थंकर सुपार्श्व की स्मृति में बनवाया था। कालान्तर में तेईसवें तीर्थंकर सुपार्श्व की स्मृति में बनवाया था। कालान्तर में तेईसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ जी के समय में इसका निर्माण ईंटों से हुआ। भगवान् महावीर की सम्बोधि के १३०० वर्ष बाद बघभट्टिसूरि ने इसका जीर्णोद्धार कराया। इस आधार पर डा० स्मिथ ने 'जैन स्तूप' नामक पुस्तक में यह लिखा है :—

Its original erection in brick in the time of Parsvanath, the Predecessor of Mahavira, would fall at a date not later than B. C. 600. Considering the significance of the Phrase in the inscription "built by the Gods" as indicating that the bulding at about the beginning of the christian era was believed to date from a period of mythical antiquity, the date B. C. 600 for its first erection is not too early. Probably, therefore, this stupa, of which Dr. Fuhrer exposed the foundations, is the oldest known building in India.

इस उद्धरण का भावार्थ यही है कि अनुश्रुति की सहायता से मथुरा के प्राचीन जैन स्तूप का निर्माण काल लगभग छठी शताब्दि ई० पूर्व का प्रारम्भ काल था और इसी कारण यह भारतवर्ष में सबसे पुराना स्तूप था।

बौद्ध स्तूप के समीप ही दो विशाल देवप्रासाद थे। इनमें से एक मन्दिर का तोरण (प्रासाद-तोरण) प्राप्त हुआ था। इसे महारक्षित आचार्य के शिष्य उत्तरदासिक ने बनवाया था। इसके लेख के(E. I. Vol. II, Ins. no.I) अक्षर भारहूत के तोरण पर खुदे हुए लगभग १५० ई० पू० के धनभूति के लेख के अक्षरों से भी अधिक पुराने हैं। अतएव विद्वानों की सम्मति में इन मन्दिरों का समय ईस्वी पूर्व तीसरी शताब्दि समझा गया है।

अद्भुत शिल्प का तीर्थ

ईस्वी पूर्व दूसरी शताब्दि से लेकर ईसा के बाद ग्यारहवीं शताब्दि तक के शिलालेख और शिल्प के उदाहरण इन देवमन्दिरों से मिले हैं। लगभग १३०० वर्षों तक जैनधर्म के अनुयायी यहाँ पर चित्र-विचित्र शिल्प की सृष्टि करते रहे। इस स्थान से प्रायः सौ शिलालेख, और डेढ़ हजार के करीब पत्थर की मूर्तियां मिल चुकी हैं। प्राचीन भारत में मथुरा का स्तूप जैनधर्म का सबसे बड़ा शिल्प तीर्थ था। यहाँ के भव्य देवप्रासाद, उनके सुन्दर तोरण वेदिका स्तम्भ, मूर्धन्य या उष्णीष पत्थर, उत्फुल्ल कमलों से सज्जित सूची, उत्कीर्ण आयागपट्ट तथा अन्य शिलापट्ट, सर्वतोभद्रिका प्रतिमाएँ, स्तूप पूजा का चित्रण करने वाले स्तम्भतोरण आदि अपनी उत्कृष्ट कारीगरी के कारण आज भी भारतीय कला के गौरव समझे जाते हैं। सिंहक नामक वणिक के पुत्र सिंहनादिक ने जिस आयागपट्ट की स्थापना की थी वह अविकल रूप में आज भी लखनऊ के संग्रहालय में सुशोभित है। चित्रण सौष्ठव और मान—सामञ्जस्य में इसकी तुलना करने वाला एक भी शिल्प का उदाहरण इस देश में नहीं है। बीच के चतुरस्त्र स्थान में चार नन्दिंपदों से घिरे हुए मध्यवर्ती कुण्डल में समाधिमुद्रा में पद्मासन से भगवान अर्हत विराजमान हैं। ऊपर नीचे अष्टमांगलिक चिन्ह और पार्श्वभागों में दो स्तम्भ उत्कीर्ण हैं, दक्षिण स्तम्भ पर चक्र सुशोभित है, और वाम पर एक गजेन्द्र। आयागपट्ट के चारों कोनों में चार चतुर्दल कमल हैं। इस आयागपट्ट में जो भाव व्यक्त किए गए हैं उनकी अध्यात्म व्यंजना अत्यन्त गभीर है। इसी प्रकार माथुरक लवदास की भार्या का आयागपट्ट जिसमें षोडश आरेवाले चक्र का दुर्धर्ष प्रवर्तन चित्रित है, मथुराशिल्प का मनोहर प्रतिनिधि है। फल्गुयश नर्तक की भार्या शिवयशा के सुन्दर आयागपट्ट को भी हम नहीं भूल पाते।

कंकाली टीले के अनन्त वेदिका स्तम्भों और सूचीदलों की सजावट का वर्णन करने के लिए तो कवि की प्रतिभा चाहिए। आभूषण संभारों से

सन्नतांगी रमणियों के सुखमय जीवन का अमर वाचन एक बार ही इन स्तंभों के दर्शन से सामने आ जाता है। अशोक, बकुल, आम और चंपक के उद्यानों में पुष्पभंजिका क्रीड़ा में प्रसक्त, कन्दुक, खड्गादि नृत्यों के अभिनय में प्रवीण, स्नान और प्रसाधन में संलग्न पौरांगनाओं को देख कर कौन मुग्ध हुए बिना रह सकता है। भक्ति भाव से पूजा के लिए पुष्पमालाओं का उपहार लाने वाले उपासक वृन्दों की शोभा और भी निराली है। सुपर्ण और किन्नर सदृश देवयोनियाँ भी पूजा के इन श्रद्धामय कृत्यों में बराबर भाग लेती हुई दिखाई गई हैं। मथुरा के इस शिल्प की महिमा केवल भावगम्य है।

श्रावक श्राविकाएँ तथा उनके आचार्य—

मथुरा के शिलालेखों से मिली हुई सामग्री से पता चलता है कि जैन समाज में स्त्रियों को बहुत ही सम्मानित स्थान प्राप्त था। अधिकांश दान और प्रतिमा प्रस्थापना उन्हीं की श्रद्धा भक्ति का फल थीं। सब सत्त्वों के हित सुख के लिए (सर्वसत्त्वानां हितसुखाय) और अर्हत पूजा के लिए (अर्हत्पूजायै) ये दो वाक्य कितनी ही बार लेखों में आते हैं। ये उस काल के भक्ति धर्म की व्याख्या करने वाले दो सूत्र हैं जिनमें इस लोक के जीवन को परलोक के साथ मिलाया गया है। गृहस्थों की पुरंध्री कुटुम्बिनी बड़े गर्व से अपने पिता, माता, पति, पुत्र, पौत्र, सास, ससुर का नामोल्लेख करके उन्हें भी अपने पुण्य का भागधेय अर्पण करती थीं। स्वार्थ और परमार्थ का समन्वय ही मथुरा का प्राचीन भक्ति धर्म था।

देवपाल श्रेष्ठी की कन्या श्रेष्ठीसेन की धर्मपत्नी क्षुद्रा ने वर्धमान प्रतिमा का दान करके अपने को कृतार्थ किया। श्रेष्ठी वेणी की धर्मपत्नी भट्टिसेन की माता कुमारमित्रा ने आर्या वसुला के उपदेश से एक सर्वतोभद्रिका प्रतिमा की स्थापना की। यह वसुला आर्यजयभूति की शिष्या आर्या संगमिका की शिष्या थी। सर्वलोकोत्तम अर्हन्तों को प्रणाम करने वाली सुचिल की धर्मपत्नी ने भगवान् शान्तिनाथ की प्रतिमा दान में दी। वज्री शाखा के वाचक आर्यमातृदत्त जो आर्यबलदत्त के शिष्य थे, इसके गुरु थे। मणिकार जयभट्टि की दुहिता, लोहवणिज फल्गुदेव की धर्मपत्नी मित्रा ने कोट्टिय गण के अन्तर्गत ब्रह्मदासिक कुल के बृहन्तवाचक गणि जमित्र के शिष्य आर्यओघ के शिष्य गणि आर्यपाल के श्रद्धाचार वाचक आर्यदत्त के शिष्य वाचक आर्यसिंह की निर्वर्तना या प्रेरणा से एक विशाल जिन प्रतिमा का दान दिया। पुनश्च कोट्टिय गण के आचार्य आर्यबलत्रात की शिष्या संधि के उपदेश से जयभट्ट की

कुटुम्बिनी ने प्रतिमा-प्रतिष्ठा की (E. I. Vol. I Mattura ins. no. 5) एवं इन्हीं आर्य बलत्रात की शिष्या संघि की भक्ति जया थी जो नवहस्ती की दुहिता, गुहसेन की स्नुषा, देवसेन और शिवदेव की माता थी और जिसने एक विशाल वर्धमान प्रतिमा की ११३ ई० के लगभग प्रतिष्ठा कराई (E. I. Vol. II. no. 34)। पूज्य आचार्य बलदत्त को अपनी शिष्या आर्या कुमारमित्रा पर गर्व था। शिलालेख में उस तपस्विनी को 'संशित, मखित, बोधित' (Whetted, Polished and awakened) कहा गया है। यद्यपि वह भिक्षुणी थी। तथापि उसके पूर्वाश्रम के पुत्र गधिक कुमारभट्टि ने १२३ ई० में जिन प्रतिमा का दान किया। यह मूर्त्ति कंकाली टीले के पश्चिम में स्थित दूसरे देव प्रासाद के भग्नावशेष में मिली थी। पहले देवमंदिर की स्थिति इसके कुछ पूर्वभाग में थी। महाराज राजातिराज देवपुत्र हुविष्क के ४० वें संवत्सर (१२८ ई०) में दत्ता ने भगवान् ऋषभदेव की स्थापना की जिससे उसके महाभाग्य की वृद्धि हो। शिलालेख नं० ९ से ज्ञात होता है कि चारणगण के आर्य चेटिक कुल की हरितमालगढ़ी शाखा के आर्य भगनंदी के शिष्य वाचक आर्य नागसेन प्रसिद्ध आचार्य थे।

ग्रामिक (ग्रामणी) जयनाग की कुटुम्बिनी और ग्रामिक जयदेव की पुत्रवधू ने सं० ४० में शिलास्तम्भ का दान किया। आर्यश्यामा की प्रेरणा से जयदास की धर्मपत्नी गूढा ने ऋषभ प्रतिमा दान में दी। श्रमण श्राविका बलहस्तिनी ने माता पिता और सास ससुर की पुण्य-वृद्धि के हेतु एक बड़े तोरण (९'×३"×१') की स्थापना की।

कंकाली टीले के दक्षिण पूर्व के भाग में डा० बर्जस की खुदाई में एक प्रसिद्ध सरस्वती की प्रतिमा प्राप्त हुई थी जिसे एक लोहे का काम करने वाले (लोहिकारूक) गोप ने स्थापित किया था। इसी स्थान पर धनहस्ति की धर्मपत्नी और गुहदत्त की पुत्री ने धर्मार्थी नामक श्रमणा के उपदेश से एक शिलापद दान किया जिस पर स्तूप की पूजा का सुन्दर दृश्य अंकित है (E. I. Vol. I, no,22) जयपाल, देवदास, नागदत्त, नागदत्ता की जननी श्राविका दत्ता ने आर्य संघसिंह की निर्वर्तना मानकर वर्धमान प्रतिमा का ई० ९८ में दान किया। अन्य प्रधान दानदात्री महिलाओं में कुछ ये थीं— सार्थवाहिनी धर्मसोमा (ई० १००) कौशिका शिवमित्रा जो ईस्वी पूर्वकाल में शकों का विध्वंस करने वाले किसी राजा की धर्मपत्नी थी (E. I. Vol. I, no 32), स्वामी महाक्षत्रप सुदास के राज्य संवत्सर ४२ में आर्यवती की

प्रतिमा का दान देने वाली श्रमण श्राविका अमोहिनी (E. I. Vnl II. Ins. no. 2), नर्तक फल्गुयश की धर्मपत्नी शिवयशा, भगवान् अरिष्टनेमि की प्रतिमा का दान करने वाली मित्रश्री, एक गन्धिक की माता, बुद्धि की धर्मपत्नी ऋतुनन्दी जिसने नन्द्यावर्त अर्हत की स्थापना देवनिर्मित बौद्ध स्तूप में की, भद्रनन्दी की धर्मपत्नी अचला और सबसे विशिष्ट तपस्विनी विजयश्री जो राज्यवसु की धर्मपत्नी, देविल की माता और विष्णुभव की दादी थी और जिन्होंने एक मास का उपवास करने के बाद सं०५० (१२८ ई०) में वर्धमान प्रतिमा की स्थापना की।

इन पुण्य चरित्र श्रमण-श्राविकाओं के भक्ति भरित हृदयों की अमरकथा आज भी हमारे लिए सुरक्षित है और यद्यपि मथुरा का वह प्राचीन वैभव अब दर्शनपथ से तिरोहित हो चुका है तथापि इनके धर्म की अक्षय कीर्ति सदा अक्षुण्ण रहेगी। वस्तुतः काल प्रवाह में अदृष्ट होने वाले प्रपंच चक्र में तप और श्रद्धा ही नित्य मूल्य की वस्तुएँ हैं। जैन तीर्थंकर तथा उनके शिष्य श्रमणों ने जिस का अंकुर बोया उसी की छत्रछाया में सुखासीन श्रावक-श्राविकाओं की श्रद्धा ही मथुरा के पुरातन वैभव का कारण थी।

गीत

उस हृदय की वेदना को कौन फिर पहचानता है?
आर्द्रता से तरल होकर वेदना से विकल होती,
एक बदली बरसती है यामिनी जब मूक होती,
स्वप्न में सोया हुआ संसार क्या यह जानता है?
उस हृदय की वेदना को कौन फिर पहचानता है?
सर्वदा को हरित शाखा से बिलग होती कली है,
मूक हो पग तले रहती जो कभी सुख में पली है।
कहो उसकी सरसता को कभी कोई मानता है?
उस हृदय की वेदना को कौन फिर पहचानता है?
आस जो उल्लास को पाने अहोनिशि जागती है।
फिर नयन की राह से वह खोजने को भागती है।
किन्तु निर्मम जग उसी को बाँधकर फिर ढालता है।
उस हृदय की वेदना को कौन फिर पहचानता है?

—कमला जैन 'जीजी'

जैन मूर्त्तिकला

डा० विनयतोष भट्टाचार्य

अब यह सर्व सम्मति से स्वीकार कर लिया गया है कि प्राचीन भारतीय वास्तुशास्त्र विद्या के क्षेत्र में मूर्त्ति विद्या का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है। मूर्त्ति और कुछ नहीं, किसी देवता विशेष की आकृति का भाव प्रदर्शन मात्र है और मूर्त्ति विद्या के क्षेत्र में इस बात का पता लगाने की चेष्टा की जाती है कि कब और कैसी स्थिति में वह भाव विशेष प्रदर्शित किया गया। इस प्रकार मूर्त्ति विद्या का संबंध देवी और देवताओं की आकृतियों और चित्रों की पहिचान मात्र से ही न होकर सामाजिक, धार्मिक, दैनिक और कलात्मक पृष्ठ भूमि से भी है। मूर्त्ति विद्या का क्षेत्र काफी बड़ा है जो उपदेशप्रद होने के साथ ही साथ मनोरंजक भी है।

हिन्दू, बौद्ध और जैन भारत के तीन प्रधान और प्राचीन धार्मिक मतों के कारण मूर्त्ति विद्या का अध्ययन क्षेत्र भी तीन विभागों में विभाजित हो जाता है। हिन्दू और बौद्ध मूर्त्ति विद्या के क्षेत्र में बहुत कुछ कार्य किया जा चुका है पर जैन मूर्त्ति विद्या के क्षेत्र में आज तक कोई एक भी ऐसी पुस्तक नहीं लिखी गई कि जिससे थोड़ा बहुत परिचय मात्र भी प्राप्त किया जा सके। ज्यों ज्यों जैन धर्म के अध्ययन में प्रगति होती जा रही है, जैन मन्दिरों, स्मारकों, मूर्त्तियों आदि का खोज कार्य बढ़ता जा रहा है। इस बात की भी आवश्यकता है कि विद्वानों का ध्यान मूर्त्ति विद्या के इस विभाग की ओर भी जाए और वे इस विषय के एक प्रामाणिक परिचयात्मक ग्रंथ का निर्माण करें जिससे इस विषय के जिज्ञासुओं को कुछ लाभ हो। इससे केवल जैनों को ही प्रोत्साहन नहीं मिलेगा पर उन लोगों को भी प्रेरणा मिलेगी जो मूर्त्ति विद्या की हिन्दू, बौद्ध और जैन शाखाओं के तुलनात्मक अध्ययन के इच्छुक हैं और इस कार्य में रुचि लेते हैं। जो कुछ भी हो, तीनों ही धर्मों का जन्म भारत में होने के कारण, आपस में बहुत सी बातों में समानता है। अतः हमारे लिए यह जानना एक बहुत ही मनोरंजक विषय होगा कि इन तीनों सिद्धान्तों में कहाँ तक समानता और कहाँ तक असमानता है। जब तर्क शास्त्रिक दृष्टि से मूर्त्ति विद्या का अध्ययन किया जाएगा तो उससे प्राचीन काल में स्थापित सांस्कृतिक एकता के पुनर्स्थापन में सहायता मिलेगी। और इधर कुछ वर्षों में इस विषय में लोगों की जो कुछ भ्रान्त धारणाएँ हो गई हैं, वे दूर होंगी।

जैन देवालय (Pantheon) के पुनर्निर्माण के लिए आज के उपलब्ध जैन साहित्य से काफी सामग्री मिलती है और वास्तव में ही जैन देवालय महत्व, सम्पूर्णता, वैभव एवं संपन्नता में किसी भी दृष्टि से हीन नहीं है। इस लेख का लेखक जब इसी क्षेत्र के अनुसंधान कार्य में संलग्न था, उसे देवी देवताओं के ५०० 'ध्यानों' का पता चला था। 'ध्यानों' की इस आश्चर्यजनक लम्बी संख्या का पता उसे 'ओरियन्टल इंस्टीट्यूट' के पुस्तकालय में प्राप्त कुछ मुद्रित पुस्तकों के अध्ययन से चला था। यदि वहाँ प्राप्त हस्त लिखित जैन ग्रन्थों का अध्ययन किया जाए तो मुझे आशा है कि जैन देवालय के पुनर्निर्माण के लिए करीब दुगने 'ध्यानों' का पता चलेगा।

एक बात और। देवताओं की आकृत और स्वभाव में श्वेताम्बर और दिगम्बर मान्यओं के अनुसार काफी अंतर है। अलग अलग शताब्दियों में समय की आवश्यकतानुसार देवताओं की विविध रूप से कल्पना हुई थी और यह कहना भी असंगत न होगा कि गच्छों तथा संगतराशों और दाताओं की भावनाओं के अनुसार भी देवताओं में काफी अन्तर है। इस प्रकार जैन मूर्त्ति विद्या के अध्ययेता को ऐसी महत्वपूर्ण एवं विशाल सामग्री से वास्ता पड़ता है जिसके अध्ययन के लिए काफी सावधानी एवं कुशलता अपेक्षित है।

इस विषय का अध्ययन तीर्थंकरों तथा उनके सहकारी यक्ष-यक्षिणियों से होना चाहिए। यक्ष और यक्षिणियों के नामों में विभिन्न प्रमाणों तथा दिगम्बर और श्वेताम्बर मान्यताओं के अनुसार अन्तर हैं। जो नाम हमें प्राप्त हुए हैं, वे निम्न प्रकार हैं—

संख्या	तीर्थंकर	यक्ष	यक्षिणी
१	ऋषभदेव	गोमुख	अप्रतिचक्र
२	अजित स्वामी	महायक्ष	अजित
३	संभवनाथ	त्रिमुख	दुरितारी
४	अभिनंदन	ईश्वर	कालिका
५	सुमतिनाथ	तुम्बारू	महाकाली
६	पद्मप्रभुनाथ	कुसुम	अक्युत
७	सुपार्श्वनाथ	मतंग	सान्ता
८	चंद्रप्रभनाथ	विजय	भृकुटि
९	सुविधिनाथ	अजित	सुतारा
१०	शीतलनाथ	ब्रह्म	अशोका
११	श्रेयांसनाथ	ईश्वर	मानवी

संख्या	तीर्थंकर	यक्ष	यक्षिणी
१२	वासूपूज्यनाथ	कुमार	प्रकाण्डा
१३	विमलनाथ	सन्मुख	विदिता
१४	अनंतनाथ	पाताल	अंकुसा
१५	धर्मनाथ	किन्नर	कंदर्प
१६	शांतिनाथ	गरुण	निर्वाण
१७	कुंथनाथ	गन्धर्व	बाला
१८	अरनाथ	यक्षेन्द्र	धरणी
१९	मल्लिनाथ	कुबेर	वैरोत्य
२०	मुनिसुब्रतनाथ	वरुण	वरदत्त
२१	नेमिनाथ	भृकुटि	गाँधारी
२२	नेमिनाथ	गोमेध	कुसुमांदी
२३	पार्श्वनाथ	पार्श्वं	पद्मावती
२४	वर्धमानस्वामी	मातंग	सिद्धयीका

तीर्थकारों के चित्र विभिन्न रूपों में बनाए गए हैं। कभी बैठे हुए, कभी खड़े हुए, कभी अकेले, कभी साथ में उसी आकृति के दो या तीन प्रतिरूपों के साथ, कभी वस्त्र से ढके हुए, कभी वस्त्र रहित। प्रत्येक तीर्थङ्कर का एक निश्चत संकेत चिन्ह हैं जिसे लक्षण कहते हैं और जो उनके प्रतिरूप के साथ हमेशा अंकित रहता है। ये लक्षण २४ हैं जो क्रमानुसार प्रत्येक तीर्थंकर के साथ रहते हैं—१ बैल, १ हाथी, ३ घोड़ा, ४ बन्दर, ५ क्रौंच पक्षी, ६ लाल कमल, ७ स्वस्तिक, ८ चन्द्र, ९ घड़ियाल १० श्रीवत्स, ११ गैड़ा, १२ भैंस, १३ सुअर, १४ बाज १५ वज्र १६ हिरण, १७ बकरा, १८ नन्द्यावर्त, १९ पानी का घड़ा, २० कछुआ, २१ नील कमल, २२ शंख, २३ सर्प, २४ सिंह।

उपरोक्त तालिका श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार है। दिगम्बर मान्यता में इससे कुछ भेद है। और उत्सर्पिणी युग में तो चौबीसों तीर्थकरों के नाम ही दूसरे हैं। और यदि प्रयत्न किया जाए तो उनके ध्यान लक्षण और शायद यक्ष व यक्षिणियों का पता भी चल सकता है।

तीर्थकारों के बाद जिन्हें महत्व दिया जाता है, वे है—विद्यादेवियाँ। ये संख्या में १६ हैं। इन सब देवताओं का संबंध किसी एक विद्याया मंत्र से है अतः उन्हें विद्यादेवी कहा जाता है। इनकी तुलना हिन्दुओं की महाविद्याओं से की जा सकती है। जिनकी संख्या १० है। इन्हें सिद्ध

विद्या कहा जाता है क्योंकि ऐसा विश्वास किया जाता है कि यदि इनका एक लाख बार जप किया जाय तो साधक को सिद्धि प्राप्त हो जाती है। ऐसा ही कुछ जैनों की १६ विद्यादेवियाँ के संबंध में भी कहा जा सकता है। इनके नाम ये हैं—१ रोहिणी २ प्रज्ञप्ती, ३ वज्रश्रंखला, ४ महावज्रांकुश, ५ अप्रतिचक्र, ६ पुरुषदत्त, ७ कालिका, ८ महाकालिका, ९ गौरी, १० गांधा, ११ ज्वालामातृका, १२ मानवी, १३ वैरोत्य, १४ अक्षुप्त, १५ मानसी और १६ महामानसी।

यदि इन नामों की परीक्षा की जाए तो पता चलेगा कि इनमें से कुछ नाम यक्षिणियों के नाम भी हैं। यद्यपि मैंने अभी तक उनके रूपों के अंतर का अध्ययन नहीं किया है। इनमें से अधिकांश देवताओं की दो बाहुएँ हैं और उनके विशेष वाहन भी हैं। जैसे मनुष्य, मगर, घोड़ा, हंस आदि। रोहिणी और वैरोत्य की चार भुजाएँ हैं।

२४ तीर्थकरों की माताओं के नाम भी कम मनोरंजक नहीं हैं जिनके रूप और स्वभाव के विषय में जैन धर्म-पुस्तकों से पता चलता है। उनके नाम इस प्रकार हैं—१ मरूदेवी, २ विजय, ३ सेना, ४ सिद्धार्थ, ५ सुमंगला ६ सुसीमा, ७ पृथ्वी, ८ लक्ष्मण, ९ श्यामा, १० नन्दा ११ विष्णु, १२ जय, १३ राम, १४ सुयश, १५ सुव्रत, १६ अचिर, १७ श्री, १७ देवी, १९ प्रभावती, २० पद्मा, २१ वप्रा, २२ शिव, २३ वामा, २४ त्रिशला।

जैन मूर्त्तिविद्या का सबसे अधिक महत्वपूर्ण विषय है—अपने देवालय में देवताओं की एक लम्बी संख्या को शामिल करना। हिन्दू देवालयों में भी ऐसे उदाहरण दुर्लभ नहीं है। क्योंकि उनमें हमें ८ वसु, १२ आदित्य, ११ रुद्र आदि का पता चलता है। इसी प्रकार बौद्ध देवालयों में भी वज्रतारा मंडल के आठतारा, वज्रवाराही मंडल की आठ डाकिनी, और ५ पंकरक्षा आदि का पता चलता है। पर उनका स्वतंत्र अस्तित्व शायद ही मिलता है। और जैनों के समान उनका वृतान्त भी अधिक विस्मृत नहीं है। जिन नामों का मुझे पता चला है वे ये हैं—१ आदित्य, २ वह्निसुर, ३ वरुण, ४ गर्दातोय, ५ तुसीता, ६ अध्यबाधा, ७ अरिष्ट, ८ अग्न्यभा, ९ सूर्यभा, १० चंद्रभा ११ सत्यभा, १२ श्रेयस्कर, १३ क्षेमंकर, १४ वृषभ, १५ कामाकारा १६ निर्वाण, १७ अंतरिक्षदेव, १८ आत्मरक्षित, १९ सर्वरक्षित, २० मारुत, २१ वसु, २८ अश्वमुख २३ विश्वदेव।

ऊपर यद्यपि २३ नाम ही लिखे हैं पर यह संभव है कि इनमें कोई एक

नाम छूट गया हो। क्योंकि मेरा अनुमान है कि जैनों को २४ की संख्या से बड़ा प्रेम है। इन देवताओं का पूरा वर्णन जैन धर्म शास्त्रों में दिया हुआ है। वाहन और हाथों में लिए हुए हथिनारों का भी उनमें वर्णन है। जैसे आदित्यों का वाहन घोड़ा और उनका संकेत चिन्ह कमल हैं। वह्निसुरों का वाहन बकरा, अध्यवाधाओं का बाहन मनुष्य तथा संकेत चिन्ह वीणा, अरिष्टों का बाहन खरगोश और संकेत चिन्ह कुल्हाड़ी, कामकारा का बाहन गरुड़ और उनका हथियार चक्र है। इस प्रकार के बहुत से उदाहरण आसानी से बढ़ाए जा सकते हैं। जो जैन मूर्तिविद्या के अध्ययनशील लेखक हैं उनका तो यह कर्त्तव्य ही होना चाहिए।

ऊपर नर देवताओं का वणन किया जा चुका है पर नारी देवताओं का भी एक अलग वर्ग है। जिनके संबंध में जैनधर्मशास्त्रों से बहुत कुछ पता चलता है। यद्यपि प्रत्येक का सविस्तार वर्णन देना संभव नहीं है फिर भी मैं केवल उन देवताओं के नाम दे रहा हूँ जिनका मुझे पता चल सका है। वे ये हैं—

१ सुरेन्द्रदेवी, २ चामरेन्द्रदेवी, ३ बलिदेवी, ४ धरणेन्द्रदेवी, ५ भूतानंद देवी, ६ वेणुदेवी, ७ वेणुदारीदेवी, ८ हरिकान्तादेवी, ९ हरिदेवी, १० अग्निशिखादेवी, ११ अग्निमानवदेवी, १२ पुण्यदेवी, १३ वशिष्ठदेवी, १४ जलकान्तादेवी, १५ जलप्रभदेवी, १६ अमितगतीन्द्रदेवी, १७ मितबाहनदेवी, १८ वेलम्बदेवी, १९ प्रभंजनदेवी, २० घोषदेवी, २१ महाघोषदेवी, २२ काल देवी, २३ महाकालदेवी, २४ सुरूपादेवी, २५ प्रतिरूपेन्द्रदेवी, २६ पूर्णभद्रदेवी, २७ मणिभद्रदेवी, २८ भीमादेवी, २९ महाभीमादेवी- ३० किन्नरदेवी, ३१ सत्पुरुषदेनी, ३२ महापुरुषदेवी, ३३ अहिकायदेवी, ३४ महाकायदेवी, ३५ गीतरतिदेवी, ३६ गीतयशोदेवी, ३७ सन्निहितेन्द्रदेवी, ३८ सम्मानदेवी, ३९ धाजीन्द्रदेवी, ४० विधात्रीन्द्रदेवी, ४१ ऋषीन्द्रदेवी, ४२ ऋषिपालेन्द्रदेवी, ४३ ईश्वरेन्द्रदेवी, ४४ महेश्वरेन्द्रदेवी, ४५ सुवकसोदेवी, ४६ विशालदेवी, ४७ इसेन्द्रदेवी, ४८ हास्यरतिदेवी, ४९ श्वेतेन्द्रदेवी, ५० महाश्वेतेन्द्रदेवी, ५१ पटगदेवी, ५२ पटगरतिदेवी, ५३ सूर्यदेवी, ५४ चंद्रदेवी, ५५ सौधर्मसाक्रेन्द्र देवी, ५६ ईसानेन्द्रदेवी।

जैन देवालयों म इनके अतिरिक्त और भी बहुत सी देवियाँ हैं तथा ये जैन देवी देवताओं की विचित्रताओं, भेदों प्रकारों आदि की ओर संकेत करती हैं। नर देवताओं में सौधर्मेन्द्र और ईसानेन्द्र दोनों दो बाहु वाले हैं। ईसानेन्द्र

शूल धारण किए हैं। असुरों का नायक कामारा, नागराज धरण जिसका सिर तीन ओर से ढका हुआ है, भूतानंद, वेणुदेव, वेनुदारीदेव, हरिकान्त, हरिइन्द्र, अग्निशिखा, अग्निमानव (कलश के साथ ध्वजायुक्त) पुण्य (सिंह पताका के साथ), वशिष्ठ, जलकान्त (अश्वपताका के साथ), जलाप्रभ (लक्षण चिन्ह घोड़े के साथ) विघ्न बाधाओं को दूर करने वाले अमितगति, मितबाहन, वैलम्बदेव, प्रभंजक, घोष, महाघोष, काल, महाकाल, (लक्षण चिन्ह कदम्ब के पुष्प के साथ), सुरूपा, प्रतिरूप, पूर्णभद्र, मणिभद्र, भीमदेव, महाभीम, किन्नर, किम्पुरुष, सत्यपुरुष, महापुरुष, देवों के नायक अहिकाय, सुरकाय, महाकाय, गीतरति, सुदारुण, देवरत, हरि, धात्र, विधात्र, ऋषि, ऋषिपाल, ईश्वर, महेश्वर, सुवकसा, विशाल, हास्य, हास्यरति, श्वेत, महाश्वेत, पटगरत, सूर्य, चंद्र, शुक्र, ईशान, सनत्कुमार, महेन्द्र, ब्रह्म, लान्तकेश्वर, शुक्र, सहश्रर, अनतेन्द्र, अक्युल, क्षेत्रपाल (२० भुजाओं के साथ) ब्रह्मशान्ति आदि।

नारी देवताओं में निम्न पर ध्यान देना चाहिए—श्री, ह्री, धृति कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी—ये कुछ आदर्श देवियाँ हैं। इनके अतिरिक्त श्रुतांगी, क्षेत्र-देवता, भुवनदेवी, शासनदेवी, सरस्वती, शान्तिदेवी, जया, विजया, अजिता, अपराजिता, तुम्बुरू, अधिवासना और अम्बा भी हैं। इस सूची में विशुद्ध हिन्दू मातृकाएँ नहीं हैं जो जैनधर्म में मान्य हैं। वे संख्या में ९ हैं और जैनमत के अनुसार उनके नाम ये हैं—१ ब्राह्मणी, २ महेश्वरी, ३ कौमारी, ४ वैष्णवी, ५ वाराही, ६ इन्द्रानी, ७ चामुण्ड, ८ त्रिपुरा, ९ षष्ठि।

अर्हतों, सिद्धों, आचार्यों, उपाध्यायों और साधुव्रजों के 'ध्यान' भी प्राप्त होते हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि वे आदर्श विचार जैसे ज्ञान या बुद्धि, दर्शन, चरित्र या उत्तम आचरण जैनधर्म में देवता सदृश पूजे जाते हैं और जैनधर्म शास्त्रों से बहुत से ध्यानों का पता चल सकता है।

जैन मूर्ति विद्या में १० दिग्पालों, भाग्य के ९ ग्रहों तथा १२ राशियों को भी स्थान दिया गया है। पर उनमें जो ध्यान बतलाए गए हैं वे वैसे ही नहीं हैं जो हमें हिन्दू शास्त्रों में मिलते हैं। जैनों की १२ राशियों की अपनी अलग मूल विशेषताएँ हैं।

जैनमूर्त्ति विद्या के अध्ययन के लिए हमें जो सामग्री प्राप्त है, ऊपर उसका संक्षिप्त विवेचन किया गया है। यदि इस विषय पर खोज की जाय तो और भी मनोरंजक सामग्री प्राप्त होगी। मूर्ति विद्या में ध्यानों को विशेष महत्व

देना चाहिए। विभिन्न स्थलों में कलाकार अलग अलग शैलियों से काम लेते हैं और ऐसा मालूम पड़ता है मानों सभी मूर्त्तियों में अलग अलग विभिन्नताएँ हैं पर यदि गौर से अध्ययन किया जाए तो चलेगा कि सभी का मूल ध्यान एक ही है।

ऊपर जो संक्षिप्त विवेचन किया गया है उससे एक अन्य बात भी स्पष्ट हो जाती है। इतने विशाल और संपन्न देवालयों में तांत्रिकों को अवश्य ही स्थान मिला होगा। यदि आज जैनधर्म शास्त्रों में तांत्रिकों पर कोई अच्छा साहित्य प्राप्त नहीं है तो उसका मूल कारण यही है कि या तो वह खो गया है अथवा अभी खोजों की प्रतिक्षा में है। और भविष्य में अवश्य ही प्राप्त होगा। तंत्र में प्रत्येक देवता एक मंत्र और उसकी व्यवहार विधि (जिसे साधन कहते हैं) से युक्त है। १६ विद्यादेवियों के अतिरिक्त अन्य देवियों के मंत्रों की खोज बिना किसी विशेष अध्ययन के संभव नहीं है। पर उनके अस्तित्व में शंका नहीं की जानी चाहिए।

एक अन्य तथ्य जिसका उपरोक्त विवेचन से पता चलता है, यह है कि जैन मर्त्ति विद्या, हिन्दू और बौद्ध मूर्त्ति विद्या से बिल्कुल ही असंबद्ध नहीं थी। उदाहरण के लिए ९ ग्रहों, १० दिग्पालों, १२ राशियों और मातृकाओं को लिया जा सकता है जो तीनों में ही मिलती हैं। बौद्ध मूर्त्ति विद्या के विद्यार्थी के लिए मणिभद्र, पूर्णभद्र के नाम अपरिचित नहीं है। वज्रभृंखला, वज्रांकुशि जैसे नामों से भी बौद्ध मूर्त्ति विद्या के अध्ययेता अच्छी तरह परिचित हैं। जैनों में जो 'वज्र' शब्द का प्रयोग किया गया है, वह अर्थरहित नहीं है। वह बौद्धों के 'वज्रमान' से निकलने की स्पष्ट घोषणा करता है। 'गांधारी' भी बौद्ध रूप ही है। 'भृकुटि' तो स्पष्ट ही बौद्ध है।

इस बात में भी कोई संदेह नहीं किया जाना चाहिए कि जैनों ने अपने देवालयों में बहुत से हिन्दू देवताओं को स्थान दिया। और शायद उन्हें निम्न कोटि में रखा। ब्रह्मा, हरि, महेश्वर, कुबेर, वरुण, काली, महाकाली, ब्राह्मणी, माध्येश्वरी, वैष्णवी ये सभी हिन्दू ही हैं। यदि बौद्ध और हिन्दू देवताओं के रूपों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो यह एक बहुत ही मनोरंजक विषय होगा। अतः यह स्वीकार करने में हिचकिचाना नहीं चाहिए कि पुराण और बाद में तंत्र बौद्ध और जैन देवालयों के आधार नींव के रूप में हैं।

अनुवादक—महेन्द्र 'राजा'

पर कांटे देखो रोते हैं !

हंस हंस कर ये फूल खिले हैं, पर कांटे देखो रोते हैं !

(१)

दुर्दम तीक्ष्ण कठोर क्रोड़ में, थपकी दे कोमलता पाली।
तीखे हाथों से चुपके से, सौरभ नूतन डाल निराली॥
पथ निर्देशक, जीवन रक्षक, सौरभ पोषक, चिर कुसुमोद्‌गम।
सहज सजीला जग दृग-अंकन, कुटिल कलेवर का सत संगम॥
रह रह कर पर हित चिन्तन ये, जग दृग में कैसे होते हैं !

(२)

हंसने वालों को मस्तक पर, ताजासन पर ला बिठलाया।
हंसने वालों को उर विलसित, माला में खुश हो गुंथवाया॥
रोने वालों को दुतकारा, जिनने रो रो पथ दर्शाया।
रोने वालों को जलवाया, जिनने रो संकेत बताया॥
हंसने वालों की नींवे बन, रोने वाले हा सोते हैं !

(३)

प्रेम-पाश में पड़ फूलों ने, मद मधुकर से नाता जोड़ा।
धूर्त लम्पटी उर घाती ने, अपना भाग्य विधाता छोड़ा॥
मीठी उर की चाह तृप्त कर, अलि ने मधु मकरन्द उड़ाया।
रीता कोष पड़ा एकाकी, सबसे निज संबन्ध छुड़ाया॥
काट काट कर धूल मिलाते, उसे लगन से जो बोते हैं !

—नरेन्द्र कुमार भनावत

अहमदाबाद के भामाशाह

—श्री जयभिक्खु

अहमदाबाद उस समय घोर विपत्ति में था। वह दो बलवानों के बीच में ऐसा फंस गया था कि निकलना कठिन हो रहा था। सूबेदार इब्राहीम कुली खां और सिपहसालार हामीद खां का झगड़ा इस विपत्ति का कारण था। हामीद खां निजाम-उल-मुल्क का चाचा था। उसके पास सहायक सेना के रूप में बलवान मराठे थे। अहमदाबाद की रक्षा का भार अपने सिर पर लेकर बैठे हुए इब्राहीम कुली खां ने वीरता पूर्वक हामीद खां का सामना किया किन्तु वह उसके सामने टिक न सका। हामीद खां की विशाल सेना ने अहमदाबाद के भद्र दुर्ग को आंधी की भांति घेर लिया। इब्राहीम कुली खां डर गया और किले में जा छिपा।

अहमदाबाद की रक्षा करने वाला कोई न था। हामीद खां की सेना लूट और अत्याचार की सीमा का बराबर उल्लंघन करती जा रही थी। ज्योंही दुर्ग का द्वार टूटा कि ये लोग शहर में घुस कर लूटपाट, सामूहिक बध, हत्या और मारपीट करने लगे। अहमदाबाद के अग्रगण्य पुरुष इस बात पर विचार विनियम करने के लिए एकत्र हुए। वे यह सोचने लगे कि द्वार पर आए हुए इस विनाश से कैसे बचा जाए ? प्रजा का शासन की जय-पराजय से कोई संबन्ध न था। वह तो सम्मान पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करना चाहती थी।

इतने ही में लोगों ने सुना कि सेना द्वार तोड़कर शहर में घुस गई है। लूटमार, अग्निकाण्ड और जनहत्या प्रारंभ हो गई है। सब लोग भय से व्याकुल हो उठे। इसी समय एक जैन वणिक्—जैन जीवन का सच्चा उपासक कंधे पर दुशाला डालकर आगे आया। वह था नगरसेठ खुशालचंद्र। अनेक वर्षों और पीढ़ियों से उसके घर पर अहमदाबाद की अठारह जातियों की नगरसेठाई थी। सेठ शांतिदास के समय में इन्हें अहमदाबाद के नगरसेठ का पद मिला था।

दिल्ली के दरबार में इस व्यक्ति का बहुत प्रभाव था। प्रामाणिकता में

उसकी बराबरी में कोई दूसरा टिकने वाला न था। यही कारण था कि जब अहमदाबाद के उपनगर सरसपुर के एक मन्दिर को किसी ने तोड़ दिया तब स्वयं बादशाह शाहजहां ने 'बुलंद इकबाल महम्मद दारा शिकोह' के नाम से आदेश निकाल कर राज्य के व्यय से इस जैन मंदिर का पुनर्निर्माण कराया।

शाहजहां के बाद औरंगजेब सिंहासन पर बैठा। उसने सम्राट् की हैसियत से सेठ शान्तिदास द्वारा अपना शुभसन्देश भेजा। इस सन्देश में व्यापारी वर्ग को संबोधित करके कहा गया था—'सारी प्रजा पूर्ण प्रसन्नता पूर्वक बिना किसी भेदभाव के शान्ति और सरलता से अपना व्यवहार चलाए।' औरंगजेब ने सेठ शांतिदास को पोशाक भी दी। बादशाह ने उनके पुत्र लक्ष्मीचन्द्र जी को सिक्के के विषय में एक स्वीकृति-पत्र भी दिया जिससे उनके सिक्के नियमानुसार चलते रहें।

इन शाही परिचयों के कारण नगर सेठ विपत्ति के समय शहर की रक्षा करते थे ओर उन्हें नष्ट होने से बचाते थे। यद्यपि वे अपनी समृद्धि की वृद्धि की ओर भी ध्यान देते थे किन्तु इतना अच्छी तरह जानते थे कि शहर की समृद्धि की रक्षा के साथ ही निजी समृद्धि की रक्षा हो सकती है। निर्धन शहर में धनिक व्यक्ति शान्ति से नहीं रह सकता। अपनी समृद्धि की रक्षा के लिए पड़ोसी की समृद्धि-रक्षा आवश्यक है।

नगरसेठ खुशालचंद्र अग्नि से खेलने गए। समय तो ऐसा था कि आने जाने वाला सुरक्षित न था तथापि वे सेनापति हामीदखां के पास सकुशल पहुंच गए और नम्र शब्दों में प्रार्थना की कि शहर को अराजकता से बचाकर शीघ्र ही सुव्यवस्था स्थापित की जाए।

सेनाध्यक्ष रक्त पूर्ण नेत्रों से नगरसेठ की ओर देखने लगा। अहमदाबादी जरी की पगड़ी और स्वर्ण कुण्डलों से सुशोभित सौम्याकृति ने उसे वश में कर लिया। उसने कहा—"धन का ढेर सामने रखो! इसके बिना सेना वापिस नहीं लौट सकती।"

"धन देता हूँ, माँगो जितना देता हूँ किन्तु सेना को वापिस लौटाओ। ये अग्नि की ज्वालाएँ, यह सम्पत्ति का सर्वनाश, दीनों के आश्रय स्थानों का सत्यानाश और निर्दोष नागरिकों की हत्या मुझसे नहीं देखी जाती।" नगरसेठ के शब्दों में हृदयद्रावक आर्द्रता थी।

"अहमदाबादी बनिए! माँगूं उतना धन देगा?"

"हाँ", किन्तु हाँ बोलने वाला यह अहमदाबादी बनिया जानता था कि इस रकम का सारा उत्तरदायित्व उसके अपने कंधों पर था। एक 'हाँ' के पीछे तिजोरी का पेंदा दिख जाएगा। इतना होते हुए भी अहमदाबाद का भामाशाह तनिक भी विचलित नहीं हुआ। अपनी सम्पत्ति बचा लेने का स्वार्थी विचार उसे छू भी न सका।

"आदेश दो, सेना वापिस लौट जाए। आपके कथनानुसार रकम लेकर अभी वापिस आता हूँ।"

सेना को वापिस लौटाने के लिए रणभेरी बजी। लूटमार करने वाली सेना उसी समय अपने अपने शिविरों में पहुँचने लगी। आग से जलते हुए घर उसी समय बुझा दिए गए। जनता ने निश्चिन्तता की ठंडी सांस ली। थोड़ी ही देर में चार बैलों के सुन्दर रथ में रुपयों की थैलियाँ आईं, सेनापति के सामने रुपयों का ढेर लग गया। सरदार, सेठ जी की इस वीरता से बहुत प्रसन्न हुआ। उसने उनकी प्रशंसा करते हुए कहा—"सेठ! तुम्हारा नगर अब सुरक्षित है!"

नगरसेठ खुशालचन्द्र ने पीढ़ियों से एकत्र किए हुए द्रव्य को विदेशी के द्वार पर उड़ेल दिया। अहमदाबाद के इस धनकुबेर के मन में विचार उठते थे कि कल लाखों की हुंडियाँ कैसे सिकरेंगी, इतनी थोड़ी पूँजी से इतना बड़ा व्यापार कैसे चलेगा? इतना होते हुए भी इन सारी चिन्ताओं को बहा देने वाला एक आनंद उनके मुख पर प्रकट होता—

"चलो, पैसा गया किन्तु शहर तो बच गया? अन्यथा न जाने, क्या होता!"

सेठ घर पहुँचे। बात चारों ओर फैल गई। अरे, नगरसेठ खुशालचंद्र ने अपना सर्वस्व लुटाकर हमें—हमारे शहर को बचाया! आज शहर के सम्मान की रक्षा सिपाहियों ने नहीं—सरदारों ने नहीं—एक सेठ ने की? अब हमें भी अपना कर्त्तव्य पूर्ण करना चाहिए!

शहर के प्रमुख व्यापारी एकत्र हुए। उन्होंने सर्वानुमति से निर्णय किया कि नगरसेठ के सामने हम एक प्रतिज्ञापत्र लिख दें कि अहमदाबाद के बाजार में जितना माल काँटे पर तौला जाय, चार आना प्रतिशत सेठ को मिले।

प्रतिज्ञापत्र लिखा गया। उस पर तारीख डाली गयी—हिजरी संवत् ११३७ ता० १० माह शाबान।

राज्य-मुद्रा भी लगाई गई। उस मुद्रा में 'आदि मेसर अे रसुलुल्लाह काज़ी मुस्तफीहखां' नाम की साक्षी थी और नीचे अहमदाबाद के किशोरदास रणछोड़दास, अपनलदास वल्लभदास, महम्मद अब्दुल वाहीद, अबुलकर शाहाशाह इत्यादि अग्रगण्य व्यापारियों ने हस्ताक्षर किए।

प्रतिज्ञापत्र के अनुसार नगरसेठ को बराबर पैसा मिलता रहा। अहमदाबाद पर शासन करने वाली गायकबाड़ सरकार और पेशवा सरकार ने शिविका, छत्र तथा आसन देकर उनका नगरसेठ के रूप में सम्मान किया।

दिन निकलते गए। नगरसेठ का सम्मान पूर्ववत् होता रहा। एक बार इस विषय में कुछ झगड़ा हो गया। खुशालदास सेठ के पारंपरिक अधिकारी नथुभाई सेठ ने रघुनाथ बाजीराव पेशवा से फिर आज्ञापत्र प्राप्त किया।

मराठा और यवनसत्ता समाप्त होने पर अंग्रेजसत्ता आई। कंपनी सरकार ने इस अधिकार के लिए सबसे कर लेने के बजाय वार्षिक रु० २१३३ की रकम निश्चित कर दी।

आगे जाकर एक कलेक्टर ने उपरोक्त रकम बंद कर दी। पैसे की दृष्टि से यह रकम बड़ी न थी किन्तु मान की दृष्टि से उसका मूल्यांकन नहीं हो सकता था। सेठ प्रेमा भाई विलायत तक लड़े और अपना अधिकार पुनः प्राप्त किया।

आज भी इस महान् नगरसेठ की स्मृति में यह वर्षकर हिन्द सरकार की ओर से प्रतिवर्ष उनके वंशजों को दिया जाता है। यद्यपि आज इस वंश का विस्तार बहुत बढ़ गया है और यह छोटी सी रकम एक भोज में समाप्त हो जाती है तथापि वह स्मृति आज भी जीवित है। स्मृति से बढ़कर जगत् में और है ही क्या?

—:०:—

जो यह कल्पना करता है कि वह दुनियां के बगैर अपना काम चला लेगा, अपने को धोखा देता है, लेकिन जो यह समझता है कि दुनियां का काम उसके बगैर नहीं चल सकता, वह और भी बड़े धोखे में है।

—रोशे

सिद्धसेन दिवाकर

डॉ० इन्द्र

आगम युग—

जैन साहित्य में सिद्धसेन से पहले का समय आगम काल कहा जाता है। चौदह पूर्व, बारह अंग, बारह उपांग, अन्य आगम तथा निर्युक्तियाँ इसी काल में आती हैं। इसमें अनुमान या तर्क की अपेक्षा शब्द प्रमाण अधिक बलवान् रहा है। भगवती तथा अन्य आगमों में तत्त्वचर्चा विषयक जो संवाद हैं, उनमें शिष्य अपनी जिज्ञासा प्रकट करता है और गुरु उसके उत्तर में आत्मा, लोक, परलोक आदि के विषय में अपनी मान्यताओं को बता देता है। शिष्य गुरु के वचन को सत्य समझ कर ज्यों का त्यों स्वीकार कर लेता है। सूत्रकृतांग में बाईस जैनेतर मतों का निर्देश है। किन्तु वहाँ भी उन्हें मिथ्यात्वी या परतीर्थिक कह कर छोड़ दिया गया। उनकी मान्यताओं के खण्डन का कोई प्रयत्न नहीं है। समस्त आगमिक साहित्य में राजप्रश्नीय ही एक ऐसा आगम है जहाँ राजा प्रसेनजित् और भगवान् पार्श्वनाथ के शासनवर्ती अनगार केशी श्रमण के बीच आत्मा के अस्तित्व को लेकर शास्त्रार्थ होता है और दोनों पक्षों की ओर से युक्तियाँ उपस्थित की जाती हैं। वहाँ पर भी कोई व्यवस्थित अनुमान प्रणाली नहीं है। प्रसेनाजत् ने शरीर से भिन्न आत्मा को देखने के लिए विविध प्रयत्न किए किन्तु वह कहीं दिखाई न दिया। उन्हीं बातों को वह केशीश्रमण के सामने रखता है और केशी श्रमण उनका समाधान करते हैं। दूसरे आगमों में इतना भी नहीं है।

तत्त्वचर्चा के समान ज्ञानचर्चा में भी आगमिक दृष्टिकोण भिन्न है। तर्क युग में ज्ञान वस्तु को जानने का उपाय है और उसका मूल्याङ्कन इसी आधार पर होता है। आगमयुग में ज्ञान आत्मा का गुण है और मोक्षमार्ग का घटक है। आत्मा जैसे जैसे मोक्ष के लिए उपकारक अन्य गुणों का विकास करता है, ज्ञान भी विकसित होता जाता है। ज्ञान का मूल्याङ्कन भी उसकी मोक्ष के प्रति उपयोगिता के आधार पर होता है।

आगमों में मतान्तरों का वर्णन, न्याय प्रतिपादित प्रमाण के प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम और औपम्य के रूप में चार भेद, पाँच या दस अवयवों वा

परार्थानुमान आदि तर्कयुग की बहुत सी बातें आई हैं किन्तु केवल प्रासङ्गिक निर्देश के रूप में। वे प्रतिपादन का मुख्य विषय नहीं है।

भारतीय तर्क शास्त्र को नयवाद के रूप में जैनदर्शन की मौलिक देन है। किन्तु इसकी प्रारम्भिक कल्पना दार्शनिक भूमिका पर हुई हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता। नैगम, संग्रह, व्यवहार आदि नाम पारस्परिक लौकिक व्यवहार में प्रयुक्त दृष्टिकोणों को प्रकट करते हैं। (देखिए—पं० सुखलाल जी का वैशाली भाषण) उनको दार्शनिक भूमिका पर उपस्थित करने का श्रेय सिद्धसेन दिवाकर को है।

आगमों की भाषा भी इसी तथ्य को प्रकट करती है कि वह तत्कालीन लोक साहित्य था। जिनभद्र नें स्पष्ट रूप से कहा है कि साधारण लोगों के समझने के लिए पूर्व साहित्य में से द्वादशाङ्गी की रचना की गई। उस विशाल लोक साहित्य में से विद्वानों के गम्भीर पर्यालोचन के उपयुक्त विषयों को निकाल कर दार्शनिक स्तर पर पहले पहल सिद्धसेन ने उपस्थित किया।

व्यक्तित्व—

सिद्धसेन को जैन तर्क शास्त्र का पिता माना जाता है। उन्होंने जैन मान्यताओं को सर्व प्रथम श्रद्धा के युग से निकाल कर तर्क के युग में उपस्थित किया। उनका 'न्यायावतार' जैन तर्क शास्त्र का सर्व प्रथम ग्रन्थ है। यह भी कहा जाता कि उन्होंने आगमों का संस्कृत रूपान्तर करना चाहा। शब्द प्रधान प्राचीन परम्परा के अनुयायिओं ने इसे जिनवाणी का अपमान समझा और सिद्धसेन को इसके दण्ड स्वरूप संघबाह्य कर दिया गया।

जैन दर्शन को विद्वज्जगत् की वस्तु बनाने के लिए सिद्धसेन की अभिरुचि और प्रयत्नों के पीछे उनके व्यक्तित्व का मुख्य हाथ है। वे ब्राह्मण कुलोत्पन्न, तर्क शास्त्र के पारंगत शास्त्रार्थी विद्वान थे। उन्होंने वृद्धवादी नाम के जैन आचार्य की ख्याति सुनी और शास्त्रार्थ की चुनौती के लिए उनके पास पहुँच गए। वृद्धवादी अवसर को पहिचाननें वाले आत्मनिष्ठ साधु थे। सिद्धसेन हार गए और उन्हीं के शिष्य बन गए। उन्होंने मुनि व्रत लेकर जैन वाङमय का अध्ययन किया। अपनी तर्क परिष्कृत स्वाभाविक प्रतिभा से जैन तत्वों का गम्भीर चिन्तन किया किन्तु उनका लक्ष्य त्याग तथा वैराग्य की अपेक्षा विद्याप्रधान अधिक रहा। उन्होंने बौद्ध तथा वैदिक परम्परा के समान जैन परम्परा में तर्क शास्त्र का प्रवेश किया और युक्ति के आधार

पर वस्तुनिरूपण का युग प्रारम्भ किया। इसी अधार पर हेमचन्द्राचार्य ने लिखा है—अनुसिद्धसेनं तार्किकाः अर्थात् सभी तार्किक सिद्धसेन के पीछे हैं।

जीवन सामग्री

सिद्धसेन ने अपने जीवन के विषय में स्वयं कुछ नहीं लिखा। उनके समकालीन किसी अन्य विद्वान् ने भी इस विषय में कुछ नहीं लिखा। कम से कम अभी तक ऐसी कोई सामग्री उपलब्ध नहीं हुई है। उनके विषय में अधूरी अथवा पूरी, संदिग्ध या निश्चित जानकारी देने वाली सामग्री तीन प्रकार की है—(१) प्रबन्ध, (२) उल्लेख तथा (३) उनकी अपनी कृतियाँ।

(क) प्रकरण

पं० सुखलाल जी ने अपनी सन्मतितर्क की प्रस्तावना में पाँच प्रकरणों का उल्लेख किया है। उन म दो हस्तलिखित हैं और तीन मुद्रित। हस्तलिखितों में एक गद्य है, दूसरा पद्य। गद्य प्रबन्ध भद्रश्वर की कथावली से संबन्ध रखता है, इसलिए उसे दसवीं या ग्यारहवीं सदी का माना जा सकता है।

पद्य प्रबन्ध के लेखक तथा समय के विषय में अभी तक पता नहीं चला। वि० सं० १२९१ की ताडपत्र पर लिखी हुई उस की प्रतिलिपि मिलती है इससे इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस प्रबन्ध का रचना काल उस से पहले है। गद्य प्रबन्ध परिमाण में छोटा है। पद्य प्रबन्ध उसी का विस्तार सा प्रतीत होता है। गद्य प्रबन्ध प्राचीन प्रतीत होता है। ऐसा लगता है जैसे पद्य की रचना उसी के आधार पर की गई हो।

मुद्रित प्रबन्धों में प्रभावक चरित्र (वि० सं० १३३४), प्रबन्ध चिन्तामणि (वि० सं० १३६१) और चतुर्विंशति प्रबन्ध (वि० सं० १४०५) सिद्धसेन के विषय में जानकारी देते हैं।

इनके अतिरिक्त 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' के नाम से मुनि जिन विजय जी द्वारा सम्पादित जो संग्रह सिंघी ग्रन्थमाला में प्रकाशित हुआ है उस में भी सिद्धसेन के संघ बाहर होने की घटना का उल्लेख है। (दे०—विक्रम प्रबन्ध सं० १५, पृ० १०)

दिगम्बर साहित्य में भी सिद्धसेन का समुचित आदर पाया जाता है। बड़े बड़े आचार्यों ने उन का नाम श्रद्धा के साथ लिया है। श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार ने 'अपनी पुरातन-जैन वाक्य-सूची' की प्रस्तावना में इसकी विस्तृत

चर्चा की है। फिर भी सिद्धसेन की जीवन घटनाओं का परिचय देने वाली कोई कृति दिगम्बर साहित्य में उपलब्ध नहीं है।

प्रभावक चरित्र और सिद्धसेन की जीवन कथा

समय की दृष्टि से प्रभावक चरित्र लिखित प्रबन्धों की अपेक्षा अर्वाचीन है। फिर भी इसका वर्णन कई दृष्टियों से अधिक महत्वपूर्ण है। प्रभावक चरित्र के अन्तर्गत प्रबन्ध के अन्त में जो प्रशस्ति है उस में बताया गया है कि सिद्धसेन का आख्यान एक जीर्ण एवं प्राचीन मठ की प्रशस्ति के आधार पर लिखा गया है। इससे उसकी परम्परा अधिक प्राचीन कही जा सकती है। इस प्रबन्ध को प्राचीन कवियों द्वारा रचे गए ग्रन्थों का आधार भी मिला है। तीसरा कारण यह है कि इसमें हस्तलिखित दोनों प्रबन्धों का सार आ गया है और साथ ही यह स्वयं प्रबन्ध चिन्तामणि के अन्तर्गत प्रबन्ध का आधार रहा है। इसी महत्व के कारण सिद्धसेन की जीवन घटनओं का वर्णन सर्व प्रथम प्रभावक चरित्र के आधार पर बताया जाएगा। जिस किसी बात में मतभेद है उसका उल्लेख यथास्थान कर दिया जाएगा।

'प्रभावक चरित' के वृद्धवादि सूरिचरित में श्लो० ३९ से १८० तक सिद्धसेन का वर्णन है।

विधाधर नामकी आम्नाय-शाखा के अन्तर्गत पादलिप्तसूरि के कुल में स्कन्दिलाचार्य नाम के अनुयोगधर आचार्य हुए। उनका स्वर्गवास होने पर उनके शिष्य वृद्धवादी आचार्य बने। एक बार वे विहार करते हुए विशाला उज्जयिनी में पहुँचे। वहाँ विक्रमादित्य नाम का राजा राज्य करता था। एक दिन वृद्धवादी के पास सिद्धसेन नाम का विद्वान् ब्राह्मण पहुँचा। उसके पिता का नाम देवर्षि माता का नाम देव श्री तथा कात्यायन गोत्र था। सिद्धसेन वृद्धवादी की ख्याति सुन चुका था। उसने पहुँचते ही पूछा—क्या वृद्धवादी आजकल यहाँ हैं?

मुनि ने उत्तर दिया—मैं स्वयं वृद्धवादी हूँ।

सिद्धसेन ने कहा—मेरा बहुत दिनों से शास्त्रार्थं के रूप में विद्वद्गोष्ठी करने का संकल्प है। आप उसे पूर्ण कीजिए। वृद्धवादी ने टालते हुए उत्तर दिया—"तुम को अपनी मनस्तुष्टि के लिए विद्वानों की सभा में जाना चाहिए। स्वर्ण के होते हुए पीतल को कौन चाहता है?"

फिर भी सिद्धसेन ने अपना आग्रह नहीं छोड़ा तो उन्होंने पास खड़े हुए

ग्वालों को मध्यस्थ बना कर शास्त्रार्थ प्रारम्भ कर दिया। सिद्धसेन ने 'सर्वज्ञ नहीं है, यह पूर्वपक्ष करके उसका युक्तिपूर्वक प्रतिपादन किया।

वृद्धवादी ने ग्वालों से पूछा—"इस विद्वान् ने जो कुछ कहा है, क्या आप समझ गए ?"

उन्होंने उत्तर दिया—"इस फारसी को हम क्या समझें।"

यह सुनकर वृद्धवादी ने ग्वालों से बताया कि मैं इनका कहना समझ गया हूँ। ये कहते हैं, जिन नहीं है। क्या यह कहना सत्य है ? तुम्हीं इसका निर्णय करो।

ग्वाल बोले—"मन्दिर में जिन मूर्ति को हम प्रति दिन देखते हैं। इस लिए इस ब्राह्मण का यह कहना कि जिन नहीं है, मृषा है।"

इस प्रकार विनोद करने के बाद वृद्धवादी ने सर्वज्ञ का अस्तित्व युक्ति पूर्वक सिद्ध किया।

सिद्धसेन ने हर्षगद्गद होकर वृद्धवादी की विजय तथा अपनी पराजय स्वीकृत की। साथ ही निवेदन किया—"प्रभो। 'आप मुझे शिष्य के रूप में स्वीकार कीजिए। मेरी यह प्रतिज्ञा है कि जिससे हारूँगा उसी का शिष्य बन जाऊँगा।"

वृद्धवादी ने उन्हें जैन दीक्षा दी और कुमुदचन्द नाम रखा। वे शीघ्र ही जैनदर्शन के पारंगत विद्वान् हो गए। गुरु ने उनको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया और फिर सिद्धसेन नाम दे दिया। उसके बाद सिद्धसेन को गच्छा सौंप कर गुरु अन्यत्र विहार कर गए।

एक बार सिद्धसेन बाहर जा रहे थे। राजा विक्रम ने उन्हें देखा और मन ही मन प्रणाम किया। सिद्धसेन इस बात को समझ गए और उन्होंने ऊँचे स्वर से 'धर्म लाभ' कहा।

राजा सिद्धसेन की इस चतुराई से प्रसन्न हुआ और उन्हें एक करोड़ सुवर्णटंक दान देने की आज्ञा दी। साथ ही कोषाध्यक्ष को नीचे लिखे अनुसार दान पत्र लिखने के लिए कहा :—

"दूर से हाथ उठा कर धर्म लाभ कहने वाले सिद्धसेन को नरपति ने एक करोड़ का दान दिया।"

जब राजा ने सिद्धसेन को बुलाकर दान ले जाने के लिए कहा तो उन्होंने उत्तर दिया—हम लोग धन को नहीं स्वीकार करते। आप की जैसी इच्छा हो, कीजिए। विक्रम समझ गया। उसने उस धन से साधर्मी सहायता तथा चैत्योद्धार आदि के लिए एक खाता खोल दिया।

एक बार सिद्धसेन ने चित्रकूट की ओर विहार किया। पहाड़ के एक ओर उन्हें एक स्तम्भ दिखाई दिया। वह स्तम्भ पत्थर, लकड़ी या मिट्टी में से किसी का न था। विचार करने पर सिद्धसेन को लगा कि वह औषधियों का बना हुआ है। सिद्धसेन ने वर्ण, गन्ध तथा रस आदि की परीक्षा करके उस स्तम्भ की औषधियों का पता लगा लिया और विरोधी औषधियों को लाकर स्तम्भ में एक छेद कर लिया। उसमें उसे हजारों पुस्तकें दिखाई दीं। उनमें से एक पुस्तक लेकर पहली पंक्ति पढ़ी तो सुवर्ण सिद्ध योग और सरसव मन्त्र (सरसों के दानों से सेना बना लेना) नाम की दो विद्याएँ प्राप्त हुईं। सूरि आनंदित होकर उस पुस्तक को आगे पढ़ रहे थे कि शासनदेवी ने उन्हें अयोग्य समझ कर छीन ली।

उसके पश्चात् सिद्धसेन पूर्व की ओर गए और कर्मार नाम के नगर में पहुँचे। वहाँ के राजा देवपाल ने उनका स्वागत किया। सूरि ने धर्मोपदेश द्वारा राजा को अपना भक्त और सखा बना लिया। उन्हीं दिनों कामरूप देश के राजा विजयवर्मा ने कर्मार नगर को घेर लिया। वनवासी सेना के बाणों से देवपाल घबड़ा गया और सिद्धसेन के पास पहुँचा और निवेदन करने लगा—शत्रु की सेना अत्यन्त बलशाली तथा विशाल है। मेरी छोटी सी सेना और थोड़ा सा कोष कहाँ तक टिक सकेंगे ? मैं आपकी शरण में आया हूँ, किसी प्रकार रक्षा कीजिए।"

सिद्धसेन ने उसे सान्त्वना दी और उपाय करने का वचन दिया। उन्होंने सुवर्ण सिद्धियोग से विपुल धन राशि और सरसव मन्त्र से विशाल सेना की सृष्टि की। उसकी सहायता से देवपाल ने विजय वर्मा को हरा दिया। देवपाल ने उस सहायता से प्रसन्न होकर सूरि को दिवाकर की पदवी प्रदान की। उसके बाद सिद्धसेन के साथ दिवाकर लगने लगा।

राजदरबार में सिद्धसेन की मान प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई। उन्हें हाथी, घोड़े, पालकी आदि वाहन राज्य की ओर से भेजे जाने लगे और सिद्धसेन उनका उपयोग भी करने लगे। वृद्धवादी को जब यह मालूम हुआ कि सिद्धसेन राजसम्मान के आकर्षण में पड़कर अपनी मर्यादा को भूल गए हैं तो उन्हें प्रतिबोध देने के लिए वे वेश बदल कर कर्मार पहुँचे। उन्होंने अपनी आँखों से देखा कि सिद्धसेन पालकी में बैठकर राजमार्ग से जा रहे हैं। अनेक लोग इधर उधर से घेर कर उनका जयनाद कर रहे हैं। सिद्धसेन के सामने पहुँच कर वृद्धवादी ने कहा—"मैं आपकी ख्याति सुन कर यहाँ आया हूँ। मेरा संशय दूर कीजिए।"

सिद्धसेन ने उत्तर दिया—"आप अच्छी तरह पूछिए।"

गुरु ने विद्वानो को भी आश्चर्य में डालने वाले स्वर में नीचे लिखी गाथा सुनाई :—

अणफुल्लो फुल्ल म तोडहु मन-आरामा म मोडहु ।
मण कुसुमेंहि अच्चि निरंजणु हिंडइ काहं वणेण वणु ॥

सिद्धसेन ने विचार किया किन्तु अपभ्रंश की इस गाथा का वास्तविक अर्थ समझ में नहीं आया। उसने आड़ा टेढ़ा उत्तर देकर कहा—और कुछ पूछिए।

वृद्धवादी ने कहा—"इसी पर फिर विचार कीजिए और उत्तर दीजिए।"

सिद्धसेन नें अनादर पूर्वक फिर ऊटपटांग अर्थ किया किन्तु वृद्धवादी नें स्वीकार नहीं किया। तब सिद्धसेन ने उन्हें ही खुलासा करने के लिए कहा।

वृद्धवादी ने उत्तर दिया—"सावधान होकर सुनिए —यह मानवदेह जीवन-रूपी कोमल फूलों वाली लता है। इसके जीवनांशरूपी फूलों को तुम राज्य सत्कार तथा तज्जन्म मिथ्याभिमान के प्रहारों से मत तोड़ो। मन के यम, नियम आदि आरामों (उद्यानों) को योग विलास के द्वारा नष्ट भ्रष्ट मत करो। मन के सद्‌गुण रूप पुष्पों के द्वारा निरंजन भगवान् की पूजा करो। सांसारिक लाभ सत्कार के मोह में क्यों भटक रहे हो।"

सिद्धसेन की भूलों को अभिव्यक्त करने वाले और भी कई अर्थ वृद्धवादी ने किए। उन्हें सुन कर सिद्धसेन का मन पलट गया। मन में विचार आया—"धर्मगुरु के अतिरिक्त इस प्रकार की भर्त्सना और कौन कर सकता है।" वह पैरों में गिर पड़ा और अपनी भूलों के लिए क्षमा मांगने लगा।

वृद्धवादी ने कहा—मैंने तुम्हें जैन सिद्धान्त का पूर्ण ज्ञान कराया है। जिस प्रकार मन्द अग्नि वाला गरिष्ठ भोजन को नहीं पचा सकता उसी प्रकार तुम भी इसे नहीं पचा सके। जब तुम्हारे सरीखे प्रतिभा एवं विद्यासम्पन्न तेजस्वी का यह हाल है तो दूसरों की क्या दशा होगी ? तुम सन्तोष पूर्वक अपने चित्त को स्थित करो और मेंनें जो ज्ञान दिया है, उसे पचाओ। स्तम्भ में से जो पुस्तक निकाली थी उसे छीन कर देवी ने अच्छा ही किया। उसको पचाने वाले त्यागी अब कहाँ हैं ?"

सिद्धसेन नें अपनी भूल स्वीकार की और उचित प्रायश्चित्त लिया। गुरु उन्हें अपने आसन पर बैठा कर स्वर्ग सिधार गए। सिद्धसेन दिवाकर आचार्य बन कर धर्म की प्रभावना करने लगे।

—क्रमशः

श्रमण की परिभाषा

(अमेरिका में महाकवि रवीन्द्र से पूछे गए प्रश्न और उनका उत्तर)

प्र०—महात्मा गांधी की सफलता का क्या रहस्य है ?

उ०—महात्मा गांधी की सफलता का रहस्य उनकी प्रेरणा देने वाली अध्यात्मिक शक्ति और अनवरत आत्म त्याग में है। बहुत से जनसेवक अपने स्वार्थों के लिए त्याग करते हैं। वे एक प्रकार से पूंजी लगाते हैं और बदले में अच्छा मुनाफ़ा प्राप्त करते हैं। गांधी उन से सर्वथा भिन्न हैं। उनकी महानता किसी दूसरे में नहीं पाई जाती। उनका जीवन त्याग का ही दूसरा नाम है। वे स्वयं त्यागरूप हैं। उन्हें न प्रभुता चाहिए, न पद, न सम्पत्ति न नाम और न यश। उन्हें समस्त भारत का राज्यसिंहासन दीजिए, वे उस पर बैठने से इन्कार कर देंगे। वे उस के जवाहारात निकाल कर बेच देंगे और रुपए को दरिद्रों में बाँट देंगे।

सम्राट् और राजाधिराज, तोपें और संगीनें, कारावास और यातनाएं, अपमान और चोटें, यहाँ तक कि मृत्यु भी गांधी की शक्ति को नहीं रोक सकती।

वह एक मुक्त आत्मा है। यदि कोई मुझे तंग करता है, तो मैं सहायता के लिए चिल्ला पड़ूँगा। किन्तु मुझे विश्वास है कि यदि गान्धी जी को तंग किया जाय तो वे कभी नहीं चिल्लाएंगे। वे कष्ट देने वाले पर हँसेंगे और यदि मरना ही पड़ा तो मुस्कुराते हुए मर जाएंगे।

उनमें बच्चे के समान सरलता है। उन की सत्यनिष्ठा अडिग है। उनका जीवन मानव जाति के लिए प्रेरक है, उसे विवश कर रहा है। उनमें पैगम्बरों की आत्मा है। मेरा उन से परिचय जितना लम्बा हो रहा है उतना ही मैं उन्हें अधिकाधिक चाहने लगा हूँ। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह महापुरुष संसार के भावी निर्माण का सूत्रधार बन कर आया है।

प्रश्न—क्या यह उचित नहीं है कि ऐसे व्यक्ति को दुनिया अधिक जाने ? आप उन्हें प्रकाश में क्यों नहीं लाते ? आप भी तो विश्व के महापुरुष हैं ?

मैं उन्हें प्रकाश में कैसे लाऊँ ? उनकी आलोकित आत्मा की तुलना में मैं कुछ नहीं हूँ। जो व्यक्ति वास्तव में महान् हैं उन्हें महान् बनाया नहीं जाता। वे तो अपने ही तेज से महान् होते हैं। और जब संसार में योग्यता आ जाती है वे अपनी ही महानता से प्रसिद्ध हो जाते हैं। जब समय आएगा,

[शेष पृष्ठ ३७ पर देखिए]
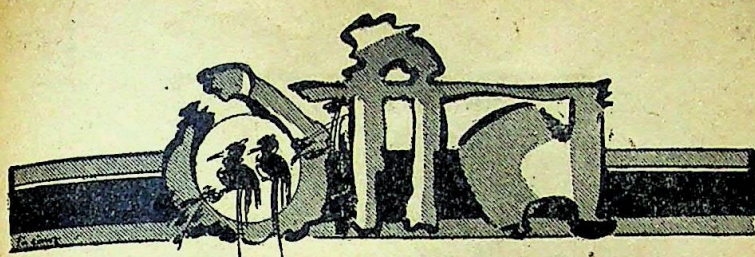
जीवन-धारा

शत शत मधु-स्रोतों से झर कर
जीवन धारा फूट पड़ी लो।

नई उमंगें, नई रवानी
नए जगत की नई कहानी
लक्ष्य-वेध की अमिट निशानी
ले निज कर में—
शुष्क तृणों पर
जन के मन पर
प्यासी भू पर
चट्टानों पर
निर्जन वन के वीरानों पर
नए वेग से
नए तेग से
क्रोधित शत-फण-युत नागिन सी
जलद-जाल में
सौदामिनि सी,
आज यकायक
संसृति में जीवन भर देने
जीवन को नवजीवन देने—

शत शत मधु स्रोतों से झर कर
जीवन धारा फूट पड़ी लो।

असित तिमिर पर किरण-जाल सी
सागर के क्रोधित उबाल सी

जीवन धारा—
रुक न सकेगी
झुक न सकेगी
लक्ष्य-वेध के अन्तिम पल तक
किसी शक्ति से
किसी युक्ति से
थक न सकेगी
महलों की सुदृढ़ दीवारें
मन्दिर मस्जिद की मीनारें
सिसक सिसक कर आज मिटेंगी ;
चट्टानों से सिर टकरा कर
तन का संचित रक्त बहाकर
यौवन का उन्माद जगा कर—
जन के मनमें आग लगा कर—
जीवन धारा—
मचल पड़ेगी

जीवन धारा—
थिरक उठेगी
किसी शक्ति से
किसी युक्ति से
जीवन धारा रुक न सकेगी।

ओ पथ की जड़, मृत चट्टानो !
राह छोड़ दो,
प्रबल वेग युत सरिताओ !
तुम पंथ मोड़ दो,
यौवन का उद्दाम वेग
तुम सह न सकोगे
ओ यौवन ! तुम उठो
जगत-घट आज फोड़ दो
घट में चिर संचित हालाहल

[शेष पृष्ट ४१ पर देखिये।]

जैन आगमों का मंथन

डॉ० इन्द्र

मानव स्वभाव

संसार में चार प्रकार के वृक्ष होते हैं—

(१) कुछ आकार में ऊँचे होते हैं और गुणों में भी ऊँचे होते हैं।

(२) कुछ आकार में ऊँचे होते हैं और गुणों में नीचे।

(३) कुछ आकार में नीचे होते हैं और गुणों में ऊँचे।

(४) कुछ आकार में नीचे होते हैं और गुणों में भी नीचे।

इसी तरह चार प्रकार के पुरुष होते हैं—

(१) कुछ जाति, कुल, शरीर, धन, रूप आदि बाह्य सम्पत्ति में ऊँचे होते हैं और ज्ञान, दर्शन, चारित्र, उदारता आदि आत्म सम्पत्ति में भी ऊँचे होते हैं।

(२) कुछ बाह्य सम्पत्ति में ऊँचे होते हैं किन्तु आत्म सम्पत्ति में नीचे।

(३) कुछ बाह्य सम्पत्ति में नीचे होते हैं किन्तु आत्म सम्पत्ति में ऊँचे।

(४) कुछ बाह्य सम्पत्ति में नीचे होते हैं और आत्म सम्पत्ति में भी नीचे।

× × × ×

अथवा, दूसरे प्रकार से वृक्ष चार प्रकार के होते हैं—

(१) कुछ आकार में ऊँचे होते हैं और फल देने में भी ऊँचे होते हैं।

(२) कुछ आकार में ऊँचे और फल देने में नीचे।

(३) कुछ आकार में नीचे और फल देने में ऊँचे।

(४) कुछ आकार में नीचे और फल देने में भी नीचे।

इसी प्रकार पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं।

× × × ×

अथवा वृक्ष चार प्रकार के होते हैं—

(१) आकार ऊंचा और रूप भी ऊंचा।

(२) आकार ऊंचा और रूप नीचा।

(३) आकार नीचा और रूप ऊंचा।

(४) आकार नीचा और रूप भी नीचा।

इसी तरह चार प्रकार के पुरुष होते हैं :—

(१) शरीर ऊंचा और रूप भी सुन्दर।

(२) शरीर ऊंचा किन्तु कुरूप।

(३) शरीर नीचा किन्तु सुन्दर।
(४) शरीर नीचा और साथ ही कुरूप।

अथवा

(१) शरीर ऊँचा और मन भी ऊँचा।
(२) शरीर ऊँचा और मन नीचा।
(३) शरीर नीचा और मन ऊँचा।
(४) शरीर नीचा और मन भी नीचा।

इसी प्रकार संकल्प, प्रज्ञा, दृष्टि, शीलचार, व्यवहार और पराक्रम की अपेक्षा भी पुरुष चार चार प्रकार के होते हैं।

× × × ×

दूसरी अपेक्षा से भी वृक्ष चार प्रकार के हैं—

(१) देखने में सीधा और फल देने में भी सीधा।
(२) देखने में सीधा और फल देने में टेढ़ा।
(३) देखने में टेढ़ा और फल देने में सीधा।
(४) देखने में टेढ़ा और फल देने में भी टेढ़ा।

इसी तरह पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं—

(१) देखने में सीधे और व्यवहार में भी सीधे।
(२) देखने में सीधे और व्यवहार में टेढ़े।
(३) देखने में टेढ़े किन्तु व्यवहार में सीधे।
(४) देखने में टेढ़े और व्यवहार में भी टेढ़े।

+ × × ×

वस्त्र चार प्रकार के होते हैं।—

(१) धुला हुआ और पवित्र काम में लगा हुआ।
(२) धुला हुआ किन्तु अपवित्र काम में लगा हुआ।
(३) मैला किन्तु पवित्र काम में लगा हुआ।
(४) मैला और साथ ही अपवित्र काम में लगा हुआ।

इसी प्रकार पुरुष चार प्रकार के होते हैं।

(१) कोई पुरुष शरीर से शुद्ध होता है और स्वभाव से भी शुद्ध।
(२) कोई शरीर से शुद्ध किन्तु स्वभाव से गन्दा।
(३) कोई शरीर से गन्दा किन्तु स्वभाव से शुद्ध।
(४) कोई शरीर से गन्दा और स्वभाव से भी गन्दा।

× × × ×

पुत्र चार प्रकार के होते हैं—

(१) अतिजात—जो गुणों में पिता से भी आगे बढ़ जाय।

(२) अनुजात—जो पिता का अनुसरण करता हुआ कुल की मर्यादा को ज्यों की त्यों बनाये रखे।

(३) अवजात—जो पिता की अपेक्षा हीन गुणों वाला हो।

(४) कुलाङ्गार—जो पिता की प्रतिष्ठा को समाप्त कर दे।

इसी तरह शिष्य चार प्रकार के होते हैं—

(१) ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुणों में गुरु से भी आगे बढ़ जाने वाला।

(२) गुरु के चरण चिह्नों पर चलकर उनकी प्रतिष्ठा को स्थिर रखनें वाला।

(३) गुरु से हीन गुणों वाला।

(४) गुरु की आज्ञा के विपरीत चलकर उनकी प्रतिष्ठा को समाप्त कर देने वाला।

× × + ×

कलियाँ चार प्रकार की होती हैं—

(१) आम की कली के समान समय आने पर अपने आप मीठा फल देने वाली।

(२) ताड़ की कली के समान समय आने पर भी कष्ट से फल देने वाली।

(३) बेल की कली के समान जल्दी जल्दी बिना कष्ट के फल देने वाली।

(४) मेंठासिंधी की फली के समान कभी फल न देने वालीं।

इसी तरह चार प्रकार के पुरुष हैं—

(१) समय आने पर अपने आप सेवा या किए का फल देनें वाले।

(२) समय आने पर भी बड़े कष्ट से फल देनें वाले।

(३) जब चाहे तब फल देने वाले।

(४) कभी फल न देकर कोरी बातों में टकरानें बाले।

[पृष्ठ ३२ का शेष]

दुनिया अपने आप गांधी जी को पहचानेगी। क्योंकि उन्होंने स्वतन्त्रता और विश्वबन्धुत्व का जो सन्देश दिया है, संसार को उसकी आवश्यकता है।

गान्धी जी प्राची की आत्मा के योग्य अधिष्ठान हैं। वे अपने जीवन से सिद्ध कर रहे हैं कि मनुष्य एक आध्यात्मिक तत्व है। वह नीति और अध्यात्म के वातावरण मे पनपता है और घृणा तथा बारूद के धुएँ में निश्चित रूप से नष्ट हो जाता है। न उसकी आत्मा बचती है और न शरीर।

हिन्दू विश्वविद्यालय में नए सत्र का उद्घाटन

९ जुलाई को हिन्दू विश्वविद्यालय के नए सत्र का उद्घाटन उपकुलपति प्रोफेसर वी० वी० नार्लिकर ने किया। कुलपति आचार्य नरेन्द्रदेव अस्वस्थता के कारण उपस्थित नहीं हो सके। इस वर्ष संस्कृत महाविद्यालय को छोड़कर सभी कालेजों में प्रवेशार्थी विद्यार्थियों की असाधारण भीड़ रही। बी०ए०के प्रथम वर्ष में जहाँ साधारणतया तीन सौ नए विद्यार्थियों का प्रवेश होता है, इस वर्ष संख्या एक हजार के लगभग पहुँच गई। इंजीनियरिंग कालेज में तो १५० स्थानों के लिए १५०० प्रार्थी थे। साइंस कालेज में प्रवेश न मिलने के कारण सैकड़ों विद्यार्थियों को निराश लौटना पड़ा।

उच्च शिक्षा के लिए आतुर इस भीड़ को देखकर हर्ष होता है और खेद भी। हर्ष इसलिए होता है कि देश में शिक्षा की वृद्धि हो रही है। खेद इसलिए कि यह राष्ट्रीय शक्ति एवं सम्पत्ति का भीषण अपव्यय है।

एक अनपढ़ या अल्पशिक्षित व्यक्ति बड़े शहर में जाकर दस काम ढूँढ़ लेता है। यदि वह किसी छोटे मोटे उद्योग को जानता है, फिर तो कहना ही क्या। किन्तु शिक्षित व्यक्ति इधर उधर नौकरी के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकता। यूनिवर्सिटी से निकलने के बाद वह अपने को ऐसा अपाङ्ग पाता है, जैसे हाथ पैर टूट गए हों। यदि अपने जीवन के सर्वश्रेष्ठ काल तथा माता पिता की गाढ़ी कमाई के हजारों रुपए खर्च करने के बाद वह अपाङ्ग बनने का प्रमाणपत्र प्राप्त करता है, तो उसे न प्राप्त करना ही अच्छा। इसकी अपेक्षा वही व्यक्ति किसी दुकान पर या कारखाने में काम करता हुआ अनुभव प्राप्त करे तो अधिक योग्यता प्राप्त कर सकता है।

वास्तव में उच्च शिक्षा सर्वसाधारण की चीज नहीं होनी चाहिए। उसके लिए चुने हुए प्रतिभाशाली विद्यार्थी आएँ और अपने अपने विषय में विशेष योग्यता प्राप्त करके राष्ट्र की सेवा करें। उतने ही विद्यार्थियों को लिया जाय जितनों की आवश्यकता हो। तभी उच्च शिक्षा का वास्तविक ध्येय पूर्ण हो सकता है और बेकारी की समस्या भी हल हो सकती है। दूसरी ओर सर्वसाधारण को विविध प्रकार के उद्योग धन्धों में लगाने की व्यवस्था होनी चाहिए। सरकार उद्योगपतियों से मिल कर ऐसी व्यवस्था कर सकती है।

आर्ट्स विभाग में आने वाले विद्यार्थी अधिकतर कामर्स या राजनीति लेते हैं। किन्तु कामर्स की पढ़ाई कालेज की अपेक्षा दुकान पर अधिक अच्छी होती है। फरक इतना ही है कि वहाँ डिग्री नहीं मिलती। भारत में जितने बड़े बड़े व्यवसायी या उद्योगपति हैं उनमें से शायद ही किसी ने कालेज में उस विषय का अध्ययन किया हो।

विद्यार्थियों में हाथ से काम करने की आदत डालने के लिए साल में सत्तर घंटे शारीरिक श्रम का नियम बनाया जा रहा है। किन्तु इससे ध्येय पूरा नहीं होता। कभी कभी मन बहलाव के रूप में श्रम कर लेने से श्रम की आदत नहीं पड़ती। यह आदत तो तभी पड़ सकती है, जब प्रत्येक विद्यार्थी अपना सारा खर्च अपने श्रम से चलाए। विश्वविद्यालय इस प्रकार के उत्पादक श्रम के लिए विद्यार्थियों को सुविधा प्रदान करे। उदाहरण के रूप में एक विद्यार्थी दो घंटे में १० पृष्ठ टाइप कर लेता है और उससे ३) रु० कमा सकता है। इसी प्रकार वस्त्रों की धुलाई, रंगाई, सिलाई, जूते बनाना, प्लास्टिक के खिलौने बनाना, डी०एम०सी० के गोले तैयार करना आदि अनेक उद्योग हैं जिनमें दो तीन घंटे काम करके विद्यार्थी अपना खर्च आसानी से निकाल सकता है। आवश्यकता इस बात की है यूनिवर्सिटी सरकार की सहायता से इस प्रकार के गृह उद्योगों की मशीनें मंगाकर रखे और उन पर काम सिखाने के लिए शिक्षक नियत करे। शिक्षकों का वेतन भी लड़कों के श्रम में से निकल सकता है। जो विद्यार्थी इस प्रकार कुछ घंटे काम करता हुआ अपनी कमाई के सिर पर पढ़ेगा वह जीवन में कभी निराश नहीं होगा। वह इसलिए नहीं पढ़ेगा कि जीवन में और कोई योजना या काम नहीं है। वह जिज्ञासु बनकर विद्या प्राप्ति को जीवन का लक्ष्य बना कर पढ़ेगा और वही आगे जाकर सफल होगा। यदि विश्वविद्यालयों के अधिकारी तथा हमारी सरकार जीवन में श्रम की आदत को आवश्यक मानती है तो उसे दो घड़ी की मौज के रूप में नहीं किन्तु दैनिक कार्यक्रम का मुख्य अंग मानकर पूरी ईमानदारी में साथ चलाना चाहिए।

थ्योरी और प्रेक्टिस

हमारे पड़ोस में एक सैनिक रहता है। वह इंजीनियरिंग कालेज के लड़कों को मोटर ड्राइवरी की सैनिक शिक्षा देता है। एक दिन बातचीत के सिलसिले में मैंने उससे पूछा—"भला इंजीनियरिंग कालेज के लड़कों को भी ड्राइवरी सिखानी पड़ती है? वे तो इस विषय में निष्णात होते हैं।"

सैनिक ने उत्तर दिया—"वे थ्योरी जानते हैं। प्रेक्टिस नहीं।" मैं अब तक यह समझे हुए था कि सिद्धान्त और उसके क्रियात्मक प्रयोग में यह दूरी केवल धर्म के क्षेत्र में ही है। कलाकौशल के क्षेत्र में भी उसे सुन कर आश्चर्य हुआ। जो इंजीनियर अपने हाथ से मोटर के कल पुर्जों को ठीक नहीं कर सकता, उसका संचालन नहीं कर सकता, उसका सैद्धान्तिक ज्ञान क्या महत्त्व रखता है? कामर्स पढ़े हुए विद्यार्थी जब दुकान पर काम करना प्रारम्भ करते हैं तो दुकानदार भी यही शिकायत करते हैं।

वास्तव में देखा जाय तो सिद्धान्त और व्यवहार की दूरी भारतीय जीवन का अंग बन गई है। हमारे यहाँ उपदेश देने वाले यह आवश्यक नहीं समझते कि उनके उपदेश का संबन्ध किसी अंश तक उनके निजी जीवन से भी होना चाहिए।

हिन्दू विश्वविद्यालय में एक अध्यापक थे। विद्या की दृष्टि से तो उन्हें कोई न पूछता, फिर भी किसी दूसरे गुण के कारण मालवीय जी के संग्रहालय में आ गए। जब कालेज से आते तो कसकर भांग छानते और हाथ पाँव फैलाकर चारपाई पर लेट जाते। होस्टल का चपरासी उनके पैर दबाता रहता। उसी समय विद्यार्थी पहुँच जाते तो शिक्षा देते—"देखो बेटा, गुरु कहे सो करना, गुरु करे सो नहीं करना।"

हम दूसरे को पूरा ईमानदार, निःस्वार्थ सेवी, सन्त महात्मा के रूप में देखना चाहिते हैं किन्तु स्वयं कुछ नहीं करना चाहते। चाहते हैं, सारा काम दूसरा करे, कष्ट दूसरा उठाए और फल हमें मिल जाय। हमारी भावना है, बलिदान बकरे का हो और स्वर्ग हमें मिल जाय। यह भावना हमें अपने आप ऊँचा उठने की प्रेरणा नहीं देती। हमारे यहाँ नेता अधिक हैं और अनुयायी कम। उपदेशक अधिक हैं और श्रोता थोड़े। रास्ता दिखाने वाले ज्यादा हैं और उस पर चलने वाले थोड़े। इस समय देश को अनुयायिओं की आवश्यकता है, श्रोताओं की आवश्यकता है और मार्ग पर चलने वालों की आवश्यकता है। जब तक वह आवश्यकता पूरी न हो नेता, उपदेशक तथा मार्ग दर्शकों को कोई दूसरा काम ढूंढ लेना चाहिए। व्यर्थ का शोर मचा कर चलने वालों का मतिविभ्रम न करना चाहिए। यदि वे इस कर्म से संन्यास ले लेवें तो देश की बहुत बड़ी सेवा होगी।

बम्बई जैन समाज का शुभ प्रयास—

पिछले कई महीनों से बम्बई में जैन समाज के लिए साम्प्रदायिक भेदभाव से हीन एक अखण्ड मंच तैयार करने का प्रयत्न हो रहा है। इसके लिए

असाम्प्रदायिक साहित्य का निर्माण आदि कुछ रचनात्मक योजनाएँ भी तैयार की गई हैं। आचार्य श्री विजय बल्लभसूरि, सेठ सोहनलाल जी दूगड़, सेठ कान्तिलाल ईश्वरलाल साह, सेठ श्रेयांस प्रसाद जी आदि विभिन्न सम्प्रदायों के अग्रणी इसमें प्रमुख भाग ले रहे हैं हैं। जैन समाज का हित चाहने वाला प्रत्येक व्यक्ति इस शुभ प्रयास का अभिनन्दन करेगा। बम्बई प्रारम्भ से ही समस्त जैन समाज का नेतृत्व करती रही है। उसके इस भव्य उदाहरण का प्रभाव समस्त भारत पर पड़े बिना न रहेगा।

हम इस अवसर पर सुझाव के रूप में एक बात लिखना चाहते हैं। इस प्रकार का सभी सम्प्रदायों के अग्रणी व्यक्तियों का जो संगठन बना है उसे कुछ ऐसे प्रश्नों को हाथ में लेना चाहिए जिनमें किसी सम्प्रदाय वाले को कोई आपत्ति न हो और जैनधर्म एवं संस्कृति का हित होता हो। इस प्रकार के कार्यों से समाज का कल्याण होगा, साथ ही संगठन को बल प्राप्त होगा।

उदाहरण के रूप में भारतीय विश्वविद्यालयों में जैन पाठ्यक्रम रखाने का प्रयत्न एक ऐसा कार्य है जो समाज के भविष्य की दृष्टि से बहुत महत्व रखता है। विश्वविद्यालयों के पाठचक्रम में जैनदर्शन को स्थान मिलते ही जैन विद्वानों के लिए एक विशाल क्षेत्र खुल जायगा। प्रामाणिक जैन साहित्य की मांग भी बढ़ जाएगी। साम्प्रदायिक भेदभाव का तो इसमें कोई प्रश्न ही नहीं है। इस विषय में हम गत अंक में भी लिख चुके हैं।

आशा है, संगठन के संचालक इस ओर ध्यान देंगे।

[पृष्ट ३४ से आगे।]

पी जाओ तुम
आज मृत्यु को गले लगा कर
जी जाओ तुम
दुविधा कैसी ?
कैसा कंपन ?

देख रहे हो
दूर क्षितिज में—
शत शत मधुस्रोतों से झरकर
जीवन धारा फूट पड़ी है !

—ज्ञानचन्द्र भारिल्ल, एम० ए०

श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति, अमृतसर की नई प्रवृत्ति

जैन साहित्य-निर्माण-योजना

इसके अन्तर्गत क्रमशः नीचे लिखे ग्रन्थों का निर्माण एवं प्रकाशन होगा।

१. जैन साहित्य का इतिहास—दिगम्बर तथा श्वेताम्बर आगम, कर्मसाहित्य, आगमिक प्रकरण, दार्शनिक साहित्य, लाक्षणिक ग्रन्थ, काव्य स्तुति, चरित आदि तथा हिन्दी गुजराती, राजस्थानी, अपभ्रंश, तामिल, कन्नड आदि भाषा-साहित्य के रूप में जैन साहित्य के सभी अंगों को भाग तथा खण्डों में बाँट दिया गया है और विभिन्न प्रकरणों पर लिखने के लिये तत्तद् विषय के विशिष्ट विद्वानों का सहयोग प्राप्त किया गया है। यह ग्रन्थ रायल साइज के लगभग ३००० पृष्ठों का होगा।

इस पवित्र अनुष्ठान में नीचे लिखे विद्वान हमारे सहयोगी बन चुके हैं— पं. सुखलाल जी, पं. बेचरदास जी, डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री, पं० फूलचन्द्रजी शास्त्री, पं. महेन्द्र कुमार जी न्यायाचार्य, प्रो० दलसुखभाई मालवणिया, डॉ० हीरालाल जैन, डॉ० ए. एन. उपाध्ये, डॉ० हीरालाल कापडिया, डॉ० भोगीलाल सांडेसरा, डॉ० प्रबोध पण्डित, प्रो० भायाणी, पं० नाथूराम जी प्रेमी, श्री अगरचन्द जी नाहटा, पं० के. भुजबली शास्त्री, प्रो० पद्मनाभ जैनी, डॉ० नथमल टांटिया, डॉ० इन्द्र चन्द्र शास्त्री इत्यादि।

इतिहास में साम्प्रदायिक दृष्टिकोण को कोई स्थान न दिया जाएगा। विद्वानों की सूची इसका स्पष्ट प्रमाण है।

२. जैन दर्शन का इतिहास—जैन दार्शनिक विचारों के विकास की क्रमबद्ध कहानी।

३. जैन व्यक्तिवाचक-शब्दकोश—जैन साहित्य के भौगोलिक, राजनीतिक, धार्मिक, दार्शनिक तथा कथासंबन्धी ग्रन्थों में आए हुए समस्त व्यक्तिवाचक शब्दों का परिचय।

समिति अपनी प्रवृत्तियों की सफलता के लिए आपके सहयोग की अपेक्षा रखती है।

निवेदक
हरजसराय जैन
मानद मंत्री

सितम्बर १९५३

सच्चो क्षमा मांगिए

चौरासी लाख जीवयोनि से क्षमा मांगने से पहले अपनी पत्नी से, अपने नौकरों से, अपने बच्चों से तथा अपने अन्य आश्रितों से क्षमा मांगिए जिन्हें आप का कोप तथा कठोर आज्ञाएं प्रतिदिन सहनी पड़ती हैं। अपने साथी से क्षमा मांगिए जिस के प्रति ईर्ष्या की अग्नि आपके मन में प्रतिक्षण सुलगती रहती है और जिसका अनिष्ट-चिन्तन आप के मन में बस गया है। अपने ग्राहक से क्षमा मांगिए जिसे झूठ बोलकर तथा धोखा देकर आप ने ठगा है। उसका नुकसान पूरा कर दीजिए। उस मज़दूर से क्षमा माँगिए जिसका अधिक श्रम लेकर आपने कम पैसे दिए हैं और उसकी विवशता से लाभ उठाया है। अपने हृदय से क्षमा मांगिए जिस की आवाज को लौकिक स्वार्थों से अभिभूत होकर आपने कुचल दिया है।

वाणी के साथ हृदय से भी क्षमा मांगिए। पर्यूषण का यही सन्देश है।

सम्पादक

डॉ० इन्द्र चन्द्र एम.ए., पीएच. डी.

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम
हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस—५

इस अंक में

१. अपभ्रंश के जैन साहित्य का महत्त्व—डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी १
२. कुभार्या—श्री जयभिक्खु ४
३. जैन लोक कथा साहित्यः एक अध्ययन—श्री महेन्द्र राजा १३
४. सिद्धसेन दिवाकर—डॉ० इन्द्र २९
५. अपनी बात (सम्पादकीय)— ३६
६. विद्याश्रम समाचार— ४०
७. साहित्य स्वीकार— ४१

श्रमण के विषय में—

१. श्रमण प्रत्येक अंगरेज़ी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है।
२. ग्राहक पूरे वर्ष के लिए बनाए जाते हैं।
३. श्रमण में सांप्रदायिक कदाग्रह को स्थान नहीं दिया जाता।
४. विज्ञापनों के लिए व्यवस्थापक से पत्र व्यवहार करें।
५. पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।
६. वार्षिक मूल्य मनिऑर्डर से भेजना ठीक होगा।
७. समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी चाहिए।

वार्षिक मूल्य ४) एक प्रति ।=)

प्रकाशक—कृष्णचन्द्राचार्य,
श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस-५

श्रमण

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस का मुखपत्र

वर्ष ४ सितम्बर १९५३ अंक ११

अपभ्रंश के जैन साहित्य का महत्व

डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी

हिन्दी साहित्य के अध्ययन में जैन अपभ्रंश साहित्य की सहायता अनिवार्य रूप से अपेक्षित है। यदि दशवीं शताब्दी तक मिली हुई अपभ्रंश रचनाओं पर विचार किया जाय तो स्पष्ट रूप से मालूम होगा कि जिस विशाल भूभाग को हमने शुरू में ही मध्यदेश कहा है, उसमें लिखा हुआ साहित्य बहुत ही कम भाग में उपलब्ध हुआ है। उसके आधार पर हम उस विशाल और महत्वपूर्ण साहित्य के विकास का कुछ भी अन्दाजा नहीं लगा सकते जो आगे चलकर मूल मध्यदेश में सूरदास, तुलसीदास, जायसी और बिहारी जैसे कवियों की रचनाओं के रूप में प्रकट हुआ है। दसवीं शताब्दी से पहले की जो रचनाएँ निःसंदिग्ध रूप से हिंदी रचनाएँ मानी जाती है उनमें प्रायः सबकी प्रामाणिकता संदिग्ध है और यदि किसी प्रकार उनके मूल रूप का पता लग भी जाय तो भी वे मूल मध्यदेश के किनारे पर पड़े हुए प्रदेशों की रचनाएँ हैं। परन्तु इन जैन आचार्यों और कवियों की रचनाएँ निःसंदेह मूलरूप में और प्रामाणिक रूप में सुरक्षित हैं। उनके अध्ययन से तत्कालीन साहित्यिक परिस्थिति पर जो भी प्रकाश पड़ता है, वह वास्तविक और विश्वसनीय है। इस दृष्टि से जैन रचनाओं का महत्व बहुत अधिक है। ये हमें लोक भाषा के काव्य रूपों को समझने में सहायता पहुँचाती है और साथ ही उस काल की भाषागत अवस्थाओं और प्रवृत्तियों को समझने की कुंजी भी देती हैं।

अपभ्रंश में अनेक चरित काव्य लिखे गए थे जिनकी परम्परा आगे चलकर हिन्दी के चरित काव्यों में प्राप्त होती है। परन्तु ये काव्य अब बहुत कम उपलब्ध होते हैं। वाणभट्ट के एक मित्र ईशान कवि थे जो 'भाषा

कवि' अर्थात अपभ्रंश के कवि थे। पुष्पदंत ने विनय प्रकट करते हुए महापुराण में कहा है कि मैंने न तो चतुर्भुज, स्वयंभू, श्री हर्ष और द्रोण को ही देखा है और न वाण और ईशान जैसे सुकवियों का ही अवलोकन किया है। इनमें चतुर्भुज और स्वयंभू तो अपभ्रंश के परिचित कवि हैं ही, ईशान भी अच्छे कवि रहे होंगे, ऐसा स्पष्ट मालूम होता है। आजकल केवल जैन चरित काव्यों की रचनाएँ ही उपलब्ध हो सकी हैं। ईशान की कोई रचना प्राप्त नहीं है। स्वयंभू अपभ्रंश के उन सबसे पुराने कवियों में हैं जिनकी रचना उपलब्ध है। इनकी चार महत्त्वपूर्ण रचनाओं का पता चला है--पउम चरिउ (रामायण), रिट्ठणेमि चरिउ, पंचमी चरिउ और स्वयंभूच्छंद। केवल अंतिम पुस्तक पूरी छपी है (तीन अध्याय एशियाटिक सोसायटी के नवें जर्नल १९३५ में और बाकी पाँच अध्याय बाम्बे यूनिवर्सिटी जर्नल १९३६ में)। बाकी पुस्तकों के केवल थोड़े अंश प्रकाशित हुए हैं। रामायण के कुछ कवित्वपूर्ण अंश राहुल जी ने 'काव्यधारा' में प्रकाशित किए हैं। वस्तुतः यही पुस्तक स्वयंभू की सर्वोत्तम रचना है। इसमें स्वयंभू की कवित्व शक्ति का बहुत सुंदर परिचय मिलता है। परन्तु साहित्य के इतिहास के जिज्ञासु के लिए 'स्वयंभू छंद' भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसमें उदाहरण के लिए अपभ्रंश के निम्न लिखित कवियों की रचनाएँ उद्धृत हैं--'चउमुह (चतुर्मुख), धुत्त, धनदेव, छइल्ल, अज्जदेव, (आर्यदेव), गोइंद (गोविन्द), सुद्धशील, जिणआस, विअड्ढा। इससे पता चलता है कि स्वयंभू के पहले अपभ्रंश काव्य की बहुत महत्वपूर्ण परम्परा थी। जिस प्रकार नवीं शताब्दी के पहले के अपभ्रंश साहित्य के लिए 'प्राकृत पैंगल' का महत्व है, उसी प्रकार नवीं शताब्दी के पहले की रचनाओं के लिए इस ग्रंथ का महत्व है। स्वयंभू का समय आठवीं शताब्दी के आसपास ही होगा, क्योंकि इन्होंने स्वयं रविषेण (५७७ ई०) की चर्चा की है और पुष्पदंत ने (१० वीं शताब्दी) इनका नाम लिया है। इन्हीं दोनों के बीच का कोई समय स्वयंभू का समय होगा। स्वयंभू के पुत्र त्रिभुवन भी बहुत अच्छे कवि थे, उन्होंने अपने पिता के काव्यों में अधिक अध्याय जोड़कर उन्हें बढ़ाया था।

स्वयंभू अपभ्रंश के सर्वोत्तम कवियों में हैं। हरिषेण ने अपनी 'धम्म परीक्खा' में अपभ्रंश के तीन कवि माने हैं—चतुर्मुख, स्वयंभू और पुष्पदंत। इनमें चतुर्मुख पुराने हैं परन्तु इनका कोई ग्रंथ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ। स्वयंभू ने इन्हें पद्धड़िया बंध का दाता (प्रवर्तक) कहा है—'चउमुहेण समप्पिय पद्धडिय'। पर दुर्भाग्यवश इनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं हुई है। पुष्पदंत के कई ग्रंथों का पता लगा है। अधिकांश प्रकाशित भी हो गए हैं। ग्रं

दसवीं शताब्दी के मान्यखेट के प्रतापी राजा कर्ण के महामात्य भीत के सभा कवि थे। बहुत ही मनस्वी व्यक्ति थे। अपने को 'अभिमानमेरु' कहा करते थे। इनको ही हिन्दी की भूली हुई अनुश्रुतियों में राजा मान का पुष्प कवि कहा गया है। उनकी तीन रचनाएँ प्राप्त हुई हैं और तीनों ही प्रकाशित हुई हैं। ये हैं (१) तिसट्ठि महापुरिस गुणालंकारु (त्रिसष्ठि महापुरुष गुणालंकार), (२) णायकुमार चरिउ (नागकुमार चरित) (३) जसहर चरिउ (यशोधर चरित)। पुष्पदंत बहुत ही शक्ति संपन्न व्यक्ति थे। काव्य के सभी रूपों और अवयवों पर इनका पूर्ण अधिकार है। अपने तिसट्ठि महापुरिस गुणालंकारु में इन्होंने बड़े गर्व के साथ घोषणा की है, जो ग्रंथ में है, वह और कहीं मिल ही नहीं सकता—कि चान्यद्यदिहास्ति जैन चरिते नान्यत्र तद् विद्यते।

दशवीं शताब्दी में धनपाल नामक जैन कवि ने 'भविसयत्त कहा' नामक प्रसिद्ध चरित काव्य की रचना की थी। ये संभवतः पुष्पदंत से थोड़े पहिले के हैं। इनकी रचना काफ़ी सुप्रसिद्धि पा चुकी है और भी कई जैन कवियों के लिखे चरित काव्य उपलब्ध हुए हैं जैसे करकण्डचरिउ (१२वीं शती) सुदर्शन चरिउ (११वीं शती), पंजुण्ण चरिउ और सुकुमाल चरिउ (१३वीं शती), नेमिनाह चरिउ और पुरोशल चरिउ (१५वीं शती) इत्यादि। इनमें केवल करकण्डु चरिउ ही प्रकाशित हुआ है, बाकी अभी अप्रकाशित हैं।

इन चरित काव्यों के अध्ययन से परवर्ती काल के हिन्दी साहित्य के कथानकों, कथानक रूढ़ियों, काव्यरूपों, कवि प्रसिद्धियों, छंदोयोजना, वर्णन शैली, वस्तुविन्यास, कविकौशल आदि की कहानी बहुत स्पष्ट हो जाती है। इसलिये इन काव्यों से हिन्दी साहित्य के विकास के अध्ययन में बहुत महत्व-पूर्ण सहायता मिलती है।

८वीं ९वीं शती के जैन मरमी कवि जोइन्दु (योगीन्दु या योगींद्र) के दो ग्रंथ परमात्म प्रकाश और योगसार दोहों में उपलब्ध हुए हैं। इन दोहों का स्वर नाथ योगियों के स्वर से इतना अधिक मिलता है कि इनमें से अधिकांश पर से यदि जैन विशेषण हटा दिया जाय तो यह समझना कठिन हो जायगा कि ये निर्गुण मार्गियों के दोहे नहीं हैं। भाषा, भाव, शैली आदि की दृष्टि से ये दोहे निर्गुणिया साधकों की श्रेणी में ही आते हैं। इसी प्रकार दसवीं शताब्दी के कवि रामसिंह की रचना 'पाहुड़ दोहा' प्राप्त हुई है जो भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से उसी श्रेणी में आती है। इन दोहों में कबीर, दादू आदिकी परवर्ती दोहाबद्ध रचनाओं की परम्परा स्पष्ट होती है।

कहानी

कुमार्या

श्री जयभिक्खु

वसन्त की शोभा को देखकर अपने बैलों से सुशोभित रथ पर चढ़कर वापिस लौटते हुए राजगृही के व्यापारी महाशतक के हृदय में शान्ति न थी। केशपाश में आम्रमञ्जरी गूंथ कर, पैरों में झाँझर पहिनकर, हाथ में चमेली की डाल लेकर वसन्त नृत्य करती हुई रूपगर्विता रेवती उसके हृदय में बस चुकी थी। उसकी रक्तहरितवर्ण की साड़ी में अनेक चमकते हुए तारे जड़े हुए थे। कंचुकी बांधने की छटा भी अद्भुत थी।

महाशतक की आंखें रेवती के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु पर नहीं टहरती थीं। उसके छोटे छोटे ओष्ठ मधुरस की प्याली से भी अधिक लाल थे। आंखों का खोलना और बन्द करना घनघोर मेघ में चमकती हुई विद्युत् से भी चञ्चल था। उसकी चाल ही उसका नृत्य था। उसकी हास्यमुद्रा को देखते ही कलेजा अशान्त हो जाता था।

घर पर एक दो नहीं किन्तु बारह पत्नियां थीं। रेवती ने सब की सुन्दरता पर पानी फेर दिया। महाशतक सोचता रहा—अरे! ये बारहों तो रेवती के पैर का पानी छूने योग्य भी नहीं।

'रेवती मेरी होगी।' उसने मन ही मन दृढ़ निश्चय किया। मैं कौन! राजगृही के महाव्यापारी महाशतक को अपनी पुत्री कौन न दे? महाशतक की मांग को कौन ठुकरा सकता है?

गले में रौप्यमाला डालकर महाशतक रेवती के पिता के द्वार पर जा पहुंचे। महाशतक सरीखे व्यापारी को अपने द्वार पर आया हुआ देखकर रेवती का पिता प्रसन्नता से फूल उठा।

"पधारिये महाजन!"

"विशेष समय नहीं, यहां आओ! किसी विशेष कार्य से आया हूं।"

वृद्ध समीप आया।

तुम्हारी पुत्री रेवती यौवनावस्था में प्रवेश कर चुकी है। उसे आज मैंने वसन्त-नृत्य में देखा था। अब कोई जामाता ढूंढना पड़ेगा न ?"

"अवश्य, किन्तु कोई दिखाई नहीं देता। वर है तो घर नहीं, घर मिलता है तो वर से सन्तोष नहीं। वर और घर मिलता है तो कुल ठीक नहीं। तीनों हैं तो कुटुम्ब नहीं।"

"कोई नहीं मिलता तो क्या मैं नजर में नहीं आता ? चलो, तुम्हारी रेवती मेरी पत्नी होगी।"

"आपकी ?"

"क्यों, क्या मेरा यौवन समाप्त हो गया है ?" महाशतक नें ढाल सी अपनी छाती आगे की। अपनें हाथ को बैल की पीठ पर पटका। बैल चारों पैरों से दौड़ने की तैयारी करने लगा। महाशतक ने रस्सी खींची। बाहु में पहिने हुए मणिजटित कटक मसल के ऊपर चढ़ गये।

"सिर पर रखूँगा, बारह रानियों में प्रधान होगी किन्तु ध्यान रखना, एक व्रज और एक हिरण्यकोटी...."

महाशतक ने रज्जू से पुनः बैलों को सावधान किया और फिर ढीला छोड़ दिया। महाशतक का रथ कुछ ही समय में दिशाओं को झनझनाता हुआ आंखों से अदृश्य हो गया।

द्वार पर खड़ी हुई रेवती ने तथाकथित युवक को जाते हुए देखा। उसके घुंघराले बाल, लाल कलंगी ओर मांसल बाहु रेवती की दृष्टि में चुभ गये।

"कौन था वह ?" अपनें बाल सुखाती हुई रेवती वहाँ आई।

"तेरी मांग करनें आया था। उसका नाम है महाशतक! राजगृही का विख्यात व्यापारी!"

"मस्त युवक है! हिरण्य, व्रज क्या ?"

"सब कुछ ठीक है। किन्तु बेटी उसके वहां पहले से ही बारह पत्नियाँ हैं।"

"पिताजी! बारह हों या बारह सौ, इसकी कोई चिन्ता नहीं। अपने में शक्ति होना चाहिए।"

पिता कुछ न बोला।

समवयस्क सखियों ने जब यह बात सुनी तो हँस पड़ीं—"पगली! यह क्या सूझा ?"

"अरे, जिसने बारह पत्नियां की हैं और इतनी मस्त जवानी है, वह कैसा अद्भुत होगा ? अरे, नये युवक की अपेक्षा रसिक बल्लभ क्या बुरा ? उसने मेरी मांग की है, मैं क्यों न जाऊं ! वह तो कला सीखा हुआ मयूर है । मूढ़ नर कला क्या जानता है ?"

रेवती और महाशतक के लग्न हुए । पिता को पुत्री के ठीक स्थान पर पहुंच जाने से संतोष हुआ । हिरण्य और ब्रज मांगने से भी अधिक मिले ।

रेवती तो संसार की सर्वविलास कलाओं में कुशल थी । जितनी रातें उतने रस और जितने दिवस उतने विलास उसके पास थे । महाशतक दिन-दिशा का भान भूल गया । रेवती के सौन्दर्य और चातुर्य ने उसे वश में कर लिया ।

सारा कार्य भार रेवती के हाथ में आया । दास-दासियां चमचमाती हुई सेठानी को ही देखने लगीं । उसे प्रसन्न रखने के लिए दूसरी पत्नियों से लड़ने लगे ।

रेवती कहती—'सबल और निर्बल की लड़ाई में निर्बल हारेगा । मुझे तो यही देखना है कि मेरी सबलता कैसे बढ़े ?' और हुआ भी ऐसा ही। इस झगड़े में बारहों सौतें निर्बल सिद्ध हुईं । किसी ने विष से तो किसी ने शस्त्र से आत्महत्या कर ली ।

रेवती को अब एक छत्र साम्राज्य मिला और किसी प्रकार की परवाह न रही । पहले प्रतिदिन छः बार वेणी गूंथती थी, अब दो बार गूंथने लगी । पहले हमेशा नये नये फूल डालती थी, अब कई बार खुले बाल ही फिरने लगी । स्नान भी कम कर दिया और विलेपन भी दो दिन में एक दिन करने लगी । मधुरस पहले कभी कभी एकान्त में और अल्प प्रमाण में पीती थी किन्तु अब इच्छानुसार पीने लगी । प्रातः कालिक उषानृत्य, मध्याह्न में होने वाला वसन्त-नृत्य और रात्रि संबन्धी दीपकनृत्य अब दासियों का कार्य हो गया ।

ऐसे क्षीर सागर को पाकर पिपासा क्या बाकी रह सकती है ? महाशतक तृप्त हो गया । उसने कंठपर्यन्त मीठे रस का पान किया । अब यदि और पिये तो वमन हो जाय !

किन्तु रेवती अभी तक तृप्त नहीं हुई । उसकी पिपासा बढ़ती ही गई ।

"रेवती ! मेरी बारह पत्नियां मेरे वियोग में मर रही होंगी। इसका भी कुछ विचार करना चाहिए न ?"

"विचार हो गया। वे सब शोक से गल गल कर मर गईं। उनकी अब कुछ भी चिन्ता न करो। ये बारह प्रासाद बारह मास के लिए बिहार प्रासाद बना लिये गये हैं।"

"सब मर गईं ?"

"हां, किन्तु इसमें दुःख किस बात का ? उन सबको मात करने वाली मैं तो अभी जीवित हूँ।" निर्लज्जा ने उत्तर दिया।

महाशतक की काया कृश हो गई और कमर झुक गई।

(२)

एक समय प्रभु महावीर राजगृही में आये। लोग उन्हें अद्भुत जादूगर मानते थे। जादूगर तो धागे और धान्य कण से दुःख दूर करता है किन्तु महावीर दृष्टि से ही कष्ट मिटा देते थे।

दुःखी महाशतक प्रभु के पास गया और रो पड़ा। इस दुःख से छुटकारा पाने के लिए मार्ग पूछा। भगवान् से बारह व्रत ग्रहण किये। प्रभु ने प्रेम से कहा—महाशतक ! जितने प्रेम से प्रिय को स्वीकृत किया उतने ही प्रेम से अप्रिय का स्वागत कर ! तेरा संताप दूर होगा।

"नागिनी को समझाना सरल है किन्तु उसे समझना महादुष्कर है।"

"वह नागिनी नहीं, उसमें भी सैन्दर्य है जिसके पीछे तू पागल बना था। उस सौन्दर्य को फिर से ढूंढ ! मानव पापी नहीं, वृत्ति पापी है। मानव मात्र से प्रेम कर ! प्रेम तेरा कल्याण करेगा।"

महाशतक वापिस लौटा। उसमें गंभीरता आ गई। उसने प्रेम से रेवती को समझाया। महावीर के उपदेश का पूरा पता विवरण दिया किन्तु रेवती ने सब कुछ उलटा समझा।

"ये वैराग्य की बातें मेरे घर में नहीं चलेंगी।"

"वाह री रेवती ! कैसी भली है तू ! दूसरी स्त्री होती तो मुझे प्रसन्न करने के लिए कुछ और ही कहती।"

"वाह रे भक्त !" रेवती ने कटाक्ष किया। महाशतक अप्रिय को प्रिय बनाकर सतोष कर रहा है। रेवती दिन प्रति दिन उच्छृंखल बनती जा

रही है। जैसे जैसे यह उच्छृंखल बनती जाती है वैसे वैसे महाशतक सहनशील, नम्र और उदार बनता जाता है।

क्रोध तो मानो उसमें है ही नहीं। सहनशीलता तो मानो उसके समान दुनियाँ में है ही नहीं। बड़े से बड़े पापी पर उसकी उदार दृष्टि है।

"रेवती! तेरा पूरा अधिकार है कि तू मुझे जो चाहे, कह। मैंने अपनी क्षणिक वासना की शांति के लिए तेरा यौवन नष्ट किया।"

"कौन कहता है कि मेरा यौवन नष्ट हुआ? अहा!" और रेवती सुरा की प्यालियां चढ़ाने लगी। उसने अपना रेशमी उत्तरीय वस्त्र फैला दिया। सुप्त-सौन्दर्य-सर्प फुंकार मारने लगा। महाशतक शान्त है, धैर्य से कहता है—रेवती! तेरे में सौन्दर्य के साथ साथ शील होता तो?

"धत् तेरा शील!"

रेवती का उत्तर सुनकर महाशतक केवल हंसता रहता।

"रेवती! तू सच कहती है। फूल एकत्र करने का समय चला गया, अब तो कांटे ही बाकी रहे हैं।"

रेवती के सामने नगण्य सा महाशतक नगर में अति प्रतिष्ठित हो गया। उसका न्याय, व्यापार और लेनदेन अपूर्व था। कोपाग्नि तो मानो हिम हो चुकी थी। हृदय इतना विशाल हो गया था कि सभी प्रकार के आक्षेप-विक्षेप उसमें सरलता से समा जाते थे। प्रेम का तो वह अवतार ही था। जिसने पहले संसार के सुख दुःख समझे न थे वह अब उनका अनुभव करता था।

महाशतक क्षीरसिन्धु बन गया था। हजारों व्यक्ति उसका जल पीकर तृप्त होते थे।

अब तो मानापमान और सुख-दुःख भी उससे अलग हो गये। रेवती भरी सभा के बीच आकर इच्छानुसार कुछ भी कह देती तो भी उसको बुरा न लगता। धीरे से सब को सम्बोधित करके कहता—

"भाई? मानव-हृदय की वेदना किसी न किसी रूप में प्रकट होती ही है। प्रिय और अप्रिय तो हमारा भ्रम है। वास्तव में कोई प्रिय और अप्रिय नहीं। हमारी वृत्ति ही उसे इस रूप में देखती है।"

वाह री रेवती! तूने महाशतक को अच्छा पकड़ा? अब उसमें वे बातें

नहीं ! अब वह नम्र हो चला है। कभी खुले पैर तो कभी खुले सिर ! बड़प्पन का मोह तो मानों मर चुका है।

अब वह अधिकतर पौषधशाला में रहता ह, चिन्तन करता है, जीवनसाधना के मार्ग में लीन रहता है।

(३)

राजगृही में वध-निषेध की घोषणा हो चुकी थी। राज्य की आज्ञा के अनुसार आज से पशुवध अपराध था। शान्त महाशतक ने रेवती को इस बात की खबर दी और साथ ही साथ कहा—

"छोटे से पेट के लिए इतने बड़े अपराध वास्तव में गर्हित हैं।"

"अर्थात् साधारण गरीब की भांति रोटी और भात खाकर जीवित रहना ? तुम्हारे वर्धमान ने यही सिखाया है ?"

"हां रेवती ! वे तो कहते हैं कि प्रकृति के राज्य में 'चींटी को कन और हाथी को मन' मिलने की व्यवस्था है। लक्ष्मी पतियों ने यह व्यवस्था तोड़ दी है। उन्होंने ज्यादा खाकर संसार में भुखमरी पैदा की है।"

"यह बात ठीक है। अब एक वर्ग ऐसा भी चाहिए जो स्वेच्छा से भूखा रहे। तुला बराबर हो जायगी। इससे गरीब को कम मिल जायगा और हाथी को भी मन मिल जायगा।"

"कैसा सुन्दर तर्क ! रेवती, तूने कहा वह सच है। भगवान् वर्धमान का यही मार्ग है। संसार को भोगने का रोग लगा है जब कि उन्होंने त्याग को धर्म कहा है। हमारे पाप का वे प्रायश्चित करते हैं किन्तु यह सब तू क्या समझे ? परभव के भय से नहीं तो भी राजभय से तो तुझे समझना ही पड़ेगा।"

"राजाज्ञा का यह अर्थ नहीं कि तुम बाहर से भी कुछ न मंगा सको। मैं अपने मायके से हमेशा दास द्वारा मंगवा लूंगी। जब तक साधु न हो जाऊं तब तक मुझ से इस विलास और खानपान का त्याग नहीं हो सकता। मांस बिना मेरा स्वास्थ्य कैसे ठीक रह सकता है ?"

महाशतक ने सोचा कि इस विलासिनी को वश में करने जितना बल मेरे पास नहीं है। बल प्राप्ति के लिए साधना की आवश्यकता है। एक दिन उसने अपने जेष्ठ पुत्र को सारा कार्यभार सौंप दिया और स्वयं पौषधशाला

में रहनें लगा । कुक्षिसंवल व्रत धारण किया । मनन और चिन्तन में डूब गया । तन कृशता की ओर बढ़ने लगा ।

बहुत समय तक रेवती के दर्शन न हुए । वह यथेष्ट भोग–विलास में समय बितानें लगी । आज वह अचानक अंदर घुस आई । उसके सुगन्धित केश खुले हुए थे । कपाल पर बाल अव्यवस्थित रूप से बिखरे हुए थे । उत्तरीय वस्त्र खिसक रहा था और कंचुकी भी शिथिल हो गई थी ।

"यह ढोंग और कपट क्यों ? क्या भूखा रहने से स्वर्ग मिलता है ? तो फिर ये सब भिखारी मर कर देव होंगे ? और भला, स्वर्ग किसने देखा ? स्वर्ग में जो कुछ है वह सब क्या यहाँ पर नहीं है ?"

महाशतक निरुत्तर हो देखता रहा ।

रेवती आगे बढ़ी—"तू स्वर्ग के लोभ में फंसा हुआ है, देव और देवियों के रूप पर लट्टू हो रहा है । तुझे देवांगनाओं के पयोधर अच्छे लगते हैं और घर की स्त्री के नहीं । मेरे से हार कर स्वर्ग की स्त्रियों को जीतना चाहता है ! धूर्त !"

रेवती के पीछे आये हुए झुण्ड ने रेवती की बात का समर्थन किया ।

महाशतक शीतल जल के घट के समान शान्त रहा यह अपमान उसके मानस-सागर की एक भी उर्मि को चंचल न कर सका ।

"रसभरी में रस था तब तक तो उसे चूसा । अब रस समाप्त हो गया इसलिए नई रसभरी की प्राप्ति के लिए तप करने बैठा । स्वर्गसुन्दरी अथवा मोक्षसुन्दरी की प्राप्ति के लिए ही यह तेरा ढोंग हो तो यह सुन्दरी भी कम नहीं ! महाशतक ! मेरे आश्लेष में अब भी उतनी ही मोहिनी है, मेरे अंगों में आज भी उतना ही आल्हाद है, मेरे ओष्ठ में इस समय भी उतनी ही लालिमा है, मेरे अंग की कोमलता की बराबरी करने वाली स्त्री स्वर्ग में भी नहीं मिल सकती ।" रेवती की आंखों में गर्व और दृढ़ता थी ।

"रेवती, तेरी यह पाशविक काम-लालसा तेरी आत्मा को खा डालेगी ।"

'आत्मा ?' रेवती ने मानो आत्मा शब्द को दांतों से चबा डाला—"अरे भक्तराज ! जो दिखाई देता है उसे तो नहीं मानता और जो नहीं दीखता उसके पीछे दौड़ता है । वाह रे तेरा धर्म ! वाह रे तेरा गुरु !"

रेवती हंस पड़ी। सारा झुण्ड भी हंसने लगा।

"रेवती! जिसे मैं धिक्कारता हूँ, वह तू नहीं, तेरी वृत्तियां हैं।"

"वृत्तियां हैं? कैसी है यह वृत्ति! वाहरे तेरा गुरु! वाहरे तेरा धर्म!" और रेवती फिर हँसने लगी। झुण्ड भी जोर जोर से हंसने लगा।

"मेरे व्रत की हँसी! मेरे धर्म की हँसी!"

"भाइयो! इस भक्त के गुरु वर्धमान हैं।" रेवती जोर जोर से बोलने लगी। पार्श्वस्थित समुदाय भी खिल्ली उड़ाने लगा।

शान्त और स्वस्थ महाशतक एक क्षण के लिए व्यग्र हो उठा। उसे अपने अपमान की किञ्चित् भी चिन्ता न थी किन्तु अपने प्रभु का अपमान! अपने प्रिय धर्म की अवहेलना! उसका मन उसके हाथ से निकल गया। उसने गंभीर स्वर से कहा—

"रेवती, सुनती जा! मेरा ज्ञान कहता है कि सात दिन में तेरी मृत्यु होगी।"

"मृत्यु!" रेवती ने अट्टहास से उसके वाक्य का तिरस्कार किया। वह घर चली आई। घर आकर विरामासन में बैठी। दासी को मधुरस लाने की आज्ञा दी। वहां उसने ये शब्द सुने—"रेवती सात दिनमें तेरी मृत्यु है।"

"मृत्यु!" रेवती ने हंसने का प्रयत्न किया किन्तु न हंस सकी। मधु लेकर आनेवाली दासी से उसने पूछा—क्या कोई किसी की मृत्यु बतला सकता है?

"हां, महाशतक जैसे ज्ञानी और धर्मी व्यक्ति के लिए किसी के जीवन अथवा मृत्यु की बात बतलाना सहज है।"

रेवती को आज मधु में स्वाद न आया। भोजन का भी स्पर्श करके छोड़ दिया। स्थान स्थान पर ऐसे ही प्रश्नोत्तर करती हुई फिरनें लगी।

विलास की भावना नष्ट होने लगी। अंगविलेपन, चन्दनरस और द्राक्षारस अनाथ हो गये। रेवती की निद्रा का अवसान हुआ। मृत्यु के स्वप्न देखनें लगी। भयङ्कर व्याधि ने पकड़ लिया। शय्या ही उसका सहारा था। सातवें दिन रूपगर्विता रेवती इस लोक से बिदा हो गई।

(४)

बसन्त का समय है। राजगृही के गुणशील चैत्य में ज्ञातृपुत्र महावीर पधारे हैं। दर्शन वन्दन के बाद प्रभु महावीर ने अपने पट्टशिष्य गौतम से कहा—

"श्रमणोपासक को ऐसा सत्य नहीं बोलना चाहिए जो अप्रिय अथवा अनिष्ट करने वाला हो।"

"जी!" गौतम ने सिर हिलाया।

"मनुष्य इष्ट अथवा अनिष्ट नहीं कर सकता। उसे किसी भी कर्म में प्रेरित करने वाली उसकी वृत्तियां हैं—कर्म के संस्कार हैं; इसलिए पाप पर द्वेष हो सकता है, पापी पर नहीं।"

"तहत्तवचन।" गौतम को अनुभव था कि जब ज्ञातृपुत्र इस ढंग से कहते तब केवल श्रवणेन्द्रिय से ही काम चल जाता है।

"राजगृही में रहने वाला मेरा परम श्रावक महाशतक ज्ञानी होकर भी त्रुटि कर बैठा। उसने अपना मानापमान तो सह लिया किन्तु धर्म और गुरु के मानापमान के लिए धैर्य खो बैठा। जिस रेवती ने उसे कसौटी पर कस कर स्वर्ण सिद्ध किया उसी की उसने हत्या की।"

"हत्या?"

"हां, सत्य वचन की तलवार से। वस्तु पवित्र अथवा अपवित्र नहीं होती। भावना ही उसे पवित्र अथवा अपवित्र बनाती है। उसने हृदय दौर्बल्य दिखाया। सत्य कैसा भी हो किन्तु अनिष्टकारी नहीं होना चाहिए। तुम वहां जाओ और प्रायश्चित्त से उसे शुद्ध करो।"

ज्ञातृपुत्र के महान् संदेशवाहक गौतम महाशतक के पास गये। महाशतक ने विधि से बन्दना की तथा भगवान् की कुशलता पूछी। गौतम ने प्रायश्चित्त की आज्ञा सुनाई।

महाशतक ने अपनी कुभार्या के वध का प्रायश्चित्त किया और व्रत-शुद्धि की।

जैन लोक कथा साहित्य : एक अध्ययन

श्री महेन्द्र 'राजा'

जैन कथाएँ भारतीय लोक साहित्य की विशुद्ध प्रतीक हैं। यद्यपि उनमें धर्म भावना प्रधान है, उनमें एक न एक भाव ऐसा अवश्य छिपा हुआ है जो अप्रत्यक्ष रूप में धार्मिक परम्पराओं पर आधारित है फिर भी लोक भावना से वे शून्य नहीं हैं।

जिन या अर्हतों के अनुयायी जैनों का धर्म भी उसी काल में तथा भारतवर्ष के उसी भाग में जन्मा, पनपा और विकास को प्राप्त हुआ जहाँ बौद्ध धर्म, पर उसका प्रचार एवं प्रसार उतने विस्तृत दायरे में न हो सका जितने में बौद्ध धर्म का। वैसे देखा जाय तो आज भी जैन धर्मके अनुयायी लाखों की संख्या में हैं। पिछली जनगणना (१९५१) के अनुसार भारत में जैनियों की संख्या करीब २४ लाख है और ये भारत के सबसे अधिक धनी व प्रभावशाली व्यक्तियों में से हैं। पर यूरोप में भी अब जैन धर्म का काफी प्रचार हो चुका है तथा वहाँ के लोग इस ओर आकृष्ट हुए है। और आजकल तो जैन धर्म भी बौद्ध धर्म के समान विश्व धर्म होने का दावा करने लगा है जैन धर्म की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका द्वार सभी लोगों के लिए समान रूप से खुला हुआ है जैसा कि श्री होफ्रेथ बूलर ने ठीक ही कहा है कि बिल्कुल अपरिचित विदेशियों के साथ ही साथ म्लेच्छों का भी यह अपनी भुजाएँ फैलाकर सहर्ष आवाहन करता है। इतनी उदार नीति पर आधारित होने पर भी यह बौद्ध धर्म के समान विकास को नहीं प्राप्त हो सका। शायद इसीलिए कि इसके सिद्धान्त और आदर्श जन सामान्य के लिए अति कठोर हैं।

वैसे तो जैन लोग २४ तीर्थङ्करों को मानते हैं पर प्रमुख रूप से अन्तिम दो तीर्थङ्कर २३ वें पार्श्वनाथ व २४ व वर्द्धमान महावीर ही जन सामान्य के लिए अधिक परिचित हैं। यद्यपि यह निर्विवाद है कि वर्द्धमान संस्थापक न होकर सुधारक थे और उन्होंने पार्श्वनाथ के सिद्धान्तों को ही परिष्कृत एवं

परिमार्जित किया। महावीर की निर्माण तिथि के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। कोई ईसा पूर्व ५४५, कोई ५२७ और कोई ४६७ मानते हैं। वर्द्धमान महावीर की मृत्यु के बाद ई० पू० दूसरी शताब्दी में जैन सम्प्रदाय में धर्म भेद की दृष्टि से शाखाएँ बनना शुरू हुआ। और ई० पू० पहली शताब्दी के प्रारम्भ में यह श्वेताम्बर व दिगम्बर इन दो शाखाओं में विभक्त हो गया। श्वेताम्बर लोग अपने देवताओं की प्रतिकृतियों को श्वेत वस्त्र पहिनाने लगे और दिगम्बर लोग नग्न रखने लगे। ये दोनों ही मत व मान्यताएँ आज भी अक्षुण्ण रूप में जीवित हैं।

जैन धर्म का प्रमुख उद्देश्य भी अधिकांश भारतीय धर्मों के समान ही कर्मप्रवृत्तियों अर्थात जन्म मृत्यु के चक्र से छुटकारा दिलाना है। जहां तक हमें स्मरण है ऋग्वेद में पुनर्जन्म की कोई चर्चा नहीं है, पर जब वैदिक धर्म का प्रभाव लोकदृष्टि से उठ गया, पुनर्जन्म के सिद्धान्त ने विद्वानों को विचार करने के लिए बाध्य किया और शायद तभी से पुनर्जन्म के प्रति लोगों की दृढ़ आस्था हुई। जैन कथाकोश में संगृहीत कथाओं की मूल प्रेरणा भी यही पुनर्जन्म के प्रति आस्था है। इस जन्म में किए हुए कर्मों का फल अगले जन्म में मिलता है, मनुष्य योनि ही वह सर्वश्रेष्ठ स्थिति है जब प्राणी अपने उत्तमोत्तम कार्यों द्वारा मुक्तिपद की राह लग सकता है, आदि ये सब भावनाएँ ही जैन लोक कथा साहित्य का मूल आधार हैं। कर्मों के चक्कर से छूट जाना अर्थात् मुक्ति पाना ही जैनधर्म की प्रेरणा है और यही प्रेरणा जैन कथाओं का प्राण कही जा सकती है। जैन कथा साहित्य का मर्म अच्छी तरह समझने के लिए पहले हमें जैन धर्म के सिद्धान्तों का कुछ परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक होगा। मुक्ति पद की प्राप्ति के लिए बौद्ध धर्म के समान ही जैन धर्म में भी तीन रत्न बतलाए गए हैं। वे हैं—१ सम्यगदर्शन, २ सम्यगज्ञान, ३ सम्यगचारित्र। इन्हें मुक्तिमार्ग की तीन सीढ़ियाँ कहा जाता है। यहाँ इन तीनों का सूक्ष्म विश्लेषण विषयविरोध होगा। अतः इस विषय को आगे बढ़ाने की अपेक्षा हम इसे यही छोड़ेंगे। जैन लोग पुष्प आदि अष्ट द्रव्यों से अपने देवताओं का पूजन-अर्चन करते हैं। उनकी प्रशंसा व सम्मान सूचक प्रार्थनाएँ तथा भक्तिभाव से पूरित गीत गाते हैं और उनकी स्मृति को अक्षुण्ण रखने के लिए प्रति वर्ष हजारों मील की तीर्थयात्राएँ करते हैं। इन्हीं सब बातों के वर्णन से जैन साहित्य भरपूर है। साधु-साध्वियों के आचार-विचार आदि का परिचय जैन साहित्य में प्रचुर मात्रा में मिलता

है। सबसे पहले जैन साहित्य प्राकृत में लिखा गया था पर शीघ्र ही इस बात की आवश्यकता महसूस हुई कि वह संस्कृत में लिखा जाना चाहिए। तत्कालीन परिस्थितियों का यदि अध्ययन किया जाए तो यह एक स्वाभाविक आवश्यकता ही कहना चाहिए। पर जैन लोग केवल अपने सिद्धांतों को लिखकर ही संतुष्ट न हो सके। उन्होंने साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में ब्राह्मणों से प्रतिद्वन्द्विता की। व्याकरण, ज्योतिष, संगीत, कला आदि प्रत्येक क्षेत्र में उन्होंने प्रगति की ओर कदम बढ़ाए। इन सब प्रवृत्तियों के मूल में उनका केवल एक ही ध्येय था। जन सामान्य को जैन धर्म की ओर आकृष्ट करना व उनकी आस्था दृढ़ करना। और अपने उद्देश्य में वे सफल भी हुए। उनकी उस समय की कृतियाँ यूरोपीय विज्ञान के लिए आज भी बड़े महत्व की हैं।[१]

जैन कथा साहित्य में तपस्विनों, भक्तिनों तथा साध्वियों को बहुत ही कम स्थान मिला है और ऐसे प्रसंग भी शायद ही मिलें जहाँ उन्हें आदर या सम्मान का स्थान दिया गया हो। साध्वियों को केवल श्वेताम्बर साहित्य में ही स्थान प्राप्त है, दिगम्बर साहित्य से उनका कोई वास्ता नहीं। दिगम्बर शास्त्र के अनुसार तो स्त्रियाँ मुक्ति की अधिकारिणी ही नहीं। वे 'मोक्ष-महल' में कदम भी नहीं रख सकतीं पर इस विषय में उनमें व श्वेताम्बरों में गहरा मतभेद है।

सुप्रसिद्ध यूरोपीय विद्वान् श्री सी० एच० टाने ने अपने ग्रंथ 'ट्रेजरी आफ स्टोरीज' की भूमिका में यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि जैनों के 'कथाकोश' में संगृहीत कथाओं व यूरोपीय कथाओं में अत्यन्त निकट का साम्य है। उनके विचार से यह अधिक संभव है कि जिन यूरोपीय कथाओं में यह साम्य मिलता है उनमें से अधिकांश भारतीय कथा साहित्य। (विशेषतः जैन कथा साहित्य) के आश्रित हों। प्रोफेसर मैक्समूलर, बेन्फे, व रहीस डेविड्स ने अपने ग्रंथों में इस बात के काफी प्रमाण दिए हैं कि भारतीय बौद्ध कहानियाँ लोक कंठों के माध्यम से परसिया से यूरोप गईं। निःसंदेह इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि बहुत सी कहानियाँ मध्ययुगीन भारत से यूरोप में गई। यद्यपि इस बात में संदेह है कि वे भारत में जन्मी, पनपी या और कहीं। श्री एन्ड्रू लंग, जिन्होंने इस विषय पर गहरा अध्ययन किया

[१] Bühler's Votrag, PP. 17 and 18.

है, का मत है कि यदि आवश्यकतानुरूप सीमित कर दिया जाय तो यह उधार लेने की प्रवृत्ति बुरी नहीं कही जा सकती। ये कहानियाँ निश्चित रूप से मध्ययुगीन भारत से बाहर गईं और मध्यकालीन यूरोप व एशिया में अधिकता से पहुँची। लोककंठों के माध्यम से कथाओं के आवागमन के विषय में तो कुछ कहना ही व्यर्थ है। अधिकांशतः एक दूसरे के तत्वों में, घटनाओं में आपस में अदला बदली हुई। यह निश्चित है कि पाश्चात्य साहित्य पर लोककथाओं का अधिक प्रभाव पड़ा है जिनने कि भारतीय साहित्य में अपना प्रमुख स्थान बना लिया था।[1] यह भी संभव प्रतीत होता है कि भारतीयों ने कुछ लोककथाएँ यूनानियों से उधार लीं। इतिहास इस बात का प्रमाण है कि भारतियों ने काफी समय तक मुद्राशास्त्र, ज्योतिष और शायद कुछ सीमा तक वास्तु और शिल्पकला तथा नाट्च कला की शिक्षा यूनानियों से गृहण की। 'कथा सरित्सागर' के अंग्रेजी अनुवाद की टिप्पणियों में श्री सी० एच० टाने ने भारतीय व यूनानी उपन्यासों (कथा वृत्तान्तों) के सादृश्य पर विस्तृत प्रकाश डाला है।

यहाँ एक प्रश्न यह उठना स्वाभाविक ही है कि जैन कहानियाँ इतने दूर २ के प्रदेशों में कैसे पहुँची जब कि जैन धर्म के विस्तार के विषय में हम देखते हैं कि वह भारत तक ही सीमित रहा। इसके उत्तर में हम तो अपनी ओर से यही कहेंगे (और यह सच है) कि ये कहानियाँ जैनों द्वारा नहीं बल्कि बौद्धों द्वारा सुदूर प्रदेशों में ले जाई गईं। क्योंकि जैन और बौद्ध दोनों ने ही धार्मिक ज्ञानोन्नति एवं प्रचार के उद्देश्य से पूर्वीय भारत की लोक कथाओं का समुचित उपयोग किया। एक उदाहरण से हमारा यह कथन स्पष्ट हो जाएगा व उसे बल मिलेगा।

सुप्रसिद्ध यूरोपीय विद्वान प्रोफेसर जैकोबी ने अपनी "परिशिष्ट पर्व"[2] की भूमिका में एक जैन कथा की रानी से संबंधित निम्न अंश उद्धृत किया है जो दो प्रेमियों की प्राप्ति के लोभ में एक को भी न पा सकी—

"......रानी और उसका प्रेमी, जो कि एक डाकू था, यात्रा को चल दियें और चलते चलते एक नदी के किनारे पहुँचे जिसमें बाढ़ आई हुई थी। डाकू ने रानी से कहा कि पहले तुम्हारे वस्त्राभूषणों को उस पार पहुँचा देना

[1] 'Myth, Ritual and Religion' Vol. II, P. 3/3

[2] एक सुप्रसिद्ध जैन ग्रंथ

ठीक होगा, पश्चात तुम्हें ले चलूँगा। लेकिन जब वह रानी के वस्त्राभूषणों को लेकर उस पार पहुँच गया तो उसने ऐसी धोखेबाज व दुःशील स्त्री से छुटकारा पाना उचित समझा और उसे उसी किनारे पर एक नवजात शिशु के समान नंगी ही छोड़कर चल दिया। ऐसी स्थिति में उसे एक व्यंतर देव ने देखा, जो पूर्वजन्म में एक महावत था तथा उसके पूर्व प्रेमियों में से एक था, और उसे बचाने का निश्चय किया। अतः वह अपने मुँह में मांस का टुकड़ा दबाए हुए एक सियार के रूप में आया। पर एक मछली को देखकर, जो कि पानी से बाहर उछलकर आ गई थी, उसने माँस का टुकड़ा छोड़ दिया और मछली पर झपटा। मछली जैसे तैसे प्रयत्न करके सियार की पहुँच में आने से पहिले ही पानी में पहुँच गई और इसी समय आकाश में उड़ते हुए एक पक्षी ने नीचे आकर वह माँस का टुकड़ा अपनी चोंच में दबा लिया और उड़ गया। रानी ऐसा देखकर सियार की मूर्खता पर हँसी जिसने मछली को पाने की आशा में मछली के साथ ही साथ हाथ में आए हुए मांस के टुकड़ें को भी खो दिया। उसी समय सियार ने अपने असली रूप में आकर कहा कि उसने (रानी ने) अपने पहले और दूसरे दोनों ही प्रेमियों के साथ ही साथ वस्त्राभूषण भी खो दिए। उसने उसे अपने पापों का प्रायश्चित करने और 'जिन' की शरण में जाने का उपदेश दिया। रानी ने उसकी बात मान ली और एक तपस्विनी बन गई।"

अब आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि यही कहानी चीन में एक लोक कथा के रूप में प्रचलित है। श्री स्टेनिस्लास जूलियन ने 'अवदान' के चीनी से अंग्रेजी अनुवाद में यह कहानी दी है। इस कहानी का शीर्षक है—"दी वीमन एन्ड दी फाक्स"। यही लोक कथा फ्रांस में भी कुछ परिवर्तित रूप में प्रचलित है, जो निम्न प्रकार है—

"एक समय एक बड़ी ही धनवान औरत थी। उसके पास खूब सोना और चाँदी था। वह एक पुरुष से प्रेम करती थी। वह अपने प्रेमी के साथ भाग निकलने के लिए अपने पति को छोड़कर सोने व चाँदी के बहुमूल्य आभूषणादि लेकर चली। वे दोनों चलते चलते एक नदी के किनारे पहुँचे। प्रेमी ने स्त्री से कहा—तुम पहले मुझे सभी बहुमुल्य जेवरात आदि दे दो ताकि मैं पहले उन्हें उस पार रख आऊँ। उन्हें उस पार रखकर मैं लौट आऊँगा और तब तुम्हें भी उस पार ले चलूँगा। वह औरत इसी किनारे पर रहीं और उसने अपने सभी वस्त्राभूषण अपने प्रेमी को दे दिए पर फिर उसका प्रेमी कभी

लौट कर नहीं आया। वह उसे हमेशा के लिए छोड़कर चला गया। इसी समय उस स्त्री ने एक लोमड़ी को देखा जिसने एक बाज को पकड़ रखा था। लोमड़ी नें इसी बीच एक मछली देखी और उसे पानें की आशा में बाज को छोड़ दिया। पर वह लोमड़ी न तो मछली ही पा सकी और न बाज ही। क्योंकि उसके पंजे से छूटते ही बाज उड़ गया था। उस औरत ने लोमड़ी से कहा, "तुमने बहुत बेवकूफी की है। दोनों वस्तुओं को पाने के लालच में तुमने दोनों को ही एक साथ खो दिया। उत्तर में लोमड़ी नें कहा, "मुझसे भी अधिक बेवकूफ तो तुम हैं।"[1] अंग्रेजी अनुवादक का कहना है कि यह कहानी 'Fa-youen-tchoulin' नामक बौद्ध विश्वकोश से ली गई है। यह तो सभी जानते हैं कि उत्तरी बौद्धों से चीनियों ने बहुत कुछ उधार लिया पर यही कहानी फौसबाल द्वारा सम्पादित 'पाली जातक' में भी मिलती है, उसमें यह कहानी 'चुल्लधनुग्गहा जातक' नाम से है। चुल्लधनुग्गहा जो कि इस कहानी का नायक है, अपने तीरों से एक हाथी व ४९ डाकुओं को मारने के पश्चात्, अपनी स्त्री के कपट व्यवहार से डाकुओं के सरदार द्वारा मारा जाता है क्योंकि उसकी स्त्री डाकू सरदार से प्रेम करती है। पर वह डाकू सरदार उसके पति को मारनें के पश्चात्, उसकी सारी सम्पत्ति जेवर आदि लेकर भाग जाता है और वह बेचारी सब कुछ खोकर निराश्रित रह जाती है। तब सक्क (इन्द्र) अपने मुँह में माँस लिए सियार के रूप में और मातलि तथा पंचशिखा (इन्द्र के ही आदेश से) क्रमशः मचली व बाज के रूप में आते हैं। इस प्रकार यह नाटक जैन कथा के समान ही चलता है। उसका परिणाम यह होता है कि स्त्री अपने आप में बड़ी शर्मिन्दा होती है और पश्चाताप करती है।

जो कुछ भी हो, पर हम इतना अवश्य कहेंगे कि लोक कथाओं के अन्वेषकों को इन जैन कथाओं का स्वागत अपनी खोजों के लिए एक महत्वपूर्ण देन के रूप में करना चाहिए। उन्हें इस बात का सन्देह अपने मन से निकाल देना चाहिए कि ये कथाएँ यरोपीय कथाओं से प्रभावित हैं। वस्तुस्थिति यह है कि यूरोपीय कथाएँ ही इन कथाओं से प्रभावित हैं। जैन कथाएँ अपने आप में पूर्णतः मौलिक हैं और विशुद्ध भारतीय हैं। इस विषय के प्रमाण में हम ऊपर

[1] 'Les Avadans,' traduits par Stanislas Julien, Vol. II, P. 11.

बहुत कुछ लिख चुके हैं। हमारे इस कथन का यह आशय नहीं लेना चाहिए कि सभी जैन कथाएँ विशुद्ध एवं मौलिक है। कुछ कथाएँ मूल रूप से जैनेतर हैं और उन्हें अपनी बनाने के लिए उन पर जैन धर्म के उपदेशों का रंग चढ़ा दिया गया है। कहीं कहीं तो कथा के पात्रों के नाम भी जैन कल्पनानुसार बदल दिए गएं हैं। जैसे नल-दमयन्ती की सुप्रसिद्ध कथा का रूपान्तर भी जैन लोक कथा के रूप में प्रचलित है। इसमें दमयन्ती को दवदन्ती के रूप में बदल दिया गया है। 'कथाकोश' में संगृहीत इस कहानी के रूप से स्पष्ट पता चलता है कि सामाजिक और लौकिक कथाओं को धार्मिकता का बाना पहिना कर जैनों नें जिस नए ढंग से उनका नया रूप प्रस्तुत किया है, वह प्रशंसनीय है।

(२)

जैन कथा साहित्य विशाल है और मनोरंजन से परिपूर्ण है। केवल भारतीय ही नहीं यूरोपीय पुस्तकालयों में भी कई हस्तलिखित जैन ग्रंथ भरे पड़े हैं, जो अभी तक अप्रकाशित हैं। विशाल जैन साहित्य में मात्र धर्मचर्चा ही नहीं है, वरन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, लौकिक, ललित कला आदि सभी विषयों पर जैन ग्रंथकारों ने समान और अधिकारिक रूप से अपनी लेखनी चलाई है। उन्होंनें सिद्धान्त तर्कशास्त्र और दर्शन आदि विषयों पर अपने स्वतंत्र मत स्थापित किए व ग्रंथ भी लिखे। एक ओर जहां उन्होंने इस प्रकार के साहित्य की सृष्टि की, दूसरी ओर ब्रह्मविज्ञान आदि पर भी सफलता पूर्वक ग्रंथ लिखे। उन्होंने संस्कृत के साथ ही प्राकृत के भी बहुत से कोषों और व्याकरणों की रचना की। गुजराती और परसियन भाषाओं में भी उन्होंने व्याकरण तैयार किए। अंकशास्त्र, अर्थशास्त्र, काव्यशास्त्र, नीतिशास्त्र (दोनों वर्ग—राजनीति व सामान्य नीति) आदि पर भी उनके अनेकों ग्रंथ उपलब्ध हैं। राजकुमारों की शिक्षा के लिए जैन लेखकों नें अश्वकला, हस्ति कला, तीर तर्कश कला, कामशास्त्र आदि विषयों के ग्रंथ प्रणयन किए। सामान्य वर्ग के लिए जादू, ज्योतिष, शकुन शास्त्र आदि ऐसे विषयों पर रचनाएँ लिखी जिनका भारतीय सामाजिक जीवन में आदि काल से ही महत्व रहा है। इतना ही नहीं उन्होंने शिल्पकला संगीतकला, स्वर्ण-रजत आदि के गुणावगुण, रत्नों आदि पर महानिबंध लिखे। काव्यक्षेत्र में जैन कवि, जो सामान्यतः साधु होते थे दरबारी ब्राह्मण कवियों से होड़ लेते थे। वे संस्कृत में नाटक,

काव्य, चम्पू आदि बड़ी कुशलता से लिखते थे और अपने ग्रंथों में तद्विषयक नियमों का भी पूर्णता से पालन करते थे। उनके लिखित ग्रंथ आज भी काफी मात्रा में उपलब्ध हैं। आलोचना शास्त्र पर भी उनकी कई महत्त्वपूर्ण कृतियां हैं।

हिन्दू शासकों के साथ ही साथ मुस्लिम शासकों के समय में भी जैन साधुओं का दरबारों में काफी मान रहा और उनकी कला की प्रशंसा होती रही। यहाँ एक बात विशेष ध्यान देने की यह है कि जहाँ जैनेतर कवि, विद्वान आदि राज्यपद के फेर में सामान्य जनता को भूल गए, जैन साधु कवि नहीं भूले। विशेषतः वैश्यवर्ग के साथ उनका संबंध अटूट रहा। जहाँ ब्राह्मण वर्ग ने अपने ग्रंथ विशेषतः राजदरबारों व राजकुमारों, दरबारियों आदि के लिए लिखे, जैन लेखकों ने सामान्य वर्ग की साहित्यक आवश्यकताओं को पूरा किया। उनकी साहित्यक रुचि जागृत की। उन्होंने केवल सरल संस्कृत में ही ग्रंथों का भंडार नहीं भरा वरन प्राकृत, अपभ्रंश, पुरानी हिन्दी, गजराती, कन्नड और राजस्थानी आदि में भी ग्रंथ लिखे। वे साहित्य के एक बड़े ही विशाल एवं विस्तृत क्षेत्र के सृष्टा थे।

जैन कथा साहित्य मात्रा में बहुत ही विशाल है। उसमें रोमांस, वृतान्त, जीव जन्तु, लोक, परम्परा प्रचलित, मनोरंजक, वर्णनात्मक आदि सभी प्रकार की कथाएँ प्रचुर मात्रा में मिलती हैं। जन साधारण में अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए जैन साधु कथाओं को सबसे सुलभ व प्रभावशाली साधन मानते थे। और उन्होंने इसी दृष्टि से उपरोक्त सभी भाषाओं में गद्य पद्य दोनों में ही कहानी-कला को चरम विकास की सीमा तक पहुँचाया। उनकी कथाएँ दैनिक जीवन की सरल भाषा में होती थी। कोई कोई कथाएँ तो केवल एक ही साधारण कथा हुआ करती थी पर अधिकांश कथाओं में बहुत सी कथाएँ इस ढंग से मिली रहती थी कि कथा का क्रम नहीं टूटने पाता था और काफी लम्बे समय तक कथा चलती रहती थी (जैसे पंचतंत्र)।

उनका कथा कहने का ढंग अन्यों की अपेक्षा कुछ विशेषता युक्त है। कथा के प्रारम्भ में जैन साधु कोई प्रसिद्ध धर्म वाक्य या पद्यांश कहते हैं और फिर बाद में कथा कहना शुरू करते हैं। कथा की लम्बाई या छोटाई पर वे जरा भी ध्यान नहीं देते। उनकी कथाएँ बहुत सी रोमांटिक घटनाओं (अधिकांश घटनाएँ एक दूसरे से गुंथी रहती हैं) से युक्त रहती हैं।

कहानी के अन्त में वे पाठकों का परिचय एक केवली त्रिकालदर्शी जैन साधु से कराते हैं जो कथा से संबद्ध नगर में आता है और कथा के पात्रों को सद्मार्ग पर आने का उपदेश देता है। केवली का उपदेश सुनकर कथा के पात्र पूछते हैं कि संसार में प्राणियों को दुःख क्यों सहना पड़ते हैं, दुखों से छुटकारा पाने का उपाय क्या है। इस प्रश्न के उत्तर में केवली जैनधर्म के प्रमुख तत्व कर्म का वर्णन करने लग जाता है कि प्राणी के पूर्वकृत कर्मों के फल रूप में ही उसे सुख या दुख की प्राप्ति होती है। अपने इस कथन का संबंध वह कहानी के पात्रों के जीवन में घटित घटनाओं से स्पष्ट करता है।

इन धर्मोपदेशों का साहित्यिक रूप बौद्ध जातकों से सादृश्य रखता है पर जातकों की अपेक्षा वह कई दृष्टियों से श्रेष्ठ है। जातक का प्रारम्भ एक कथा से होता है जो बिल्कुल ही स्वत्वहीन होती है। किसी भिक्षु के साथ कोई घटना घटती है। उसी समय बुद्ध आते हैं। अन्य, भिक्षु उस पहले भिक्षु के साथ घटी घटनाओं के संबंध में उनसे प्रश्न करते हैं। और बुद्ध उत्तर में उस साधु के पूर्व जन्म की कथा कहते हैं। पूर्न जन्म की कथा ही जातकों की प्रधान कथा होती है जब कि जैन धर्मोपदेशों—जैन कथाओं में उपसंहार के रूप में उसका अस्तित्व रहता है। बोधिसत्त अथवा भविष्य में होने वाले बुद्ध स्वयं उस कथा के एक पात्र होते हैं और उस उत्तरदायित्व को पूर्णतया निभाते भी हैं और इस प्रकार पूरी कहानी एक शिक्षाप्रद, उपदेशक कथा का रूप ले लेती है। जहाँ तक जातकों के मनोरंजक तत्वों का प्रश्न है, वे बौद्धों के अपने मौलिक नहीं हैं; वे तो उन्होंने भारत जैसे विस्तृत प्रदेश में फैली लोक कथाओं के विशाल भण्डार से लिए हैं। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान श्री जोहान्स हर्टेल का यह कथन ठीक ही है कि इन प्रसिद्ध कथाओं में से अधिकांश प्रवीणता, मनोरंजन और क्रीड़ा कौतुक से भरपूर हैं पर वे धर्मोपदेशक नहीं हैं। जो जातक उपदेशपरक एवं धर्मोपदेशक हैं भी तथा जिनके पात्र बोधिसत्त के पद के अधिकारी हैं, वे लोक प्रचलित कथानकों के जोड़-तोड़ कर अपने उद्देश्यानुकूल बनाए गए, उनके बदले हुए रूपान्तर मात्र हैं। और ऐसी जातक कथाएँ मौलिकता से हीन नीरस हो गई हैं; उनकी सारी आकर्षण शक्ति, उनका प्रभाव, उनकी कला कुशलता विलुप्त हो गई है। बौद्धों ने अपने सिद्धान्तों का समावेश, बोधिसत्त का उदाहरण देकर कि किस प्रकार प्रत्येक प्राणी को बुद्ध के सिद्धान्तों में विश्वास कर उसी के अनुसार कर्ममार्ग

में प्रवृत्त होना चाहिए, इन कथाओं में सीधे ही किया है। और यदि लोक प्रचलित कथा का जातक में बदले हुए रूप का उपसंहार इस प्रकार नहीं हो पाया तो फिर उन्होने उस कथा का नाक नक्श भी बदल कर उसे बिल्कुल ही बेडौल कर दिया है। एक बौद्ध के लिए अर्थशास्त्र या राजनीति का अध्ययन पाप है। पर अब तो बहुत सी भारतीय लोक कथाओं का समावेश इन शास्त्रों में हो गया है। बौद्धों ने भी अपने संग्रहों में बहुत सी इन नीतिकथाओं को भी शामिल कर लिया है। पर अपने धर्म सिद्धान्तों से बाध्य होकर उन्हें इन कथाओं में काफी फेरफार करना पड़ा है। कहीं कहीं तो उन्होंने इन कथाओं के कई महत्वपूर्ण अंशों को भी ऐसी बेतरतीब से बदला है कि मूल कथा का सारा रस ही जाता रहा है और इस प्रकार वे कथाएँ कहीं की भी न रही हैं।[1] यह कहना थोथी दलील ही नहीं है कि पंचतंत्र के अनेक पाठान्तरों में से एक भी बौद्धों के अपने मौलिक नहीं हैं; जब कि 'पंचाख्यान' या 'पंचाख्यानक' कहे जाने वाले जैनों के पाठान्तरों ने नीतिशास्त्र के इस पुराने कार्य को लोक में प्रसिद्ध कर दिया। यहाँ तक कि इन्डोचीन व इन्डोनेशिया में भी इनकी प्रसिद्धि हुई। इन सब देशों में संस्कृत व अन्य भाषाओं में 'पंचाख्यान' इतना अधिक प्रसिद्ध हुआ कि उसका मूल जैन रूप पूर्णतः भुला दिया गय। और तो और जैन लोग स्वयं इसके अपने मूल रूप को भूल गए।

बौद्ध कथाकारों ने अपने लाभ की दृष्टि से जन सामान्य की प्रबल वृत्ति को अद्भुत चमत्कारों, भयंकर घटनाओं तथा अति पापी कार्योंसे अधिक परिचित कराया है। उन्होंने एक ही कथा में बार बार इस प्रकार की घटनाएँ वर्णित की हैं। उनमें मनोवैज्ञानिक उत्साह और हेतुत्व के कोई लक्षण एवं आचार नहीं मिलते। उनकी कथाएँ बौद्धों की विशेषताएँ हैं पर भारतीय विशिष्ट कथाएँ किसी भी रूप में नहीं।

भारतीय कथा कला की विशेषताओं के रूप में हम जैन कथावृतान्तों को ले सकते हैं। भारतीय जनता के प्रत्येक वर्ग के आचार विचारों एवं व्यवहारों

[1] इस विषय के विस्तृत विवरण के लिए देखिए—'Die. Erzahlungsliteratur der Jaina' (Geist der Ostens-7, 178 ff.) and 'Ein altindisches Narrenbuch' (Ber, d. kgl. Sach, Gesellschaft der Wissenschaften, Ph-h. Kl. 64 (1912), Heft.'

के विषय में उनसे यथार्थ एवं सविस्तर परिचय मिलता है। जैन कथा वृतान्त विशाल भारतीय साहित्य के एक प्रमुख अंग के रूप में अपना महत्व प्रदर्शित करते हैं। वे केवल भारतीय लोक कथाओं के क्षेत्र में ही नहीं वरन् भारतीय सभ्यता व संस्कृति के इतिहास के क्षेत्र में भी अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

जैनों के कथा कहने के ढंग में बौद्धों के ढंग से कई बातों में काफी अंतर है। जैनों की कथा की मूल वस्तु भूत की न होकर वर्तमान से संबंध रखती है। वे अपने सिद्धान्तों का सीधा उपदेश नहीं देते, उनके कथानकों से ही अप्रत्यक्ष रूप से उनका उपदेश प्रगट होता है। और एक सबसे बड़ा अंतर जो है, वह यह कि उनकी कथाओं में 'बोधिसत्त' के समान भविष्य के 'जिन' के रूप में कोई पात्र नहीं होता।

अत: यह स्पष्ट ही है कि इन स्थितियों में जैन कथाकार पूर्णत: स्वतंत्र हैं। चूँकि उन्हें पात्रों को ठोक-पीट कर अपने अनुकूल, जैन सिद्धान्तों को माननेवाला नहीं बनाना पड़ता अत: पूर्वकथाओं का वर्णन करने में उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता रहती है इसलिये भी कि ये कथाएँ उन्हें साहित्यिक या चली आती हुई परम्परा के रूप में प्राप्त हुई हैं। उनकी कथाओं के पात्र आदर्श हों या दुश्चरित्र, सुखी हों या दु:खी, कथाकारों का इससे कोई तात्पर्य नहीं। क्योंकि आदर्शोपदेश जिसका प्रचार कथा का लक्ष्य होता है, कथा में वर्णित घटनाओं में नहीं वरन उस भाष्य में रहता है जो 'केवली' कथा के अन्त में देता है। केवली बतलाता है कि कथा के पात्रों के जीवन में जितनी भी दुर्घटनाएँ घटी हैं, उन्हें जितनी भी विपत्तियों का सामना करना पड़ा है वे उनके अशुभ कर्मों का परिणाम हैं और जितनी भी शुभ घटनाएँ घटी हैं, वे उनके शुभ कार्यों का परिणाम है जो कि उनके द्वारा पूर्व जन्म में किए गए। यह स्पष्ट ही है कि धर्मोपदेश देने के इस ढंग का उपयोग किसी भी कथा में अच्छी तरह व सफलतापूर्वक किया जा सकता है। क्योंकि प्रत्येक कथा के पात्रों, जिनके जीवन की घटनाओं अथवा विविध कार्यकलाओं का उसमें वर्णन रहता है, के जीवन में अनेक उलट फेर हुआ ही करते हैं। सुख-दुख दोनों ही के अनुभव उन्हें होते हैं इस तथ्य का परिणाम यह हुआ है कि किसी भी जैन कथाकार साधु को अपने हाथ में आई किसी लोक कथा को बदलने अथवा किसी भी अंश में रूपान्तरित करने के लिए बाध्य नहीं होना पड़ा है और यही कारण है कि लोक साहित्य—लोक कथाओं के साधनों

के रूप में बौद्ध कथा ग्रथों में आई हुई कथाओं की अपेक्षा जैन कथाएँ अधिक विश्वस्त एवं यथार्थ हैं।[1]

पर इससे यह तात्पर्य कदापि नहीं लेना चाहिए कि जैन साधुओं ने पुरानी, लोक प्रचलित, परम्परा से चली आती हुई कथाओं को ही नया रूप दिया। उन्होंने मौलिक कथाओं की भी काफी विशाल मात्रा में सृष्टि की। उन्होंने नई मौलिक कथाएँ और औपन्यासिक वृतान्त धर्मोपदेश एवं सिद्धान्त प्रचार की दृष्टि से लिखे। उनकी पाठशालाओं में साहित्यिक कथाएँ कहने की शिक्षा दी जाती थी। चारुचन्द्र के 'उत्तमकुमारचरित' के ५७२ वें दोहे से यह बात स्पष्ट प्रमाणित होती है—

श्री भक्तिलाभशिष्येण चारुचंद्रेण गुंफिता।
चारित्रसारगणिना शोधितेयं कथा मुदा॥
बालत्वेऽपि कथा चेयमभ्यासार्थं कृता मया।
बालावस्थाकृतं सर्वं महतां प्रीतये भवेत॥

बौद्ध और जैन कथा साहित्य से भी पुराना साहित्य ब्राह्मणों का है।

प्राचीन भारत का प्रायः सारा वृतान्त साहित्य उपदेशपरक है। ब्राह्मणों ने अपनी धर्म एवं उपदेशपरक कथाओं का उपयोग तीन शास्त्रों (धर्म-अर्थ-कामशास्त्र) में किया। वैदिक युग के बाद की समस्त कथाओं में धार्मिक या दार्शनिक उपदेश का निर्देश मिलता है। वे ब्राह्मणों व उपनिषदों की सुप्रचलित पौराणिक कथाएँ हैं। सभी प्रकार की धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, दार्शनिक और राजनीतिक कथाओं का समावेश महाकाव्यों और पुराणों में हो गया है। आजकल भी इस विशाल साहित्य के 'अंश' घरों में या धर्मसभाओं में लोगों (विशेषतः धर्मपरायण) द्वारा पढ़े जाते हैं। चूँकि ब्राह्मण धर्मोपदेश नहीं देते, इन ब्राह्मणों की धर्मकथाओं को विकसित होने का कोई अवसर नहीं मिला। जब भारत की अपनी राजनीतिक सत्ता समाप्त हो गई तो 'अर्थ कथाओं' का विकास भी रुक गया। यद्यपि महाभारत व अन्य ग्रंथों में उनके सुंदर उदाहरण सुरक्षित हैं। पर राजनीतिक कथा वृतान्त साहित्य को समझने के लिए हम 'तंत्राख्यायिक' और 'दशकुमारचरित' को सबसे अधिक प्रतिनिधि ग्रंथ के रूप में ले सकते हैं। 'तंत्रख्यायिक' जिसका

[1] 'On the Literature of the shevatambers of Gujrat' by Johanesse Hertell P.-9

अनुवाद पहलवी भाषा में ५७० ई० में किया गया था, बाद में कई अनेक भाषाओं में अनुवादित हुआ और केवल पश्चिमी एशिया में ही उसका प्रसार नहीं हुआ वरन उत्तरी आफ्रीका व यूरोप में भी वह पहुँचा जहाँ वह सबसे अधिक प्रसिद्ध कथाग्रंथों में से एक माना गया। पर यह हमारा दुर्भाग्य ही कहा जाना चाहिए कि भारत में अभी तक इस प्रसिद्ध ग्रंथ की कोई भी प्रति नहीं पाई जा सकी है। काश्मीर में कुछ हस्तलिखित प्रतियाँ अवश्य पाई गई हैं पर उनमें से एक भी पूर्ण नहीं है। कुछ विद्वानों की तो इसी कारण यह भी धारणा हो गई है कि 'तंत्राख्यायिक' का भारत में कोई प्रसार नहीं था। प्रोफेसर कोनाव ने अपनी पुस्तक 'इण्डीएन' में यह सिद्ध किया है कि 'तंत्राख्यायिक' दक्खिन में लिखा गया था। इसके प्रमाण में उन्होंने कथामुख का भी उल्लेख किया है।[1] दण्डी का दशमुखचरित तो कभी पूरा ही नहीं हुआ था।[2] वृहत्कथा ने, जो कभी एक प्रसिद्ध ग्रंथ था, भारत से अपना मूलरूप ही खो दिया। उसकी संस्कृत प्रतियाँ कश्मीर में सोमदेव और क्षेमेन्द्र व्यास दास तथा नेपाल में बुधस्वामिन की मिली हैं।

ऐसी स्थिति में यह स्पष्ट ही है कि महाभारत व रामायण काल में कथा कहने के ढंग का विकास ब्राह्मणों द्वारा ही हुआ। सुबंधु की वासवदत्ता व बाण की कादम्बरी कल्पित रोमांस हैं। उनका उपसंहार यद्यपि अधिक मनोरंजक नहीं है पर सबसे बड़ी विशेषता उनकी अत्यन्त ही उच्च कल्पना व कलात्मक शैली है।

बौद्धों ने केवल धर्मकथाओं को ही अधिक प्रोत्साहन दिया। उन्होंने अपने सारे कथा साहित्य, जिसका अधिकांश भाग सामान्य भारतीय एवं ब्राह्मण कथाओं पर आधारित है, का प्रसार उन सब प्रदेशों में किया जिन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार किया था और जहाँ उसकी जड़ जम गई थी, जैसे--सीलोन, इण्डोचीन, इन्डोनेशिया, तिब्बत, तुर्किस्तान, चीन, कोरिया, जापान आदि। कुछ बौद्ध कथाएँ यूरोप भी गईं। लेकिन भारत के मूल प्रदेश में जहाँ ८ वीं शताब्दी के बाद बौद्ध धर्म करीब करीब बिल्कुल ही लुप्त हो गया, बौद्ध कथा साहित्य का प्रचार एवं प्रसार बहुत ही कम मात्रा में हो पाया।

[1] 'Indien'–Professor Konow (Leipzig. u.) Berlin 1917; p. 92

[2] 'Indische Erzahler' Vol 1-3, Johanesse Hertel, Leipzig, Haessel 1922

ऊपर जो कुछ कहा जा चुका है, उससे यह स्पष्ट ही है कि मध्युग से आज तक जैन और विशेषतः गुजरात के श्वेताम्बर जैन साधु ही प्रमुख कथाकार थे। उनके साहित्य में ऐसी२ विशेषताएँ अगध मात्रा में मिलती हैं जो लोककथा साहित्य के अनुसंधान कार्य में तत्पर विद्यार्थी के सामने एक नया क्षेत्र उपस्थित करती हैं। जो विद्वान भारतीय लोककथा साहित्य के क्षेत्र में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कार्य कर रहे हैं उनके लिए जैन लोककथा साहित्य एक महत्वपूर्ण एवं आवश्यक विषय है।

जैन कथा साहित्य से संबंधित कुछ समस्याएँ भी इस प्रसंग में उपस्थित होती हैं। जिनमें से एक दो पर संक्षेप में हम यहां विचार करेंगे।

पहली समस्या जो कहानियों के देशान्तर गमन से संबंध रखती है, साहित्यिक इतिहास व सभ्यता तथा साहित्य के इतिहास की सीमा में आ जाती है। उस पर विचार करना भारतीय दृष्टिकोण से तो महत्वपूर्ण है ही पर अन्य देशों की दृष्टि से भी उतना ही महत्वपूर्ण है। दूसरी समस्या भाषागत है। इस पर विचार करना केवल संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं होगा वरन भारतीय साहित्य के इतिहास पर भी उससे समुचित प्रकाश पड़ेगा।

पहले हम कथाओं के देशान्तर गमन की ससस्या को लेते हैं। जिन कथा ग्रंथों के विषय में यह सिद्ध किया जा सकता है कि वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भारत से यूरोप गईं उनमें से कुछ ये हैं—बरलाम और जोसफ की कथा, कलीला और दिमना में समाविष्ट ग्रंथ (जैसे तंत्राख्यायिक, महाभारत के ३ पर्व तथा कुछ अन्य कथाएँ जिनमें से एक मूल बौद्ध है), शुक्र सप्तति का जैन पाठान्तर, सिन्तिपास का वृत्तान्त तथा जाफर के पुत्रों की जलयात्रा आदि। अंतिम तीन ग्रन्थों के मूल भारतीय रूपों का अभी तक पता नहीं लग सका है पर हमारा विश्वास है कि कभी न कभी अवश्य ही गुजरात के श्वेताम्बरों के साहित्य में उनके मूल रूप की प्राप्ति होगी।[1]

अन्य भारतीय व यूरोपीय लोक कथाओं (जिनमें आपस में साम्य हैं) के विषय में अभी किसी प्रकार का अंतिम निर्णय नहीं किया जा सकता, पर कुछ कथाओं (जैसे 'सुलेमान का न्याय') के विषय में विद्वानों द्वारा यह

[1] एक प्रसिद्ध जैन ग्रंथ "रत्नचूड़कथा" में सिन्तिपास का वृतान्त मिल गया है।

सिद्ध किया जा चुका है कि सारी कथा जिन तत्वों, आधारों तथा वातावरण को लेकर लिखी गई है, वे पूर्णतः भारतीय हैं। वे केवल भारत में ही मिल सकनें हैं। पर ऐसी कथाएँ बहुत ही कम हैं। अन्य सब कथाओं में तारतम्य एवं साम्य स्थापित करने तथा किसी एक निश्चित मत पर पहुँचने का केवल एक ही उपाय है। वह यह कि किसी यूरोपीय कथा के परस्पर विरोधी सभी तत्वों का किसी भारतीय कथा के सभी परस्पर विरोधी तत्वों के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया जाय और इस अध्ययन के फल स्वरूप इस बात को सिद्ध किया जाय कि प्रत्येक परस्पर विरुद्ध तत्व (जो कि अपनें मूल रूप में नहीं होगा) भारत से यूरोप गया अथवा यूरोप से भारत आया। पर इन अनुसंधानों के किये जाने के पहिले यह आवश्यक है कि जैन भण्डारों में अभी तक जो कथाओं और कथा ग्रंथों का विशाल अम्बार अप्रकाशित रूप में छिपा पड़ा है, प्रामाणिक एवं मूल शुद्ध रूप में सटिप्पण प्रकाशित किया जाय तथा उनके ऐसे प्रमाणिक अनुवाद कराए जाएँ जो लोक कथा साहित्य के उन विद्यार्थियों के लिए सविस्तर विश्लेषण कर सकें जो कि सभी भारतीय भाषाओं, भारतीय आचार-विचार, व्यवहार तथा रीति रिवाजों से परिचित नहीं हैं।

चूँकि कथाओं के देशान्तर गमन की समस्या अत्यन्त ही दुर्बोध एवं गहन है, यह अत्यन्तावश्यक है कि जैन कथा साहित्य का प्रकाशन यथासंभव शीघ्र ही किया जाए। भारत केवल 'देने वाला' ही नहीं 'लेने वाला' भी रहा है। उदाहरणार्थ 'यूसूफ और जुलेखा' (कश्मीरी कवि श्रीवर द्वारा १५ वीं शती में संस्कृत में अनुवादित), 'अनवरी सुहेली' (कलीला और दिमना' की कथा पर आधारित एक परसियन ग्रन्थ; पश्चात दुखनी, उर्दू, हिन्दी, बंगला, तथा बाद में फ्रेंच अनुवाद से मलय और इसके बाद मलय से जापानी में अनुवादित), 'अरेबियन नाइट्स', 'ईसप फेबिल्स' (अनेक भारतीय भाषाओं में अनुवादित) तथा अन्य विदेशी ग्रंथों के नाम लिए जा सकते हैं, जिनके भारतीय भाषाओं में १९ वीं तथा २० वीं शताब्दी में अनुवाद किए गए।

बहुत सी भारतीय कथाओं तथा कथा ग्रंथो का पुनर्देशान्तर गमन भी हुआ और बाद में "पूर्व देशान्तर गमन रूपों" के समान ही इन "पुनर्देशान्तर गमन रूपों" ने भी साहित्यिक रूप ग्रहण किया। मौखिक रूपान्तरों से भी हम इन्कार नहीं कर सकते। समय समय पर भारत पर विदेशियों के आक्रमण हुए; विजय प्राप्त होने पर अपने साथ आये अपने देश के लोगों के साथ वे

यहीं जम गए और परिणामस्वरूप लोक कंठों के मध्यम से बहुत सी लोक कथाओं में देशानुकूल परिवर्तन हुआ, मौखिक आदान प्रदान हुआ।

जैन कथाकार साधु व्याकरण के पण्डित थे। बूलर ने अपने 'हेमचन्द्र' में लिखा है कि शासकों के दरबारों में जैन कवि ब्राह्मण कवियों से सफलतापूर्वक होड़ लेते थे। ऐसा बिलकुल ही असंभव होता यदि जैन कवि व कथाकार ब्राह्मण कवियों के बराबर अथवा उनसे उच्च योग्यता वाले न होते। जैन साधु कवियों को राजदरबारों में स्थान मिल सका तथा वे शासकों पर जैनधर्म का प्रभाव स्थापित कर सके इसका प्रमुख कारण उनकी साहित्यिक शिक्षा-दीक्षा, योग्यता तथा काव्य की विविध शाखाओं का उनका गहन अध्ययन था। जार्ज बूलर ने 'हेमचन्द्र' में इसे काफी स्पष्ट किया है।

जहाँ तक हमें स्मरण है किसी भी देशी विदेशी विद्वान ने जैनों पर भाषा अथवा व्याकरणगत भूलों का दोष नहीं लगाया। जब कि बूलर ने बिल्हण, कालिदास और दण्डी तक के ग्रंथों में अनेकों व्याकरणगत त्रुटियों की ओर निर्देश किया है।[1] बूलर और बेबर ने जैनों के संस्कृत ज्ञान की परिपूर्णता की ओर जो निर्देश किया है उसका प्रमुख कारण यही है कि गुजरात में उस समय संस्कृत लोकभाषा थी। लिखने व बोलने दोनों में ही यह भाषा व्यवहृत होती थी। संस्कृत में लिखे गए जैनों के ग्रंथों के विशाल भण्डार उनके संस्कृत पर पूर्ण अधिकार की पुष्टि करते हैं। १००० वर्षों तक गुजरात में जैनों का बोलबाला रहा, वे ही वहाँ के साहित्यिक व सांस्कृतिक प्रतिनिधि (उस समय के) थे और यही कारण है कि गुजराती संस्कृत का जितना ज्ञान हमें जैन साहित्य से उपलब्ध होता है, उतना अन्य से नहीं।

---

[1] Notes on Page 6, 18 of the पूर्वपीठिका of the दशकुमार चरित by—बूलर

सिद्धसेन दिवाकर

(गताङ्क से आगे)

डॉ० इन्द्र

आचार्य के आसन पर बैठने के बाद सिद्धसेन ने प्राकृत आगमों को संस्कृत में बदलना चाहा। उन्होंने अपने विचार संघ के सामने रखे। इस पर संघ के मुखिया बिगड़ खड़े हुए। उन्होंने कहा—आप सरीखे युग प्रधान आचार्य भी यदि प्राकृत से अरुचि करेंगे तो दूसरों का क्या हाल होगा? हमने परम्परा से सुना है कि चौदह पूर्व संस्कृत में थे और इस लिए साधारण बुद्धि वालों की समझ से बाहर थे। परिणाम स्वरूप वह धीरे धीरे लुप्त हो गए। अभी जो ग्यारह अंग उपलब्ध हैं उन्हें सुधर्मा स्वामी ने बालक, मूढ़ तथा अज्ञानी लोगों पर कृपा करके प्राकृत में रचा। इस भाषा का अनादर करना आपके लिए उचित नहीं है।" आगे वालों ने यहाँ तक कहा—"प्राकृत आगमों को संस्कृत में रूपान्तरित करने के विचार से आप दूषित हुए हैं। स्थविर मुनि आपको इस दोष का प्रायश्चित्त बताएँगे।" स्थविरों ने इसे भगवान् की वाणी का अपमान बता कर पाराञ्चिक प्रायश्चित्त का विधान किया। सिद्धसेन को कहा गया—"आप जैन साधु का वेश छिपाते हुए बारह वर्ष के लिए संघ से बाहर रह कर घोर तप कीजिए। इस प्रायश्चित्त के बिना इतने बड़े दोष की शुद्धि नहीं हो सकती। इस काल के बीच यदि आप कोई ऐसा कार्य करेंगे जिससे शासन की असाधारण प्रभावना हो तो अवधि पूर्ण होने से पहले भी आपकी शुद्धि हो जाएगी और आप अपने इसी पद पर पुनः प्रतिष्ठित हो जाएँगे।" सरल चित्त सिद्धसेन ने प्रायश्चित्त को नतमस्तक होकर स्वीकार किया और साधुवेश छिपाकर गच्छ छोड़ दिया। इसी स्थिति में फिरते फिरते सात वर्ष बीत गए।

घूमते घूमते वे एक बार उज्जयिनी पहुँचे। राजमन्दिर में जाकर उन्होंने द्वारपाल को निम्नलिखित श्लोक देकर राजा के पास भेजा:—

विदृक्षुर्भिक्षुरायातो वारितो द्वारि तिष्ठति।
हस्तन्यस्तचतुः श्लोकः किमागच्छतु गच्छतु?

हाथ में चार श्लोक लिए एक भिक्षु आपसे मिलना चाहता है। द्वारपाल द्वारा रोक दिए जानें के कारण दरवाजे पर खड़ा है। उसे अन्दर आने दिया जाय या वापिस चला जाय ?

गुणग्राही राजा ने दिवाकर को अन्दर बुला लिया। उन्होंनें राजानुमत आसन पर बैठकर नीचे लिखे चार श्लोक कहे--

अपूर्वेयं धनुर्विद्या भवता शिक्षिता कुतः ?
मार्गणौघः समभ्येति गुणो याति दिगन्तरम् ॥
अमी पानकुरङ्गाभाः सप्तापि जलराशयः ।
यद्यशोराजहंसस्य पञ्जरं भुवनत्रयम् ॥
सर्वदा सर्वदोऽसीति मिथ्या संस्तूयसे बुधैः ।
नारयो लेभिरे पृष्ठं न वक्षः परयोषितः ॥
भयमेकमनेकेभ्यः शत्रुभ्यो विधिवत्सदा ।
ददासि तच्च ते नास्ति राजन् ! चित्रमिदं महत् ॥

यह अपूर्व धनुर्विद्या आपने कहाँ से सीखी ? जिसमें मार्गण (बाण और मांगने वाले) सामने आते हैं और गुण (धनुष की डोरी और लोकप्रियता आदि गुण) दूसरी दिशाओं में जाते हैं।

ये सातों समुद्र जिसके यश रूपी राजहंस के पानी पीने के लिए कुण्ड हैं और तीनों लोक निवास के लिए पिंजरा हैं।

विद्वान लोग तुम्हारी झूठी ही प्रशंसा करते हैं कि तुम सब कुछ दे देते हो। तुमने शत्रुओं को कभी पीठ नहीं दी और पराई स्त्री को कभी छाती नहीं दी।

तुम अनेक शत्रुओं को विधिपूर्वक सदा भय का दान करते रहते हो किन्तु वह तुम्हारे पास नहीं है। राजन् ! यह अतीव विचित्र बात है।

दिवाकर द्वारा की गई प्रशंसा को सुनकर राजा अतीव प्रसन्न हुआ और उसनें दिवाकर से कहा—"जिस सभा में आप सरीखा विद्वान् हो वह सभा धन्य है, इस लिए आप यहीं रहिए।" दिवाकर वहीं रहनें लगे।

एक दिन वे राजा के साथ कुंडगेश्वर गए किन्तु मन्दिर के दरवाजे से लौट आए। राजा ने पूछा—आप भगवान् का अपमान क्यों कर रहे हैं ? इनके प्रति भक्ति क्यों नहीं प्रकट करते ?

दिवाकर नें उत्तर दिया—राजन् ! ये भगवान् मेरे नमस्कार को सहन नहीं कर सकेंगे। इसीलिए मैं इन्हें नमस्कार नहीं करता। जो मेरे नमस्कार को सह सकता है, उसे अवश्य नमस्कार करूँगा। यह सुनकर राजा ने कुतूहलवश कहा—

"आप इन्हें नमस्कार कीजिए। मैं देखता हूँ, क्या होता है।"

"यदि कोई उत्पात हुआ तो आप जिम्मेवार हैं।" इस प्रकार जोखम का उत्तरदायित्व राजा पर डालकर दिवाकर मन्दिर में पहुँचे और शिवलिंग के सामने बैठकर नीचे लिखे श्लोकों द्वारा स्तुति करने लगे—

प्रकाशितं त्वयैकेन यथा सम्यग् जगत्त्रयम्।
समस्तैरपि नो नाथ ! परतीर्थाधिपैस्तथा ॥
विद्योतयति वा लोकं यथैकोऽपि निशाकरः।
समुद्गतः समग्रोऽपि तथा किं तारकागणः ॥
त्वद्वाक्यतोऽपि केषांचिदबोध इति मेऽद्भुतम्।
भानोर्मरीचयः कस्य नाम नाऽऽलोकहेतवः ॥
नो वाऽद्भुतमुलूकस्य प्रकृत्या क्लिष्टचेतसः।
स्वच्छा अपि तमस्त्वेन भासन्ते भास्वतः कराः ॥

हे प्रभो ! आपने अकेले जिस प्रकार संसार का यथार्थरूप समझाया है, परतीर्थिक सभी मिलकर भी उस प्रकार नहीं समझा सके। अकेला चन्द्रमा जिस प्रकार संसार को प्रकाशित करता है क्या समस्त तारक समूह मिलकर भी वैसा कर सकता है ? आप की वाणी से भी किसी किसी को ज्ञान नहीं, होता, यह बात मुझे आश्चर्य सी प्रतीत होती है। सूर्य की किरणों से किसको प्रकाश नहीं मिलता ? अथवा इसमें आश्चर्य की क्या बात है ! स्वभाव से क्लिष्ट मन वाले उल्लू को सूर्य की स्वच्छ किरणें भी अन्धकार के समान प्रतीत होती हैं।

इसके पश्चात् न्यायावतार, वीरस्तुति, तीस बत्तीसियाँ तथा कल्याण मन्दिर स्तोत्र की रचना की। कल्याण मन्दिर का ग्यारहवाँ श्लोक बोलते ही धरणेन्द्र नाम के देव प्रकट हुए और शिवलिंग में से धूआँ निकलना प्रारम्भ हुआ। उससे दोपहर में भी रात सरीखा अँधेरा छा गया। लोग घबरा गए और इधर उधर भागने लगे। तदनन्तर शिवलिंग में से अग्नि ज्वाला निकली और अन्त में भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रकट हुई। इस घटना से राजा

को प्रतिबोध प्राप्त हुआ। उसने बड़े समारोह के साथ दिवाकर का उज्जयिनी में प्रवेश कराया और जैन शासन की प्रभावना की।

इस घटना से संघ ने दिवाकर के शेष पाँच वर्ष माफ कर दिए और उन्हें गुप्तवास में से निकाल कर सिद्धसेन दिवाकर के रूप में प्रकट किया।

एक बार सिद्धसेन ने राजा से पूछ कर गीतार्थ शिष्यों के साथ दक्षिण की ओर विहार किया। चलते चलते वे भरुच नगर के बाहर एक ऊँचे स्थान पर पहुँचे। यहाँ नगर तथा गाँव के ग्वालों ने इकट्ठे हो कर सिद्धसेन से धर्म श्रवण की इच्छा प्रकट की। सिद्धसेन ने आग्रह के वशीभूत होकर निम्न लिखित अपभ्रंश का रासो बनाया और उसे ताल, नृत्य आदि के साथ गाकर सुनाया :—

न वि मारिअइ न वि चोरिअइ परदारइ संगु निवारिअइ।
थोवाह वि थोनं दाअइ वसणि दुगु दुगु जाइयइ॥

न किसी को मारना चाहिए, न चोरी करनी चाहिए, पर स्त्री का संग छोड़ना चाहिए, थोड़े में से भी थोड़ा दान देते रहना चाहिए, जिससे दुःख जल्दी दूर हों।

ग्वालों को दिवाकर का उपदेश रुच गया। उन्होंने उसकी स्मृति में वहाँ 'ताल रासक' नाम का गाँव बसाया। दिवाकर ने उस गाँव में मन्दिर बनवाकर उसमें भगवान् ऋषभदेव की मूर्ति स्थापित की। अब भी लोग उसको मानते हैं।

इस प्रकार प्रभावना करके सिद्धसेन भरुच में गए। वहाँ बलमित्र का पुत्र धनंजय राजा राज्य करता था। उसने दिवाकर का बहुत आदर सत्कार किया। एक बार धनंजय पर बहुत से शत्रुओं ने आक्रमण कर दिया। भयभीत होकर वह सिद्धसेन की शरण में पहुँचा। सिद्धसेन ने सरसों के दाने मन्त्रित करके तेल के कड़ाहे में डाल दिए। वे सबके सब मनुष्य का रूप धारण करके बाहर निकले। उनका सैन्य बनाकर राजा धनंजय ने शत्रु को पराजित किया। इस प्रकार सेना बनाने के कारण सिद्धसेन का नाम अन्वर्थक हो गया। अन्त में राजा भी उनके पास दीक्षित हो गया।

इस प्रकार धर्म की प्रभावना करते हुए सिद्धसेन प्रतिष्ठानपुर पैठाण में पहुँचे। वहाँ योग्य शिष्य को अपने आसन पर बैठा कर प्रायोपवेशन अनशन-पूर्वक देह त्याग कर स्वर्गवासी हुए।

इसके बाद उस नगर से कोई वैतालिक—चारण भाट विशाला गया। वहाँ सिद्धश्री नाम की दिवाकर की साध्वी बहिन के पास जाकर उसने नीचे लिखा आधा श्लोक कहा—

स्फुरन्ति वादिखद्योताः साम्प्रतं दक्षिणापथे।

अर्थात्—इन दिनों दक्षिण में वादिरूपी खद्योत चमक रहे हैं।

सिद्धश्री इसका अर्थ समझ गई और उसने श्लोक को पूरा कर दिया—

"नूनमस्तंगतो वादी सिद्धसेनो दिवाकरः।"

यह निश्चित है कि वादी सिद्धसेन दिवाकर अस्त हो गया है।

इसके पश्चात् साध्वी ने भी आराधना पूर्वक देहत्याग कर दिया।

चरित्र के अन्त में उसकी प्रामाणिकता बताते हुए कहा है—

पादलिप्तसूरि और वृद्धवादी के विद्याधर वंश का नियामक प्रमाण यहाँ बताया जा रहा है। विक्रमादित्य के १५० वर्ष पश्चात् जाकुटि श्रावक ने रैवत पर्वत के शिखर पर भगवान् नेमिनाथ के मन्दिर का उद्धार किया। उस समय बरसात से जीर्णशीर्ण मठ की प्रशस्ति में से उपरोक्त वृत्तान्त उद्धृत किया गया है। इस प्रकार प्राचीन कवियों द्वारा रचे गए शास्त्रों में से सुनकर वृद्धवादी और सिद्धसेन दोनों का चरित्र कहा गया है। उससे हर्ष तथा बुद्धि की वृद्धि हो।

श्री चन्द्रप्रभसूरि के शिष्य प्रभाचन्द्र हैं। राम पिता तथा लक्ष्मी माता के पुत्र प्रभाचन्द्र द्वारा रचे गए पूर्वर्षियों के चरित्र में वृद्धवादी और दिवाकर विषय पर आठवाँ आख्यान पूर्ण हुआ। इसका संशोधन प्रद्युम्नसूरि ने किया है।

प्रबन्धों में वर्णित घटनाओं की परस्पर तुलना

कथावली में सिद्धसेन विषयक जो गद्य प्रबन्ध है, उसमें केवल नीचे लिखी चार घटनाएँ दी गई हैं—

(१) प्रणाम के बदले में राजा को धर्मलाभ तथा राजा द्वारा कोटि द्रव्य का अर्पण।

(२) प्राकृत आगमों को संस्कृत में करने का दिवाकर का विचार और दण्डरूप में संघ द्वारा पारांचिक प्रायश्चित्त का विधान।

(३) अज्ञात वेश में दिवाकर द्वारा कुंडगेश्वर की स्तुति तथा बत्तीसियों द्वारा पार्श्वनाथ की प्रतिमा का प्रकट होना।

(४) दिवाकर का दक्षिण में विचरना और वहीं स्वर्गवास।

पूर्व सूचित खण्डित पद्यप्रबन्ध में ऊपर लिखी चार घटनाओं में से पहली तीन हैं। उनके अतिरिक्त तीन और हैं—

(१) वृद्धवादी के साथ शास्त्रार्थ और हारने पर उनका शिष्य बनना।

(२) किसी आपद्ग्रस्त राजा को धन तथा सेना की सहायता देना और फलस्वरूप उसके द्वारा सम्मानित होना।

(३) राजसत्कार के लोभ में पड़ना और अन्त में गुरु वृद्धवादी के उपदेश से सावधान होना।

ये छहों घटनाएँ प्रभावक चरित्र में वर्णित घटनाओं से थोड़ा बहुत अन्तर तो रखती हैं किन्तु प्रति खण्डित होने से वे न्यूनाधिक मात्रा में अपूर्ण हैं। इसमें सिद्धसेन द्वारा सहायता दिए गए राजा का नाम नहीं मिलता। स्वर्गवास-स्थल के विषय में भी उल्लेख नहीं है।

चतुर्विंशति प्रबन्ध की रचना प्रभावक चरित्र के आधार पर हुई है। इसलिए उसमें वर्णित घटनाएँ शब्दशः प्रभावक चरित्र से मिलती हैं। फिर भी उसमें दो बातें नई हैं। पहली बात है विक्रम राजा के सामने महाकाल के मन्दिर की उत्पत्ति का वर्णन और दूसरी बात है ॐकार नगर में शैवमन्दिर की स्पर्द्धा में विक्रम द्वारा जैन मन्दिर का भी निर्माण कराना।

पाँचवां प्रबन्ध प्रबन्ध चिन्तामणि के अन्तर्गत विक्रमार्क प्रबन्ध में सिद्धसेन का प्रसङ्गोपात्त वर्णन है। इसमें सिद्धसेन और वृद्धवादी के संबन्ध में जो बातें लिखी हैं वे पूर्वोक्त चारों प्रबन्धों से महत्वपूर्ण भेद रखती हैं।

(१) प्रभावक चरित में वृद्धवादी स्कन्दिलाचार्य के शिष्य हैं, प्रस्तुत प्रबन्ध में वे आर्यसुहस्ती के शिष्य हैं।

(२) प्रभावक चरित्र से ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे उज्जयिनी तरफ के निवासी हों, प्रबन्ध चिन्तामणि में इन्हें दक्षिण कर्णाटक का निवासी बताया है।

(३) उपरोक्त चारों प्रबन्धों में स्तुति द्वारा भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा का प्रकट होना बताया गया है। प्रबन्धचिन्तामणि के अनुसार ऋषभदेव की प्रतिमा प्रकट हुई थी।

(४) उपरोक्त चारों प्रबन्धों में विक्रम द्वारा दिए गए धन का उपयोग चैत्योद्धार आदि कार्यों में बताया गया है, प्रस्तुत प्रबन्ध में उसका उपयोग लोगों के कर्ज चुकाने में बताया गया है। साथ में यह भी बताया गया है कि उसी समय विक्रम राजा ने विक्रम संवत् चलाया।

(५) प्र० च० आदि के अनुसार सिद्धसेन ने देवपाल की सहायता की थी। प्रस्तुत प्रबन्ध के अनुसार वह सहायता विक्रम को दी थी।

(६) प्र० च० आदि में प्रायश्चित्त संघ अथवा स्थविरों ने दिया था। प्रस्तुत प्रबन्ध में गुरु प्रायश्चित्त देते हैं।

उपरोक्त प्रबन्धों में वर्णित घटनाओं के सार रूप हमें सिद्धसेन के जीवन विषयक नीचे लिखी सामग्री मिलती है—

(१) वृद्धवादी ने अधिक विद्वत्ता न होने पर भी समय सूचकता, गम्भीरता तथा त्याग के बल पर एकवचनी तथा महाविद्वान् सिद्धसेन को अपनी ओर आकृष्ट किया और अपना शिष्य बना लिया।

(२) दक्षिण भारत में पैठाण से लेकर उत्तर हिन्दुस्तान में उज्जैन तक उनका विहार क्षेत्र रहा। इसमें भिरुच का प्रमुख स्थान है।

(३) उज्जैन अथवा किसी अन्य स्थान के विक्रमादित्य उपाधिधारी राजा के साथ उनका गाढ़ संबन्ध था। उसमें धर्मप्रचार तथा धर्मरक्षा के लिए सिद्धसेन राजा की सहायता प्राप्त करते हैं और शत्रु का भय निवारण करने के लिए राजा सिद्धसेन की सहायता लेता है।

(४) सिद्धसेन ने प्राकृत आगमों को संस्कृत में करने का विचार किया और उसके परिणाम स्वरूप उन्हें कठोर दण्ड मिला।

(५) दिवाकर का संस्कृत में पाण्डित्य और संस्कृत ग्रन्थों की रचना।

(६) दिवाकर का राज्यसत्कार के लोभ में पड़कर साधुधर्म से शिथिल हो जाना और फिर गुरु द्वारा सावधान किया जाना।

(७) दक्षिण देश में स्वर्गवास।
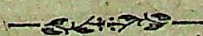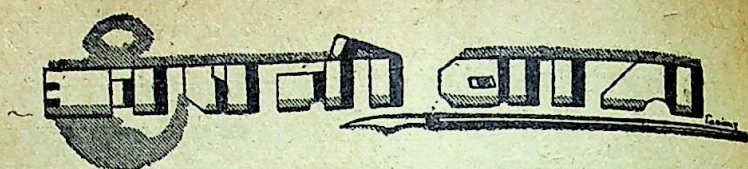
मित्ती मे सव्वभूएसु

पर्युषण जैन परम्परा का सबसे बड़ा पर्व है। अहिंसा, संयम, और तप के जिस महान् ध्येय को लेकर जैन धर्म का प्रादुर्भाव हुआ, जो हमारी समस्त प्रवृत्तियों का केन्द्र बिन्दु है, जिस के साथ रहने पर जैन धर्म सब कुछ है और जिस के बिना कुछ नहीं है, प्रस्तुत पर्व उसी उच्चतम ध्येय का जीवित प्रतीक है। इस अवसर पर प्रत्येक जैन से यह आशा की जाती है कि वह आत्मशुद्धि को लक्ष्य में रख कर अपने विकास और ह्रास पर विचार करे। वर्ष भर में प्रमाद, आलस्य या कषाय के वशीभूत होकर जो स्खलनाएं की हों उनकी पश्चाताप तथा प्रायश्चित द्वारा शुद्धि करे तथा भविष्य के लिए नया दृढ़ संकल्प लेकर आत्मविकास के मार्ग पर प्रवृत्त हो।

जहाँ तक इस पर्व के महत्व का प्रश्न है, व्यक्ति तथा समाज दोनों के लिए यह बहुत बड़ा वरदान है। यदि सभी व्यक्ति समाज तथा राष्ट्र अपने पुराने झगड़ों को वर्ष में एक बार भी शुद्ध हृदय से निपटाना सीख लें तो युद्ध की विभीषिकाएं समाप्त हो जाँय। किन्तु इसे सिखाने का उत्तरदायित्व जैन समाज पर है और वह भी उपदेश द्वारा नहीं किन्तु आदर्श उपस्थित करके।

अहिंसा और स्याद्वाद के सिद्धान्त को लेकर हम यह दावा करते हैं कि इससे विश्व में शान्ति स्थापित हो सकती है। किन्तु एक तटस्थ व्यक्ति पूछता है—यह सिद्धान्त तो बड़ा अच्छा है, क्या यह व्यावहारिक भी है? यदि यह व्यावहारिक नहीं है तो इस का कोई मूल्य नहीं है। यदि व्यावहारिक है तो उदाहरण उपस्थित करना चाहिए। महात्मा गांधी ने अहिंसा को व्यवहार में उतार कर उसे जो जीवन प्रदान किया वह शताब्दियों तथा सहस्राब्दियों के उपदेश नहीं कर सके। जैन समाज के सामने भी यही चुनौती है। उस के सिद्धान्त बड़े अच्छे हैं। किन्तु क्या वह उन्हें जीवन में उतार कर उदाहरण उपस्थित कर सकता है?

इस दृष्टि से देखा जाय तो हमारी तैयारी बहुत कम है। हम स्याद्वाद द्वारा परस्पर विरोधी मतभेदों को जोड़ने का दावा करते हैं किन्तु अपने नगण्य से बुद्धि-भेद को भी दूर नहीं कर सकते। उस समय हमारा अहङ्कार धर्म-रक्षक का जामा पहिन कर उद्दाम नृत्य करने लगता है। उस समय हम

टस से मस नहीं होना चाहते और समझते हैं थोड़ा सा इधर उधर होते ही धर्म डूब जाएगा।

ब्राह्मण काल में जब यज्ञ याग आदि का जोर था, ऐसी ही मान्यताएं मानव बुद्धि को घेरे हुए थीं। यज्ञ के लिए वेदी कितनी लम्बी कितनी चौड़ी तथा कितनी ऊँची हो, उसमें लगनें वाली ईंटें कितनी बड़ी हों, पुरोडाश पकाने के लिए चरु कितनी बड़ी हो और चम्मच कितना बड़ा, उसकी डण्डी कितनी लम्बी हो और आगे का भाग कितना विस्तृत, इत्यादि बातों को अत्यन्त महत्व दिया गया था और यह माना जाता था कि उसमें तनिक भी फेरफार हुआ तो फल सिद्धि नहीं होगी। मनुष्य को अपनी बुद्धि से सोचने या चलनें का कोई अधिकार न था।

महावीर ने मानव को उस बौद्धिक गुलामी से मुक्त किया। उसे स्वयं सोच कर चलनें की प्रेरणा दी। उन्होंने कहा—"सावधानी से सोच विचार कर चलो, सोच विचार कर बैठो, सोच विचार कर खाओ, पीओ; इस प्रकार पाप नहीं लगेगा।" उन्होंने बताया—मनुष्य को वेश भूषा तथा बाह्य क्रिया कांड की ओर ध्यान न देकर आन्तरिक शुद्धि की ओर झुकना चाहिए। श्रमण समता से बनता है और ब्राह्मण ब्रह्मचर्य से।

किन्तु महावीर का आत्मलक्षी मार्ग भी बाह्य वेश भूषा और क्रियाकांड के दल दल में फँसता जा रहा है। हम इस बात को भूल गए हैं कि वेश भूषा और क्रियाकांड का उपयोग केवल साधन के रूप में हैं। वे अपनें आप में साध्य नहीं हैं। मीमांसादर्शन में 'व्रीहीनवहन्ति' के रूप में एक शास्त्रार्थ आता है। यज्ञ के लिए चावलों को तैयार करते समय छिलके को अलग करके दाने निकालनें होते हैं। उसी समय प्रश्न होता है कि धान को कूट कर छिलका अलग किया जाय या नाखून आदि से भी उसे अलग किया जा सकता है। अन्त में नियम बनाया जाता है कि कूट कर ही छिलके को अलग करना चाहिए। जैन दृष्टि से ऐसी चर्चायें व्यर्थ हैं। वहाँ तो यही कहा जायगा कि तुम्हें चावल के दानों से काम है। छिलका कैसे हटाया जाय, इसका कोई महत्व नहीं है।

चावल के दानों के समान असली वस्तु आत्म शुद्धि है। अनासक्ति, समता, कषायों पर नियन्त्रण, आत्मचिन्तन, भावनाएँ, ध्यान आदि उसके निश्चित मार्ग हैं। उस मार्ग पर चलने की सुविधा तथा शरीर निर्वाह के लिए सामान्यतया साधु तथा श्रावकों की चर्या बताई गई है। किन्तु यदि

आत्मशुद्धि के मार्ग पर चलना छोड़कर केवल चर्या पर ही शास्त्रार्थ करने में जीवन बिता दिया जाय तो वह दुर्लभ मानव जीवन का सदुपयोग नहीं है।

दो यात्री एक ही मार्ग पर चलना चाहते हैं। एक कहता है मुझे जूते पहिन कर चलने में सुविधा होती है, दूसरा नंगे पैंर चलना चाहता है। यदि दोनों चलना बन्द करके शास्त्रार्थ करने के लिए वहीं बैठ जाँय और अपना अमूल्य समय नष्ट कर दें तो उन्हें कौन बुद्धिमान कहेगा ? आवश्यकता इस बात की है कि दोनों चल पड़ें। भविष्द में यदि कोई कठिनाई आए तो परस्पर मिथ्या आरोपों में न पड़कर उसे दृढ़तापूर्वक सहें और आगे बढ़ते जाँय।

पर्युषण पर्व इसी बात की याद दिलाने आता है कि हम आत्मलक्षी बनें। बाह्य छोटी छोटी बातों की ओर ध्यान न देकर आत्म शुद्धि के लक्ष्य को सामने रखें। प्रतिक्रमण एक करें या दो करें, 'मिच्छा मि दुक्कडं' एक बार कहें या दो बार—इसका महत्व नहीं है। महत्व इस बात का है कि जो कुछ करें वह आत्मा को स्पर्श करे, उसमें हृदय की सच्ची भावना अभिव्यक्त हो, मन, वाणी और शरीर की एकसूत्रता हो। हम अपने व्रतों में 'तिविहेणं' कहते हैं। अर्थात् मन, वचन और शरीर तीनों को एक ही लक्ष्य पर केन्द्रित करते हैं। हमें यह सोचना चाहिए कि वे वास्तव में केन्द्रित हो रहे हैं या केवल पाठ का उच्चारण किया जा रहा है। बिना केन्द्रित किए इस प्रकार के पाठ का उच्चारण करना व्यर्थ ही नहीं है आत्मवञ्चना भी है और आत्मवंचना आत्मशुद्धि का सबसे बड़ा शत्रु है। वह तो विष पीकर प्यास बुझाने के समान है। आवश्यकता इस बात की है कि जो कुछ किया जाय थोड़ा या बहुत, उसमें ईमानदारी हो, सरलता हो। तभी धर्म में जीवन आ सकता है।

सांवत्सरिक प्रतिक्रमण आत्मा के पर्यालोचन के लिए किया जाता है। अपने पाप कर्मों की निन्दा करते हुए हम उस दिन प्रत्येक प्राणी से क्षमायाचना करते हैं। "मित्ती मे सव्वभूएसु" की आराधना करते हैं। किन्तु यह सोचना चाहिए, क्या हम वास्तव में सबसे मित्रता स्थापित कर लेते हैं ? मित्रता के पाठ का उच्चारण करने मात्र से मित्रता स्थापित नहीं हो जाती। मित्रता स्थापित करने का यह पवित्र संकल्प तभी सार्थक है जब तदनुरूप चित्तशुद्धि हो जाय। 'मित्ती मे सव्वभूएसु' कह कर भी यदि हम दूसरे की निन्दा करते हैं, उसे नीचा दिखाने की भावना रखते हैं, उसके उत्कर्ष पर ईर्ष्या करते हैं तो इसका अर्थ है हमने उस पाठ का उच्चारण शुद्ध मन से नहीं किया।

इस समय विश्व को ऐसे जैनियों की आवश्यकता है जो 'मित्ती मे सव्वभूएसु' के संकल्प को जीवन में उतार कर बता सकें। ऐसा महामानव साधु हो या गृहस्थ हो, जैन परम्परा का अनुयायी हो या अन्य किसी परम्परा का, स्त्री हो या पुरुष हो, संसार उसके चरणों में शत शत बन्दन करेगा। वही इस पर्व को जैन समाज की संकुचित परिधि से निकाल कर विश्व का महान् पर्व बना सकेगा।

मध्य प्रदेश राज्य का शुभ निश्चय

मध्य प्रदेश की सरकार ने १५ अगस्त को भारतीय स्वाधीनता के मंगल दिवस पर, समस्त कसाई खाने बन्द रखने का निश्चय किया है। महात्मा गांधी सरीखे अहिंसा के महान् पुजारी जिस राष्ट्र के पिता हों, जहाँ बुद्ध का धर्मचक्र राष्ट्रीय सम्मान का प्रतीक हो, जिस देश में समस्त प्राणियों को अभयदान देने वाली महावीर की वाणी गूंज रही हो वहाँ प्राणिवध पर किसी प्रकार का नियन्त्रण न होना लज्जा की बात है। हमारा यह दुर्भाग्य है कि जब भी ऐसे प्रश्न उठाए जाते हैं तो उन्हें साम्प्रदायिकता का रूप दे दिया जाता है। वास्तव में देखा जाय तो अहिंसा हिन्दू, मुसलमान, जैन, बौद्ध, पारसी, ईसाई आदि किसी धर्म विशेष का प्रश्न नहीं है। प्रत्युत सभी धर्म इस का समर्थन करते हैं। मानव जितना अहिंसा की ओर बढ़ेगा उतनी ही उसकी वृत्तियाँ सात्त्विक होंगी और वह राष्ट्र तथा समाज के लिए मंगलमय बनता जाएगा। क्रूरता मानवता का अभिशाप है। वह जितने अंश में दूर होगी, मानवता उतनी ही ऊँची उठेगी। पशुओं का बध तो अर्थनीति की दृष्टि से भी हानिकर है। मध्य प्रदेश सरकार ने भारत के अहिंसा-संग्राम की स्मृति के रूप में जो यह निश्चय किया है हम उस का स्वागत् करते हुए आशा करते हैं कि यह दिवस समस्त भारत के लिए अमारि-दिवस बन जाएगा। दूसरे राज्य तथा केन्द्र इस पर ध्यान देंगे। हम यह भी आशा करते हैं कि अहिंसा की जिस अमर ज्योति को महात्मा गांधी ने अपने समस्त जीवन तथा प्राणों की आहुति देकर प्रज्वलित किया वह स्वतन्त्र भारत में धुँधली न होने पाएगी। प्रत्येक व्यक्ति से भी हमारा अनुरोध है कि वह अहिंसा की स्मृति को स्थायी रखने के लिए पन्द्रह अगस्त को 'अहिंसा दिवस' के रूप में मनाए।

विद्याश्रम समाचार

श्री सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति का चौदहवां वार्षिक जनरल अधिवेशन तारीख २६ जुलाई १९५३ रविवार को अमृतसर में नियत समय और स्थान पर हुआ। स्थायी प्रधान श्री त्रिभुवननाथ जी की अनुपस्थिति में प्रो० मस्तराम जैनी, हिन्दू कालेज, अमृतसर, सभापति चुने गए थे।

१. चौदहवीं रिपोर्ट बाबत सन् १९५२ की प्रकाशित होकर सब सदस्यों की सेवा में जा चुकी है और जिसमें उस वर्ष की आमदनी व खर्च का हिसाब और आर्थिक स्थिति भी प्रकाशित हुई है, पढ़ी गई और विचारोपरान्त निम्न सुधारों के साथ पास की गई—

(क) मितिदान और साधारण सदस्यों की सूची में श्री रत्नचंद्र जैन, M.A., पंसारी बाज़ार, लुधियाना का नाम भूल से रह गया है।

(ख) सदस्यों की सूची में उपसंरक्षकों में श्री श्वे० स्था० जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर का नाम छूट गया है। सभा ने इन भूलों पर खेद प्रगट किया, और सुधार लेने का निश्चय किया।

२. बजट बा० सन् १९५३ प्रकाशनानुसार पास किया गया और सर्वश्री दास एन्ड कम्पनी, चार्टर्ड अकौन्टैन्ट्स को इस वर्ष के हिसाब के लिए आडिटर नियत किया।

३. नई मैनेजिंग कमेटी के लिए निम्न सदस्य चुने गए। आजीवन सदस्यों में से—(१) श्री त्रिभुवननाथ, कपूरथाला, (२) श्री पन्नालाल, (३) श्री मुनिलाल, ४) श्री सुरेन्द्रनाथ M.A. B.Com., (५) श्री हंसराज, गुरु बाज़ार (६) प्रो० मस्तराम जैनी, M.A. LLB., और (७) श्री हरजसराय जैन, अमृतसर वाले, (८) श्री टेकचन्द, दिल्ली, (९) श्री लक्ष्मीचंद, अम्बाला (१०) श्री बंसीलाल, होशियारपुर, (११) श्री जगन्नाथ जैनी, National Advertising service, खार, बम्बई, (१२) श्री रामजीदास जिन्दल दिल्ली, (१३) श्री कुंजलाल जी ओसवाल, दिल्ली, (१४) श्री हीरालाल जैन, Advocate, लुधियाना।

साधारण सदस्यों में से—(१) श्री शादीलाल जैन, B.Com., (२) श्री कस्तूरीलाल जैन, अमृतसर (३) श्री अमरचन्द, मालेरकोटला, (४) श्री दौलतराम जैन, जालन्धर (५) श्री विद्याप्रकाश जैन, अम्बाला (६) श्री शोरीलाल, कपूरथला, (७) श्री रत्नचन्द्र जैन, M.A. लुधियाना और (८) श्री अमृतलाल जैन, B.A.LLB., कलकत्ता।

इसके पश्चात् ही समिति की जनरल मीटिंग का अधिवेशन हुआ। सभापति पूर्ववत् प्रो० मस्तरामजी जैनी थे। नियमावली (Constitution) के उद्देश्यों में निम्न उद्देश्य भी शामिल किया गया—

(६) "समिति की नियमावली में निर्धारित सीमाओं के अधीन मैनेजिंग कमेटी की स्वीकृति के अनुसार उन शर्तों पर निश्चित रकम समिति के काम के लिए उधार लेना।"

इसकी सूचना रजिस्ट्रार आफ सोसायटीज़, पंजाब को दे दी गई है, सभापति के प्रति धन्यवाद का प्रस्ताव करके सभा समाप्त हुई।

इसी प्रकार इस जनरल अधिवेशन ने समिति को जैन साहित्य निर्माण योजना के पहले आयोजन—जैन साहित्य के इतिहास—के लिए धन देकर इसको आगे बढ़ाना स्वीकार कर लिया है। जमीन के लिए रकम जमा कराई जा चुकी है।

शोक समाचार

अगस्त के आरम्भ में होशियारपुर निवासी ला० रोशनलाल जी का हृदय की गति बन्द हो जाने से अचानक स्वर्गवास हो गया। आप श्री सोहन लाल जैन धर्म प्रचारक समिति के सदस्य थे और समिति के आजीवन सदस्य ला० बंसीलाल जी के विश्वासपात्र एवं प्रिय भतीजे थे। आप विद्यार्थियों को प्रायः प्रोत्साहन देते रहते थे तथा स्थानीय जनता में प्रतिष्ठित स्थान रखते थे। इस समय आप की आयु केवल ३९ वर्ष की थी। दो वर्ष पहले आपके भाई श्री बनारसी दास जी भी इसी प्रकार इसी आयु में चल बसे थे। उनकी इस असामयिक मृत्यु पर हमें हार्दिक शोक एवं दुःख है। समिति उनके परिवार के साथ समवेदना प्रकट करती है।

—मंत्री

साहित्य स्वीकार

१. वर्णी वाणी।
२. हमारा आहार और गाँव।
३. तत्त्व समुच्चय।
४. धर्मशिक्षावली पहला भाग।
५. साधर्मि परीक्षा।

नोट—समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी चाहिए। एक प्रति आने पर केवल प्राप्ति स्वीकार की जाएगी।

पर्युषण के पवित्र पर्व पर

उच्चकोटि के जैन साहित्य का निर्माण करने वाली हमारी साहित्य-योजना का ध्यान रखिए

भारतीय तथा विदेशी विद्वानों को जैन परम्परा एवं संस्कृति का पूर्णाङ्ग परिचय देने के लिए उपरोक्त योजना तैयार की गई है। इस में श्वेताम्बर तथा दिगम्बर परम्पराओं के लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों का सहयोग है। योजना के अन्तर्गत सर्वप्रथम जैन साहित्य का सर्वाङ्गीण इतिहास तैयार करने का निश्चय हुआ है। यह ग्रन्थ कम से कम रायल आकार के ३००० पृष्ठों का होगा। इसके निर्माण एवं प्रारम्भिक व्यय के लिए नीचे लिखे अनुसार २५०००) रु० की आवश्यकता है —

(क) ५०००) साहित्य का इतिहास लिखने के लिए प्रकाशित एवं अप्रकाशित समग्र जैन साहित्य का संग्रह। जो ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुए हैं उन की प्रतिलिपि माइक्रोफिल्म या अन्य प्रकार से प्राप्त करनी होगी। श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम के शतावधानी रत्नचन्द्र जैन पुस्तकालय में जैन साहित्य का आवश्यक संग्रह है, उसे पूर्ण बनाने की आवश्यकता है।

(ख) १५०००) ग्रन्थ लेखन के लिए विद्वानों का पारिश्रमिक।

(ग) ५०००) विचार विनिमय के लिए आमन्त्रित विद्वानों के मार्ग व्यय तथा अन्य फुटकर खर्च के लिए।

ज्ञानदान धर्मप्रभावना का सर्वोत्तम साधन है। संवत्सरी के इस धर्म पर्व पर श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति समस्त श्रीसंघों तथा उदार सज्जनों से अनुरोध करती है कि साहित्य निर्माण के उपरोक्त अनुष्ठान में यथा शक्ति सहयोग दें। विद्वान मुनिवरों से भी हमारी प्रार्थना है कि वे श्रावक समाज का ध्यान इस ओर आकृष्ट करें।

रुपया मनिआर्डर या बैंक ड्राफ्ट द्वारा नीचे लिखें पतों पर भेजने की कृपा करें।

१. अधिष्ठाता श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम
हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस ५

२. मंत्री, श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति
गुरु बाज़ार अमृतसर (पंजाब)

निवेदक

त्रिभुवननाथ
प्रधान

हरजसराय जैन
मंत्री

श्रमण
वर्ष
५
सम्पादक
डॉ० इन्द्रचन्द्र शास्त्री एम.ए., पी-एच. डी.
श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम हिन्दू युनिवर्सिटी

इस अंक में

१. साहित्य-वन्दना १
२. आचार्य जिनभद्र २
३. जैन साहित्य के इतिहास निर्माण के सूत्र—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ११
४. श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति, अमृतसर—इन्द्र १७
५. शास्त्र रचना का उद्देश्य—पं० सुखलाल जी २४
६. जैन साहित्य के विषय में अजैन विद्वानों की दृष्टियाँ २५
७. अपनी बात (सम्पादकीय)— ३१
८. श्री जैन साहित्य निर्माण योजना ३४

श्रमण के विषय में–

१. श्रमण प्रत्येक अंगरेजी महीने के पहले सप्ताह में प्रकाशित होता है।
२. ग्राहक पूरे वर्ष के लिए बनाए जाते हैं।
३. श्रमण में सांप्रदायिक कदाग्रह को स्थान नहीं दिया जाता।
४. विज्ञापनों के लिए व्यवस्थापक से पत्र व्यवहार करें।
५. पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।
६. वार्षिक मूल्य मनिऑर्डर से भेजना ठीक होगा।
७. समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आनी चाहिए।

वार्षिक मूल्य ४) **एक प्रति ।=)**

प्रकाशक—**कृष्णचन्द्राचार्य,**

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस-५

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस का मुखपत्र

वर्ष ५ नवम्बर १९५३ अंक १

साहित्य-वन्दना

तित्थयरे भगवंते अणुत्तरपरक्कमे अमियनाणी ।
तिन्ने सुगइगइगए, सिद्धिपहपएसए वंदे ॥
वंदामि महाभागं, महामुणिं महायसं महावीरं ।
अमर नरराय महियं, तित्थयरमिमस्स तित्थस्स ॥
इक्कारस वि गणहरे पवायए पवयणस्स वंदामि ।
सव्वं गणहरवंसं वायगवंसं पवयणं च ॥

सर्वश्रेष्ठ पराक्रम के धारक, अमितज्ञानी, संसार से तीर्ण, मोक्ष में विराजमान, सिद्धिमार्ग के उपदेशक तीर्थङ्कर भगवान् को हमारा वन्दन है।

महाभाग्य, महामुनि, महायश, अमर तथा नरेन्द्रों से पूजित, वर्तमान तीर्थ के प्रवर्तक भगवान् महावीर को हमारा वन्दन है।

प्रवचनकार ग्यारह गणधरों को, गणधरों के वंश को, वाचक वंश को तथा प्रवचन को हमारा वन्दन है।

वंदामि भद्दबाहुं पाईणं चरिमसयलसुयनाणी ।
सुत्तस्स कारगमिसिं दसासु कप्पे य ववहारो य ॥

दशाश्रुतस्कन्ध, कल्प तथा व्यवहार सूत्रों के रचयिता, सकल श्रुत ज्ञान के धारक, प्राचीन गोत्री ऋषि भद्रबाहु स्वामी को हमारा वन्दन हो।

नमो तेसिं खमासमणाणं जेहिं इमं वाइयं दुवालसंगं गणिपिडगं भगवंतं।
नमो तेसिं खमासमणाणं जेहिं इमं वाइयं छव्विहमावस्सयं भगवंतं।
नमो तेसिं खमासमणाणं जेहिं इमं वाइयं अंगवाहिरं उक्कालियं भगवंतं।
नमो तेसिं खमासमणाणं जेहिं इमं वाइयं अंगबाहिरं कालियं भगवंतं।

उन क्षमाश्रमणों को नमस्कार हो जिन्होंने द्वादशांग गणिपिटक भगवान् की वाचना दी।

उन क्षमा श्रमणों को नमस्कार हो जिन्होंने षड्विध आवश्यक भगवान् की वाचना दी।

उन क्षमाश्रणों को नमस्कार हो जिन्होंने अंग बाह्य उत्कालिक भगवान् की वाचना दी।

उन क्षमाश्रमणों को नमस्कार हो जिन्होंने अंगबाह्य कालिक भगवान् की वाचना दी।

तत्त्वार्थ सूत्र कर्तारमुमास्वाति मुनीश्वरम्।
श्रुतकेवलिदेशीयं वन्देऽहं गुणमन्दिरम्॥

श्रुतकेवली के समकक्ष, गुणों के मन्दिर, तत्वार्थ सूत्र की रचना करने वाले मुनीश्वर उमास्वाति को वन्दन हो।

पालित्तं सूरिः स श्रीमान्, अपूर्वः श्रुतसागरः।
यस्मात्तरंगवत्याख्यं, कथास्रोतो विनिर्ययौ॥

पालित्त सूरि अपूर्व श्रुतसागर हैं, जिनसे तरंगवती नाम का कथास्रोत निकला।

सुअकेवलिणा जओ भणियं,
आयरिय सिद्धसेणेण सम्मईए पइट्ठियजसेण।
दूसमनिसा दिवाकर कप्पत्तणओ तदक्खेणं॥

कलिकाल रूपी निशा के लिए दिवाकर के समान होने के कारण अन्वर्थ नाम वाले यशस्वी, श्रुतकेवली आचार्य सिद्धसेन दिवाकर नें सन्मति में (कहा है)।

—हरिभद्र

आचार्य जिनभद्र

पूर्व भूमिका

इस विश्व का मूल, सत् है अथवा असत् है, इस विषयमें दो परस्पर विरोधी वादोंका खंडनमंडन उपनिषदों में उपलब्ध होता है। त्रिपिटक तथा गणिपिटक–जैन-आगम में भी विरोधी का खंडन करने की प्रवृत्ति दृग्गोचर होती है। अतः हम यह विश्वास कर सकते हैं कि वाद विवाद का इतिहास अति प्राचीन है और उत्तरोत्तर उसका विकास होता रहा है। किंतु दार्शनिक विवादों के इतिहास में नागार्जुन से लेकर धर्मकीर्ति के समय तक का काल ऐसा है जिसमें दार्शनिकों की वाद विवाद संबंधी प्रवृत्ति तीव्रतम हो गई है। नागार्जुन, वसुबन्धु और दिग्नाग जैसे बौद्ध आचार्यों के तार्किक प्रहारों के वार सभी दर्शनों पर सतत पड़े और उनके प्रतीकारके रूप में भारतीय दर्शनों में पुर्नविचार की धारा प्रवाहित हुई। न्याय दर्शन में वात्स्यायन और उद्द्योतकर, वैशेषिक दर्शन में प्रशस्तपाद, मीमांसा दर्शन में शबर और कुमारिल जैसे प्रौढ विद्वानों ने अपने दर्शनों पर होने वाले प्रहारों के प्रत्युत्तर दिए। यही नहीं, उन्होंने इस व्याज से स्वदर्शन को भी नया प्रकाश प्रदान कर उन्हें सुव्यवस्थित करने का प्रयत्न किया। दार्शनिक विवाद के इस अखाड़े में जैन तार्किकों ने भी प्रवेश किया और अपने आगम के आधार पर जैन दर्शन को तर्कपुरःसर सिद्ध करने का प्रयत्न किया।

ऐसा प्रतीत होता है कि आचार्य उमास्वति ने इस विवाद से तत्त्वार्थ सूत्र लिखने की प्रेरणा प्राप्त की, परन्तु उन्होंने उन सब का खंडन कर जैन दर्शन को स्वकीय रूप प्रदान करने का कार्य नहीं किया। उन्होंने केवल जैन दर्शन के तत्त्वों को सूत्रात्मक शैली में उपस्थित किया और विवाद का काम बाद में होने वाले पूज्यपाद, अकलंक, सिद्धसेनगणि, विद्यानन्द आदि टीकाकारों के लिए शेष छोड़ दिया।

आचार्य सिद्धसेन दिवाकर ने इस विवाद में से जैनन्याय की आवश्यकता का अनुभव कर न्यायावतार जैसी अत्यन्त संक्षिप्त कृति की रचना की और जैनन्याय में महत्त्वपूर्ण स्थान रखने वाले अनेकान्तवाद के मूल में स्थित नयवाद का विवेचन करने के लिए सन्मति तर्क लिखा। किंतु इन दोनों

कृतियों में अधिकतर प्रयत्न इसी बात का किया गया है, कि दार्शनिक जगत् का तटस्थ अवलोकन कर अपने दर्शन को व्यवस्थित किया जाए। अन्य दार्शनिकों की युक्तियों का खंडन करने का कार्य गौण है।

आचार्य सिद्धसेन के विषय में यह तो नहीं कहा जा सकता कि वे दार्शनिक अखाड़े में एक प्रबल प्रतिमल्ल के रूप में अपने ग्रंथों को ले कर उपस्थित हुए। उनके ग्रंथों में जैन दर्शन की व्यवस्था के बीज विद्यमान हैं। किन्तु उनमें अन्य दार्शनिकों की छोटी बड़ी सभी महत्त्वपूर्ण युक्तियों का खंडन करने का प्रयास नहीं किया गया है। छोटी छोटी युक्तियों के वाग्जाल में न पड़ कर केवल महत्त्व की बातों का खंडन मंडन उनके ग्रंथों में है। आचार्य समन्तभद्र के ग्रंथों के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। उन्होंने विस्तार की अपेक्षा संक्षेप को अधिक महत्त्व दिया है। दोनों केवल प्रबल वादी नहीं, प्रत्युत महावादी हैं। तथापि उनके ग्रंथ उद्द्योतकर अथवा कुमारिल के समान अत्यधिक गहराई में नहीं जाते। इन दोनों आचार्यों ने तर्क-प्रतितर्क का जाल बिछाने का कार्य नहीं किया। किंतु निष्कर्ष में उपयोगी युक्तियां देकर निर्णय किया है। वे युक्तियां ऐसी हैं कि उनके ही आधार पर उनकी टीकाओं में प्रचुर मात्रा में विवादों की रचना की जा सकती है। सारांश यह है कि इन दोनों आचार्यों नें तर्कजाल में न पड़कर केवल अंतिम कोटि का तर्क कर संतोष किया है।

किन्तु इससे उनके ग्रंथों में ऐसा सामर्थ्य नहीं आया जिससे कि उन्हें आचार्य दिग्नाग, कुमारिल अथवा उद्द्योतकर जैसे मल्लों के सन्मुख प्रतिमल्ल के रूपमें रखा जा सके। अतिविस्तार के सामने अति संक्षेप ढक जाता है। जब उनके ग्रंथों की वादमहार्णव जैसी तथा अष्टसहस्री जैसी टीकाएँ तय्यार हुईं, तभी उन ग्रंथोंकी प्रतिमल्लता की ओर ध्यान जाता है। किंतु आचार्य जिनभद्र के विषय में यह बात नहीं। उनके ग्रंथ विशेषावश्यक भाष्य की रचना ऐसी शैली में हुई है कि उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि दार्शनिक जगत् के अखाड़े में सर्व प्रथम जैन प्रतिमल्ल का स्थान यदि किसी को दिया जाए तो वह आचार्य जिनभद्रको दिया जा सकता है। उनकी विशेषता यह है कि उन्होंने दर्शन के सामान्य तत्त्वों के विषय में ही तर्कवाद का अवलम्बन नहीं लिया, किंतु जैन दर्शन की प्रमाण एवं प्रमेय संबंधी छोटी बड़ी महत्त्वशाली सभी बातोंके संबंध में तर्कवाद का प्रयोग कर दार्शनिक अखाड़े में जैन दर्शन को एक स्वतंत्र रूप से ही नहीं प्रत्युत सर्वतंत्रसमन्वय

रूप में भी उपस्थित किया है। उनकी युक्तियों और तर्कशैली में इतनी पूर्ण व्यवस्था है कि आठवीं शताब्दी में होने वाले महान् दार्शनिक हरिभद्र तथा बारहवीं शताब्दी में होने वाले आगमों के समर्थ टीकाकार मलयगिरि भी ज्ञान-चर्चा में आचार्य जिनभद्रकी ही युक्तियों का आश्रय लेते हैं। यही नहीं, अठारहवीं शताब्दी में होने वाले नव्यन्याय के असाधारण विद्वान् उपाध्याय यशोविजय जी भी अपने जैनतर्कपरिभाषा, अनेकांतव्यवस्था, ज्ञानबिन्दु आदि ग्रंथों में उनकी दलीलों को केवल नवीन भाषा में उपस्थित कर संतोष मानते हैं, उन ग्रंथों में अपनी ओर से नवीन वृद्धि शायद ही की गई है। इससे स्पष्ट है कि सातवीं शताब्दी में आचार्य जिनभद्र ने संपूर्ण रूपेण प्रतिमल्ल का कार्य संपन्न किया।

आचार्य जिनभद्र का विशेषावश्यक महा ग्रंथ जैन आगमों को समझने की कुंजी है। इस ग्रंथ में सभी महत्त्वपूर्ण विषयों की चर्चा की गई है। जैसे बौद्ध त्रिपिटक का सारग्राही ग्रंथ 'विशुद्धि मार्ग' है, उसी प्रकार विशेषावश्यक जैन आगम का सारग्राही है। साथ ही उसकी यह विशेषता है कि उसमें जैन तत्त्व का निरूपण केवल जैन दृष्टि से ही नहीं किया गया, अपितु अन्य दर्शनों की तुलना में जैन तत्त्वों को रख कर समन्वयगामी मार्ग द्वारा प्रत्येक विषय की चर्चा की गई। जैनाचार्यो के उन विषयों के संबंध में अनेक मतभेदों का खंडन करते हुए भी उन्हें संकोच नहीं होता। कारण यह हैं कि ऐसे प्रसंग पर वे आगमों के अनेक वाक्यों का आधार देकर अपना मन्तव्य उपस्थित करते हैं। किसी भी व्यक्ति की कोई भी व्याख्या यदि आगम के किसी वाक्य मे विरुद्ध हो, तो वह उन्हें असह्य प्रतीत होती है और वे प्रयत्न करते हैं कि उसके तर्कपुरःसर समाधान की शोध की जाए। उन्होंने आगमों के परस्पर विरोधी दिखाई देने वाले मन्तव्यों का समाधान ढूंढने का भी प्रयास किया है। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि विरोधी प्रतीत होने वाले वाक्यों की भी परस्पर उपपत्ति कैसे हो सकती है। सच बात तो यह है कि आचार्य जिनभद्र ने विशेषावश्यक भाष्य लिख कर जैनागमोंके मन्तव्यों को तर्क की कसौटी पर कसा है और इस तरह इस काल के तार्किकों की जिज्ञासा को शान्त किया है। जिस प्रकार वेदवाक्यों के तात्पर्य के अनुसंधान के लिए मीमांसा दर्शन की रचना हुई, उसी प्रकार जैनागमों के तात्पर्य को प्रगट करने के लिए जैन मीमांसा के रूप में आचार्य जिनभद्र ने विशेषावश्यक भाष्य की रचना की।

जीवन और व्यक्तित्व—

आचार्य जिनभद्र का अपने ग्रंथोंके कारण जैन धर्मके इतिहासमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। तथापि इस महान् आचार्यके जीवनकी घटनाओं के संबंध में जैन ग्रन्थों में कोई सामग्री उपलब्ध नहीं होती। इसे एक आश्चर्य जनक घटना समझना चाहिए। वे कब हुए और किनके शिष्य थे, इस संबंध में परस्पर विरोधी उल्लेख मिलते हैं और वे भी १५ वीं या १६ वीं 'शताब्दी में लिखी गई पट्टावलियों में हैं। अतः हम यह मान सकते हैं कि उन्हें सम्यक् प्रकारेण पट्टपरंपरा में संभवतः स्थान नहीं मिला, परन्तु उनके साहित्य का महत्त्व समझकर तथा जैन साहित्य में सर्वत्र उनके ग्रंथों के आधार पर लिखे गए विवरण देख कर उत्तरकालीन आचार्यों ने उन्हें महत्त्व प्रदान किया, उन्हें युग प्रधान बना डाला, और आचार्य परंपरा में भी कहीं न कहीं उन्हें सम्मिलित करने का प्रयत्न किया। यह प्रयत्न कल्पित था, अतः यह बात स्वाभाविक है कि उसमें एकमत न हो। इसीलिए हम देखते हैं कि उनके संबंध में यह असंगत उल्लेख भी उपलब्ध होता है कि वे आचार्य हरिभद्र के पट्ट पर बैठे।

आगमों से यह सिद्ध होता है कि भगवान् महावीर के समय में पूर्वदेश में जैनधर्म का प्राबल्य था, किन्तु बाद में उसका केन्द्र पश्चिम तथा दक्षिण की ओर हटता गया। ईसा की प्रथम शताब्दी के लगभग मथुरा में तथा पांचवीं शताब्दी के लगभग वलभी नगरी में जैनधर्म का प्राबल्य दिखाई देता है। क्रमशः इन दोनों स्थानोंमें आगम की वाचना हुई। इससे संबंधित काल में दोनों नगरों का महत्त्व ज्ञात होता है। दिगम्बर शास्त्र षट्खंडागम की रचना का मूल स्रोत भी पश्चिम देश में है। अतः हम सहज ही यह अनुमान कर सकते हैं कि प्रथम शताब्दी के बाद जैन साधुओं का विहार विशेषतः पश्चिम में हुआ। जैन दृष्टि से वलभी नगरी का महत्त्व उसके नष्ट होने तक रहा है और उसके नष्ट होने के बाद वलभी के निकटवर्ती पालीताना आदि नगर जैन धर्म के इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहे हैं।

आचार्य जिनभद्र कृत विशेषावश्यक भाष्य की प्रति शक संवत् ५३१ में लिखी गई और वलभी के किसी जैन मन्दिर को समर्पित की गई। इससे ज्ञात होता है कि वलभी नगरी से आचार्य जिनभद्र का कोई संबंध होना चाहिए। हम यह अनुभव कर सकते हैं कि वलभी और उसके आस पास उनका विहार हुआ होगा। उनके जीवन से संबंध रखने वाली इस घटना का मात्र अनुमान किया जा सकता है।

'विविध तीर्थ कल्प' में मथुरा कल्प के प्रसंग में आचार्य जिनप्रभ ने लिखा है कि आचार्य जिनभद्र क्षमाश्रमण ने मथुरा में देवनिर्मित स्तूप के देव की एक पक्ष की तपस्या कर आराधना की और दीमक द्वारा खाए हुए महा निशीथ सूत्र का उद्धार किया।[1] इससे यह तथ्य ज्ञात होता है कि जिनभद्र ने वलभी के उपरांत मथुरा में भी विचरण किया था और उन्होंने महानिशीथ सूत्र का उद्धार किया था।

अभी कुछ ही समय पूर्व अंकोट्टक (आर्वाचीन आकोटा गांव) से प्राप्त हुई प्राचीन जैन मूर्त्तियों का अध्ययन करते हुए श्री उमाकाँत प्रेमानन्द शाह को दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रतिमाएँ मिली हैं। उन्होंने जैन सत्य प्रकाश (अंक १९६) में उन मूर्त्तियों का परिचय दिया है। कला तथा लिपिविद्या के आधार पर उन्होंने इन्हें ई० सन् ५५० से ६०० तक के काल में रखा है। उन्होंने यह भी निर्णय किया है कि इन मूर्त्तियों के लेख में जिन आचार्य जिनभद्र का नाम है वे विशेषावश्यक भाष्य के कर्ता क्षमाश्रमण जिनभद्र ही है, अन्य नहीं। उनकी वाचनानुसार[2] एक मूर्ति के पद्मासन के पिछले भाग में 'ओं देवधर्मोयं निवृतिकुले जिनभद्रवाचनाचार्यस्य' ऐसा लेख है और दूसरी मूर्त्ति के भामंडल में 'ओं निवृतिकुले जिनभद्रवाचनाचार्यस्य' यह लेख उपलब्ध होता है।

उपर्युक्त वर्णन से निश्चय रूपेण ये तीन नई बातें ज्ञात होती हैं, आचार्य जिनभद्र ने इन मूर्त्तियों को प्रतिष्ठित किया होगा, उनके कुल का नाम निवृति कुल था और वे वाचनाचार्य कहलाते थे। इसीसे एक तथ्य यह भी फलित होता है कि वे चैत्यवासी थे[3], क्योंकि लेख में लिखा है कि 'जिन भद्रवाचनाचार्य की'। इस तथ्य को इस कारण विचाराधीन समझना

---

[1] इत्थं देवनिम्मिअथूभे पक्खक्खमणेण देवयं आराहित्ता जिणभद्दखमा-समणेहिं उद्देहिया भक्खियपुत्थयपत्तत्तणेण तुट्टं भग्गं महा निसीहं संघिअं। विवि तीर्थ कल्प पृ० १९,

[2] श्री शाह की वाचना प्रामाणिक है और उनका लिपि के समय का अनुमान भी ठीक है। इस बात का समर्थन बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के प्राचीनलिपिविशारद प्रो० अवध किशोर ने भी किया है। अतः इस में शंका का अवकाश नहीं।

[3] श्री शाह ने भी यह संकेत किया है, परन्तु कारण अन्य बताया है।

चाहिए कि इस विषय में इस लेख के अतिरिक्त अन्य प्रमाण नहीं मिल सकता। पुनश्च ये मूर्त्तियाँ अंकोट्टकमें मिली हैं। अतः यह अनुमान भी शक्य है कि वलभी के उपरांत उस काल में भरूच के आसपास भी जैनों का प्रभाव था और आचार्य जिनभद्र का इस ओर भी विहार हुआ होगा।

इस लेख में आचार्य जिनभद्र को क्षमाश्रमण नहीं कहा गया है, किंतु वाचनाचार्य कहा है। इस विषय में कुछ विचार करना आवश्यक है। परंपरा के अनुसार वादी, क्षमाश्रमण, दिवाकर तथा वाचक एकार्थक शब्द माने गए हैं।[1] वाचक और वाचनाचार्य भी एकार्थक हैं, अतः वाचनाचार्य और क्षमाश्रमण शब्द एक ही अर्थ के सूचक हैं। फिर भी यह विचार करने योग्य बात है कि ये शब्द एकार्थक क्यों माने गए। आचार्य जिनभद्र ने स्वयं वाचनाचार्य पद का उल्लेख किया है। तथापि उनकी विशेष प्रसिद्धि क्षमाश्रमण के नाम से क्यों हुई? इन प्रश्नों का उत्तर कल्पना के आधार पर देना चाहें तो दिया जा सकता है।

प्रारंभ में 'वाचक' शब्द शास्त्रविशारद के लिए विशेष प्रचलित था। परन्तु जब वाचकों में क्षमाश्रमणों की संख्या बढ़ती गई, तब क्षमा श्रमण शब्द भी वाचक के पर्याय रूप में प्रसिद्ध हो गया। अथवा क्षमाश्रमण शब्द आवश्यक सूत्र में सामान्य गुरु के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है, अतः संभव है कि शिष्य विद्यागुरु को क्षमाश्रमण के नाम से संबोधित करते रहे हों। इस लिए यह स्वभाविक है कि क्षमाश्रमण वाचक का पर्याय बन जाए। जैन समाज में जब वादियों की प्रतिष्ठा स्थापित हुई, शास्त्र-वैशारद्य के कारण वाचकों का ही अधिकतर भाग वादी नाम से विख्यात हुआ होगा; अतः कालान्तर में वादी का भी वाचक का ही पर्यायवाची बन जाना स्वाभाविक है। सिद्धसेन जैसे शास्त्र विशारद विद्वान् अपने को दिवाकर कहलाते होंगे अथवा उनके साथियों ने उन्हें 'दिवाकर' की पदवी दी होगी, इस लिए वाचक के पर्यायों में दिवाकर को भी स्थान मिल गया।

आचार्य जिनभद्र का युग क्षमाश्रमणों का युग रहा होगा, अतः संभव है कि उनके बाद के लेखकों ने उनके लिए 'वाचनाचार्य' के स्थान पर 'क्षमाश्रमण' पद का उल्लेख किया हो।

---

[1] कहावली का उद्धरण देखें, सत्य प्रकाश अंक १९६ पृ० ८९,

आचार्य जिनभद्र का कुल निवृतिकुल था, यह तथ्य उक्त लेख के अतिरिक्त अन्यत्र उपलब्ध नहीं होता। भगवान् महावीर के १७ वें पट्ट पर आचार्य वज्रसेन हुए थे। उन्होंने सोपारक नगर के सेठ जिनदत्त और सेठानी ईश्वरी के चार पुत्रों को दीक्षा दी थी। उनके नाम ये थे, नागेन्द्र, चन्द्र, निवृति और विद्याधर। भविष्य में इन चारों के नाम से भिन्न भिन्न चार परंपराएं चलीं और वे नागेन्द्र, चन्द्र, निवृति तथा विद्याधर कुलों के नाम से प्रसिद्ध हुई।[१] उक्त मूर्ति-लेख के आधार पर यह सिद्ध होता है कि आचार्य जिनभद्र निवृति कुल में हुए। महापुरुषचरित्र नामक प्राकृत ग्रंथके लेखक शीलाचार्य, उपमितिभवप्रपंच कथा के लेखक सिद्धर्षि, नवांग वृत्ति के संशोधक द्रोणाचार्य जैसे प्रसिद्ध आचार्य भी इस निवृति कुल में हुए हैं। अतः इस बात में सन्देह नहीं कि यह कुल विद्वानों की खान के समान है।

इस बात को छोड़ कर उन के जीवन के संबंध में कोई बात ज्ञात नहीं है। केवल उनका गुण वर्णन उपलब्ध होता है। उसका सार यह है कि वे एक महा भाष्यकार थे, तथा प्रवचन के यथार्थ ज्ञाता और प्रतिपादक थे। उनके गुणों का व्यवस्थित वर्णन उनके जीतकल्प सूत्र के टीकाकार ने किया है। उसके आधार पर मुनि श्री जिनविजय जी ने जो निष्कर्ष निकाला है, वह यह है,[१] तत्कालीन प्रधान प्रधान श्रुत धर भी इनका बहुत मान करते थे। वे श्रुत व श्रुतेतर दोनों शास्त्रों के कुशल विद्वान् थे। जैन सिद्धान्तों में ज्ञान दर्शन के क्रमिक उपयोग का जो विचार किया गया है वे उसके समर्थक थे। अनेक मुनि ज्ञानाभ्यास के निमित्त उनकी सेवा में उपस्थित रहते थे। भिन्न भिन्न दर्शनों के शास्त्रों तथा लिपिविद्या, गणित शास्त्र, छन्दः शास्त्र और व्याकरण आदि शास्त्रों के वे अद्वितीय पंडित थे। परसमय के आगमों में भी उन की गति थी। वे स्वाचार पालन में तत्पर थे तथा सर्व जैन श्रमणों में मुख्य थे।

जब तक और नई बातें ज्ञात न हों, तब तक उक्त गुण वर्णन से ही उनके व्यक्तित्व की कल्पना करके हमें सन्तोष करना चाहिए।

---

[१] खरतर गच्छ की पट्टावली देखें, जैन गुर्जर कविओ, भाग २. पृ० ६६९। 'निवृति' शब्द के 'निवृत्ति, निर्वृत्ति' ये रूप भी भिन्न भिन्न स्थानों में दृगोचर होते हैं।

[१] जीतकल्प सूत्र की प्रस्तावना पृ० ७

सत्ता समय

वीर निर्वाण सं० ९८० (वि० सं ५१०; ई० स० ४५३) में वलभी वाचना के समय आगम व्यवस्थित हुए और उन्हें अंतिम रूप प्राप्त हुआ। उसके बाद उनकी सर्व प्रथम पद्यटीकाएँ प्राकृत भाषा में लिखी गई। आज कल उपलब्ध होने वाली ये प्राकृत टीकाएँ निर्युक्ति के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन सब के प्रणेता आचार्य भद्रबाहु हैं। उनका समय वि० सं० ५६२ (ई० स० ५०५) के लगभग है। अतः हम मान सकते हैं कि आगमों के वलभी संकलन के बाद के ५० वर्षों में वे लिखी गई होंगी। इस निर्युक्ति की पद्यबद्ध प्राकृत टीका लिखी गई जो मूल भाष्य के नाम से प्रसिद्ध है। इस मूल भाष्य के कर्त्ता के विषय में अभी तक कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है। किंतु आचार्य हरिभद्र आदि के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि आवश्यक निर्युक्ति की प्रथम टीका के रूप में किसी भाष्य की रचना हुई थी। संभव है कि उसे आचार्य जिन भद्र के भाष्य से पृथक् करने के लिए आचार्य हरि भद्र ने 'मूल भाष्य' का नाम दिया। कुछ भी हो, किंतु इस मूल भाष्य के बाद आचार्य जिनभद्र ने आवश्यकनिर्युक्ति के सामायिक अध्ययन तक प्राकृत पद्य में जो टीका लिखी, वह विशेषावश्यक भाष्य के नाम से विख्यात है। अतः आचार्य जिनभद्र के विशेषा० के समय की पूर्वावधि निर्युक्तिकर्ता भद्रबाहु के समय से और पूर्वोक्त मूल भाष्य के समय से पहले नहीं हो सकती। आचार्य भद्रबाहु वि० सं० ५६२ के लगभग विद्यमान थे, अतः विशेषा० की पूर्वावधि विक्रम ६०० से पहले संभव नहीं।

मुनि श्री जिन विजय जी ने जेसलमेर की विशेषा० की प्रति के अंत में लिखित दो गाथाओं के आधार पर निर्णय किया है कि उसकी रचना वि० ६६६ में हुई। किन्तु मेरे विचार से वह रचना समय नहीं किन्तु प्रति-लेखन का समय है। कुछ भी हो हम उसके आधार पर आचार्य जिनभद्र के समय का निर्धारण कर सकते हैं। उनकी आयु १०४ वर्ष की थी। अतएव उनकी सत्ता विक्रम ५४५-६४० तक मानी जा सकती है—देखो—गणधरवाद की प्रस्तावना—पृ० ३२—३४।

जैन साहित्य के इतिहास निर्माण के सूत्र

डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल

---

१. ब्राह्मण साहित्य और बौद्ध साहित्य के समान ही जैन साहित्य का भी देश और काल में फैला हुआ अत्यन्त विपुल इतिहास है। इस साहित्य के पीछे उदात्त आध्यात्मिक भावना, तपोमय जीवन और बुद्धि के प्रकर्ष की सन्तत प्रेरणा निहित है।

२. भारतीय संस्कृति के सर्वांगपूर्ण इतिहास का जो व्यापक रूप है उसके त्रिविक्रम रूप का एक अंग जैन साहित्य और संस्कृति भी है। उस सामग्री के त्रिविष्टब्धक ठाठ में जैन सामग्री का भी महत्वपूर्ण आधार है। अतएवं भारतीय सांस्कृतिक और साहित्यिक इतिहास की पूर्णता के लिए यह परम आवश्यक है कि जैन धारा में सुरक्षित सामग्री की ओर भी अविलम्ब ध्यान दिया जाय।

३. इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए यह आवश्यक है कि जैन साहित्य से सम्बन्धित कुछ विशिष्ट ग्रन्थों का निर्माण हो। इस योजना के अन्तर्गत यदि निम्नलिखित ग्रन्थों का निर्माण किया जा सके तो वह अभिलषित उद्देश्य की पूर्ति का पहला किन्तु अनिवार्य चरण होगा।

(क' जैन साहित्य का इतिहास।

(ख) जैन दर्शन और धर्म का इतिहास।

(ग) जैन संस्कृति का इतिहास।

(ध) जैन साहित्य के व्यक्तिवाची और स्थानवाचक नामों का सम्पूर्ण कोश।

४. जैन साहित्य निर्माण योजना ऊपर निर्दिष्ट विशाल योजना का पहला महत्वपूर्ण अंग है। इसकी पूर्ति का आर्थिक और व्यवस्था सम्बन्धी समस्त उत्तरदायित्व श्री सोहनलाल जैन-धर्म प्रचारक समिति ने स्वीकार किया है। उसी समिति के तत्वावधान में विशिष्ट विद्वानों के सहयोग से इस कार्य की पूर्ति का प्रयत्न किया जा रहा है।

५. इस साहित्य मिर्माण के मूल में आदि से अन्त तक सात्त्विक विचार सात्त्विक प्रेरणा और सात्त्विक मनोभावों का ही एक मात्र आधार है। सम्प्रीति, सहिष्णुता, सहानुभूति और समन्वय साहित्य की ऐसी अमर विभूतियां हैं जिनकी प्रेरक शक्ति से महान् कार्य सम्पन्न किए जाते हैं और जिनके द्वारा अनेक व्यक्ति संघ में बैठ कर सामूहिक प्रयत्न से किसी वस्तु को सिद्ध करते हैं।

६. जैन साहित्य, विचार, संस्कृति, धर्म, दर्शन और जीवन का जो तेजस्वी और विभूतिमान् स्वरूप है उसको ऐतिहासिक की सत्यात्मक बुद्धि से, साहित्यिक की सहानुभूति से और तत्त्वात्वषेक की सूक्ष्मदर्शिनी प्रज्ञा से उद्भासित करना यही इस योजना का मूलमन्त्र है। किसी भी मत मतान्तर को लेकर या सम्प्रदायविशेष की हितबुद्धि से इस योजना का जन्म नहीं हुआ और न इस के कार्यकर्ताओं को अपने मन में क्षण भर के लिए भी इस प्रकार का विचार लाना उचित है। समस्त योजना का आधार सहयोग पर अवलम्बित है। इसके द्वारा पारस्परिक सद्भावना का नया सत्र यदि हम आरम्भ कर सकें तो भविष्य के लिए और भी अन्य प्रकार के विशिष्ट साहित्य-निर्माण का मार्ग प्रशस्त हो सकेगा। समस्त कार्य की नींव विद्वानों का वह उदात्त मन है जो क्षीर समुद्र के सदृश विकारों से सदा ऊपर ही रहता है। इस योजना के अन्तर्गत जिन सम्पादक और लेखक महानुभावों ने स्वेच्छा से कार्य करना स्वीकार किया है वे मानों एक प्रकार से उसके अंग बन गए हैं।

७. महामना पं० सुखलाल जी के शब्दों में "यह कार्य करना है।" ये चार शब्द अत्यन्त सरल किन्तु वज्र की दृढ़ता से बने हैं। मानवी मन में जितनी संकल्प की शक्ति सम्भव है वह इन शब्दों से व्यक्त होती है। कार्य के उतार चढ़ाव में इन शब्दों को सदा स्मरण रखना होगा—"यह कार्य करना है।"

८. प्रत्येक योजना की पूर्णता के लिए आवश्यक है कि भली प्रकार सोच विचार कर उसके स्वरूप का निश्चय किया गया हो। जैन साहित्य निर्माण योजना के विषय मे यह बात बहुत अंश में सत्य है कि इसके मूल में पर्याप्त विचार और विमर्श का आश्रय लिया गया है। सन् १९५२ के मार्च मास में श्रीसोहन-लाल जैन धर्म प्रचारक समिति के उत्साही और अनुभवी मन्त्री श्रीहरजसराय जी के समक्ष पहली बार इस योजना की चर्चा हुई। उन्होंने अपनी सारग्राहिणी बुद्धि से इस का स्वागत किया और व्यावहारिक बुद्धि से योजना का समस्त आर्थिक उत्तरदायित्व अपनी समिति के ऊपर ले लिया। उनकी इच्छानुसार योजना

का पहला स्वरूप मेरी ओर से लिख कर श्रमण के मई १९५२ के अंक में प्रकाशित किया गया। तदनन्तर श्री दलसुखभाई मालवणिया के साथ विशेष विचार करके योजना का संक्षिप्त विवरण तैयार किया गया। तदनुसार ग्रन्थ को चार भागों में और लगभग तीन सहस्र पृष्ठों में सम्पन्न करने का निम्न प्रकार से विचार किया गया—

१. आगम साहित्य।
२. दार्शनिक और लाक्षणिक साहित्य।
३. काव्य साहित्य।
४. लोकभाषा साहित्य।

९. प्रत्येक भाग के अन्तर्गत उसके खण्डों का विभाग भी सोचा गया और प्रत्येक खण्ड के लिए योग्य विद्वानों के नामों पर भी विचार किया गया जो उनके सम्पादन का उत्तरदायित्व लें। यह सम्पूर्ण कार्य अत्यन्त सौमनस्य-भाव से ही सम्पन्न हुआ। सम्बन्धित विद्वानों से भी इस विषय में पत्र व्यवहार किया गया और संक्षिप्त योजना की छपी हुई प्रति भी सब के पास भेजी गई एवं श्रमण पत्र के द्वारा जनता में भी प्रचारित की गई। सब ओर से योजना को उत्साहपूर्ण स्वागत प्रप्त हुआ। अधिकांश विद्वानों ने सम्पादन का भार वहन करना स्वीकार किया। उनके नाम इस प्रकार हैं :—

१. पं० श्री बेचरदास जी।
२. डॉ० हीरालाल जैन।
३. पं० फूलचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री।
४. प्रो० दलसुख भाई मालवणिया।
५. पं० लालचन्द्र भगवान दास।
६. प्रो० भोगीलाल सांडेसरा।
७. श्री नाथूराम जी प्रेमी।
८. श्री अगरचन्द जी नाहटा।
९. पं० के० भुजबली शास्त्री।

१०. इसी समय ता० १७-२-५३ को विद्वानों से यह भी प्रर्थना की गई कि वे प्रत्येक भाग के अन्तर्गत अध्यायों का विवरण और उनके प्रत्येक अध्याय के

लेखकों का सुझाव भी देने की कृपा करें। आशय यह था कि इस प्रकार विद्वानों के सहयोग से योजना का एक ब्यौरेवार प्रारूप तैयार करा लिया जाय और उस पर विद्वानों की समिति अन्तिम रूप से इसी काम के लिए आयोजित अधिवेशन में विचार कर ले। तदनुसार काशी में १७–१८ एप्रिल को विद्वत्समिति का अधिवेशन नियत किया गया, किन्तु कई कारणों से उस समय उसे स्थगित करना पड़ा। वही विद्वत्समिति का अधिवेशन अहमदाबाद में ओरिएण्टल कान्फरेंस के साथ अधिकांश सदस्यों की सुविधा के अनुसार नियत किया गया है जिस की अध्यक्षता साहित्यिक तपस्वी एवं महामनीषी मुनि श्री पुण्यविजय जी महाराज कर रहे हैं।

इस अधिवेशन के निश्चित उद्देश्य इस प्रकार हैं :—

(अ) अबतक की बनी हुई योजना पर विचार करके स्वीकृति प्रदान करना।

(आ) सम्पादकों और लेखकों का अन्तिम रूप से निश्चय करना।

(इ) ग्रन्थलेखन के सम्बन्ध में समय और अवधि का निश्चय करना।

(ई) लेखन के सम्बन्ध में अन्य आवश्यक निर्देश प्रदान करना।

(ऊ) सम्पादन और ग्रन्थ मुद्रण के सम्बन्ध में आवश्यक निर्देश प्रदान करना।

११. कार्य को समुचित अवधि के भीतर पूर्ण करने के लिए यह आवश्यक ज्ञात होता है कि लेखन का कार्य दिसम्बर १९५४ तक पूर्ण कर दिया जाय। तदुपरान्त छह मास में सम्पादक महोदय अपने अपने भाग को देख कर अन्तिम स्वीकृति दे दें, और उसके बाद ग्रन्थ की प्रेस कापी तैयार होने पर लगभग डेढ़ वर्ष में ग्रन्थ के मुद्रण का कार्य पूर्ण कर दिया जाय। इस प्रकार १९५६ के अन्त तक जैन साहित्य का इतिहास विषयक यह ग्रन्थ निश्चित योजना के अनुसार मुद्रित और प्रकाशित होकर जनता के पास पहुँच सके।

१२. अर्द्धमागधी महाराष्ट्री संस्कृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, गुजराती, कन्नड़ तमिल और हिन्दी इन अनेक भाषाओं में सुरक्षित कई सहस्र वर्षों का इतिहास प्रस्तुत करना महत्वपूर्ण कार्य है। यह भी सत्य है कि कितने ही महत्व के ग्रन्थ ऐसे होंगे जो अभी प्रकाशित नहीं हुए, अथवा जिनके हस्तलेख भण्डारों में ही सुरक्षित हैं। इस साहित्य के कई विभाग ऐसे भी सम्भव हैं, जिनका अनुशीलन अभी तक पूरी तरह नहीं हुआ। ऐसे स्थलों पर नियत अवधि के भीतर जो अधिक से अधिक किया जा सकता है करना चाहिए और इसी में लेखकों और सम्पादकों

के अध्यवसाय और मनोयोग की आवश्यकता है। किन्तु यह स्मरण रखना उचित है कि इस योजना का बहुत महत्व इस बात में भी है कि इसका फल कम से कम समय में जनता के सामने आ सके। इस कार्य को किसी भी कारण से अधिक विलम्बित करना उचित न होगा। जैसा कि सदा पहले प्रयत्नों के विषय में होता है इसके बाद दूसरे, तीसरे प्रयत्न भी भविष्य में आवश्यक होंगे, लेकिन वे सभी तभी सम्भव हो सकेंगे और उनकी कल्पना तभी लोगों के मन में आएगी जब कि पहले प्रयत्न का मूर्तरूप आँखों के सामने आ जाय। इतिहास निर्माण का कार्य सन्तत प्रगतिशील रहता है और जैन साहित्य का इतिहास भी उसी नियम का अंग है। ईश्वर हम सब को विचार और कर्म की वह शक्ति दे जिससे हम सब संमनस्क होकर इस योजना की पूर्ति में लग सकें। "यह कार्य करना है।"

बहुधाप्यागमैर्भिन्नाः पन्थानः सिद्धिहेतवः।
त्वय्येव निपतन्त्योघा जाह्नवीया इवार्णवे॥

(कालिदास, रघु० १०।२६)

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः॥

(हरिभद्र सूरि)

भवबीजांकुरजनना रागाद्याः क्षयमुपागतायस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै॥

(हेमचन्द्राचार्य)

प्रवचन

ण्य किंचि अणुण्णायं पडिसिद्धं वावि जिणवरिंदेहिं।
एसा तेसिं आणा कज्जे सच्चेण होअव्वं॥

जिनेन्द्र भगवान् ने न तो कोई आज्ञा दी है और न कुछ प्रतिषेध किया है। उनकी एक ही आज्ञा है कि प्रत्येक कार्य में सत्य को सामने रखना चाहिए।

पुरिसा सच्चमेव समभिजाणाहि। सच्चस्स आणाए से उवट्ठिए मेहावी मारं तरइ।

पुरुषों! सत्य को पहिचानो। सत्य की आज्ञा पर चलने वाला मेधावी मृत्यु को जीत लेता है।

पगडं सच्चंसि धित्ति कुव्वह, एत्थोवरए मेहावी सव्वं पावकम्मं ओसइ।

प्रकट रूप से सत्य पर दृढ़ रहो। सत्यनिष्ठ मेधावी सभी पापों को भस्म कर डालता है।

सच्चं लोगम्मि सारभूयं।

सत्य ही संसार में सारभूत है।

तं सच्चं खु भगवं।

वह सत्य ही भगवान् है।

नाणं पयासगं सोहओ तवो संजमो अ गुत्तिधरो।
तिण्हं वि समाओगो, मोक्खो जिणसासणे भणिओ॥

ज्ञान वस्तु को प्रकाशित करता है, तप आत्मा की शुद्धि करता है, संयम आत्मा को पतन से बचाता है। जिन शास्त्र में तीनों के समायोग से मोक्ष बताया गया है।

दिट्ठं, सुयं, मयं, विण्णाय, जं एत्थ परि कहिज्जइ।

जो यहाँ कहा जा रहा है वह दृष्ट, श्रुत, मनन किया हुआ तथा अच्छी तरह ज्ञात है।

श्री सोहन लाल जैन धर्म प्रचारक समिति, अमृतसर

श्रमण के पाठक पार्श्वनाथ विद्याश्रम तथा उसकी विविध प्रवृत्तियों से सुपरिचित हैं। किन्तु इस महत्वपूर्ण संस्था को जन्म देने वाली तथा पालन पोषण करके उसे वर्तमान रूप में लाने वाली उपरोक्त समिति के विषय में बहुत कम लिखा गया है। इस समिति के निर्माण में जिन महापुरुषों का हाथ है इसके कर्णधार जिस लक्ष्य को सामने रखकर चल रहे हैं उसके विषय में पाठकों की जानकारी बहुत कम होगी।

स्थानकवासी जैन समाज के इतिहास में सन् १९३३ का वर्ष स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। समान परम्परा के अनुयायी होने पर भी जो साधु परस्पर मिलने तथा वार्तालाप करने में भी हिचकिचाते थे, उन्होंने इस वर्ष अवान्तर भेदों को त्याग कर समस्त स्थानकवासी समाज के लिए एक आचार्य शिरोमणि चुनने का निश्चय किया। इस प्रकार अनेकता से एकता की ओर ठोस कदम बढ़ाया। इसी के लिए अजमेर में साधु-सम्मेलन हुआ जिस में विभिन्न सम्प्रदायों के लगभग दो सौ मुनिराज एकत्रित हुए। पंजाब की स्थानकवासी समाज के आचार्य वयोवृद्ध पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज उन दिनों अमृतसर में विराजमान थे। वृद्धावस्था एवं अस्वास्थ्य के कारण वे अजमेर नहीं जा सके। उनका प्रतिनिधित्व उनके शिष्य युवाचार्य पूज्य श्री काशीराम जी महाराज ने किया। एकता की कल्पना सर्व प्रथम पूज्य श्री सोहनलाल जी महाराज के मन में आई थी। विशालतम सम्प्रदाय के आचार्य होने के साथ वे चारित्रवृद्ध भी थे। परिणाम स्वरूप साधु-सम्मेलन में उन्हीं को आचार्यशिरोमणि चुना गया।

सम्मेलन के दिनोंमें मुनिराजों को एक साथ रहने का जो अवसर प्राप्त हुआ उस से उनके वैयक्तिक सम्बन्ध अत्यन्त मधुर हो गए। परस्पर विचारों के आदान प्रदान से समाज के उत्कर्ष के लिए सच्ची भावना जागृत हुई।

सम्मेलन पूर्ण होने के पश्चात् पूज्य श्रीअमोलक ऋषि जी महाराज, युवाचार्य श्रीकाशीराम जी महाराज तथा पं० र० शतावधानी मुनि श्रीरत्नचन्द्र जी महाराज एक साथ विचरते हुए पंजाब पधारे। तीनों ने आचार्य शिरोमणि के दर्शन किए और सामाजिक उत्कर्ष की चर्चा की। सभी के मन में यही इच्छा थी कि कोई ठोस कार्य करना चाहिए।

कुछ दिनों बाद आचार्यशिरोमणि पूज्य श्री सोहनलाल जी का स्वर्गवास हो गया। अमृतसर तथा पंजाब के श्रावकों में उनके प्रति असीम भक्ति थी। उसी समय अमृतसर तथा उसके आसपास का श्रावकसमाज एकत्रित हुआ और उसने आचार्यश्री की स्मृति को स्थायी बनाने का निश्चय किया। धन के लिए अपील की गई और पैंतालिस हजार के लगभग उसी समय एकत्रित हो गए। और भी काफी मिलने की सम्भावना थी। उसी समय श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति की स्थापना हुई।

अब उसके विनियोग का प्रश्न उपस्थित हुआ। साधारणतया दाताओं की राय थी कि अमृतसर में ही संस्कृत विद्यालय के रूप में उनका स्मारक बना दिया जाय। किन्तु लाला हरजसराय तथा उनके साथियों की राय थी कि पूज्यश्री समस्त स्थानकवासी समाज के आचार्य थे। भले ही वे अमृतसर में पच्चीस वर्षों तक रहे, यह भी ठीक है कि अमृतसर एवं पंजाब की जनता में उनके प्रति बहुत अधिक भक्ति है, किन्तु इससे उनके व्यक्तित्व को सीमित करना उचित न होगा। वे समस्त समाज के आचार्य थे और इसलिए हमें ऐसी जगह कार्य करना चाहिए जिससे समाज को अधिक से अधिक लाभ पहुँच सके। रुपया अमृतसर तथा उसके आसपास के स्थानों से एकत्रित हुआ था किन्तु इसके लिए भी उन्होंने कहा--हम लोगों ने रुपया आचार्य शिरोमणि की स्मृति में समाज की सेवा के लिए एकत्रित किया है। फिर अमृतसर का मोह क्यों हो?

परिणाम स्वरूप शतावधानी जी महाराज से मार्गदर्शन के लिए प्रार्थना की गई। उन्होंने कहा--"हमें समाज में उच्चकोटि के विद्वान तथा प्रामाणिक साहित्य तैयार करना चाहिए और इस के लिए काशी उपयुक्त क्षेत्र है।" समिति के कर्णधारों को यह बात जँच गई।

१९३६ के दिसम्बर में समिति के अध्यक्ष लाला त्रिभुवननाथ जैन, मन्त्री लाला हरजसराय जैन तथा प्रो० मस्तराम जैन, पं० सुखलाल जी से परामर्श करने के लिए काशी आए। उन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय, गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज तथा सारनाथ के मूलगंधकुटी विहार को देखा। ब्राह्मण तथा बौद्ध परम्पराओं के इन विशाल केन्द्रों को देखकर उनके मन में प्रेरणा उत्पन्न हुई कि काशी में ही जैन परम्परा का भी एक केन्द्र बनना चाहिए। किन्तु साथ ही एक व्याकुलता भी हुई कि मर्यादित शक्ति से इतने बड़े कार्य कैसे हो सकेंगे।

पं० सुखलाल जी ने मार्गदर्शन करते हुए इस समस्या का समाधान कर दिया। उन्होंने कहा--हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रत्येक विषय का ऊँचे से ऊँचा

अध्ययन होता है। उसके लिए हमें खर्च करने की आवश्यकता नहीं है। हमें योग्य विद्यार्थियों को चुन कर यहाँ रखना चाहिए और उन्हें भोजन स्थान आदि की पूरी सुविधा देनी चाहिए।

समिति के प्रतिनिधिमण्डल को यह बात जँच गई और १९३७ में पार्श्वनाथ विद्याश्रम के रूप में जैन सांस्कृतिक केन्द्र की स्थापना हो गई। काशी भगवान् पार्श्वनाथ की जन्मभूमि है। उन के समय से लेकर आज तक का जैन परम्परा का इतिहास अक्षुण्ण है। इस लिए इस केन्द्र के साथ भगवान् पार्श्वनाथ का नाम विशेष महत्व रखता है।

विद्याश्रम की स्थापना के समय इसका कार्य शास्त्री, आचार्य तथा एम०ए० में जैन दर्शन लेकर अभ्यास करने वाले विद्यार्थियों को प्रोत्साहन देना था। किन्तु धीरे धीरे उसने जैन साहित्य के अनुशीलन को मुख्य ध्येय बना लिया है।

समिति के मन्त्री लाला हरजसराय जी ने इसके लिए अपने परिवार तथा मित्रों के सहयोग से अपने बड़े भाई लाला रतनचन्द जी की स्मृति में रतनचन्द जैन फैलोशिप की स्थापना की है। इस के द्वारा एक रिसर्च फैलोशिप की स्थायी व्यवस्था की गई है। इस के अन्तर्गत "जैन ज्ञानमीमांसा" पर महानिबन्ध लिखा गया और उस पर श्री इन्द्रचन्द्र शास्त्री को Ph. D. की डिग्री मिल चुकी है। उसी के अन्तर्गत अब श्री मोहनलाल मेहता 'जैन मनोविज्ञान' पर अनुशीलन कर रहे हैं।

समिति को अपने इस कार्य में अन्य महानुभावों से भी सहायता मिली है, जिस से नीचे लिखे अनुसार फैलोशिप दिए गए :—

१—कलकत्ते के प्रसिद्ध दानवीर बाबू राजेन्द्रसिंह जी व नरेन्द्रसिंह जी सिंघी ने १५०) रु० मासिक की एक छात्रवृत्ति प्रदान की। उसके अन्तर्गत श्री गुलाबचन्द्र चौधरी ने आगमोत्तरकालीन प्रबन्ध साहित्य के आधार पर सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थिति पर अनुशीलन किया है। आपने अपना महानिबन्ध विश्वविद्यालय में प्रस्तुत कर दिया है। परिणाम की प्रतीक्षा है।

२—बम्बई निवासी सेठ श्री छोटालाल केशवजी शाह ने ५,०००) रु० देकर एक फेलोशिप प्रदान की। उसके अन्तर्गत श्री विमलदास जैन ज्ञान की सापेक्षता पर अनुशीलन कर रहे हैं।

इसी प्रकार अ० भा० श्वे० स्थानकवासी जैन कान्फरेंस ने बम्बई संघ की ओर से एक फेलोशिप के लिए ५०००) रु० प्रदान किए हैं।

समिति की ओर से पं० महेन्द्रकुमार जी न्यायाचार्य ने जैन दर्शन पर एक प्रमाणिक ग्रन्थ तैयार किया है। वह भी शीघ्र ही प्रकाश में आने वाला है।

इनके अतिरिक्त समिति शास्त्री तथा आचार्य में जैनदर्शन का अभ्यास करने वाले विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ भी दे रही हैं।

सन् १९४९ की दीपमालिका से समिति ने जैन साहित्य एवं संस्कृति की ओर सर्वसाधारण का ध्यान आकृष्ट करने के लिए श्रमण नाम की मासिक पत्रिका प्रारम्भ की। जैन विचारधारा एवं दृष्टिकोण को निष्पक्षरूप से प्रकट करने के लिए यह पत्रिका अपना विशेष स्थान रखती हैं।

विद्याश्रम में यह प्रयत्न किया जा रहा है कि विद्वानों को अनुशीलन सम्बन्धी सभी सुविधाएं प्राप्त हो सकें। इसके लिए शतावधानी रत्नचन्द्र पुस्तकालय है इसमें पाँच हजार से अधिक चुनी हुई पुस्तकें हैं। विद्वानों की आवश्यकतानुसार नई पुस्तकें भी आती रहती हैं।

गतवर्ष से समिति ने एक बृहद् योजना अपने हाथ ले ली है और वह है जैन साहित्य का निर्माण। जैन धर्म एवं दर्शन के मूलभूत ग्रन्थों को तैयार करने के लिए जो योजना बनाई गई है उसके लिए पाँच लाख रुपये की आवश्यकता होगी। सर्व प्रथम जैन साहित्य का सर्वाङ्गीण इतिहास तैयार करने का जो निश्चय किया गया है उसे भी कार्यरूप में परिणत करने के लिए पचास हजार रुपए लगेंगे। इस योजना और ग्रन्थ की रूपरेखा अन्यत्र दी गई है।

इस समय समिति की प्रवृत्तियाँ दो मकानों में चल रही हैं। एक किराए पर लिया गया है और दूसरा निजी है। निजी मकान छोटा सा है, जिसमें अधिक से अधिक तीन स्कालर सपरिवार रह सकते हैं। पुस्तकालय, अध्ययन कक्ष, श्रमण कार्यालय आदि अन्य प्रवृत्तियाँ किराए के मकान में केन्द्रित हैं। समिति का बहुत दिनों से विचार था कि निजी मकान के आसपास जमीन खरीद कर अपना विशाल भवन बना लिया जाय, किन्तु कुछ कानूनी एवं व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण यह कार्य स्थगित होता गया। कानूनी उलझनों से बचने के लिए अन्त में सरकार से प्रार्थना की गई कि वह जमीन को अपनी तरफ से हस्तगत करके संस्था को दे देवे। संस्था की इस मांग पर हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति आचार्य नरेन्द्रदेव ने सिफारिश की। परिणाम स्वरूप सरकार ने शीघ्र ही उस मांग को स्वीकार कर लिया और अक्विजिशन के लिए आज्ञा निकाल दी। दूसरी ओर कलकत्ता निवासी सेठ सोहनलाल जी दूगड़ ने संस्था को जमीन खरीदने के

लिए पच्चीस हजार की सहायता दी। आशा है कि शीघ्र ही लगभग ६ बीघा जमीन समिति के हाथ में आ जाएगी और वह अनुशीलन की सुविधाओं से सम्पन्न निजी भवन बना लेगी।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम ने अब एक अनुशीलन पीठ का रूप धारण कर लिया है। उसने जो योजनाएं उठाई हैं वे विशाल हैं और व्ययसाध्य हैं। उसके लिए जैन संस्कृति के समस्त प्रेमियों का सहयोग अपेक्षित है।

यह ऊपर बताया जा चुका है कि श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचार समिति की स्थापना एक स्थानकवासी जैन आचार्य की स्मृति में हुई है। इसकी सहायता का मुख्य स्रोत भी स्थानकवासी समाज ही रहा है। किन्तु कार्यक्षेत्र की दृष्टि से साम्प्रदायिकता को कभी प्रश्रय नहीं दिया गया। स्कालरों के चुनाव में योग्यता ही एकमात्र आधार रहा है। जैन साहित्य या परम्परा से सम्बन्ध रखने वाले किसी विषय पर कोई अनुशीलन करना चाहे, फिर वह जैन हो या अजैन हो, समिति उस का स्वागत करेगी। साथ ही समिति के अधिकारियों की यही इच्छा रही है कि अनुशीलन में शुद्ध अन्वेषण की दृष्टि रहे। वे किसी भी अनुशीलन कर्ता से यह आशा नहीं रखते कि वह उनकी मान्यता या परम्परा का समर्थन ही करे। प्रामाणिक दृष्टि से जो कुछ लिखा जाएगा, वह अनुकूल हो या प्रतिकूल, उस का समिति स्वागत करेगी। उस का तो एकमात्र यही ध्येय है कि जैन इतिहास एवं परम्परा के रूप में भारतीय इतिहास का जो अध्याय अबतक अंधकार में पड़ा हुआ है, वह प्रकाश में आ जाय। समिति भारतीय परम्परा की उस कड़ी को जोड़ देना चाहती है जिस के अज्ञात रहने के कारण भारतीय प्राचीन गौरव का परिचय अबतक अधूरा है और भविष्य में भी अधूरा रहेगा।

समिति को इस बात का हर्ष है कि उसे डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल सरीखे इतिहास के विद्वान तथा भारतीय प्राचीन गौरव के अनन्य उपासकों का मार्गदर्शन प्राप्त है। जैन साहित्य के विविध अङ्गों के विशेषज्ञों ने अपना सक्रिय सहयोग देना स्वीकार किया है। आर्थिक सहायता देने वाले साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से ऊपर उठकर साहित्य उपासना की शुद्ध भावना से अनुप्राणित हैं। आशा है, इस प्रकार प्रामाणिक जैन साहित्य का निर्माण तो होगा ही, साथ ही एक नई परम्परा स्थापित होगी जो भारत को साम्प्रदायिक दुराग्रहों के दलदल से निकाल सके।

श्री सोहन लाल जैन धर्म प्रचारक समिति

(क) संरक्षक तथा उपसंरक्षक

१. श्री रतनचन्द हरजसराय अमृतसर (संरक्षक)।
२. सेठ सोहनलाल जी, दूगड़, कलकत्ता (संरक्षक)।
३. सेठ छोटेलाल केशवजी शाह, कालबा देवी रोड, बम्बई (उपसंरक्षक)।
४. श्री राजेन्द्रसिंह जी व नरेन्द्रसिंह जी सिंघी, कलकत्ता (उपसंरक्षक)।
५. श्री श्वे० साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था बीकानेर (उपसंरक्षक)।

(ख) कार्य कारिणी के सदस्य

१. श्री त्रिभुवननाथ, कपूरथाला, (प्रधान)
२. श्री हरजसराय जैन, (मंत्री)
३. श्री पन्नालाल।
४. श्री मुन्निलाल।
५. श्री सुरेन्द्रनाथ, M.A., B.Com.
६. श्री हंसराज, गुरु बाजार।
७. प्रो० मस्तराम जैनी, M.A., LL.B.,
८. श्री टेकचन्द, दिल्ली।
९. श्री लक्ष्मीचंद, अम्बाला।
१०. श्री बंसीलाल, होशियारपुर।
११. श्री जगन्नाथ जैनी, National Advertising Service, खार, बम्बई।
१२. श्री रामजीदास जिन्दल, दिल्ली।
१३. श्री कुंजलाल जी ओसवाल, दिल्ली।
१४. श्री हीरालाल जैन, Advocate, लुधियाना :
१५. श्री शादीलाल जैन, B.Com.
१६. श्री कस्तूरीलाल जैन, अमृतसर।
१७. श्री अमरचन्द्र, मालेरकोटला।

१८. श्री दौलतराम जैन, जालन्धर ।
१९. श्री विद्याप्रकाश जैन, अम्बाला ।
२०. श्री शोरीलाल, कपूरथला ।
२१. श्री रत्नचन्द्र जैन, M.A., लुधियाना और
२२. श्री अमृतलाल जैन, B.A., LL.B., कलकत्ता ।

(ग) सम्मानित सदस्य (आनरेरी मेम्बर)

१. डॉ० मंगलदेव शास्त्री, M.A., D.Phil., Ex. Principal and Registrar, Government Sanskrit College, Banaras.
२. डॉ० बी० एल० आत्रेय, M.A., D.Litt., K.C., K.T., युनिवर्सिटी प्रोफेसर ऑफ फिलॉसॉफी, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी ।
३. डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल प्रोफेसर ऑफ आर्ट एण्ट आर्केओलोजी बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी ।
४. डॉ० आर० सी० मजूमदार,
५. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रधान-हिन्दी विभाग, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी ।
६. डॉ० पी० एल० वैद्य, पूना M.A., D.Litt., मयूरभंज प्रोफेसर ऑफ संस्कृत एण्ड पाली, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी ।
७. डॉ० बूलचद, M.A., Ph.D., I.A.S., Secretary, Education and Local Self Government, Madhya Bharata (Gwalior).
८. पण्डित सुखलालजी संघवी, अहमदाबाद ।
९. डॉ० नथमल टाटिया, M.A.,D.Litt., नालन्दा पाली इन्स्टीटयूट ।
१०. डॉ० राजबली पाण्डे, M.A., D.Litt., College of Indology, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी ।
११. श्री कुन्दनमल सोभागचन्द फिरोदिया, B.A., LL.B., Ex. Speaker, Bombay Legislative Assembly, अहमदनगर

———

शास्त्र रचना का उद्देश्य

—पं० सुखलाल जी

सत्य का आविर्भाव करने वाले जो जो महापुरुष पृथ्वीतल पर हुए हैं उनको उन से पहले के सत्यशोधकों की शोध विरासत में मिली है। ऐसा कोई भी महापुरुष क्या तुम बता सकोगे जिसके द्वारा की गई सत्य की शोध और उसके आविर्भाव में पूर्ववर्ती एवं समसामयिक दूसरे शोधकों की देन न हो और केवल उसी के द्वारा एकाएक सत्य प्रकट किया गया हो? हम जरा भी विजार करेंगे तो मालूम पड़ेगा कि प्रत्येक सत्यशोधक अथवा शास्त्र प्रणेता अपने को मिली हुई विरासत की भूमिका पर ही खड़ा होकर अपनी दृष्टि के अनुसार या अपनी परिस्थिति के अनुसार सत्य का आविर्भाव करने में प्रवृत्त होता है और वैसा करके सत्य की अभिव्यक्ति को विकसित करता है। यह विचारसरणी यदि त्याज्य न हो तो कहना चाहिए कि प्रत्येक शास्त्र, उस विषय में जिन्होंने शोध की, जो शोध कर रहे हैं, या जो शोध करने वाले हैं, उन सब की क्रमिक तथा प्रकार भेदवाली प्रवृत्तियों का संयोजक है। प्रतीतियाँ जिन संयोगों में उनसे उत्पन्न हुई हों, उन्होंने संयोगों के अनुसार उसी क्रम से संकलित कर लिया जाय तो उस विषय का पूर्ण अखण्ड शास्त्र बन जाय और इन सभी त्रैकालिक प्रतीतियों या आविर्भावों में से अलग अलग खण्ड ले लिए जायँ तो वह अखण्ड शास्त्र भले ही न कहलाए, फिर भी यह कहा जा सकता है कि वह अखण्ड शास्त्र का एक अंश है। परन्तु ऐसे किसी अंश को यदि सम्पूर्णता का नाम दिया जाय तो वह मिथ्या है। हमें शुद्ध हृदय से स्वीकार करना चाहिए कि केवल वेद, केवल उपनिषद्, जैन आगम, बौद्ध पिटक, अवेस्ता, बाइबल, पुराण, कुरान या तत्तत् स्मृतियाँ एकाकी सम्पूर्ण या अन्तिम शास्त्र नहीं हैं। वे सब आध्यात्मिक, भौतिक अथवा सामाजिक विषय-सम्बन्धी एक अखण्ड त्रैकालिक शास्त्र के क्रमिक तथा प्रकार भेद वाले सत्य की अभिव्यक्ति के सूचक हैं अथवा उस अखण्ड सत्य के देश, काल तथा प्रकृति भेदानुसार भिन्न भिन्न पक्षों को प्रस्तुत करने वाले खण्ड-शास्त्र हैं। यह बात किसी भी विषय के ऐतिहासिक और तुलनात्मक अभ्यासी के लिए समझ लेना बहुत सरल है। यदि यह बात हमारे हृदय में उतर जाय, और उतारने की

(शेष पृष्ठ २८ पर देखिए)

जैन साहित्य के विषय में अजैन विद्वानों की दृष्टियाँ

इन्द्र

भारतीय भाषाएं और जैन साहित्य

प्रो० विण्टर निज़

The literature of the Jainas is also very important from the point of view of the history of the Indian languages: for the Jainas always took care that their writings were accessible to considerable masses of the people. Hence the canonical writings and the earliest commentaries are written in Prakrit dialects (Magadhi or Maharastri). It was not until a later period that the Jainas—the Swetambaras from the 8th century, and the Digambaras somewhat earlier used Sanskrit for commentaries and learned works as well as for poetry. Some of these authors write a simple, lucid Sanskrit, others compete with the classical Sanskrit poets in their use of an elaborate Sanskrit in the Kavya style, whilst yet others affect a Sanskrit spot with Prakritisms, approaching the vernacular. At a later time, from the 10th to 12th century, there is a return of poetry to the Apabhramsa dialects adopted to the vernacular. Lastly, in quite recent times, the Jainas also use various Modern Indian Languages, and they have enriched more especially Gujarati and Hindi literatures, as well as Tamil and Kanarese literatures in the south.

Winternitz in History of Indian Litol. Verautre II, p. 427.

भारतीय भाषाओं के इतिहास की दृष्टि से भी जैन साहित्य अत्यन्त महत्व-पूर्ण है, क्योंकि जैन आचार्यों ने सदा इस बात का ध्यान रखा है कि उन का साहित्य साधारण जनता की समझ में आ सके। इसी लिए आगम-साहित्य और प्राचीन टीकाएं बोलचाल की प्राकृत (मागधी या महाराष्ट्री) में लिखी गई। संस्कृत का प्रयोग श्वेताम्बरों ने आठवीं सदी से तथा दिगम्बरों ने उस से कुछ पहले टीकाओं, दार्शनिक ग्रन्थों तथा काव्यों के लिए किया। उनमें से कुछ लेखकों ने अत्यन्त सरल तथा प्रांजल संस्कृत लिखी है। दूसरों ने अपने काव्यों में अन्य महाकवियों के समान प्रौढ़ संस्कृत का प्रयोग किया है। कुछ ऐसे भी हैं जिन्हों ने प्राकृत प्रभावित नई संस्कृत को जन्म दिया है जो लोकभाषा के समीप पहुँच गई है। दसवीं से बारहवीं सदी तक के उत्तरकाल में पुनः अपभ्रंश बोलियों की ओर प्रवृत्ति हुई और उन्हीं में काव्य रचे गए। ये बोलियाँ उस समय की लोकभाषा थीं। अन्त में, नवीन युग के साथ जैनियों ने भारत की आधुनिक भाषाओं का प्रयोग शुरू किया। उन्होंने उत्तर भारत में हिन्दी तथा गुजराती और दक्षिण में तामिल तथा कन्नड़ को विशेष समृद्ध किया है।

विण्टरनिज हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर भाग २।

जैन मूर्तिकला

डॉ० विनयतोष भट्टाचार्य
एम. ए. पी. एच. डी. डाइरेक्टर ओरियण्टल इंस्टिटयूट, बड़ोदा

Hinduism, Buddhism and Jainism being the three principal and ancient religious systems of India, the study of iconography naturally falls into three grand divisions. Much work has already been done in the field of Hindu and Buddhist iconography, but so far not a single authoritative book on Jaina iconography has been written. With the advance of Jaina studies and the discovery of Jaina monuments, temples and images, scholars are required to be drawn towards this branch of iconography, so that an exhaustive and

authoritative volume may be available to earnest inquirers. This will not only stimulate the Jains themselves, but also give an impetus to those who are anxious to compare the results so far achieved in the Hindu and Buddhist branches of iconography, with those of the Jaina religious systems. After all, all the three religions being indigenous to India have many things in common, and it is to our utmost advantage to know how far the three systems agree with one another in order to appreciate how far they differed. This study of iconography, when carried to its logical extreme, thus helps to re-establish cultural unity that existed in olden days, and remove many misunderstandings that may have arisen in recent years.

हिन्दू, बौद्ध और जैन भारत के तीन प्रधान और प्राचीन धार्मिक मतों के कारण मूर्तिविद्या का अध्ययन क्षेत्र भी तीन विभागों में विभाजित हो जाता है। हिन्दू और बौद्ध मूर्तिविद्या के क्षेत्र में बहुत कुछ कार्य किया जा चुका है पर जैन मूर्तिविद्या के क्षेत्र में आज तक कोई एक भी ऐसी पुस्तक नहीं लिखी गई कि जिससे थोड़ा बहुत परिचय मात्र प्राप्त किया जा सके। ज्यों ज्यों जैन धर्म के अध्ययन में प्रगति होती जा रही है, जैन मन्दिरों, स्मारकों, मूर्तियों आदि का खोज कार्य बढ़ता जा रहा है। इस बात की भी आवश्यकता है कि विद्वानों का ध्यान मूर्ति विद्या के इस विभाग की ओर भी जाए और वे इस विषय के एक प्रामाणिक परिचयात्मक ग्रंथ का निर्माण करें जिससे इस विषय के जिज्ञासुओं को कुछ लाभ हो। इससे केवल जैनों को ही प्रोत्साहन नहीं मिलेगा पर उन लोगों को भी प्रेरणा मिलेगी जो मूर्त्तिविद्या की हिन्दू, बौद्ध और जैन शाखाओं के तुलनात्मक अध्ययन के इच्छुक हैं और इस कार्य में रुचि लेते हैं। जो कुछ भी हो, तीनों ही धर्मों का जन्म भारत में होने के कारण, आपस में बहुत ही मनोरंजक विषय होगा कि इन तीनों सिद्धान्तों में कहाँ तक समानता और कहाँ तक असमानता है। जब तर्क शास्त्रिक दृष्टि से मूर्त्तिविद्या का अध्ययन किया जाएगा तो उससे प्राचीन काल में स्थापित सांस्कृतिक एकता के पुनःस्थापन में सहायता मिलेगी। और इधर कुछ वर्षों में इस विषय में लोगों की जो भ्रान्त धारणाएँ हो गई हैं, वे दूर होंगी।

जैन धर्म का वारसा

श्री कालीदास नाग

The spiritual legacies of Jainism should not be confined to the Jaina community alone, but should be made available to entire humanity, especially in this age of crisis when violence threatens to ruin the entire fabric of human civilization. The deathless principle of non-violence (Ahimsa) is the noblest heritage of Jainism for which the whole mankind should ever be grateful.

जैन धर्म की आध्यात्मिक देन केवल जैन समाज तक सीमित नहीं रहनी चाहिए। उस का लाभ समस्त मानवता को प्राप्त होना चाहिए। कटाकटी के इस युग में उसकी और भी अधिक आवश्यकता है जब कि हिंसा मानवीय सभ्यताके मूल पर कुठाराघात कर रही है। अहिंसा का अमर सिद्धान्त जैन धर्म का वह सर्वश्रेष्ठ वारसा है जिस के लिए मानवता उस की सदा ऋणी रहेगी।

(पृष्ठ २४ से आगे)

जरूरत तो है ही, तो हम अपनी बात को पकड़े रहते हुए भी दूसरों के प्रति अन्याय करने से बच जाएंगे और ऐसा करके दूसरे को भी अन्याय में उतरने की परिस्थिति से बचा लेंगे।

अपने माने हुए सत्य के प्रति वफ़ादार रहने के लिए यह जरूरी है कि उसकी जितनी कीमत हो उससे अधिक आँक करके अंधश्रद्धा न विकसित की जाय और कमती आंक कर नास्तिकता न प्रकट की जाय। ऐसा किया जाय तो यह मालूम हुए बिना न रहेगा कि अमुक विषय सम्बन्धी मन्थन कहाँ शास्त्र है, कहाँ अशास्त्र है और कहाँ दोनों में से कुछ भी नहीं है।

देश, काल और परिस्थिति से सीमित सत्य के आविर्भाव की दृष्टि से ये सभी शास्त्र हैं, सत्य के सम्पूर्ण और निरपेक्ष आविर्भाव की दृष्टि से अशास्त्र हैं और शास्त्रयोग के पार पहुँचे हुए समर्थ योगी की दृष्टि से न शास्त्र हैं न अशास्त्र। स्वाभिमत साम्प्रदायिक शास्त्र के विषय में उपबृंहित मिथ्या अभिमान को गलाने के लिए इतनी समझ पर्याप्त है। यदि यह मिथ्या अभिमान गल जाय तो मोह का बन्धन दूर होते ही सभी महान् पुरुषों के खण्ड सत्यों में अखण्ड सत्य का दर्शन हो जाय और सभी विचार सरणियों की नदियाँ अपने अपने ढंग से एक ही महासत्य के समुद्र में मिलती हैं, ऐसी स्पष्ट प्रतीति हो जाय। यह प्रतीति कराना शास्त्र-रचना का प्रधान उद्देश्य है।
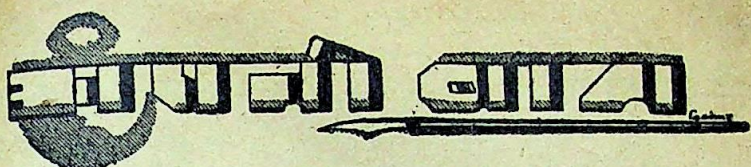
नए वर्ष में प्रवेश

इस अंक के साथ 'श्रमण' अपने पाँचवे वर्ष में प्रवेश कर रहा है। जन्म से लेकर आज तक यह अपनी नीति पर स्थिर है और श्रमण परम्परा के उज्वल प्रकाश को घर घर फ़ैलाने का प्रयत्न कर रहा है। प्रबल आघात हुए, भयङ्कर तूफान उठे, फिर भी यह ज्योति न बुझी, न पथभ्रष्ट हुई। एक एक कदम दृढ़ता पूर्वक रखती हुई आगे बढ़ती गई। प्रत्येक कदम ने इसे नए प्राण दिए, नई शक्ति दी। यही श्रमण की गौरवगाथा है।

पिछले कुछ मास से इसने समाज की साहित्य-चेतना को जागृत करने की ओर ध्यान देना प्रारम्भ किया है। श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति अमृतसर ने साहित्य-निर्माण की जो विशाल योजना उठाई है उसकी ओर जैन समाज का लक्ष्य खींचने के साथ साथ इसने साहित्य संस्थाओं के सामने उपयोगी कार्य-क्रम भी उपस्थित किया है। जैन साहित्य कितना विशाल तथा समृद्ध है यह पिछले कुछ अंकों से वताया जा रहा है। इसके पीछे बड़े बड़े तपस्वी एवं ज्ञानियों की तीन हज़ार वर्ष लम्बी साधना है। पूर्व से लेकर पश्चिम तक और उत्तर से लेकर दक्षिण तक विशाल आर्यावर्त इस साधना का केन्द्र रहा है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी, तामिल, कन्नड आदि भारत की प्राय: सभी ऐतिहासिक भाषाओं में यह दिव्य स्रोत बहा है। भारतीय मस्तिष्क की ऊँची उड़ान के साथ साथ इसने लोक जीवन को भी चित्रित किया है। इसने हमारी त्याग और तपस्या की परम्परा को अक्षुण्ण बनाया है। अहिंसा की महान् ज्योति को प्रज्वलित रखा है।

भारतीय मस्तिष्क की इस गौरवपूर्ण देन को सर्वसाधारण के सामने प्रस्तुत करना एक महान् कार्य है। इसके लिए विविधलक्षी प्रयत्न तथा अनेक शक्तियों के केन्द्रित होने की आवश्यकता है। श्री सो० जै० धर्म प्रचारक समिति ने उपरोक्त समस्त साहित्य का परिचय देने के लिए एक इतिहास ग्रन्थ तैयार करने का निश्चय किया है। इसके लिए जैन साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों का सहयोग प्राप्त किया है। योजना के अनुसार सन् १९५५ के अन्त तक वह ग्रन्थ जनता के सामने आ जाना चाहिए। यह

बताने की आवश्यकता नहीं है कि उससे संसार के समस्त विद्वानों का ध्यान जैन साहित्य की ओर आकृष्ट होगा।

समिति का विचार है कि एक ग्रन्थ को पूरा करके क्रमशः दूसरा हाथों में लिया जाय। इस प्रकार के पाँच महाग्रन्थों में योजना सम्पूर्ण होती है।

यह एक विशाल अनुष्ठान है। हम जैन समाज की साहित्य-संस्थाओं तथा अन्य साहित्य प्रेमियों से अनुरोध करेंगे कि वे सभी मिल कर इस अनुष्ठान को पूरा करने में जुट जाँय। इसे किसी संस्था या सम्प्रदायविशेष का कार्य न मानकर समस्त जैन समाज का कार्य मानना चाहिए और सभी को सहयोग देना चाहिए।

योजना का विस्तृत रूप इसी अंक में अन्यत्र दिया गया है। इसके किसी भाग अथवा खण्ड के लेखन और प्रकाशन दोनों का, अथवा किसी एक का खर्च उठाकर कोई भी संस्था अथवा व्यक्ति सहयोगी बन सकता है। इस प्रकार ग्रन्थ के उस भाग के साथ साथ उस व्यक्ति का नाम भी अमर हो जाएगा। आशा है, समाज इस ओर ध्यान देगा।

विद्वन्मण्डल का अधिवेशन

जैन साहित्य-निर्माण योजना के प्रथम भाग 'जैन साहित्य का इतिहास' नामक ग्रन्थ की रूपरेखा को परिनिष्ठित करने के लिए ता० २९ तथा ३० अक्टूबर को अहमदाबाद में विद्वन्मण्डल का एक अधिवेशन हो रहा है। इस में जैन साहित्य के प्रमुख विद्वान् एकत्रित होंगे और जैन साहित्य के इतिहास निर्माण पर विचार विनिमय करेंगे।

जैन समाज के इतिहास में यह पहला अवसर है जब भिन्न भिन्न विषयों के विशिष्ट विद्वान् शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से एकत्रित हो रहे हों। विद्वन्मण्डल में केवल जैन ही नहीं किन्तु ऐसे अजैन विद्वानों को भी आमन्त्रित किया गया है जो जैन साहित्य परम्परा या संस्कृति के किसी भाग पर अधिकार रखते हैं और उसको प्रकाश में लाने के लिए उत्सुक हैं। डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल सरीखे भारतीय संस्कृति के विश्वद्रष्टा इस अनुष्ठान के अध्वर्यु हैं। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० मोती चन्द आदि विद्वान् इसमें सम्मिलित हो रहे हैं। जैन साहित्य के दीर्घ तपस्वी मनस्वियों में मुनि श्री पुण्य विजय जी महाराज, मुनि जिन विजय जी, पं० सुखलाल जी, डॉ० हीरालाल, पं० बेचरदास जी, डॉ० उपाध्ये आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

साहित्य निर्माण समिति का सौभाग्य है कि उसे इन दृष्टि-सम्पन्न महापण्डितों का मार्गदर्शन ही नहीं सक्रिय सहयोग भी प्राप्त है।

हम चाहते हैं, यह विद्वन्मण्डल एक स्थायी रूप धारण कर ले और प्रति वर्ष या दो वर्ष के पश्चात् इसके अधिवेशन होते रहें। इसमें जैन साहित्य की गतिविधि पर समीक्षा करते हुए भविष्य के लिए साहित्य निर्माण की योजना बनाई जाय। प्रयत्न किया जाय कि अधिक से अधिक प्रकाशन संस्थाएँ विद्वन्मण्डल से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लें और जैन साहित्य के निर्माण एवं प्रकाशन के लिए इससे मार्ग दर्शन लें। इससे विशृंखलित एवं अनुपयोगी साहित्य के प्रकाशन में जो धन तथा शक्ति का अपव्यय हो रहा है वह बच जायगा और उसे प्रामाणिक साहित्य के प्रकाशन में लगाया जा सकेगा। विद्वन्मण्डल द्वारा प्रमाणित साहित्य प्रतिष्ठा भी अधिक प्राप्त कर सकेगा।

इसका आयोजन ओरिएण्टल कान्फरेंस के साथ किया जा सकता है और स्वतन्त्र रूप में भी। प्रत्येक अधिवेशन में लगभग पाँच हजार का व्यय होगा, किन्तु वह कार्य को देखते हुए अधिक नहीं है।

विद्वन्मण्डल का महत्व एक और दृष्टि से भी है। विभिन्न सम्प्रदायों में बँटे हुए जैन समाज के लिए यह एक शुभ लक्षण है। विद्वानों द्वारा उपस्थित किया गया यह एकता का आदर्श समस्त समाज पर प्रभाव डाले बिना न रहेगा। यदि समस्त समाज के लिए एक साहित्य का निर्माण होने लगे और विद्वान् एक साथ बैठ कर साम्प्रदायिक भेद भाव को भुला दें तो साम्प्रदायिक झगड़ों का अन्त शीघ्र ही आ सकता है। इस प्रकार के शुभ आयोजन के लिए श्री सोहन लाल जैन धर्म प्रचारक समित को बधाई है।

चातुर्मास की समाप्ति से पहले

कार्तिक-पूर्णिमा को चातुर्मास समाप्त हो जाएगा और उसके दूसरे दिन जैन-साधु विहार कर देंगे। इसके बाद आठ मास तक वे बराबर भ्रमण करते रहेंगे। कहीं दो दिन ठहरेंगे, कहीं चार दिन, अधिक से अधिक एक महीना। ऐसे अवसर पर यदि वे अपने सामने एक लक्ष्य रख कर, एक योजना बनाकर चलें तो धर्म की बहुत बड़ी सेवा कर सकते हैं।

स्थानकवासी समाज ने डेढ़ वर्ष पहले एक क्रान्ति की। अवान्तर साम्प्रदायिक भेदों को त्यागकर अखण्ड एकता स्थापित की। अब समय आ गया है कि उस एकता से पूरा लाभ उठाया जाय। इसके लिए उन्हें एक

योजना और एक पद्धति निश्चित करनी चाहिए। हम आचार्य श्री एवं उपाचार्य श्री के सामने नीचे लिखे सुझाव रखना चाहेंगे :—

१—विहार करने योग्य समस्त साधुओं की एक सूची तैयार करके यह सोचा जाय कि उन्हें कितने संघाड़ों में बाँटा जा सकता है। साथ ही क्षेत्रों की सूची भी बना ली जाय।

२—कौन सा संघाड़ा किस जगह अधिक कार्य कर सकता है इस पर विचार करके प्रत्येक के लिए क्षेत्र चुन लिया जाय और प्रयत्न किया जाय कि कोई क्षेत्र खाली न रहे।

३—प्रत्येक संघाडे के लिए ऐसा कार्यक्रम रहे कि वह भावी चातुर्मास के स्थान को छोड़कर अपने क्षेत्र के सभी गाँवों में पहुँचे। आठ महीने में कोई गाँव छूटने न पाए।

४—इस प्रकार की व्यवस्था होने के बाद सभी व्याख्यान बाँचने वाले साधुओं को बताया जाय कि जनता में वास्तविक धर्मरुचि जागृत करने के लिए उन्हें कौन कौन सी बातें ध्यान में रखनी चाहिए।

५—स्थानकवासी समाज के जितने प्रभावशाली आचार्य कठोर तपस्वी या अन्य प्रकार से विशिष्ट साधु तथा श्रावक हुए हैं उन सब की जीवनियाँ तैयार की जाँए और जनता को सुनाई जाँय।

६—प्रत्येक साधु के लिए दो घण्टे प्रतिदिन स्वाध्याय का नियम रहे।

७—जो साधु अध्ययन-योग्य हों उन्हें सिद्धान्त शालाओं में अध्ययन के लिए भेजा जाय।

८—कम से कम २० साधु ऐसे अवश्य तैयार करना चाहिए जो परिश्रम पूर्वक अध्ययन करके अच्छे विद्वान् बन सकें।

९—उन साधुओं को विद्या के वातावरण में रखकर अध्ययन की पूर्ण सुविधा देनी चाहिए।

१०—इस बात का प्रयत्न होना चाहिए कि देहली में हमारा एक विशाल सांस्कृतिक केन्द्र स्थापित हो जाए। वहाँ विशाल पुस्तकालय हो, उच्च अध्ययन के लिए सिद्धान्त शाला हो। वहीं कान्फरेंस की समस्त प्रवृत्तियाँ केन्द्रित हों।

(शेष पृष्ठ ४५ पर)

श्री जैन साहित्य-निर्माण योजना

उपक्रम

श्री सोहनलाल जैन धर्म-प्रचारक समिति अमृतसर की ओर से बनारस में पार्श्वनाथ विद्याश्रम नाम की संस्था कई वर्षों से चल रही है। विद्याश्रम ने धीरे धीरे एक अनुशीलनपीठ का रूप धारण कर लिया है और प्रतिभाशाली विद्यार्थी एवं विद्वानों को जैन साहित्य के विविध अङ्गों का अनुशीलन करने के लिए प्रोत्साहित करना अपना मुख्य ध्येय बना लिया है। इसी की सहायक प्रवृत्तियों के रूप में विद्याश्रम के पास श्री शतावधानी रत्नचन्द्र जैन पुस्तकालय है, जिसमें अनुशीलन की दृष्टि से उपयोगी साहित्य का संग्रह किया जाता है। साथ ही श्रमण नाम का मासिक पत्र है जो सर्वसाधारण को श्रमण परम्परा का परिचय देता है और विद्याश्रम की चेतना का परिवहन करता है।

लगभग एक वर्ष हुआ डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने समिति के मन्त्री लाला हरजसराय जैन का ध्यान जैन साहित्य के आधार भूत ग्रन्थ तैयार करने की ओर आकृष्ट किया। उसमें नीचे लिखे ग्रन्थों की ओर विशेष लक्ष्य था:—

१ व्यक्तिवाचक शब्द कोश (Dictionary of Proper Names)—लङ्का निवासी डॉ० मलाल शेखर ने पाली भाषा का व्यक्तिवाचक शब्दकोश तैयार किया है। उससे विद्वानों को बौद्ध साहित्य का अध्ययन सुगम हो गया है। उसी पद्धति पर अर्द्धमागधी, प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत भाषा के समस्त जैन साहित्य में आए हुए इतिहास, भूगोल आदि विषयों से सम्बन्ध रखने वाले समस्त व्यक्तिवाचक शब्दों का परिचय देनेवाला कोश तैयार करना। इसके लिए कम से कम चार विद्वानों को चार वर्ष तक निरन्तर कार्य करना होगा। इसके निर्माण में लगभग ५००००) पचास हज़ार रुपए खर्च होंगे और उसके बाद प्रकाशन के लिए २५०००) पच्चीस हज़ार की आवश्यकता होगी।

२—जैन दर्शन और धर्म का क्रमबद्ध इतिहास (**History of Jain Thought and Religion**)—जिस प्रकार सर राधाकृष्णन् ने हिस्ट्री ऑफ

इंडियन फिलोसोफी तैयार की है, उसी पद्धति पर जैन विचारधारा का क्रमबद्ध इतिहास तैयार करना। इसमें लगभग २००० दो हज़ार पृष्ठ होंगे। यह ग्रंथ सभी के सामने जैन परम्परा का प्रामाणिक रूप उपस्थित करेगा। इससे न केवल जैन समाज को लाभ होगा किन्तु जैन धर्म एवं दर्शन भारतीय आध्यात्मिक परम्परा में उचित स्थान प्राप्त कर सकेगा। साथ ही भारतीय सांस्कृतिक इतिहास का एक अज्ञात अध्याय प्रकाश में आ जायगा। इसके लेखन में लगभग २००००) बीस हज़ार व्यय होंगे और उतने ही प्रकाशन में।

३—जैन साहित्य का सर्वाङ्गीण इतिहास (**History of Jain literature**)—जैन आगम, पाहुड, कर्मसाहित्य, आगमिक प्रकरण, दार्शनिक तथा लाक्षणिक साहित्य, काव्य, चरित, चम्पू आदि तथा अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती राजस्थानी, तामिल, तेलुगु आदि भाषा साहित्य का इतिहास तथा परिचय देने वाला ग्रंथ तैयार करना। इसकी पृष्ठ संख्या लगभग ३००० तीन हज़ार होगी। इसके लेखन में १५०००) पन्द्रह हज़ार लगेंगे और प्रकाशन में ३००००) तीस हज़ार।

४—जैन साहित्य में उपलब्ध सामग्री का सांस्कृतिक, राजनीतिक, भौगोलिक तथा अन्य दृष्टियों से संकलन। इससे तत्तद् विषय में अनुशीलन करनेवालों के लिए जैन साहित्य का परिशीलन सुलभ हो जायगा। इसके लिए कुछ कार्य हुआ है, शेष के लिए सुविधानुसार प्रयत्न करना चाहिए। यह कार्य डॉक्टरेट के लिए अनुशीलन करने वालों को भी दिया जा सकता है।

५—दार्शनिक शब्द कोश (**Dictionary of Jain Philosophical Terms**)—यह ग्रंथ जैन दर्शन के अभ्यासियों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होगा। इसके लेखन और प्रकाशन में लगभग ३००००) तीस हज़ार व्यय होंगे।

श्री सोहन लाल जैन धर्म प्रचारक समिति ने सिद्धान्त के रूप उपरोक्त समस्त योजना को स्वीकार किया और शक्ति तथा सुविधानुसार एक एक कार्य को हाथ में लेने का निश्चय किया। विचारविनिमय के पश्चात् जैन साहित्य के इतिहास को प्राथमिकता दी गई और नीचे लिखी रूपरेखा तैयार की गई:—

जैन साहित्य का इतिहास

(प्रस्तावित रूपरेखा)

प्रथम भाग—आगमिक साहित्य पृष्ठ संख्या १५००

सम्पादक—पं० बेचरदास जी व डॉ० हीरालाल जैन

प्रथम खण्ड—मूल आगम तथा उनकी व्याख्याएँ पृ० सं० ८००

अध्याय एवं प्रकरण

प्रथम उपखण्ड—प्रस्तावना पृ० सं० १००

१ प्रकरण—श्रमण परम्परा और जैन आगम। पृ० १५
२ प्रकरण—आगमों की भाषा। पृ० ३०
३ प्रकरण—आगमों का समय और संकलन। पृ० ४०
४ प्रकरण—आगमों का विभाजन। पृ० १५

द्वितीय उपखण्ड—मूल आगम पृ० सं० ३८५

१ अध्याय—बारह अंग। इसमें बारह प्रकरण होंगे। पृ० १५०
२ अध्याय—बारह उपांग। इसमें सात प्रकरण होंगे। प्रथम चार उपांगों के चार, तीन प्रज्ञप्तियों का एक और कप्पियाँ आदि पाँच लघु उपांगों का एक। पृ० १०५
३ अध्याय—चार मूल सूत्र। इसमें चार प्रकरण रहेंगे। पृ० ४०
४ अध्याय—छः छेदसूत्र। इसमें छः प्रकरण रहेंगे। पृ० ४०
५ अध्याय—दस प्रकीर्णक। पृ० २५
६ नन्दी और अनुयोग द्वार। पृ० २५

तृतीय उपखण्ड—आगमों का व्याख्यात्मक साहित्य पृ० ३१५

१ अध्याय—निर्युक्तियाँ। इसमें दस निर्युक्तियों के दस प्रकरण रहेंगे। पृ० १००
२ अध्याय—भाष्य। इसमें छः भाष्यों के छः प्रकरण रहेंगे। पृ० १०५
३ अध्याय—चूर्णियाँ। पृ० २५
४ अध्याय—टीकाएं। पृ० ७५
५ अध्याय—हिन्दी तथा अन्य लोक भाषाओं में रचित व्याख्याएं। पृ० १०

द्वितीय खण्ड—कर्मप्राभृत और कषाय प्राभृत पृ० २००

प्रथम अध्याय—कर्म प्राभृत (षट् खण्डागम) पृ० १२०

१ प्रकरण—कर्मप्राभृत की आगमिक परम्परा। पृ० ८
२ प्रकरण—सूत्र और उनकी टीकाओं के रचयिता और उनका रचना काल। पृ० ८

३ प्रकरण—सूत्र और उनकी टीकाओं की भाषा व रचना शैली। पृ० ८
४ प्रकरण—विषय परिचय

(१) जीवट्ठाण—१६
(२) खुद्दाबंध—८
(३) बन्धस्वामित्वविचय—८
(४) वेदना—८
(५) वर्गणा—८
(६) महाबन्ध—३२ (प्रकृति—८, स्थिति—८, अनुभाग—८, प्रदेश—८

द्वितीय अध्याय—कषाय प्राभृत (पेज्जदोस पाहुड) पृ० ८०

१ प्रकरण—कषाय प्राभृत की आगमिक परम्परा। पृ० ४
२ प्रकरण—कषाय प्राभृत के गाथाकार व टीकाकार तथा उनका रचना काल। पृ० ८
३ प्रकरण—गाथा व टीकाओं की भाषा एवं रचनाशैली। पृ० ८
४ प्रकरण—विषय परिचय पृ० ६०

(१) पेज्ज दोस विभत्ति, (२) स्थिति विभत्ति, (३) अनुभाग विभत्ति (४) प्रदेश विभक्ति, (५) बन्धक, (६) वेदक, (७) उपयोग, (८) चतुः स्थान, (६) व्यञ्जन, (१०) दर्शनमोहोपशम, (११) दर्शनमोह क्षपणा, (१२) देशविरत, (१३) संयमलब्धि, (१४) चरित्रमोहोपशम, (१५) चारित्रमोह क्षपणा।

तृतीय खण्ड—कर्म साहित्य पृ० ८०

१ अध्याय—कर्मवाद की पृष्ठ भूमि
(१) दर्शन साहित्य और कर्मवाद, (२) पुराण साहित्य और कर्मवाद, (३) नीतिग्रन्थ और कर्मवाद, (४) कारणमीमांसा और कर्मवाद—स्वभाव-काल-नियति ईश्वर कर्म, (५) जगदुत्पत्ति की विविध मान्यताएं और कर्मवाद, (६) पुनर्जन्म की विविध मान्यताएं और कर्मवाद, (७) आधुनिक मत और कर्मवाद, (८) समीक्षा।

२ अध्याय—कर्म साहित्य और उसका क्रमिक विकास
(१) अंग साहित्य और पूर्व साहित्य, (२) सूत्रग्रन्थ और उनकी चूर्णियाँ (३) टीकाग्रन्थ, (४) अन्य साहित्य—कर्मप्रकृति, पंचसंग्रह, कर्मग्रन्थ कर्मकाण्ड आदि।

चतुर्थ खण्ड—आगामिक प्रकरण पृ० २४०

१ अध्याय—आगामिक प्रकरणों का उद्‌भव पृ० २०
२ अध्याय—आगमसार और द्रव्यानुयोग सम्बन्धी साहित्य। पृ० १६०
३ अध्याय—औपदेशिक साहित्य। पृ० ५०
४ अध्याय—योग और अध्यात्म। पृ० ४०
५ अध्याय—साधु तथा श्रावक के आचार विषयक साहित्य। पृ० ८०
६ अध्याय—विधि-विधान-कल्प-तन्त्र मन्त्र आदि। पृ० ४०
७ अध्याय—पर्वों और तीर्थों का परिचायक साहित्य। पृ० ४०

द्वितीय भाग—दार्शनिक और लाक्षणिक साहित्य

प्रथम खण्ड—दार्शनिक साहित्य पृ० ३८०

सम्पादक—प्रो० दलसुख भाई मालवणिया

१ अध्याय—दार्शनिक साहित्य की भूमिका पृ० ३५
(१) आगमों का प्रभाव, (२) जैनेतर दार्शनिक साहित्य का प्रभाव, (३) अन्य प्रभाव।
२ अध्याय—विषय प्रवेश पृ० ५५
(१) अनेकान्तवाद, (२) प्रमाण प्रमेय विचार-प्राचीन और नवीन, (३) साम्प्रदायिक खण्डन-मण्डन, (४) जैन आचार्यों द्वारा रचे गए इतर दर्शनों के टीका ग्रन्थ।
३ अध्याय—विक्रम संवत् १०० से ६५० तक। पृ० ७१
कुन्दकुन्द, उमास्वाति, भद्रबाहु पूज्यपाद सिद्धसेन, समन्तभद्र, मल्लवादी, जिनभद्र, सिंहसूर आदि।
४ अध्याय—विक्रम संवत ६५१ से १००० तक। पृ० ६०
हरिभद्र, अकलंक, श्रीदत्त, कुमार नन्दी, पात्रकेसरी, सिद्धसेन गणी, विद्यानन्द, शाकटायन, अनन्तवीर्य, माइल्लधवल, सिद्धर्षि, देव सेन आदि।
५ अध्याय—विक्रम संवत् १००१ से १२५० तक। पृ० ७५
सोमदेव, अभयदेव, माणिक्यनन्दी, कनकनन्दी, जयराम, हरिषेण, अमितगति, जिनेश्वर, वादिराज, प्रभाचन्द्र, पद्मसिंह, कीर्ति, शान्त्याचार्य, आनन्दसूरि, अमरसूरि, अनन्तवीर्य, वसुनन्दी, चन्द्रप्रभ, मुनिचन्द्र, मलधारी हेमचन्द्र, वादिदेव सूरि, अनन्तवीर्य द्वितीय, शुभचन्द्र,

हेमचन्द्र, मलयागिरि, पार्श्वदेव, चन्द्रसूरि, समन्तभद्र द्वितीय, श्रीचन्द्र, जिनदत्त, देवभद्र, रत्नप्रभ, अमृतचन्द्र, देवभद्र, यशोदेव, यशोवर्द्धन, रामचन्द्र, गुणचन्द्र, रविप्रभु, चन्द्रसेन, प्रद्युम्न, चक्रेश्वर सूरि, जिनपति आदि।

६ अध्याय—विक्रम सं० १२५१ से १७०० तक। पृ० २७

परमानन्द, जिनपाल, माघनन्दी, धर्मघोष, नरसिंह, आशाधर, महेन्द्र-सूरि, ब्रह्म, शांति दास, अभयतिलक, प्रबोधचन्द्र, मल्लिषेण, जिनप्रभ, राजशेखर, सोमतिलक, ज्ञानचन्द्र, सूरचन्द्र, ज्ञानकलश, जयसिंहसूरि, मेरुतुंग, जयशेखर, साधुरत्न, गुणरत्न, धर्मभूषण, मुनिसुन्दर, जिन-वर्द्धन, जिनमण्डन, साधुविजय, भुवन सुन्दर, सिद्धान्तसागर, ज्ञान-भूषण, श्रुतसागर, सौभाग्य सागर, विजयदान सूरि, हीरविजय, धर्म-सागर, वनर्षि, शुभचन्द्र, (द्वितीय), राजमल्ल, पद्मसागर, दयारत्न, शान्तिचन्द्र, सिद्धिचन्द्र, शुभविजय, भावविजय, रत्नचन्द्र, राजहंस, विमलदास, गुणविजय (गुणविजय) आदि।

७ अध्याय—वि० सं० १७०१ से २००० तक। पृ० २७

विनयविजय, यशोविजय, मानविजय, दानविजय, यशस्वत सागर, मेघ विजय, अमृत सागर, भावप्रभ, देवचन्द्र, मयाचन्द्र, भोजसागर, क्षमाकल्याण, वाचक संयम, गंभीर विजय, आनन्दसागर, मंगलविजय विजय लब्धिसूरि आदि।

टि:—कई आचार्य ऐसे हैं जिनके समय का पता नहीं लगा है, कई ग्रन्थ ऐसे हैं जिनके रचयिता का पता नहीं लगा है, अनुशीलन के पश्चात् उनका निर्णय करके यथास्थान सन्निवेश कर लिया जाएगा।

द्वितीय खण्ड—लाक्षणिक साहित्य पृ० १२०

सम्पादक पं० लालचन्द भगवानदास, बड़ोदा।

इस में व्याकरण, कोश, अलङ्कार, छन्द, ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद, रत्नशास्त्र, ऋतुविज्ञान, शकुन, सामुद्रिक, संगीत, शिल्प, मुद्रा, लक्षण-शास्त्र, धातुविज्ञान (metallurgy) आदि विषयों से सम्बन्ध रखने वाले साहित्य का इतिहास एवं परिचय रहेगा।

तृतीय भाग—काव्य साहित्य पृ० ४००

सम्पादक—डा० भोगीलाल साण्डेसरा

१ अध्याय—चरित्र तथा कथा साहित्य (१) प्रस्तावना, (२) दिगम्बर

पुराण, चरित्र तथा कथाप्रबन्ध, (३) श्वेताम्बर चरित्र तथा कथाप्रबन्ध
२ अध्याय—प्रबन्ध साहित्य, ऐतिहासिक चरित्र, प्रशस्तियाँ, तथा तत्सम्बद्ध अन्य ऐतिहासिक साहित्य।

३ अध्याय—ललित वाङ्मय (१) महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक, चम्पू, सुभाषितसंग्रह आदि, (२) स्तोत्र, (३) साहित्यिक टीकाएं।

चतुर्थ भाग—लोकभाषाओं में निर्मित साहित्य

प्रथम खण्ड—अपभ्रंश साहित्य पृ० १३०

सम्पादक—प्रो० एच० सी० भाया

१ **अध्याय**—उद्गम और विशेषताएं पृ० १३

(१) प्रास्ताविक, (२) पृष्ठभूमि, (३) अपभ्रंश साहित्य का उद्गम, (४) संस्कृत तथा प्राकृत साहित्य की देन, (५) नव विकास, (६) अपभ्रंश के साहित्यिक रूप।

२ **अध्याय**—कथात्मक काव्य अर्थात् सन्धिबन्ध संधियुक्त रचनाएं। सामान्य विशेषताएं। पृ० ६५

(क) (१) पौराणिक महाकाव्य-सामान्य समीक्षा, स्वयम्भू के पूर्ववर्ती, स्वयम्भू, पुष्पदन्त, पुष्पदन्त के पश्चाद्वर्ती। (२) कथात्मक काव्य के अन्य रूप—(१) हरिषेण की धम्म परिक्खा। (२) श्रीचद्र का कहाकोसु (३) चरित काव्य—प्राथमिक प्रवल, पुष्पदंत, धनपाल, कनकामर, धाहील, अप्रकाशित रचनाएं।

(ख) उपचीयमान महाकाव्य Continuous Epic (१) सामान्य समीक्षण, (२) हरिभद्र का नेमिकहा चरिउ, (३) रासाबंध।

३ **अध्याय**—रासाबन्ध पृ० १०

(१) सामान्य विशेषताएं, लुप्त साहित्य, (३) अर्वाचीन प्रकरण-अब्दुल रहमान का सन्देश रासक, (४) उपदेशात्मक रासा।

४ **अध्याय**—धार्मिक, उपदेशप्रधान तथा सूक्ति काव्य। पृ० २६

(१) सामान्य समीक्षा, (२) जोइन्दु, (३) पाहुड दोहा और सावयधम्म दोहा, (४) अन्य रचनाएं, (५) फुटकर प्रकरण।

५ **अध्याय**—फुटकर साहित्य पृ० १६

(१) विद्वत्तापूर्ण रचनाएं।

(२) अर्वाचीन अपभ्रंश का साहित्य ।
(३) लुप्त साहित्य ।

द्वितीय खण्ड—हिन्दी, जैन साहित्य पृ० १३०

सम्पादक—श्री नाथूराम जी प्रेमी व श्री अगरचन्दजी नाहटा

१ अध्याय—भूमिका

(१) हिन्दी भाषा की उत्पत्ति—अपभ्रंश से परम्परया हिन्दी में प्रवेश ।
(२) हिन्दी जैन साहित्य का प्रारम्भ, विकास, प्रकरण पद आदि ।
(३) विविध विषयक हिन्दी जैन साहित्य

२ **अध्याय**—हिन्दी जैन साहित्यकार व उनके ग्रन्थ ।

(१) सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी ।
(२) अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी ।
(३) बीसवीं शताब्दी वर्तमान समय तक ।

३ अध्याय—जैन हिंदी गद्य

(१) प्रारम्भ और विकास ।
(२) सत्रहवीं के उत्तरार्द्ध से अठारहवीं तक ।
(३) उन्नीसवीं से वर्तमान समय तक ।

४ **अध्याय**—उपसंहार ।

तृतीय खण्ड गुजराती जैन साहित्य पृ० ८०

सम्पादक—श्री अगरचन्द जी नाहटा

१ **अध्याय—**भूमिका

(१) गुजरात से जैनों का सम्बन्ध ।
(२) गुजरात में जैन साहित्य का प्रारम्भ ।
(३) गुजराती एवं राजस्थान की भाषागत एकता ।
(४) गुजराती का पृथक्करण ।

२ **अध्याय**— गुजराती भाषा के जैन कवि व उनके ग्रन्थ

(१) सोलहवीं से अठारहवीं सदी तक का गुजराती जैन साहित्य ।
(२) उन्नीसवीं तथा बीसवीं सदी ।
(३) उपसंहार ।

चतुर्थ खण्ड राजस्थानी जैन साहित्य पृ० ८०

१ **अध्याय**—भूमिका

(१) राजस्थान का क्षेत्रविस्तार ।
(२) राजस्थान से जैन धर्म का सम्बन्ध ।
(३) राजस्थान में जैनग्रन्थों की रचना का प्रारम्भ ।
(४) राजस्थानी भाषा का विकास ।
(५) राजस्थानी जैन साहित्य का विकास ।
(६) राजस्थानी जैन साहित्य का महत्व—प्रचार, विविधता, विशालता, विशेषता ।
(७) राजस्थानी जैन साहित्य की देन—खरतर गच्छा, श्वेताम्बर साधु, स्थानक बासी तथा तेरापंथी आदि का आविर्भाव एवं परिचय ।

२ **अध्याय**—राजस्थानी पद्य साहित्य के निर्माता जैन कवि व उनके ग्रंथ ।

(१) प्रारम्भ काल—तेरहवीं से सोलहवीं सदी का प्रारम्भ (प्राचीन गुजराती और राजस्थानी की एकता)
(२) उत्थान काल—सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी ।
(३) अवनति काल—उन्नीसवीं से बीसवीं का पूर्वार्द्ध ।

३ **अध्याय**—राजस्थानी गद्य के निर्माता व उनकी रचनाएं ।

(१) गद्य का प्रारम्भ व प्रकार ।
१४ वीं से १६ वीं का पूर्वार्द्ध ।
(२) १७ वीं से बीसवीं का पूर्वार्द्ध ।

३ **अध्याय**—उपसंहार

पंचम खण्ड कन्नड जैन साहित्य पृ० ४०

१—अध्याय—भूमिका ।

(१) कन्नड़ की प्राचीनता (प्रान्त की प्राचीनता, भाषा की प्राचीनता और साहित्य की प्राचीनता)
(२) कन्नड़ से जैन धर्म का सम्बंध—प्रांत एवं भाषा दोनों का ।
(३) कन्नड़ जैन ग्रंथों की रचना का प्रारम्भ ।
(४) कन्नड़ जैन साहित्य की दृष्टि, विशालता, विविधता तथा विशेषता ।
(५) कन्नड़ जैन साहित्य की देन ।
(६) कन्नड़ जैन साहित्य के प्रोत्साहक ।

२ अध्याय—कन्नड़ भाषा के जैन कवि व उनके ग्रंथ।

(१) प्रारम्भ से १४ वीं शताब्दी के अंत तक।

(२) १५ वीं से १७ वीं शताब्दी तक।

(३) १८ वीं और १९ वीं शताब्दी।

३ अध्याय—उपसंहार।

[क] कन्नड़

षष्ठ खण्ड—तामिल जैन साहित्य पृ० सं० ४०

टि०—१०० पृष्ठ समस्त ग्रन्थ का उपसंहार देने के लिए रहेंगे।

अन्य प्रस्ताव

(१) प्रत्येक भाग का लेखन कार्य दिसम्बर १९५४ तक पूर्ण हो जाना चाहिये।

(२) लेखन के सम्बन्ध में नीचे लिखी दृष्टि स्वीकृत करनी होगी:—

(क) विषय से संबंध रखने वाले साहित्य का विस्तार एवं सामान्य परिचय।

(ख) ग्रन्थ का नाम।

(ग) लेखक का नाम तथा परिचय।

(घ) काल निर्णय।

(ङ) विषय

(च) तुलना

(३) ग्रन्थ सम्पादन में नीचे लिखी बातें आवश्यक रहेंगी—

(क) प्रत्येक भाग में पृष्ठ क्रम १ से प्रारम्भ होगा।

(ख) प्रत्येक पैराग्राफ पर शीर्षक होगा।

(ग) विषय-सूची अनुक्रमणिकाएं तथा परिशिष्ट आदि यथा स्थान रहेंगे।

(४) शैली के विषय में ग्रन्थ का आदर्श वही करना चाहिए जो विंटरनिज द्वारा लिखित भारतीय साहित्य के इतिहास का है। इस विषय में निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं:—

(क) ग्रन्थ कर्ता के जीवन का यथासम्भव संक्षिप्त एवं प्रामाणिक परिचय।

(ख) उसके लिखे हुए मूल ग्रन्थों, टीकाओं तथा अन्य कृतियों की नामावली व परिचय।

(ग) काल निर्णय—इस विषय में जो प्रकाशित ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध हो, यथा सम्भव उसी का उपयोग किया जाय। जिन लेखकों के विषय में इस प्रकार की सामग्री उपलब्ध नहीं है उनके काल का विवेचन अन्य सामग्री के आधार पर करना चाहिए। जिन लेखकों के काल के

विषय में एक से अधिक मत हों, वहाँ एक मत का प्रतिपादन करते हुए भी उचित है कि दूसरे प्रतिष्ठित मतों का उल्लेख कर दिया जाय।

(घ) विषय विवेचन—प्रत्येक ग्रन्थ का जो प्रतिपाद्य विषय है उसका विवेचन यथा सम्भव संक्षिप्त और सरल रूप में इस प्रकार होना चाहिए कि पाठक को ग्रन्थ के महत्व का परिचय हो जाय। साहित्य, भाषा, विचारों के विकास और समय समय पर हुए परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए ऐतिहासिक विवेचन करना उचित होगा।

(ङ) उद्धरण और उल्लेख (**References**)—

(१) जिस प्रकार विंटरनिंज ने प्रत्येक महत्वपूर्ण ग्रन्थ के प्रकाशित संस्करणों का पादटिप्पण में उल्लेख किया है उसी प्रकार का उल्लेख इस इतिहास में भी रहना चाहिए।

(२) लेखक के जीवनचरित, समय निर्णय और विचारों के संबंध में जो महत्वपूर्ण लेख या पुस्तक प्रकाशित हुई हों उनका भी पादटिप्पणी में उल्लेख किया जाना चाहिए।

(३) तिथि, संवत्सर और शताब्दी के उल्लेख के लिए समस्त ग्रन्थ में विक्रम संवत् को अपनाया जाय। जहाँ लेखक अंग्रेजी तारीख देना भी आवश्यक समझे उसका उल्लेख कोष्ठक में किया जाय।

(४) ग्रन्थों तथा पत्रिकाओं (**Journals**) के उल्लेख के लिए एक संक्षिप्तरूप निश्चित रहे, जिसका समस्त ग्रन्थ में उपयोग हो।

(पृष्ठ ३२ से आगे)

११—जोधपुर में बड़े बड़े साधु एकत्रित होकर समस्त समाज की एक समाचारी बना रहे हैं। किन्तु हमारा निवेदन है कि समाज-संगठन के इस प्रश्न की ओर भी ध्यान देना चाहिए। समाचारी एक होने तक इसे स्थगित नहीं रखना चाहिए।

१२—जिन साधुओं पर साहित्य-निर्माण का उत्तर-दायित्व हो उन्हें इस कार्य के लिए अन्य झंझटों से मुक्त कर दिया जाय। उन्हें किसी ऐसे स्थान में भेज देना चाहिए जहाँ बैठ कर वे निर्विघ्न रूप से साहित्य-सर्जन कर सकें।

१३—आशा है, श्रमण संघ के कर्णधार चातुर्मास समाप्त होने से पहले ही इन बातों का निश्चय कर लेंगे। जिससे विहार के समय उस योजना को व्यावहारिक रूप दिया जा सके।

स्थानकवासी जैन कान्फरेंस का शुभ निश्चय

भारत की प्रतिदिन बढ़ती हुई बेकारी को दूर करने के लिए हमारी केन्द्रीय सरकार ने चालीस हजार नए अध्यापक नियुक्त करने की घोषणा की है। जैन समाज के बेकार नवयुवकों को इस घोषणा का लाभ पहुँचाने के लिए अ० भा० श्वे० स्थानकवासी जैन कान्फरेंस ने निश्चय किया है कि उन्हें स्थान दिलाने का यथा शक्ति प्रयत्न किया जाय। कान्फरेंस के अधिकारी अपने वैयक्तिक तथा सामाजिक प्रभाव द्वारा इसे सफल बनाने का प्रयत्न करेंगे। जो सज्जन इससे लाभ उठाना चाहते हों वे नीचे लिखे पते पर पत्र व्यवहार करें :—

मन्त्री—अ० भा० श्वे० स्था० जैन कान्फरेंस।
१३९० चान्दनी चौक, देहली।

श्री सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति, अमृतसर के सांस्कृतिक अनुष्ठान

पार्श्वनाथ विद्याश्रम बनारस की विकास कथा

१. श्री सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति की स्थापना	सन् १९३६
२. पार्श्वनाथ विद्याश्रम का उद्घाटन	जुलाई १९३७
३. श्री शतावधानी रत्नचन्द्र जैन पुस्तकालय	जुलाई १९३८
४. प्रथम एम.ए., श्री रत्नचन्द्र जैन	मई १९३९
५. प्रथम आचार्य, श्री कृष्णचन्द्र	मई १९४३
६. अनुशीलनपीठ का प्रारम्भ	जुलाई १९४८
७. 'श्रमण' (मासिक पत्र) का प्रारम्भ	नवम्बर १९४९
८. प्रथम डॉक्टर (Ph.D.), श्री इन्द्रचन्द्र एम.ए.,	दिसम्बर १९५२
९. जैन साहित्य निर्माण योजना	जनवरी १९५३
१०. विद्वद्व्याख्यान माला	सितम्बर १९५३
११. विद्वन्मण्डल का प्रथम अधिवेशन	अक्टूबर १९५३

दीपमालिका तथा अपने पञ्चम वर्ष के प्रवेश के

शुभ अवसर पर

'श्रमण' का हार्दिक अभिनन्दन स्वीकार कीजिए

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी प्रेस, बनारस—५

श्रमण
वर्ष
५
सम्पादक
डॉ० इन्द्रचन्द्र शास्त्री एम.ए., पी-एच. डी.
श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम हिन्दू यूनिवर्सिटी, बना

इस अंक में—

१. जैन ज्ञानभाण्डारों पर एक दृष्टिपात--मुनि श्री पुण्यविजयजी महाराज १

२. जैन साहित्य का विहंगावलोकन—डॉ० इन्द्र ८

४. अहमदाबाद में विद्वन्मण्डल का अधिवेशन— १५

४. जैन साहित्य के संकेत चिन्ह—डा० इन्द्र ३०

५. विद्याश्रम समाचार ३९

स्वर्गवास !

जैनाचार्या महासती श्री पार्वतीजी की प्रधान शिष्या महासती प्रवर्तिनी श्री राजमती जी महाराज का ता. १८-११-५३ को जालन्धर शहर में स्वर्गवास हो गया है। आपकी अवस्था ८६ वर्ष की थी। आपका जन्म संवत् १९२४ में स्यालकोट के ओसवाल वंश में हुआ था। संवत् १९४६ में आप महासती श्री पार्वतीजी के पास दीक्षित हुईं तथा यावज्जीव पर्यन्त सामायिक चारित्र को ग्रहण कर महाव्रत धारण किये थे। विवाह होने पर भी अचल निष्ठापूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करती रहीं। बाद में स्वयं पतिदेव ने आपको दीक्षित [illegible]राया। [illegible]४ वर्ष तक आपने आचार के पालन में अद्भुत दृढ़ता दिखाई। इत[illegible] [illegible]वस्था में भी आप एक चादर नीचे बिछाकर और एक ओढकर पंजा[illegible] के शीत में समभाव से सयम निर्वाह करती रहीं। २० वर्ष से आपने कि[illegible] रूप में भी चीनी या मीठे को नहीं लिया। पूज्य श्री अमरसिंहजी के काल में जो प्रबल वैराग्य भावना जा[illegible]त हुई थी, उसकी आप अन्तिम कड़ी व विभूति थीं। हम आपकी आत्मा का परम कल्याण चाहते हैं।

वार्षिक मूल्य ४) एक प्रति ।=)

प्रकाशक—कृष्णचन्द्राचार्य,

श्री [illegible]र्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस—५

१ ज[illegible] [illegible]ठी हुईं (बाएँ से)—१ डॉ० इन्दुकला, २ श्री मैना बहेन, ३ श्री जसवंती बहेन। २ कुर्सी पर बैठे हुए— (बाएँ से) १ [illegible] अगरचन्द नाहटा, २ स्वामी धनिरा[illegible] ३ श्री हरजसराय जैन (मंत्री), ४ पं० बेचर दास जी, ५ पं० सुखलाल जी, ६ आचार्य जिनविजय जी, ७ डॉ० वासुदेव श[illegible] अग्रवाल, ८ डॉ० मोती चन्द, ९ डॉ. पी. एल. वैद्य, १० डॉ० ए. एन. उपाध्ये। ३ खड़े हु[illegible] (बाएँ से)— १ डॉ० प्रबोध पाण्डित, [illegible] श्री ज्योतिप्रसाद जैन, ३ पं० अम्बालाल शाह, ४ पं० फतेचन्द बेलानी, [illegible] [illegible]गी लाल सांडेसरा, ६ ×, ७ श्री शंभु[illegible]ाई शाह, ८ श्री गुलाबचन्द्र जैन, ९ श्री साराभाई नवाब, १० ×, ११ श्री परमा- [illegible] ४ (बाएँ से)— १ श्री कृष्णचन्द्रा[illegible]ार्य, २ डॉ० इन्द्र चन्द्र, ३ श्री मोहन लाल मेहता, ४ श्री जयभिक्खु, ५ प्रो०

श्रमण

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस का मुखपत्र

वर्ष ५ दिसम्बर १९५३ अंक २

जैन ज्ञानभाण्डारों पर एक दृष्टिपात

मुनि श्री पुण्यविजय जी महाराज

इस युगके विकसित साधन और विकसित व्यवहार की दृष्टि से लाइब्रेरी या पुस्तकालयों का विश्व में जो स्थान है वही स्थान पहले के समय में उस युग की मर्यादा के अनुसार भाण्डारों का था। धन, धान्य, वस्त्र, पात्र, आदि दुनियावी चीजों के भाण्डारों की तरह शास्त्रों का भी भाण्डार अर्थात् संग्रह होता था जिसे धर्मजीवी और विद्याजीवी ऋषि-मुनि या विद्वान् ही करते थे। यह प्रथा किसी एक देश, किसी एक धर्म या किसी एक परम्परा में सीमित नहीं रही है। भारतीय आर्यों की तरह ईरानी आर्य, क्रि[illegible] और मुसलमान भी अपने सम्मान्य शास्त्रों का संग्रह सर्वदा करते रहे हैं।

भाण्डारों के इतिहास के साथ अनेक बातें संकलित हैं—लिपि, लेखनकला, लेखन के साधन, लेखन का व्यवसाय इत्यादि। परन्तु यहाँ तो मैं अपने लगभग चालीस वर्ष के प्रत्यक्ष अनुभव से जो बातें ज्ञात हुई हैं उन्हीं का संक्षेप में निर्देश करना चाहता हूँ।

जहाँ तक मैं जानता हूँ, कह सकता हूँ कि भारत में दो प्रकार के भ[illegible] मुख्यतया देखे जाते हैं—व्यक्तिगत मालिकी के और सांघिक मालिकी के। वैदिक परंपरा में पुस्तक संग्रहों का मुख्य सम्बन्ध ब्राह्मणवर्ग के साथ रहा है। ब्राह्मणवर्ग गृहस्थाश्रम प्रधान है। उसे पुत्र-परिवार आदि का परि[illegible] इष्ट है—शास्त्र सम्मत है। अतएव ब्राह्मण-परम्परा के विद्वानों के पु[illegible]क-संग्रह

मुख्यतया व्यक्तिगत मालिकी के रहे हैं, और आज भी हैं। गुजरात, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल, मिथिला या दक्षिण के किसी प्रदेश में जाकर पुराने ब्राह्मण-परम्परा के संग्रहों को हम देखना चाहें तो वे किसी-न-किसी व्यक्तिगत कुटुम्बकी मालिकी के ही मिल सकते हैं। परन्तु भिक्षु-परम्परा में इससे उलटा प्रकार है। बौद्ध, जैन जैसी परम्पराएँ भिक्षु या श्रमण परम्परामें सम्मिलित हैं। यद्यपि भिक्षु या श्रमण गृहस्थों के अवलम्बन से ही धर्म या विद्या का संरक्षण, संवर्धन करते हैं तो भी उनका निजी जीवन और उद्देश अपरिग्रह के सिद्धान्त पर अवलम्बित है—उनका कोई निजी पुत्र-परिवार आदि नहीं होता। अतएव उनके द्वारा किया जाने वाला या संरक्षण पानेवाला ग्रन्थ संग्रह सांघिक मालिकी का रहा है और आज भी है। किसी बौद्ध विहार या किसी जैन संस्था में किसी एक आचार्य या विद्वान् का प्राधान्य कभी रहा भी हो तब भी उसके आश्रय में बने या संरक्षित ज्ञान भाण्डार तत्त्वतः संघ की मालिकी का ही रहता है या माना जाता है।

सामान्यरूप से हम यही जानते हैं कि इस देश में बौद्ध विहार न होने से बौद्ध संघ के भाण्डार भी नहीं हैं, परन्तु वस्तुस्थिति जुदा है। यहाँ के पुराने बौद्ध विहारों के छोटे-बड़े अनेक पुस्तक-संग्रह कुछ उस रूप में और कुछ नया रूप लेकर भारत के पड़ोसी अनेक देशों में गए। नेपाल, तिब्बत, चीन, सीलोन, बर्मा आदि अनेक देशों में पुराने बौद्ध शास्त्रसंग्रह आज भी सुलभ हैं।

जैन-परम्परा के भिक्षु भारत के बाहर नहीं गए। इसलिए उनके शास्त्र-संग्रह भी मुख्यतया भारत में ही रहे। शायद भारत का ऐसा कोई भाग न [illegible]हाँ जैन पुस्तक-संग्रह थोड़े-बहुत प्रमाण में न मिले। दूर दक्षिण में कर्णाटक, आन्ध्र, तामिल आदि प्रदेशों से लेकर उत्तर के पंजाब, युक्तप्रदेश तक और पूर्व के बंगाल, बिहार से लेकर पश्चिम के कच्छ, सौराष्ट्र तक जैन भाण्डार आज भी देखे जाते हैं, फिर भले ही कहीं वे नाममात्र के हों। ये सब भाण्डार मूल में सांघिक मालिकी की हैसियत से ही स्थापित हुए हैं। सांघिक मालिकी के भाण्डारों का मुख्य लाभ यह है कि उनकी वृद्धि, संरक्षण आदि कार्यों में सारा संघ भाग लेता है और संघ के जुदे जुदे दर्जे के अनुयायी गृहस्थ धनी उसमें अपना भक्तिपूर्वक साथ देते हैं जिससे भाण्डारों की शास्त्र समृद्धि बहुत बढ़ जाती है और उसकी रक्षा भी ठीक ठीक होने पाती है। यही कारण है कि बीच के अन्धाधुन्धी के समय सैकड़ों विघ्न-बाधाओं के होते हुए भी हजारों की संख्या में पुराने भाण्डार सुरक्षित रहे और पुराने भाण्डारों की

काया पर नए भाण्डारों की स्थापना तथा वृद्धि होती रही, जो परम्परा आज तक चालू रही।

इन विषय में दो-एक ऐतिहसिक उदाहरण काफी हैं। जब पाटन, खम्भात आदि स्थानों में कुछ उत्पात देखा तो आचार्यों ने बहुमूल्य शास्त्रसम्पत्ति जेसलमेर आदि जैसे दूरवर्ती सुरक्षित स्थानों में स्थानान्तरित की। इससे उलटा, जहाँ ऐसे उत्पात का सम्भव न था वहाँ पुराने संग्रह वैसे ही चालू रहे, जैसे कि कर्णाटक के दिगम्बर भाण्डार।

यों तो वैदिक, बौद्ध आदि परम्पराओं के ग्रन्थों के साथ मेरा वही भाव व सम्बन्ध है जैसा जैन-परम्परा के शास्त्र-संग्रहों के साथ, तो भी मेरे कार्य का मुख्य सम्बन्ध परिस्थिति की दृष्टि से जैन भाण्डारों के साथ रहा है। इससे मैं उन्हीं के अनुभव पर यहाँ विचार प्रस्तुत करता हूँ। भारत में कम से कम पाँच सौ शहर, गाँव, क़सबे आदि स्थान होंगे जहाँ जैन शास्त्र संग्रह पाया जाता है। पाँच सौ की संख्या—यह तो स्थानों की संख्या है, भाण्डारों की नहीं। भाण्डार तो किसी एक शहर, एक क़सबे या एक गाँव में पन्द्रह-बीस से लेकर दो-पाँच तक पाए जाते हैं। पाटन में बीस से अधिक भाण्डार हैं तो अहमदाबाद, सूरत, बीकानेर आदि स्थानों में दस-दस, पन्द्रह-पद्रन्ह के आसपास होंगे। भाण्डारों का क़द भी सबका एक सा नहीं। किसी किसी भाण्डार में पचीस हजार तक ग्रन्थ हैं तो किसी किसी में दो सौ, पाँच सौ भी हैं। भाण्डारों का महत्व जुदी जुदी दृष्टि से आंका जाता है—किसी में ग्रन्थराशि विपुल है तो विषय-वैविध्य कम है; किसी में विषय-वैविध्य बहुत अधिक है तो अपेक्षाकृत प्राचीनता [illegible] है; किसी में प्राचीनता बहुत अधिक है; किसी में जैनेतर बौद्ध, वैदिक [illegible] परम्पराओं के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ शुद्धरूप में संगृहीत हैं तो किसी में थोड़े भी ग्रन्थ ऐसे हैं जो उस भाण्डार के सिवाय दुनिया के किसी भाग में अभी तक प्राप्त नहीं हैं, ख़ासकर ऐसे ग्रन्थ बौद्ध-परम्परा के हैं; किसी में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, प्राचीन गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी, फ़ारसी आदि भाषा वैविध्य की दृष्टि से ग्रन्थराशि का महत्त्व है तो किसी किसी में पुराने ताड़पत्र और [illegible] समृद्धि का महत्त्व है।

सौराष्ट्र, गुजरात और राजस्थान के जुदे जुदे स्थानों में मैं रहा हूँ और भ्रमण भी किया है। मैंने लगभग चालीस स्थानों के सब भाण्डार [illegible] हैं। और लगभग पचास भाण्डारों में तो प्रत्यक्ष बैठकर काम किया है। इतने परिमित अनुभव से भी जो साधन-सामग्री ज्ञात एवं हस्तगत हुई है [illegible]के

आधार पर मैं कह सकता हूँ कि वैदिक, बौद्ध एवं जैन परम्परा के प्राचीन तथा मध्ययुगीन शास्त्रों के संशोधन आदि में जिन्हें रस है उनके लिये अपरिमित सामग्री उपलब्ध है।

श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानकवासी और तेरहपंथी—इन चार फ़िरकों के आश्रित जैन भाण्डार हैं। यों तो मैं उक्त सब फ़िरकों के भाण्डारों से थोड़ा बहुत परिचित हूँ तो भी मेरा सबसे अधिक परिचय तथा प्रत्यक्ष सम्बन्ध श्वेताम्बर परम्परा के भाण्डारों से ही रहा है। मेरा ख्याल है कि विषय तथा भाषा के वैविध्य की दृष्टि से, ग्रन्थ संख्या की दृष्टि से, प्राचीनता की दृष्टिसे, ग्रन्थों के क़द, प्रकार, अलंकरण आदि की दृष्टि से तथा अलभ्य, दुर्लभ्य और सुलभ परन्तु शुद्ध ऐसे बौद्ध, वैदिक जैसी जैनेतर परम्पराओं के बहुमुल्य विविध विषयक ग्रन्थों के संग्रह की दृष्टि से श्वेताम्बर परम्परा के अनेक भाण्डार इतने महत्त्व के हैं जितने महत्त्व के अन्य स्थानों के नहीं।

माध्यम की दृष्टि से मेरे देखनें में आए ग्रन्थों के तीन प्रकार हैं—ताड़पत्र, कागज और कपड़ा। ताड़पत्र के ग्रन्थ विक्रम की नवीं शती से लेकर सोलहवीं शती तक के मिलते हैं। कागज़ के ग्रन्थ जैन भाण्डारों में विक्रम की तेरहवीं शती के आरम्भ से अभी तक के मौजूद हैं। यद्यपि मध्य एशिया के यारकन्द शहर से दक्षिण की ओर ५० मील पर कुगियर स्थान से प्राप्त कागज़ के चार ग्रन्थ लगभग ई. स. की पाँचवीं शती के माने जाते हैं परन्तु इतना पुराना कोई ताड़पत्रीय या कागजी ग्रन्थ अभीतक जैन भण्डारों में से नहीं मिला। परन्तु इसका अर्थ इतना ही है कि पूर्वकाल में लिखे गए ग्रन्थ जैसे जैसे बूढ़े हुए—नाशाभिमुख हुए वैसे वैसे उनके ऊपर से नई नकलें होती गईं और नए रचे जानेवाले ग्रन्थ भी लिखे जाने लगे। इस तरह हमारे सामने जो ग्रन्थ-सामग्री मौजूद है उसमें, मेरी दृष्टि से, विक्रम की पूर्व शताब्दियों से लेकर नवीं शताब्दी तक के ग्रन्थों का अवतरण है और नवीं शताब्दी के बाद नए रचे गए ग्रन्थों का भी समावेश है।

मेरे देखे हुए ग्रन्थों में ताड़पत्रीय ग्रन्थों की संख्या लगभग ३,००० (तीन हजार) जितनी और कागज़ के ग्रन्थों की संख्या तो दो लाख से कहीं अधिक है। यह कहने की जरूरत नहीं कि इसमें सब जैन फ़िरकों के सब भाण्डारों के ग्रन्थों की संख्या अभिप्रेत नहीं है, वह संख्या तो दस-पन्द्रह लाख से भी कहीं बढ़ जायगी।

जुदी जुदी अपेक्षा से भाण्डारों का वर्गीकरण नीचे लिखे अनुसार किया जा सकता है। इतना ध्यान में रहे कि यह वर्गीकरण स्थूल है।

प्राचीनता की दृष्टि से तथा चित्रपट्टिका एवं अन्य चित्र समृद्धि की दृष्टि से और संशोधित तथा शुद्ध किए हुए आगमिक साहित्य की एवं तार्किक, दार्शनिक साहित्य की दृष्टि से—जिनमें जैन परम्परा के अतिरिक्त वैदिक और बौद्ध परम्पराओं का भी समावेश होता है—पाटन, खम्भात और जेसलमेर के ताड़पत्रीय संग्रह प्रथम आते हैं। इनमें जेसलमेर का खरतर-आचार्य श्रीजिनभद्रसूरि संस्थापित ताड़पत्रीय भाण्डार प्रथम ध्यान खींचता है। नवीं शताब्दी वाला ताड़पत्रीय ग्रन्थ विशेषावश्यक महाभाष्य जो लिपि, भाषा और विषय की दृष्टि से महत्त्व रखता है वह पहले पहल इसी संग्रह में से मिला है। इस संग्रह में जितनी और जैसी प्राचीन चित्रपट्टिकाएँ तथा इतर पुरानी चित्रसमृद्धि हैं उतनी पुरानी और वैसी किसी एक भाण्डार में लभ्य नहीं। इसी ताड़पत्रीय संग्रह में जो आगमिक ग्रन्थ हैं वे बहुधा संशोधित और शुद्ध किए हुए हैं। वैदिक परम्परा के विशेष शुद्ध और महत्त्व के कुछ ग्रन्थ ऐसे हैं जो इस संग्रह में हैं। इसमें सांख्यकारिका परका गौड़पाद-भाष्य तथा इतर वृत्तियाँ हैं। योगसूत्र के ऊपर का व्यासभाष्य सहित तत्त्ववैशारदी टीका है। गीता का शांकरभाष्य और श्रीहर्ष का खण्डनखण्डखाद्य है। वैशेषिक और न्यायदर्शन के भाष्य और उनके ऊपर की क्रमिक उदयनाचार्य तक की सब टीकाएँ मौजूद हैं। न्यायसूत्र ऊपर का भाष्य, उसका वार्तिक, वार्तिक पर की तात्पर्यटीका और तात्पर्यटीका पर तात्पर्यपरिशुद्धि तथा [illegible] ग्रन्थों के ऊपर विषमपदविवरणरूप 'पंचप्रस्थान' नामक एक अपूर्व ग्रन्थ इसी संग्रह में है। बौद्ध परम्परा के महत्त्वपूर्ण तर्क-ग्रन्थों में से सटीक सटिप्पण न्यायबिन्दु तथा सटीक सटिप्पण तत्त्वसंग्रह जैसे कई ग्रन्थ हैं। यहाँ एक वस्तु की ओर मैं खास निर्देश करना चाहता हूँ। जो संशोधकों के लिये उपयोगी है। अपभ्रंश भाषा के कई अप्रकाशित तथा अन्यत्र अप्राप्य ऐसे बारहवीं शती के बड़े बड़े कथा-ग्रंथ इस भाण्डार में हैं, जैसे कि विलासवईकहा, अरिट्ठनेमिचरिउ इत्यादि। इसी तरह छन्द विषयक कई ग्रन्थ हैं जिनकी नक़लें पुरातत्त्वकोविद श्री जिनविजयजी ने जेसलमेर में जाकर कराई थीं। उन्हीं नकलों के आधार पर प्रोफ़ेसर वेलिनकरने उनका प्रकाशन किया है।

खम्भात के श्रीशान्तिनाथ ताड़पत्रीय-ग्रन्थभाण्डार की दो-एक विशेषताएँ ये हैं। उनमें चित्र समृद्धि तो है ही, पर गुजरात के सुप्रसिद्ध मंत्री और

विद्वान् वस्तुपाल की स्वहस्तलिखित धर्माभ्युदय-महाकाव्य की प्रति है। पाटन के तीन ताड़पत्रीय संग्रहों की अनेक विशेषताएँ हैं। उनमें से एक तो यह है कि वहीं से धर्मकीर्ति का हेतुबिन्दु अर्चटकी टीकावाला प्राप्त हुआ जो अभीतक मूल संस्कृत में कहो से नहीं मिला। जयराशिका तत्त्वोपप्लव जिसका अन्यत्र कोई पता नहीं वह भी यहीं से मिला।

कागज-ग्रन्थ के अनेक भाण्डारों में से चार-पाँच का निर्देश ही यहाँ पर्याप्त होगा। पाटनगत तपागच्छ का भाण्डार गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी और फ़ारसी भाषा के विविध विषयक सैकड़ों ग्रन्थों से समृद्ध है जिसमें 'आगमडम्बर' नाटक भी है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। पाटनगत भाभा के पाडेका भाण्डार भी कई दृष्टि से महत्त्व का है। अभी अभी उसी में से छठी-सातवीं शती के बौद्ध तार्किक आचार्य श्री धर्मकीर्ति के सुप्रसिद्ध 'प्रमाणवार्तिक' ग्रन्थ की स्वोपज्ञ वृत्ति मिली है जो तिब्बत से भी आजतक प्राप्त नहीं हुई। खम्भातस्थित जैनशाला का भाण्डार भी महत्त्व रखता है। उसीमें वि० सं० १२३४ की लिखी जिनेश्वरीय 'कथाकोश' की प्रति है। जैन भाण्डारों में पाई जानेवाली कागज की पोथियों में यह सबसे पुरानी है। आठ सौ वर्ष के बाद आज भी उसके कागज की स्थिति अच्छी है। उपाध्याय श्री यशोविजय के स्वहस्तलिखित कई ग्रन्थ, जैसे कि विषयतावाद, स्तोत्रसंग्रह आदि, उसी भाण्डार से अभी अभी मुझे मिले हैं। जेसलमेर के एक कागज के भाण्डार में न्याय और वैशेषिक दर्शन के सूत्र, भाष्य, टीका, अनुटीका आदि का पूरा सेट बहुत शुद्ध रूप में [illegible]प्पण विद्यमान है, जो वि. सं. १२७९ में लिखा गया है। अहमदाबाद के केवल दो भाण्डारों का ही मैं निर्देश करता हूँ। पगथिया के उपाश्रय के संग्रह में से उपाध्याय श्री यशोविजय जी के स्वहस्तलिखित प्रमेयमाला तथा वीतराग स्तोत्र अष्टम प्रकाश की व्याख्या—ये दो ग्रन्थ अभी अभी आचार्य श्री विजयमनोहर सूरिजी द्वारा मिले हैं। बादशाह जहांगीर द्वारा सम्मानित विद्वान् भानुचन्द्र और सिद्धिचन्द्र रचित कई ग्रन्थ इसी संग्रह में हैं, जैसे कि नैषध की तथा वासवदत्ता की टीका आदि। देवशा के पाडे का संग्रह भी महत्वका है। इसमें भी भानुचन्द्र, सिद्धिचन्द्रके अनेक ग्रन्थ सुने गए हैं।

कपड़े पर पत्राकार में लिखा अभी तक एक ही ग्रन्थ मिला है, जो पाटनगत श्रीसंघ के भाण्डार का है। यों तो रोल—टिप्पने के आकार के कपड़े पर लिखे हुए कई ग्रन्थ मिले हैं, पर पत्राकार लिखित यह एक ही ग्रन्थ है।

सोने-चांदी की स्याही से बने तथा अनेक रंगवाले सैकड़ों नानाविध चित्र

जैसे ताड़पत्रीय ग्रन्थों पर मिलते हैं वैसे ही कागज के ग्रन्थों पर भी हैं। इसी तरह कागज तथा कपड़े पर आलिखित अलंकारखचित विज्ञप्तिपत्र, चित्रपट भी बहुतायत से मिलते हैं, पाठे (पढ़ते समय पन्ने रखने तथा प्रताकार ग्रंथ बाँधने के लिये जो दोनों ओर गत्ते रखे जाते हैं–पुट्ठे), डिब्बे आदि भी सचित्र तथा विविध आकार के प्राप्त होते हैं। डिब्बों की एक खूबी यह भी है कि कि उनमें से कोई चर्मजटित हैं, कोई वस्त्रजटित हैं तो कोई कागज से मढ़े हुए हैं। जैसी आजकल की छपी हुई पुस्तकों की जिल्दों पर रचनाएँ देखी जाती हैं वैसी इन डिब्बों पर भी ठप्पों से–साँचों से ढाली हुई अनेक तरह की रंग-बिरंगी रचनाएँ हैं।

ऊपर जो परिचय दिया गया है वह मात्र दिग्दर्शन है जिस से प्रस्तुत प्रदर्शनी में उपस्थित की हुई नानाविध सामग्री की पूर्वभूमिका ध्यान में आ सके। यहाँ जो सामग्री रखी गई है वह उपर्युक्त भाण्डारोंमें से नमूने के तौर पर थोड़ी थोड़ी एकत्र की है। जिन भाण्डारों का मैंने ऊपर निर्देश नहीं किया उनमें से भी ध्यान खींचे ऐसी अनेक कृतियाँ प्रदर्शिनी में लाई गई हैं, जो उस उस कृति के परिचायक कार्ड आदि पर निर्दिष्ट हैं।

ताड़पत्र, कागज, कपड़ा आदि पर किन साधनों से किस किस तरह लिखा जाता था?, ताड़पत्र तथा कागज कहाँ कहाँ से आते थे?, वे कैसे लिखने लायक बनाए जाते थे?, सोने, चाँदी की स्याही तथा इतर रंग कैसे तैयार किए जाते थे?, चित्र की तूलिका आदि कैसे होते थे? इत्यादि बातोंका यहाँ तो मैं संक्षेप में ही निर्देश करूँगा। बाकी, इस बारे में मैंने अन्यत्र विस्तार से लिखा है।

जैन साहित्य का विहंगावलोकन

डॉ० इन्द्र

जैन साहित्य के गतिशील चित्रपट पर अनेक प्रतिभाशाली, तपस्वी, देवकल्प साहित्यिकों के नाम उच्छ्रित पर्वत शृङ्गों के समान हमारे दृष्टिपथ में आते हैं। उनके उदात्त चरित्र और साहित्यिक कृतियों का उल्लेख जैन साहित्य के इतिहास में यथास्थान देखने को मिलेगा। ऐसे इन दिग्गज विद्वानों की एक तालिका यहाँ प्रस्तुत की जाती है जिससे विदित होगा कि विद्वानों की यह शृंखला कितनी दीर्घ, पुष्ट और समृद्ध है। इनके अतिरिक्त और भी सहस्रों लेखक हैं जिनके नाम और कृतियों का समावेश इतिहास के पृष्ठों में किया जायगा।

जैन साहित्य के युग निर्माता

वि० पू० ७२०

१ भगवान् पार्श्वनाथ (२३ वें तीर्थंकर)

वि० पू० ४७०

२ भगवान् महावीर (२४वें तीर्थंकर)
३ गौतमस्वामी (प्रथम गणधर)
४ सुधर्मा स्वामी (पंचम गणधर)
५ जम्बू स्वामी (अन्तिम केवली)

वि० पू० ४३४—३७२

६ शय्यम्भव सूरि

वि० पू० ३००

७ भद्रबाहु (प्रथम)

वि० पू० १३६—६४

८ श्यामाचार्य

वि० सं० २००

९ आर्यरक्षित
१० पादलिप्त सूरि
११ गुणाढ्य

वि. २००—३००

१२ गुणधर
१३ पुष्पदन्त
१४ भूतबलि
१५ कुन्दकुन्द
१६ विमल

वि. ३००

१७ शिवशर्म सूरि
१८ उमास्वाति

वि. ४००—५००

१९ सिद्धसेन दिवाकर

विo ५००—६००

२० भद्रबाहु (द्वितीय)
२१ शिवार्य (शिवनन्दी) यापनीय
२२ वट्टकेर
२३ यति वृषभ
२३ पूज्यपाद

विo ६०० शतक

२४ देवर्द्धि गणी
२५ मल्लवादी
२६ चन्द्रर्षि महत्तर
२७ संघदास क्षमाश्रमण

विo ७००

२८ जिनभद्र क्षमाश्रमण
२९ कोटयाचार्य
३० सिंहगणि (सिंहसूर)
३१ जिनदास महत्तर (चूर्णिकार)
३२ समन्तभद्र

विo ८००

३३ हरिभद्र सूरि
३४ हरिषेण
३५ स्वयम्भू
३६ अकलङ्क

विo ९००

३७ उद्योतनसूरि
३८ आचार्य जिनसेन
३९ वीरसेन
४० जिनसेन
४१ शाकटायन
४२ धनञ्जय
४३ विद्यानन्द

विo १०००

४४ शीलाङ्काचार्य
४५ सिद्धर्षि
४६ विजयसिंह सूरि
४७ हरिषेण
४८ कवि पम्प
४९ कवि पोन्न
५० देवसेन
५१ माणिक्यनन्दी
५२ अनन्तवीर्य

विo ११००

५३ अभयदेव सूरि
५४ पुष्पदन्त महाकवि
५५ नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती
५६ श्रीचन्द्र
५७ प्रभाचन्द्र
५८ वादिराज सूरि
५९ मल्लिषेण
६० वसुनन्दी
६१ हरिश्चन्द्र
६२ सोमदेव
६३ अनन्तकीर्ति
६४ अमितगति
६५ श्रीपति भट्ट
६६ वर्धमान सूरि
६७ शान्तिसूरि वादिवेताल
६८ जिनेश्वर सूरि
६९ बुद्धिसागर सूरि
७० महाकवि धवल
७१ नयनन्दी

विo १२००

७२ अभयदेव सूरि
७३ मुनिचन्द्र सूरि
७४ वादिदेव सूरि (११४३–१२२६)

७५ हेमचन्द्र सूरि (११४५–१२२९)
७६ श्री चन्द्र सूरि (११६९–१२२८)
ग्रन्थरचना काल
७७ यशोदेव सूरि (११७२–११८२)
ग्रन्थरचना काल
७८ हेमचन्द्र सूरि (मलधारी)
(११६४–११७५)
ग्रन्थरचना काल
७९ वादीभ सिंह
८० वाग्भट्ट
८१ घाहिल
८२ मुनि योगचन्द्र

वि० १३००

८३ मलयगिरि
८४ लक्ष्मण गणि
८५ रामचन्द्र सूरि (हेमचन्द्र के शिष्य)
८६ रत्नप्रभ सूरि
८७ तिलकाचार्य (१३०८ स्वर्गवास)
८८ अमरचन्द्र सूरि
८९ पं० आशाधर
९० शुभचन्द्र
९१ धनपाल
९२ माघनन्दी

वि० त्रयोदश शतक

(अपभ्रंश साहित्य के निर्माता)

९३ अमर कीर्ति
९४ योगचन्द्र (योगीन्द्र देव)
९५ माइल्लधवल
९६ हरिभद्र
९७ वरदत्त
९८ रत्नप्रभ
९९ जयदेवगणि
१०० रत्नप्रभाचार्य
१०१ सोमप्रभसूरि

वि० १४००

१०२ देवेन्द्र सूरि
१०३ अभयतिलक
१०४ मुनिदेव सूरि
१०५ नरचन्द्र
१०६ धर्मघोष सूरि
१०७ मल्लिषेण
१०८ जिनप्रभसूरि
१०९ मेरुतुंग
११० ठक्कर फेरू (ज्योतिषाचार्य)
१११ सोमतिलक
११२ माघनन्दी (१३१७)

वि० १५००

११३ राजशेखर
११४ रत्नशेखर
११५ जयशेखर सूरि
११६ मेरु तुङ्ग
११७ गुणरत्न

वि० १५५०

११८ श्रुतसागर

वि० १७००

११९ धर्मसागर उपाध्याय
१२० समयसुन्दर
१२१ भगवतीदास अवधू
१२२ बनारसी दास
१२३ हर्षकीर्ति
१२४ नन्द
१२५ भानुचन्द्र उपाध्याय
१२६ सिद्धिचन्द्र
१२७ रत्नचन्द्र

१२८ विनयविजय उपाध्याय
१२९ सुन्दरदास
१३० भट्टारक शुभचन्द्र

वि० १८००

१३१ आनन्दघन
१३२ यशोविजय उपाध्याय (दीक्षा १६८८, स्वर्ग १७४३)
१३३ पांडे हेमराज
१३४ खुशालचन्द्र काला
१३५ भूधरदास
१३६ द्यानतराय
१३७ दौलतराम जी
१३८ टोडरमल
१३९ मेघ विजय
१४० यशस्वत्सागर
१४१ क्षमाकल्याण उपाध्याय
१४२ विजय राजेन्द्र सूरि

वि० १९००

१४३ टोडरमल
१४४ जयचन्द्र जी
१४५ वृन्दावन दास

वि० २०००

१४६ श० रत्नचन्द्र जी महाराज
१४७ पं० हरगोविन्द दास
१४८ मुनि श्री अमोलक ऋषिजी महाराज

प्रमुख कृतियाँ

वि० पू० ४७० से पहले

चौदह पूर्व

वि० पू० ४७० से वि० ५१० तक

वर्तमान आगम

वि० २००

तरंगवती (कथा)
बृहत्कथा (गुणाढ्य)

वि० २००—३००

कषाय पाहुड
षट्खण्डागम
प्रवचन सार
समयसार
नियमसार
पउम चरिय (कथा)

वि ३००

कम्मपयडी शतक कर्मग्रन्थ
तत्त्वार्थ सूत्र

वि० ४००—५००

सन्मति तर्क, न्यायावतार, द्वात्रिंशिकाए
निर्युक्तियाँ

वि० ५००—६००

सर्वार्थसिद्धि (तत्त्वार्थ टीका)
जैनेन्द्र व्याकरण
शब्दावतार न्यास

वि० ६००

नन्दीसूत्र की रचना तथा आगमों का लिपिबद्ध होना (५१०)
नयचक्र
पंचसंग्रह सटीक
वसुदेव हिंडि

वि० ७००

विशेषावश्यक भाष्य
आप्तमीमांसा, युक्त्यनुशासन
स्वयम्भू स्तोत्र

वि० ८००

अनेकान्त जयपताका
षड्दर्शन समुच्चय
शास्त्रवार्ता समुच्चय
धर्म संग्रहणी
लोकतत्त्व निर्णय
योगदृष्टि समुच्चय
षोडशक
समराइच्चकहा
पंचाशक
पंचवस्तु
आवश्यक बृहद्वृत्ति
पद्मपुराण
पउम चरिउ
अष्टशती
लघीयस्त्रय
प्रमाण संग्रह
न्यायविनिश्चय
सिद्धिविनिश्चय
तत्त्वार्थ राजवार्तिक

वि० ९००

कुवलय माला
हरिवंश पुराण
धवला
जयधवला
शाकटायन व्याकरण
धनञ्जय नाममाला
आप्त परीक्षा
प्रमाण परीक्षा
पत्र परीक्षा
सत्यशासन परीक्षा
अष्ट सहस्री
श्लोकवार्तिक
विद्यानन्द महोदय
युक्त्यनुशासन टीका
आचारांग टीका
सूत्रकृतांग टीका

वि० १०००

उपमिति भवप्रपञ्च कथा
परीक्षामुख
सिद्धि विनिश्चय की टीका

वि० ११००

वादमहार्णव (सन्मति तर्क की टीका)
तिसट्ठि महापुरुसगुणालङ्कार
णायकुमार चरिउ,
जसहर चरिउ
महापुराण
प्रमेयकमल मार्तण्ड
न्याय कुमुदचन्द्र
शब्दाम्भोज भास्कर न्यास
न्याय विनिश्चय टीका
महापुराण
भैरव पद्मावती कल्प
यशस्तिलक चम्पू
उत्तराध्ययन की पाइअ टीका
प्रमालक्ष्म सटीक
हरिवंशपुराण
जम्बू चरिउ
पार्श्वपुराण
सुदर्शन चरिउ

वि० १२००

नवाङ्गी टीका
जयतिहुअण स्तोत्र
प्रमाणनयतत्त्वालोक
स्याद्वाद रत्नाकर
सिद्धहेम शब्दानुशासन

प्रमाण मीमांसा
द्वयाश्रय काव्य
अभिधान चिन्तामणि
काव्यानुशासन
छन्दोनुशासन
त्रिषष्टि शलाका पुरुषचरित
योगशास्त्र सटीक
विशेषावश्यक भाष्य बृहद्वृत्ति
पञ्चास्तिकाय
पुरुषार्थ सिद्धयुपाय
गद्यचूडामणि
पुरुषार्थ चूडामणि
नेमिनिर्वाण महाकाव्य
वाग्भट्टालङ्कार
पउमसिरिचरिय

वि० १३००

मुष्टि व्याकरण
आवश्यक बृहद्वृत्ति
ओघनिर्युक्ति वृत्ति
चन्द्र प्रज्ञप्ति वृत्ति
जीवाभिगम वृत्ति
नन्दीसूत्र टीका
पिंडनिर्युक्ति वृत्ति
प्रज्ञापना वृत्ति
बृहत्कल्प पीठिका वृत्ति
भगवती द्वि० शतक वृत्ति
विशेषावश्यक वृत्ति
व्यवहारसूत्र वृत्ति
क्षेत्रसमास वृत्ति
कर्मप्रकृति टीका
धर्मसार टीका
पंच संग्रह टीका
धर्म संग्रहणी टीका
सुपास नाह चरियं
उत्पादादि सिद्धि सटीक
धर्मोत्तर टिप्पणक
सिद्धहेम न्यास
सत्यहरिश्चन्द्र नाटक
निर्भयभीम व्यायोग
राघवाभ्युदय
यदुविलास
रघुविलास
नलविलास
मल्लिकामकरन्द
रोहिणी मृगाङ्क
वनमाला
सुधाकलश कोश
कौमुदी मित्रानन्द
नाट्य दर्पण
प्रबुद्ध रौहिणेय नाटक
नरपति जयचर्या (शकुन)
स्याद्वादरत्नाकरावतारिका
कुमारपाल प्रतिबोध
करुणावज्रायुध (नाटक)
सागारधर्मामृत
ज्ञानार्णव
अपभ्रंश व्याकरण
नेमिनाह चरिय
वज्रस्वामी चरित्र

वि० १४००

पाँच नए कर्मग्रंथ
पंचप्रस्थन्याय तर्कव्याख्या
तर्कन्याय सूत्र टीका
न्यायभाष्य टीका
न्यायवार्तिक तात्पर्य टीका की टीका
न्यायतात्पर्य शुद्धि टीका

न्यायालङ्कार वृत्ति टीका	तत्त्वार्थवृत्ति (श्रुतसागरी) वि० १६००
मन्त्रराज रहस्य	वि० १७००
स्याद्वाद मंजरी	कादम्बरी टीका
*मदनरेखा सन्धि	पवनदूत
*मल्लि चरित्र	कार्तिकेयानुप्रेक्षा
*नेमिनाथ रास	पाण्डवपुराण
*ज्ञानप्रकाश	वि० १८००
*वज्रस्वामि चरित्र	आनन्दघन बहत्तरी
*षट्पंचाशत् दिक्कुमारिकाभिषेक	अष्टसहस्री विवरण
*मुनिसुव्रत जन्माभिषेक	ज्ञान बिन्दु
*धर्माधर्म विचार कुलक	जैन तर्क भाषा
*श्रावक विधि प्रकरण	न्याय खण्डन खाद्य
*चैत्य परिपाटी	न्यायालोक
*स्थूलभद्र फाग	भाषा रहस्य
*युगादि जिन चरित्र कुलक	शास्त्र वार्तासमुच्चय टीका
कालकाचार्य कथा	तत्त्वालोक विवरण
प्रबन्ध चिंतामणि	गुरुतत्त्व विनिश्चय
एकाक्षर नाममाला	योगविंशिका
काव्यानुशासन	कर्मप्रकृति टीका
छन्दोनुशासन	सप्तभंगी तरंगिणी
माघनन्दी श्रावकाचार	देवानन्दाभ्युदय महाकाव्य
षड्दर्शन समुच्चय	शान्तिनाथ चरित्र महाकाव्य
न्यायकन्दली पंजिका	सप्तसन्धान महाकाव्य
प्रबन्ध कोश	वर्ष प्रबोध मेघमहोदय
जैन कुमार सम्भव	भोज व्याकरण (छन्दोबद्ध)
नलदमयन्ती चम्पू	ग्रहलाघव वार्तिक
उत्तराध्ययन अवचूर्णि	वि० २०००
ओघनिर्युक्ति अवचूर्णि	अभिधान राजेन्द्र कोश
प्रज्ञापना सूत्र अवचूरि	पाइअ सद्द महण्णवो
प्रतिक्रमण सूत्र अवचूरि	अर्धमागधी शब्दकोश
कल्पसूत्र अवचूरि	बत्तीस आगमों का हिन्दी अनुवाद

*ये ग्रन्थ अपभ्रंश में हैं

अहमदाबाद में विद्वन्मण्डल का अधिवेशन

श्री जैन साहित्य निर्माण योजना के प्रथम अनुष्ठान "जैन साहित्य का इतिहास" नामक ग्रन्थ की रूपरेखा को परिनिष्पन्न करने के लिए अहमदाबाद में ता० २९ अक्टूबर १९५३ को विद्वन्मण्डल का एक अधिवेशन हुआ। यह ऐसे विद्याव्रती दीर्घतपस्वियों का सम्मेलन था जिन्होंने भारतीय इतिहास, साहित्य एवं संस्कृति के अप्रज्ञात क्षेत्रों को प्रकाश में लाने के लिए अपना जीवन अर्पित कर रखा है। जिनकी साधना का प्रत्येक कण सरस्वती के चरणों में नूतन उपहार चढ़ाने के लिए है। जैन साहित्य निर्माण योजना एक ऐसे ही महान् साधक का स्वप्न है। भारत का सारस्वत स्रोत जिन बिन्दुओं को लेकर समृद्ध हुआ और हजारों वर्षों से आज तक बह रहा है उसमें जैनपरम्परा की महत्वपूर्ण देन है। किन्तु वह देन अभी तक समुचित रूप से प्रकाश में नहीं आई है। इसी अभाव की पूर्ति के लिए एक ऐसे विद्वान् ने, जो स्वयं जैन नहीं है, उपरोक्त योजना श्री सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति के मन्त्री लाला हरजसराय जी के सामने रखी। लाला जी ने आर्थिक व्यवस्था का उत्तरदायित्व लिया और समिति की ओर से २५०००) पचीस हजार रुपए "जैन साहित्य का इतिहास" नामक ग्रन्थ तैयार करने के लिए योजना समिति के अधीन कर दिए।

आर्थिक व्यवस्था हो जाने पर जैन साहित्य के प्रमुख विद्वानों को सहयोग के लिए आमंत्रित किया गया। उनसे विभिन्न भाग एवं खण्डों की रूपरेखाएँ भेजने के लिए भी प्रार्थना की गई। विद्वानों का उत्तर अत्यन्त उत्साहवर्धक था। इस प्रकार भूमिका तैयार हो जाने के पश्चात् यह निश्चय हुआ कि योजना में रुचि रखने वाले विद्वानों का एक सम्मेलन किया जाय जिसमें योजना को विचार विनिमय के पश्चात् अन्तिम रूप दिया जा सके। इसी निश्चय का मूर्तरूप विद्वन्मण्डल का उपरोक्त अधिवेशन था।

ता० २९ अक्टूबर को प्रातः नौ बजे मुनि पुण्यविजय जी, आचार्य जिनविजय जी, पं० सुखलाल जी, पं० बेचरदास जी, डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल,

डॉ० ए० एन० उपाध्ये, डॉ० मोतीचन्द, श्री अगरचन्द जी नाहटा, डॉ० भोगीलाल सांडेसरा, डॉ० प्रबोध पण्डित, प्रो० पद्मनाभ, श्री जयभिक्खु, श्री परमानन्द कुँवर जी कापडिया आदि विद्वानों की उपस्थिति में अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। सर्वप्रथम मुनि जिनविजय जी ने अधिवेशन के मनोनीत सभापति मुनि श्री पुण्यविजय जी की साहित्य साधना का परिचय देते हुए अध्यक्षपद के लिए उनका नाम प्रस्तुत किया।

पं० सुखलाल जी ने उसका समर्थन करते हुए बताया—मैं मुनि पुण्यविजय जी से आयु में बड़ा हूँ। उन्हें अध्यापन भी कराया है। किन्तु अब देखता हूँ, मुझे बहुत सी बातें उनसे सीखनी चाहिए। मैं डेढ़ घंटे प्रतिदिन उनके पास जाता हूँ। और नित्य नई बातें सीख कर आता हूँ। उनके विशाल अध्ययन, सूक्ष्म दृष्टि और दीर्घ साधना को देखकर आश्चर्य होता है। वे अपना एक क्षण भी व्यर्थ की बातों में नहीं बिताते। उनके मार्गदर्शन से अपनी साहित्य-योजना को बहुत लाभ होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने उपरोक्त प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए बताया—"मैं मुनि पुण्यविजय जी से १९४६ में मिला था। उस समय मुझे कुछ व्याख्यान तैयार करने के लिए निशीथ चूर्णी की आवश्यकता थी। मुनि जी के पास उसकी एक प्राचीन प्रति थी। मैंने अपनी आवश्यकता बताई तो उन्होंने तुरन्त कहा मैं इसकी प्रेस कापी कर चुका हूँ। आपको आवश्यकता हो तो मूल प्रति ले जाइए।" उनके सौजन्य को देखकर मेरा हृदय गद्‌गद हो उठा। जैन भण्डारों का अनुशीलन करके आपने सैकड़ों ग्रन्थों का उद्धार किया है। आपका सौजन्य, आपकी विद्या साधना तथा आपके विशाल अनुभव से हमारी योजना को अपरिमित लाभ होगा।"

इसके पश्चात् मुनि श्री पुण्यविजय जी ने अध्यक्ष का आसन ग्रहण किया और मंगलाचरण किया।

लाला हरजसराय जी ने उपस्थित विद्वानों का स्वागत करते हुए योजना में सहयोग के लिए उनका आभार माना। आपने लगभग तीस वर्ष पहले की एक घटना का वर्णन करते हुए कहा—डॉ० ए. सी. बूल्नर जब पंजाब विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार थे तो वे स्थानकवासी जैन समाज के वर्तमान आचार्य पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज से मिले थे। वे उनकी योग्यता एवं उनके द्वारा दिए गए विशाल जैन साहित्य के परिचय से इतने प्रभावित हुए थे कि उन्होंने पूज्य श्री को पंजाब विश्वविद्यालय के पुस्तकालय का

सम्मानित सदस्य बना लिया और जैन दर्शन को एम. ए. एवं शास्त्री के पाठ्यक्रम में स्थान दे दिया। उस घटना से मेरे मन पर यह प्रभाव पड़ा कि यदि जैन साहित्य को प्रकाश में लाया जाय तो वह विद्वानों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर सकता है। मन में इसी भावना को लेकर मैं और मेरे दो साथी, लाला त्रिभुवननाथ जी और प्रो० मस्तराम जी, बनारस गए और पण्डित सुखलाल जी के सामने अपने विचार उपस्थित किए। हमारे पास साधन बहुत सीमित थे।

हिन्दू विश्वविद्यालय सरीखी करोड़ों रुपया खर्च करके खड़ी की गई संस्था को देख कर मन में संकोच हो रहा था। फिर भी हमने अपनी अत्यल्प मर्यादा और बड़ी अभिलाषा पण्डित जी के सामने रख दी। पण्डित जी ने हमारी दृष्टि की जाँच की। दृढ़ता को परखा और कहा—"साधनों की अल्पता कार्य में बाधक न होगी।" उन्होंने हमारे सामने एक योजना रखी, जिसका मूर्त रूप पार्श्वनाथ विद्याश्रम है। कुछ वर्षों से इस संस्था ने अनुशीलन की ओर विशेष लक्ष्य देना प्रारम्भ किया है। इसके लिए योग्य विद्यार्थियों को अनुशीलन सम्बन्धी सुविधाएँ एवं प्रोत्साहन देने के साथ साथ इसने साहि य-निर्माण की ओर भी ध्यान दिया है। इसी क्षेत्र में ठोस कार्य करने के लिये हमने हिन्दू विश्वविद्यालय के कई विद्वानों से परामर्श किया। उसी समय डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल के पास भी गए। डॉक्टर साहेब ने हमारा दिशाप्रदर्शन ही नहीं किया किन्तु उस कार्य को अपने हाथ में लेकर पूर्ण करने का उत्तरदायित्व भी सम्भाल लिया। इससे हमारा उत्साह बढ़ा और कार्य में जो प्रगति हुई है, वह आपके सामने है।

ग्रन्थ के लिए अर्थ व्यवस्था श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति ने की है। यह संस्था अपने जन्म तथा अधिकतर आर्थिक सहयोग की दृष्टि से स्थानकवासी सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखती है। फिर भी मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि हमारी समिति को कोई साम्प्रदायिक आग्रह नहीं है। आप लोग ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर जो कुछ भी लिखेंगे, समिति उसे सहर्ष स्वीकार करेगी। यही कारण है कि समिति ने ग्रन्थ निर्माण सम्बन्धी सारे अधिकार तथा उत्तरदायित्व योजना समिति को सौंप दिए हैं। उसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप करना हमारी नीति के विरुद्ध है। इस लिए इस योजना में साम्प्रदायिक भावना या अन्य किसी ऐसे तत्त्व की आशङ्का किसी के मन में न रहनी चाहिए।

इसी प्रसङ्ग पर एक बात और उल्लेखनीय है। 'श्रमण' के सम्पादक ने इसी अंक में इस ओर ध्यान आकर्षित किया है। जैन समाज के इतिहास में यह पहला अवसर है जब सभी सम्प्रदायों के जैन ही नहीं किन्तु जैनेतर विद्वान् भी, शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से इकट्ठे होकर साहित्य निर्माण पर विचार विनिमय कर रहे हों। दूसरे सम्प्रदायों में भी ऐसे प्रयत्न अत्यन्त विरल हैं। यह एक शुभ लक्षण है। ऐसे सामूहिक प्रयत्न का जो परिणाम होगा वह जैन, बौद्ध या किसी सम्प्रदाय विशेष का न रह कर भारतीय मस्तिष्क की देन कहा जाएगा। अन्त में एक बार फिर मैं आप सबका आभार मानते हुए इस पुण्य अनुष्ठान के लिए आमन्त्रित करता हूँ।

इसके पश्चात् इतिहासतत्त्व महोदधि जैनाचार्य श्री विजयेन्द्र सूरि का सन्देश पढ़ कर सुनाया गया, जो उन्होंने विद्वन्मण्डलके लिए भेजा था—

"इस युग के अन्तिम तीर्थंकर श्री वर्द्धमान ने तीन पदों—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य—द्वारा जो उपदेश दिया था, गणधरों ने जिसका सम्यक् विस्तार किया था, वंशानुक्रम से जिसकी वृद्धि हुई और चातुर्विध संघ ने जिसे प्रोत्साहित किया उस महान् जैन साहित्य के प्रत्येक अंग का तटस्थ रीति से प्रचार करने का आपकी संस्था ने जो उपक्रम किया है, मैं उसकी सफलता चाहता हूँ। आपका संगठन इस महान् साहित्य को विश्व के सम्मुख उपस्थित करने के आयोजन में सफल हो, यही मेरी मनोकामना है।"

तदनन्तर मुनि श्री पुण्यविजय जी ने अपना भाषण प्रारम्भ किया। आपने कहा—जिस प्रवृत्ति में इतने विद्वानों का सहयोग हो उसकी उपादेयता या सफलता में सन्देह नहीं रह जाता। आगम-सम्पादन तथा अन्य प्रवृत्तियों के कारण मुझे अत्यधिक व्यस्त रहना पड़ा है। इस समय भी प्रदर्शनी की व्यवस्था में व्यापृत रहने के कारण समय कम मिलता है। फिर भी आपका प्रेम मुझे यहाँ खीच लाया। मै बहुत नहीं बोलूँगा। दुबारा आने के लिए भी सम्भवतया मुझे समय न मिले। मुनि जिनविजय जी, डॉ० उपाध्ये, डॉ० अग्रवाल तथा पं० सुखलाल जी सरीखे विद्वानों के रहते हुए कोई आवश्यकता भी नहीं रह जाती। फिर भी मैं यथासम्भव सहायता अवश्य देता रहूँगा।

जैन साहित्य निर्माण योजना के सम्बन्ध में जो परिपत्र निकले हैं वे सब मुझे मिलते रहे हैं। समयाभाव के कारण उन पर विचार नहीं कर सका। फिर भी आपके साथ सहयोग निःसंकोच देने को तैयार हूँ।

जैन साहित्य के इतिहास निर्माण का आपने जो सङ्कल्प किया है वह

उचित है। जिस प्रजा का इतिहास नहीं है वह सत्य को नहीं समझ सकती। वास्तव में देखा जाय तो सत्य के अन्वेषण का नाम ही इतिहास है। वह सत्य किसी सम्प्रदाय में सीमित नहीं रहता किन्तु व्यापक होता है। भारत का इतिहास बहुत कुछ लिखा जा चुका है किन्तु उसका जैन विभाग अभी तक बाकी है। उसमें संशोधन एवं अध्ययन न्यूनतम हुआ है। साहित्य, स्थापत्य, कला आदि सभी विषयों में विस्तृत विचार की आवश्यकता है। जैन आगमों में भारतीय इतिहास की विपुल सामग्री है। उसका अध्ययन एवं निरीक्षण आवश्यक है। जैन संस्कृति भारत की व्यापक संस्कृति का एक अंग है। उसे समझने के लिए आगमों का अध्ययन नितान्त आवश्यक है। किन्तु अभी तक जो आगम छपे हुए हैं वे प्रायः अशुद्ध हैं। सबसे पहले राय धनपति सिंह जी ने आगम प्रकाशित किए। तत्पश्चात् श्री सागरानन्द सूरि ने आगमोदय समिति से प्रकाशित किए। किन्तु उनमें संशोधन की बहुत कमी है।

जो बात आगमों के लिए है वही बात भारत के अन्य साहित्य के लिए भी है। काव्य, नाटक, कोश आदि में भी मौलिकता नष्ट भ्रष्ट हो चुकी है। पाटन, खम्भात जैसल्मेर आदि भण्डारों की प्राचीन प्रतियाँ मिलाने से पता चलता है कि कई जगह पंक्तियाँ ही नहीं, पृष्ठ तक गायब हैं। मैंने जैसल्मेर से उपलब्ध अनुयोगद्वार की एक प्रति का अवलोकन किया तो उसमें कई पंक्तियाँ नहीं थी। गुजरात की ताड़पत्र की प्रतियाँ भी स्थान स्थान पर खण्डित हैं। सबका परिमार्जन करके ठीक पाठ की व्यवस्था करना ही मेरे जीवन का उद्देश्य है।

सम्प्रदाय और इतिहास साथ साथ चलते हैं। यह धारणा गलत है कि इतिहास के लिए सम्प्रदाय से दूर रहना आवश्यक है। सम्प्रदाय के बिना किसी वस्तु के तल का अनुभव नहीं होता। अनुयायी होने पर ही तलस्पर्श हो सकता है। प्रश्न इतना ही है कि सम्प्रदाय द्वारा असत्य का पोषण नहीं होना चाहिए। सम्प्रदाय इकाई है जहाँ से विकास प्रारम्भ होता है। सत्य लक्ष्य है। पहुँचना सभी को एक जगह है। ध्येय एक है। किन्तु प्रारम्भ भिन्न भिन्न बिन्दु या सम्प्रदायों से होता है। सभी का ध्येय सत्यान्वेषण होना चाहिए। किसी वस्तु के मर्म को जानने के लिए सम्प्रदाय में श्रद्धा उपादेय है किन्तु इतिहास में उसका रूप संकुचित एवं साम्प्रदायिक नहीं होना चाहिए। जैन, बौद्ध तथा वैदिक सभी के लिए यह आवश्यक है। इस प्रकार की दृष्टि रहने पर ही इतिहास प्रजा के विकास का अंग बन सकता है।

आगमों के पाठों में किस प्रकार की गड़बड़ हो चुकी है, इसका एक उदाहरण मैं आप के सामने उपस्थित करता हूँ। अनुयोग द्वार में 'अज्जाए वा कोट्टकिरियाए दुग्गाए' एक पाठ मिलता है। इसका अर्थ प्राचीन प्रतियों में आर्या दुर्गा किया गया है। किन्तु चूर्णी में यह पाठ नहीं है। वास्तविक बात का निर्णय तभी हो सकता है जब व्यापक दृष्टि से अनुशीलन किया जाय।

श्री बद्रीप्रसाद साकरिया ने 'राजस्थान पत्रिका' में 'राजस्थानी साहित्य में सोलह दिशाएं' शीर्षक लेख प्रकाशित किया है। उन्होंने लिखा है कि प्राचीन साहित्य में दिशाओं का यह सूक्ष्म विभाजन उपलब्ध नहीं होता। यह ठीक नहीं है। आचारांग में प्रारम्भ में सभी का निर्देश है। उससे पता चलता है कि प्राचीन आचार्यों का दिशा ज्ञान कितना सूक्ष्म था। किसी नगर या ग्राम का वर्णन करते समय वे उसका सूचन स्थूल रूप से दिशाओं या विदिशाओं के रूप में ही नहीं अनुदिशाओं के रूप में भी करते थे। प्राचीन भण्डारों से जो पुष्पिकाएं उपलब्ध हुई हैं उनमें बहुत से स्थान तथा राजाओं का वर्णन मिलता है जो कि ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। खम्भात की पुष्पिका में डभोई (दर्भवती) को लाटदेशान्तर्गत बताया है। वहाँ लिखा है—**मही क्षमनयोरन्तराले।** अलग प्रदेशों के छोटे छोटे राजा तथा राजमन्त्रियों का हाल जानने के लिए पुष्पिकाएँ अत्यन्त उपयोगी हैं।

अन्त में मैं इस साहित्यिक अनुष्ठान की हृदय से सफलता चाहता हूँ और यह वचन देता हूँ कि शक्य सहयोग के लिए सदा तैयार रहूँगा।

इसके पश्चात् डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने योजना का परिचय देते हुए कहा—हमारा देश पिछले तीन सहस्र वर्षों से सांस्कृतिक विकास करता आ रहा है। प्रत्येक पीढ़ी को प्राचीन परम्परा के रूप में बहुत कुछ उत्तराधिकार में मिला है। उस परम्परा की रक्षा करना और उसे आगे बढ़ाना हम सभी का कर्तव्य है।

हमारे देश की एक विलक्षणता है। इसमें अनेक धाराएं बह रही हैं। सभी सत्य पर पहुँचने के प्रयत्न हैं। वेद में एक मन्त्र आता है—

जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं।

यह पृथ्वी भिन्न भिन्न बोलियाँ बोलने वाले अनेक जनों को धारण करती है। यह एक भिन्न भिन्न जनों के एक साथ रहने की प्रयोगशाला है। हमारी संस्कृति अनेक विचारधाराओं, अनेक धर्मों तथा अनेक जनों को लेकर

बनी है। यहाँ ५६५ बोलियाँ बोली जाती हैं। विविधता हमारी भूमि का एक वरदान है। जैन संस्कृति उस वरदान का महत्वपूर्ण अंग है।

वैदिक परम्परा का अनुशीलन चल रहा है। बौद्ध परम्परा का भी अपेक्षाकृत हुआ है और हो रहा है किन्तु जैन संस्कृति के क्षेत्र में अभी बहुत कम कार्य हुआ है। जैन साहित्य कार्य का एक विशाल क्षेत्र है मेरे मन में कई बार इस प्रकार के विचार उठते रहे हैं।

१९५२ के मार्च में लाला हरजसराय जी मेरे पास आए और उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि हम जैन साहित्य के लिए कुछ करना चाहते हैं। मैंने उन्हें कुछ सुझाव दिए। वे सब आप लोग 'श्रमण' में देख चुके हैं। कई महीने बाद हरजसराय जी ने अपने विचारों को लिखकर यह पुछवाया कि आपने जो सुझाव दिए थे, क्या उनका यही अर्थ है। मेरे उत्तर जाने के कुछ दिनों बाद उनका फिर पत्र आया कि हमारी समिति ने इस योजना में से किसी एक कार्य को हाथ में लेने की तैयारी कर ली है। आप यह सोच कर लिखें कि हमें क्या करना चाहिए। मुझे आशा नहीं थी कि सामान्यतया दिए हुए सुझाव इस प्रकार फल लाएँगे। मन्त्री जी की आर्थिक तैयारी देख कर बनारस में एक योजना समिति बनाई गई और एप्रिल १९५२ में वहीं एक विद्वन्मण्डल का अधिवेशन करने का निश्चय किया गया। उसकी सब तैयारियाँ हो चुकी थीं किन्तु कुछ कारणों से उसे अहमदाबाद की प्राच्यविद्या परिषद् के लिए स्थगित कर दिया गया। उसी संकल्प का मूर्तरूप आप के समक्ष है। 'जैन साहित्य का इतिहास' तैयार करने के लिए तत्तद् विभागों के विशेषज्ञों ने जो रूपरेखाएँ बनाई हैं वे आप के सामने हैं। उन्हें विचारविनिमय के पश्चात् अन्तिम रूप देना इस अधिवेशन का कार्य है।

जैन आगमों में जो सांस्कृतिक सामग्री है उसका पर्यालोचन डॉ० मोतीचन्द्र जी ने किया है। उनसे अनेक अज्ञात वस्तुओं का पता चला है। उदाहरण स्वरूप प्राचीन समय में कितनी प्रकार की नौकाओं का उपयोग किया जाता था उसका वर्णन अंगविद्या के एक श्लोक में आया है। उससे पता चलता है कि हमारा नौ निर्माण का उद्योग उस समय पर्याप्त विकसित था। इसी प्रकार विदेशों से हमारा किस प्रकार का सम्बन्ध रहा है, उनके साथ देवी देवता तथा अन्य वस्तुओं का किस प्रकार आदान प्रदान हुआ है, इसका भी पता चलता है। अभी पता चला है कि ईरान की पैलेस एकिनी देवी ही हमारे यहाँ अनाहिता के रूप में आई। इस सांस्कृतिक सामग्री का मन्थन

भारतीय इतिहास को प्रकाश में लाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है और उसकी पहली सीढ़ी साहित्य के इतिहास का निर्माण है ।

पं० सुखलाल जी को जब उपरोक्त ग्रन्थ के विषय में लिखा गया तो उन्होंने अत्यन्त संक्षेप में बीजमन्त्र के समान लिख भेजा—"यह कार्य करना है ।" मुझे इन शब्दों में वज्र की सी दृढ़ता प्रतीत हुई । मैं उन्हें सिद्धि का मूर्तिमन्त रूप समझता हूँ । विशुद्ध हृदय और असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण को लेकर हमने इस अनुष्ठान को हाथ में लिया और पण्डित जी के शब्दों को प्रेरणा का प्रतीक बनाया ।

यह ग्रन्थ विशालकाय है । इसके लिए दूसरे विद्वानों का आह्वान किया गया और मुझे यह निवेदन करते हुए हर्ष होता है कि आह्वान का उत्तर उत्साहवर्धक प्राप्त हुआ । हमारे सामने मुख्य प्रश्न लेखकों का है । भारतीय इतिहास परिषद् (Indian History Congress) के सामने भी यह प्रश्न है । यह सौभाग्य की बात है कि हमें लेखक प्राप्त हो गए हैं ।

मैं यह भी निवेदन कर देना चाहता हूँ कि यह हमारा प्रथम प्रयत्न है । इसे अन्तिम न समझना चाहिए । इसी चित्रपट पर भविष्य में और भी प्रयत्न होते रहेंगे और यह चित्र उत्तरोत्तर परिमार्जित तथा परिष्कृत होता जाएगा । किन्तु उत्तरकालीन प्रयत्न प्रथम प्रयत्न के पश्चात् ही सम्भव हैं । इसलिए प्रस्तुत लेखन के लिए सम्बद्ध समस्त साहित्य के प्रामाणिक संस्करण तक अटकना उचित न होगा ।

ग्रन्थ लेखन को पूर्ण करने के लिए हमने १९५४ का दिसम्बर अन्तिम अवधि रखी है । यह अवधि अल्प प्रतीत होती है । किन्तु मेरा विचार है, वास्तविक लेखन के लिए इतना समय पर्याप्त है । लेखन के लिए इससे अधिक समय की आवश्यकता नहीं है । व्यस्तता या अन्य किसी कारण से हम लिखना प्रारम्भ ही न करें या थोड़ा सा लिखकर स्थगित करते जाएं तो उसके लिए कितना ही समय रखा जाय वह अपर्याप्त होगा । नए कार्य में जो रस होता है काल उसको पी जाता है । इसलिए अनावश्यक काल को बीच में न आने देना चाहिए । आर्थिक पोषक भी तब तक ठहर सकेंगे या नहीं यह विचारणीय हो जाता है । यदि ५४ तक इसका लेखन पूर्ण हो जाय तो सम्पादन और मुद्रण में भी कुछ समय लगेगा । इस प्रकार ५६ तक हम ग्रन्थ को सामने ला सकेंगे ।

हमारा यह दावा नहीं है कि यह ग्रन्थ जैन साहित्य के समग्र भण्डार का

परिचायक होगा। हो सकता है बहुत से ग्रन्थ हमारी दृष्टि से छूट जायें। इसके प्रकाशित होने के पश्चात् भी अनेक ग्रन्थ सामने आएंगे उनके लिए हम परिशिष्ट दे सकते हैं। बहुत से ग्रन्थ ऐसे भी होंगे जिनकी प्रति साक्षात् अवलोकन के लिए प्राप्त न हो सके और उनका नाम तथा संक्षिप्त परिचय ही दिया जा सके। किन्तु प्रथम प्रयत्न में ये सब बातें अनिवार्य हैं। हमें अपनी अपनी शक्ति, उपलब्ध सामग्री तथा अन्य मर्यादाओं के भीतर रहकर यथाशक्ति प्रयत्न करना है।

हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने में भी प्रथम प्रयत्न इसी प्रकार का हुआ था। मिश्र बन्धुओं ने इतिहास लिखा है। वह केवल सामग्री का संकलन है। उसके पश्चात् धीरे धीरे आलोचनात्मक इतिहास भी लिखे गए और अब भी लिखे जा रहे हैं।

इतिहास एक विकासशील संस्था है। उसमें पूर्णता का दावा करना साहस मात्र है। ऐतिहासिक के सामने एक ही दृष्टि रहनी चाहिए कि जो अच्छे से अच्छा सम्भव हो किया जाय। इतिहास का उद्देश्य विशुद्ध सत्य को प्रकाश में लाना है। वह किसी साम्प्रदायिक उद्देश्य का पोषक नहीं होता। इस प्रयत्न की सफलता चाहता हुआ मैं पण्डित जी के शब्दों को फिर दोहराता हूँ—"यह कार्य करना है।"

पं० सुखलाल जी ने पार्श्वनाथ विद्याश्रम की योजना का इतिहास बताते हुए कहा—१९३६ के दिसम्बर में लाला हरजसराय जी अपने दो मित्रों के साथ मेरे पास आए। उन दिनों मैं हिन्दू विश्वविद्यालय में था। लालाजी ने सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति की स्थापना का निर्देश करते हुए कार्य के लिए दिशासूचन मांगा। उन दिनों जैन समाज में गुरुकुल खोलने की धूम मची हुई थी। मैंने समझा हरजसराय जी भी कोई इसी प्रकार की संस्था चलाना चाहते हैं। मैंने उनके विचार जानने चाहे तो उनकी बातों से लगा कि वे वास्तविक कार्य करना चाहते हैं। उनकी दृष्टि शुद्ध है। तभी मैंने बनारस में पार्श्वनाथ विद्याश्रम की सलाह दी। मैंने स्पष्ट कहा—पंजाब रणस्थली रही है। विद्या की परम्परा वहाँ प्रायः लुप्त हो चुकी है। विद्यासाधना के लिए तो बनारस ही उपयुक्त क्षेत्र है।

मैंने उनसे पूछा—"प्रारम्भ में आप कितना खर्च कर सकते हैं?" उन्होंने बताया—"२५०) रु० मासिक।" इतनी अल्प मर्यादा होते हुए भी मैंने उन्हें कहा—हमें अर्थ के लिए चिन्तित नहीं होना चाहिए। हिन्दू विश्वविद्यालय

से विद्वानों का लाभ हमें बिना कुछ व्यय किए प्राप्त हो जाएगा। अब केवल विद्यार्थियों के निवास तथा भोजन की व्यवस्था करनी चाहिए। इस व्यवस्था को प्रारम्भ करने के लिए २५०) रु० मासिक कम नहीं।" परिणाम स्वरूप विद्याश्रम का प्रारम्भ एक छात्रावास के रूप में हुआ और आज वह एक छोटा सा अनुशीलनपीठ बना हुआ है।

विद्याश्रम की संचालक समिति स्थानकवासी समाज के एक आचार्य की स्मृति में स्थापित हुई है। किन्तु मैं मानता हूँ स्मारक और किसी का हो सम्प्रदाय या पंथ का नहीं होना चाहिए। जैनधर्म को विश्वधर्म कहने के लिए हम कितने ही प्रयत्न करें किन्तु यदि संस्था के मूल में किसी सम्प्रदाय या पंथ का पोषण है तो उससे निकले हुए मौलाना या मौलवी हो सकते हैं, दृष्टिसम्पन्न विद्वान् नहीं। किसी भी महापुरुष का नाम सभी परम्पराओं को मान्य होना चाहिए। किन्तु उसके नाम से जिस संकुचित दृष्टि का पोषण किया जाता है वही त्याज्य है।

बनारस के पास विद्या की परम्परा है। डॉ० मोतीचन्द सरीखे भारतेन्दु के वंशज अब भी विद्यमान हैं, जिनकी कई पीढ़ियों से विद्या की उपासना चल रही है। हिन्दू विश्वविद्यालय के कारण यहाँ बाहर के विद्वानों का भी अच्छा सुयोग बना रहता है। जैन विद्वानों का भी समुदाय यहाँ बना ही रहता है। बनारस की एक विशेषता है। बम्बई आदि नगरों में धन कमा कर लोग बाहर ले जाते हैं। किन्तु भारत के बड़े विद्वान् विद्या धन का बाहर उपार्जन करके उसे बनारस में ले आते हैं। डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् इसके निदर्शन हैं।

इस बात की प्रसन्नता है कि डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने योजना का कार्य अपने हाथ में लिया है। उनकी अनेक प्रवृत्तियों से मैं परिचित हूँ। फिर भी वे जो रस ले रहे हैं यह उनकी विशाल दृष्टि का उदाहरण है। हमें उनकी दृष्टि का उपयोग करना चाहिए। डॉ० उपाध्ये का सहयोग भी हमारे लिए अत्यन्त उपयोगी रहेगा।

जैन समाज की एक विचित्रता है। बरात के लिए जब किसी को बुलाने जाते हैं तो कोई नहीं आता। घंटों बीत जाते हैं और वे अपनी तैयारी में लगे रहते हैं। किन्तु जब बरात चल पड़ती है तो पीछे पीछे दौड़ कर आते हैं। यही बात हमारे इस कार्य की भी है। जब हम अपनी योजना के अनुसार आगे बढ़ेंगे तो सम्मिलित होने के लिए बहुत से आगे आगे आएँगे।

दलसुख भाई की विद्यासाधना का मैं साक्षी हूँ। उनकी दृष्टि अत्यन्त शुद्ध है। जैन साहित्य का विशाल परिचय योजना के संचालन में उनका हाथ हमारे लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

मैं यह मानता हूँ कि किसी कार्य की सम्पूर्णता का उत्तरदायित्व कोई नहीं ले सकता। फिर भी हमें प्रयत्न करना है। जब तक जीवन है कार्य करते जाना है। उसके पश्चात् भी कार्य तो चलेगा ही। मैं मानता हूँ, देह जाती है। मनुष्य नहीं जाता।

मैं धनिकों से भी अनुरोध करता हूँ कि वे अपने धन का इस शुभ कार्य में विनियोग करें। यह एक उत्तमोत्तम विनियोग है। इस कार्य में सहायक होना उनका कर्तव्य है। कार्य तो चलेगा ही और पूरा भी होगा।

डॉ० मोतीचन्द ने कहा—इतिहास लिखना एक कठिन कार्य है। इसके लिए साम्प्रदायिक संकुचित दृष्टि से दूर रहना पहली शर्त है। इतिहास और साम्प्रदायिकता साथ साथ नहीं चलते। इतिहास लिखने के लिए सर्वप्रथम हीरोडोटस ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाया। पौराणिकता का अंश मिश्रित करने से इतिहास विकृत हो जाता है। उससे सत्य पर पर्दा पड़ जाता है। इतिहास नीची वस्तु नहीं है। वह तो सत्य की खोज है। उसके लिए गालियाँ भी सुननी पड़ती हैं। राजतरंगिणी इतिहास का एक ज्वलन्त उदाहरण है। उसने उस समय की परिस्थिति का नग्न चित्र अंकित किया है।

इतिहास एक विज्ञान है। सत्य की जो अनवरत धारा बह रही है। उसमें जो शृङ्खला है, उसी का नाम इतिहास है।

जैन आगमों में सांस्कृतिक सामग्री भरी पड़ी है। इस दृष्टि से देखा जाय तो बौद्ध और वैदिक साहित्य से भी इसका महत्व अधिक है। भारतीय वेशभूषा का इतिहास लिखना हो तो छेदसूत्रों से विपुल सामग्री मिल सकती है। जैन भूगोल भी इतिहास निर्माण में बहुत सहायक है। उसमें आर्य जातियों तथा साढ़े पच्चीस आर्य देशों का जो वर्णन है वह ईसा से ३०० वर्ष पहले की स्थिति को प्रकट करता है। इसी प्रकार अनेक तालिकाएँ प्रच्छन्न इतिहास पर प्रकाश डालती हैं। जैन साहित्य में उपलब्ध बहुत से शब्द भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

जैन परंपरा का जन जीवन से गहरा सम्बन्ध रहा है। यह भी इसकी

विशेषता है। यक्षपूजा, नागपूजा आदि जैनेतर परम्पराओं के विषय में भी यह पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत करता है। किन्तु जैन पुस्तकालयों में भी जैन सामग्री अत्यल्प परिमाण में मिलती है।

प्रस्तुत योजना का ध्येय है कि जैन साहित्य एवं परम्परा का परिचय देने वाले आधारभत ग्रन्थ तैयार किए जायँ। यह कार्य सभी के सहयोग से साध्य है। इससे भारतीय इतिहास की एक टूटी हुई कड़ी जुड़ जाएगी।

श्री अगरचन्द जी नाहटा ने कार्य की सफलता चाहते हुए कहा—जैन साहित्य का इतिहास लिखने के लिए सर्वप्रथम प्रयत्न श्री मोहनलाल दलीचन्द देसाई ने किया। उन्होंने गुजराती में 'जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' लिखा। साथ ही 'जैन गुर्जर कवियो' के तीन भाग प्रकाशित किए। उनका परिश्रम वास्तव में प्रशंसनीय है। किन्तु उसके बाद भी अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हो चुके हैं। कम से कम ४०८ ग्रन्थ मेरे देखने में आ चुके हैं। जैन भण्डारों में विशाल सामग्री भरी हुई है। उसको प्रकाश में लाना आवश्यक है। प्रस्तुत योजना अत्यन्त उपयोगी है। मेरी मान्यता है कि मुनि श्री पुण्यविजय जी महाराज के सहयोग से हमें बहुत लाभ होगा। यह कार्य पूर्णतया सफल हो, यही कामना है।

डॉ० ए० एन० उपाध्ये ने अपना भाषण अंग्रेजी में देते हुए बताया—जैन साहित्य एक व्यापक शब्द है। इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। भारतीय संस्कृति के जितने पहलू हैं तथा उसकी अभिव्यक्ति जितनी भाषाओं में हुई है सभी को जैन साहित्य की महत्त्वपूर्ण देन है। केवल आगम ही नहीं संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, तामिल, तेलुगु, कन्नड़ आदि सभी भाषाओं में जैन साहित्य विपुल परिमाण में विद्यमान है। किन्तु अभी तक वह अन्धकार में पड़ा हुआ है। इसके लिए किसको दोष दिया जाय, यह चर्चा अप्रासङ्गिक है। अब सभी विद्वानों की दृष्टि में आ गया है कि भारतीय इतिहास के लिए जैन साहित्य का अनुशीलन आवश्यक है। इस दृष्टि से जैन साहित्य का भविष्य उज्ज्वल है। जब तक जैन साहित्य का अनुशीलन नहीं होता भारतीय इतिहास अधूरा रहेगा। एक सच्चे विद्वान् के सामने जैन एवं जैनेतर साहित्य का भेद नहीं होना चाहिए। उसे भारतीय साहित्य को समग्र दृष्टि से देखना चाहिए। फिर जैन साहित्य का उद्यान हमें वारसे में मिला है। यह एक सार्वजनिक उद्यान है। प्रत्येक व्यक्ति इसकी सुगन्ध ले सकता है। इसकी रक्षा का उत्तरदायित्व हम लोगों को सौंपा गया है। हम केवल इसके माली हैं।

मालिक तो समस्त विद्वत्समाज है। अपने को इसका मालिक समझना भूल है। जैन साहित्य विभिन्न भाषाओं में फैला हुआ है। इसमें अनेक विशाल-काय ग्रन्थ हैं। कई ग्रन्थों का सम्पादन भी हुआ है। मुनि श्री पुण्यविजय जी ने कल्पसूत्र का सम्पादन किया है। मुनि जिनविजय जी नें अनेक ग्रन्थ सम्पादित किए हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने भी कुछ कार्य किया है। किन्तु फिर भी बहुत बाकी है। सामग्री बहुत अधिक है। बहुत से ग्रन्थ तो अभी तक हस्तलिखित ही पड़े हैं। उनके उद्धार के लिए जितने प्रयत्न हों थोड़े हैं। यदि हम शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से इस कार्य को उठाएँगे तो आने वाली सन्तति को कम से कम इतना तो बता सकेगें कि हमने ठीक दिशा की ओर प्रयत्न किया है। हमें इस महान् कार्य को पूर्ण करने की योग्यता प्राप्त हो।

इसके पश्चात् पहली समास्या समाप्त हुई।

दूसरी समास्या दिन के तीन बजे रूपरेखा के सम्बन्ध में विचार विनिमय के लिए प्रारम्भ हुई। सभापति का स्थान मुनि श्री जिनविजय जी ने सुशोभित किया।

डॉ० इन्द्रचन्द्र ने प्रस्तावित रूपरेखा पढ़कर सुनाई और उसमें नीचे लिखे सुधार किए गए—

(१) भाग १, खण्ड १, उपखण्ड २ के अध्याय ४ (छः छेदसूत्र) की पृष्ठ संख्या ४० से बढ़ा कर १२५ कर दी गई। तदनुसार द्वितीय उपखण्ड (मल आगम) की पृष्ठ संख्या ३८५ से बढ़ाकर ४७० कर दी गई।

(२) तृतीय उपखण्ड में अध्यायों की पृष्ठ संख्या नीचे लिखे अनुसार परिवर्तित की गई—

(१) अध्याय—४०
(२) अध्याय—२००
(३) अध्याय—१५०

(३) हिन्दी साहित्य के लिए श्री अगरचन्द जी नाहटा सम्पादक चुनें गए। लेखन के लिए वे अपने सहयोगी को स्वयं चुन सकेंगे।

(४) गुजराती साहित्य के लिए श्री अगरचन्द जी नाहटा और प्रो० एच० सी० भायाणी सम्पादक चुने गए।

(५) राजस्थानी के लिए श्री नाहटा जी सम्पादक चुने गए।

(६) गुजराती और राजस्थानी के लेखन के लिए निश्चय हुआ कि १३ वीं से १६ वीं शताब्दी तक दोनों भाषाओं का इतिहास सम्मिलित

रहे। उसे डॉ० प्रबोध पण्डित और नाहटा जी लिखें। १७ वीं से १९ वीं तक के गुजराती साहित्य को प्रो० भायाणी तथा राजस्थानी को श्री नाहटा जी लिखें।

(७) कन्नड जैन साहित्य की पृष्ठ संख्या ४० से बढ़ा कर ७५ कर दी गई।

(८) इसी प्रकार तामिल की पृष्ठ संख्या भी ७५ कर दी गई।

(९) तामिल साहित्य का इतिहास लिखने के लिए निश्चय हुआ कि डॉ० राघवन तथा श्री पिल्ले के पास प्रो० चक्रवर्ती द्वारा लिखित इतिहास को भेजकर ठीक करवा लिया जाय और फिर उसका हिन्दी अनुवाद कर लिया जाय।

(१०) लेखन कार्य सम्पूर्ण करने की अन्तिम अवधि दिसम्बर १९५४ से बढ़ाकर १९५५ कर दी गई।

(११) जीवन परिचय तथा ग्रन्थ परिचय के लिए निश्चय हुआ कि ऐसे आधारों का निर्देश किया जाय जो किसी तथ्य को प्रकट करने वाले हों।

(१२) लेखन पूर्ण हो जाने पर एक प्रधान सम्पादक चुना जाएगा जो समस्त ग्रन्थ को आद्योपान्त देख जाएगा और विसंगतियाँ दूर कर देगा। वह अपनी इच्छानुसार किसी को सहायक रूप में ले सकेगा।

उपसमितियाँ

(१३) कार्य संचालन के लिए नीचे लिखी उपसमितियाँ बनाई गईं—

व्यवस्था समिति

१. डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल (अध्यक्ष)
२. लाला हरजसराय जैन (पदेन)
३. पं० बेचर दास जी
४. श्री अगरचन्द जी नाहटा
५. पं० कृष्णचन्द्राचार्य
६. प्रो० दलसुखभाई मालवणिया—मन्त्री
७. डॉ० इन्द्रचन्द्र—संयुक्त मन्त्री

परामर्श समिति

१. पूज्य आत्माराम जी महाराज
२. मुनि अमरचन्द्र जी महाराज

३. मुनि पुण्यविजय जी महाराज
४. आचार्य जिन विजय जी
५. पं० सुखलाल जी
६. प्रो० ए. एन. उपाध्ये
७. डॉ० पी. एल. वैद्य
८. डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल
९. डॉ० मोतीचन्द

सम्पादक समिति

१. पं० बेचरदास जी
२. डॉ० हीरालाल जैन
३. पं० लालचन्द भगवान दास
४. प्रो० एच. सी. भायाणी
५. श्री अगरचन्द जी नाहटा
६. डॉ० प्रबोध पण्डित
७. प्रो० दलसुखभाई मालवणिया
८. के० भुजबली शास्त्री
९. डॉ० भोगीलाल सांडेसरा

(१४) व्यवस्था समिति सम्पादक समिति के सुझाव के अनुसार कार्य करेगी ।

(१५) पारिश्रमिक के लिए निश्चय हुआ कि रायल अठपेजी (२०×२६−$\frac{१}{८}$) के प्रतिपृष्ठ का ५) रु० रहेगा ।

(१६) पुस्तक के मूलपाठ का टाइप १२ पाइंट तथा टिप्पणियों का ८ पाइंट रहेगा ।

(१७) व्यवस्थापक समिति के प्रमुख को मुद्रण और प्रकाशन से सम्बन्ध रखने वाली समस्त व्यवस्था का अधिकार रहेगा ।

(१८) सरित्कुंज के मालिक सेठ रसिक लाउ माणिक लाल तथा मेहता श्री भाईलाल भाई को धन्यवाद दिया गया जिन्होंने विद्वन्मण्डल की बैठक के लिए पूरी सुविधाएँ प्रदान की ।

अध्यक्ष तथा उपस्थित सदस्य एवं अन्य विद्वानों को धन्यवाद के पश्चात् सभा विसर्जित हुई ।

जैन साहित्य के संकेत चिन्ह

इन्द्र

सू. सूत्र (मूल आगम)
नि. निर्युक्ति
भा. भाष्य
चू. चूर्णी
टी. टीका
अव. अवचूरि
दी. दीपिका
ट. टबा
वच. वचनिका

आगम

अंगचू. अंगचूलिया
अंगवि. प्र. अंगविद्या प्रकीर्णक १. अध्याय २. गाथा
अजी. प्र. अजीवकल्प प्रकीर्णक
अनुत्त. सू. अनुत्तरौपपातिक सूत्र १. वर्ग २. अध्ययन
अनुयो. सू. अनुयोगद्वार सूत्र १. द्वार २. सूत्र
अन्त. सू. अन्तकृद्दशाङ्ग सूत्र १. वर्ग २. अध्ययन
आचा. सू. आचाराङ्ग सूत्र १. श्रुतस्कंध २. अध्ययन ३. उद्देश
आतु. प्र. आतुरप्रत्याख्यान प्रकीर्णक १. गाथा
आरा. प्र. आराधना पताका प्रकीर्णक
आव. सू. आवश्यक सूत्र १. अध्ययन
उत्त. सू. उत्तराध्ययन सूत्र १. अध्ययन २. गाथा
उपा. सू. उपासक दशांग सूत्र १. अध्ययन
ऋषि. प्र. ऋषिभाषित प्रकीर्ण १. अध्ययन
ओघ नि. सू. ओघ निर्युक्ति १. द्वार २. गाथा
औप. सू. औपपातिक सूत्र १. सूत्र
कल्प. सू. कल्पसूत्र
कल्पा. सू. कल्पावतंसिका सूत्र
कल्पि. सू. कल्पिका सूत्र
कवच. प्र. कवच प्रकरण

कषा. प्रा. कषाय प्राभृत
गच्छा. प्र. गच्छाचार प्रकीर्णक
गणि. प्र. गणिविद्या प्रकीर्णक
चतुः प्र. चतुः शरण प्रकीर्णक १. गाथा
चन्द्र. सू. चन्द्र प्रज्ञप्तिसूत्र
चन्द्रवे. प्र. चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक
जम्बू. सू. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति १. वक्षस्कार
जम्बू. प्र. जम्बू पयन्ना
जी. क. सू. जीतकल्पसूत्र
जीवविं. प्र. जीवविभक्ति प्रकीर्णक
जीवा. सू. जीवाभिगम सूत्र १. प्रतिपत्ति
ज्ञा. सू. ज्ञाताधर्मकथा सूत्र १. श्रुतस्कंध २. ज्ञात
ज्योति. प्र. ज्योतिष्करण्डक प्रकीर्णक
तन्दु. प्र. तन्दुल वैचारिक प्रकीर्णक १. गाथा
तिथि प्र. तिथिप्रकीर्णक
तीर्थो. प्र. तीर्थोद्धार प्रकीर्णक
दश. सू. दशवैकालिक सूत्र १. अध्ययन २. गाथा तथा चू. (चूलिका) १. गाथा
द. श्रु. सू. दशाश्रुत स्कन्ध १. दशा २. सूत्र
देवे. प्र. देवेन्द्रस्तव प्रकीर्णक १. गाथा
द्वीप. प्र. द्वीपसागर प्रज्ञप्ति प्रकीर्णक १. गाथा
नन्दी सू. नन्दी सूत्र १. सूत्र
निरया. सू. निरयावलिका १. वर्ग २. अध्ययन
निशी. सू. निशीथ सूत्र १. उद्देश
पर्य. प्र. पर्यन्ताराधना प्रकीर्णक
पिंडनि. सू. पिंडनिर्युक्ति सूत्र
पिंडवि. प्र. पिण्डविशुद्धि प्रकीर्णक
पु चू सू पुष्पचूलिक सूत्र १. अध्ययन
पुष्पि सू. पुष्पिकासूत्र १. अध्ययन
प्रज्ञा. सू. प्रज्ञापना सूत्र १. पद
प्रश्न. सू. प्रश्नव्याकरण सूत्र १. द्वार २. अध्ययन
भक्त. प्र. भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक १. गाथा

भग. सू. भगवती सूत्र १. शतक २. उद्देश
बृह. सू. बृहत्कल्प सूत्र १. उद्देश
मरण. प्र. मरणसमाधि प्रकीर्णक १. गा
महानि. सू. महानिशीथ सूत्र १. अध्ययन
म. प्रत्या. प्र. महाप्रत्याख्यान प्रकीर्णक १. गाथा
योनि प्रा. योनिप्राभृत
राज. सू. राजप्रश्नीय सूत्र १. सूत्र
वग्गचू. सू. वग्गचूलिया सूत्र
विपाक सू. विपाक सूत्र १. श्रुतस्कंध २. अध्ययन
विशे. भा. विशेषावश्यकभाष्य १. गाथा
वीर प्र. वीरस्तव प्रकीर्णक
वृद्ध. प्र. वृद्ध चतुःशरण प्रकीर्णक
वृष्णि. सू. वृष्णिदशा सूत्र
व्यव. सू. व्यवहार सूत्र १. उद्देश
षट्ख. षट्खण्डागम
संस्ता. प्र. संस्तारक प्रकीर्णक
सम. सू. समवायाङ्ग सूत्र सू.
सारा. प्र. सारावलि प्रकीर्णक
सि प्रा. प्र. सिद्ध प्राभृत प्रकीर्णक
सूत्र कृ. सूत्रकृतांग सूत्र १. श्रुतस्कंध २. अध्ययन ३. उद्देश ४. गाथा या सूत्र
सूर्य प्र. सूर्यप्रज्ञप्ति सूत्र १. प्राभृत २. प्राभृतप्राभृत
स्था. सू. स्थानाङ्ग सूत्र १. स्थान २. सूत्र

पत्र पत्रिकाएँ—

अड्यार ला. बुलेटिन अडयार लाइब्रेरी बुलेटिन
अनेकान्त अनेकान्त वीर सेवा मन्दिर सरसावा जि० सहारनपुर
आ. पाथ आर्यन पाथ
इं. कल. इंडियन कलचर, इंडियन रिसर्च इंस्टिटयूट कलकत्ता
इं. रिव्यू इंडियन रिव्यू
इं. हि. का. इंडियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली

ईबु. रा. ए. सो. बं. ईयरबुक ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल
ऐन. भांडा. इं. ऐनल्स ऑफ दि भाण्डारकर ओरिएण्टल रिसर्च इंस्टिट्यूट पूना
ओ. ला. डा. ओरिएण्टल लाइब्रेरी डाइजेस्ट
कर्ना. हि. रि. कर्नाटक हिस्टोरिकल रिव्यू
कल्याण कल्याण, गोरखपुर
ज. अन्न. यू. जर्नल ऑफ अन्नमलाई यूनिवर्सिटी
ज. आन्ध्र. हि. सो. जर्नल ऑफ आन्ध्र हिस्टोरिकल रिसर्च सोसायटी
ज. इं. हि. मद्रास जर्नल ऑफ इंडियन हिस्ट्री मद्रास
ज. ओ. रि. मद्रास जर्नल ऑफ ओरिएण्टल रिसर्च मद्रास
ज. बनारस हिं. यू. जर्नल ऑफ बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी
ज. यू. बम्बई जर्नल ऑफ दी यूनिवर्सिटी ऑफ बम्बई
ज. रा. ए. सो. बम्बई जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी बम्बई
ज. बि. ओ. सो. जर्नल ऑफ बिहार एण्ड ओरिसा सोसायटी पटना
ज. यू.पी. हि. सो. जर्नल ऑफ दी युनाइटेड प्रोविंसेज़ हिस्टोरिकल सोसायटी
ज. पंजाब यू. हि. सो. जर्नल ऑफ दी पंजाब यूनिवर्सिटी हिस्टोरिकल सोसायटी
ज. रा. ए. सो. जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड
ज. रा. ए. सो. बंगाल जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल
जै. ग. अं. जैन गजट, (अंग्रेजी) लखनऊ
जै. ग. हिं. जैन गजट (हिन्दी)
जै. ध. प्र. जैन धर्म प्रकाश
जै. भा. जैन भास्कर
जै. मि. जैन मित्र
जैन युग जैन युग बम्बई
जै. स. प्र. जैन सत्य प्रकाश
जै. सन्दे. जैन सन्देश, आगरा
जै. सा. सं. जैन साहित्य संशोधक अहमदाबाद
जै. सि. भा. जैन सिद्धान्त भास्कर, आरा
जै. हि. जैन हितैषी
ज्ञानोदय ज्ञानोदय, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी,
ना. प्र. प. नागरी प्रचारिणी पत्रिका

न्यू. इं. एंटि. न्यू इंडियन एंटिक्वेरी
पण्डित पण्डित, बनारस
पुरातत्त्व पुरातत्त्व, अहमदाबाद
पू. ओ. दी पूना ओरिएण्टलिस्ट
प्र. भारत प्रबुद्ध भारत,
प्रस्थान प्रस्थान कार्यालय, अहमदाबाद
बंगाल पा. प्रे. बंगाल पास्ट एण्ड प्रेजेण्ट, कलकत्ता हिस्टोरिकल सोसायटी
बु. प्र. बुद्धि प्रकाश
बुले. रा. इं. कोचीन बुलेटिन ऑफ श्रीराम वर्मा रिसर्च इंस्टिटयूट, कोचीन
बुले. ओ. स्ट. लन्दन बुलेटिन ऑफ दी स्कूल ऑफ ओरिएण्ट स्टडीज लन्दन
भा. इ. सं. मं. भारत इतिहास संशोधक मण्डल
मयू. क्रा. मयूरभंज क्रानिकल
महाबोधि जर्नल ऑफ महाबोधि सोसायटी, कलकत्ता
मा. रिव्यू माडर्न रिव्यू
माधुरी माधुरी, लखनऊ
रा. भारती राजस्थान भारती
ल्यूज. लि. ल्यूजक्स ओरिएण्टल लिस्ट एण्ड बुक रिव्यू क्वार्टरली
विशा. भा. विशाल भारत, कलकत्ता
वेदा. के. वेदान्त केसरी
श्रमण श्रमण पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस
सरस्वती सरस्वती, इलाहाबाद
सि. भा. सिद्ध भारती
हा. ज. ए. स्ट. हार्वर्ड जर्नल ऑफ एशियाटिक स्टडीज
हिं. अनु. हिन्दी अनुशीलन, इलाहाबाद

परिशिष्ट

(१) ज. मि. सोसा. जर्नल ऑफ मिथिक सोसायटी
(२) न्यू. एशिया
(३) सा. सन्दे. साहित्य सन्देश, आगरा
(४) दि. जै. दिगम्बर जैन
(५) जै. बन्धु जैन-बन्धु

(६) ख. जै. हिते. खण्डेलवाल जैन हितेच्छु
(७) वीर वीर, देहली
(८) मै. महा.सं. पत्रिका मैसूर महाराज संस्कृत महापाठशाला पत्रिका
(९) प्र. कर्ना. प्रबुद्ध कर्नाटक
(१०) कन्न. सा प. पत्रिका कन्नड साहित्य परिषत्पत्रिका
(११) ज. कर्ना. जय कर्नाटक
(१२) अ. प्रका. अध्यात्म प्रकाश
(१३) श. सा. शरण साहित्य
(१४) विवे. विवेकाभ्युदय
(१५) वी वा. वीर वाणी

ग्रन्थमालाएँ

अ. ज्ञा. प्र. मण्डल अध्यात्म ज्ञान प्रसारक मण्डल, वादरा गुजरात
अ. सं. बीकानेर अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर
अ.की. दि. ग्र. बम्बई मुनि अनन्तकीर्ति दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, बम्बई
अभ. ग्र. बीकानेर अभयदेवसूरि ग्रन्थमाला, बीकानेर
अम्बा दि. ग्र.कारंजा अम्बादास चवरे दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, कारंजा
आग. स. आगमोदय समिति, अहमदाबाद
आ. ति. ग्र सो. अहमदाबाद आत्मतिलक ग्रन्थ सोसायटी, अहमदाबाद,
आ. वी. स. भावनगर आत्मवीर सभा, अहमदाबाद
आ. ज. श. ट्रस्ट आत्मानन्द जन्म शताब्दी स्मारक ट्रस्ट, बम्बई
आ. जै. पु. देहली आत्मानन्द जैन पुस्तक प्रचारक मण्डल, देहली
आ. जैन. पु. आगरा आत्मानन्द जैन पुस्तक प्रकाशक मण्डल, आगरा
आ. जै. अम्बाला आत्मानन्द जैन महासभा, अम्बाला
आ. जै. भावनगर आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर
एस. जे. शाह एस. जे. शाह, मादलपुर अहमदाबाद
का. त. सि. बम्बई कान्ति तत्त्वज्ञान सिरीज, बम्बई
के. जै. ज्ञा. पाटण केसरबाई जैन ज्ञान मन्दिर, पाटण
ख.ग.ग्र. खरतरगच्छ ग्रन्थमाला
गां. ना. जै. ग्र. बम्बई गांधी नाथारंग जैन ग्रन्थमाला
गुज. वि. पीठ गुजरात विद्यापीठ अहमदाबाद

गुर्ज. वि. सभा गुजरात विद्यासभा, भद्र अहमदाबाद
गुर्जर. ग्र. का. गुर्जरग्रन्थरत्न कार्यालय, अहमदाबाद
चारि. ग्र. श्री चारित्र स्मारक ग्रन्थमाला
चि. सां. मार. बम्बई चिमनलाल सांकलचन्द मारफतिया, बम्बई
चौ. सं. सि. बनारस चौखम्भा संस्कृत सिरीज बनारस
जयध. का. बनारस जयधवला कार्यालय भदैनी बनारस
जिन. पु. भं. सूरत जिनदत्त सूरि पुस्तक भण्डार, सूरत
जी. घे. अहमदाबाद डॉ० जीवराज घेलाभाई दोशी, अहमदाबाद
जी. जै. ग्र. शोलापुर जीवराज जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर
जेसिं. छो. सू. अहमदाबाद जेसिंगलाल छोटालाल सूतरिया, अहमदाबाद
जै. अ. से. सोनगढ़ जैन अतिथि सेवा समिति, सोनगढ़
जै. ग्र. प्र. सभा, अहमदाबाद श्री जैन ग्रन्थ प्रकाशक सभा, अहमदाबाद
जै. ग्र. का. बम्बई जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई
जै. ज्ञा. मन्दिर जैन ज्ञानमन्दिर, लिंच
जै. प्रा. सा. ग्र. अहमदाबाद जैन प्राचीन साहित्योद्धारक ग्रन्थमाला
जै. ध. प्र. स. भावनगर जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर
जै. प्र. प्रिं. रतलाम जैन प्रभाकर प्रिंटिंग प्रेस, रतलाम
जै. विद्या. अहमदाबाद जैन विद्याशाला, अहमदाबाद
जै. शा. का. लाहौर जैनशास्त्रमाला कार्यालय, लाहौर
जै. श्वे. सं. रतलाम जैन श्वेताम्बर संस्था, रतलाम
जै. सं. संशो. काशी जैन संस्कृति संशोधन मण्डल, काशी
जै. सि. प्र. सं. कलकत्ता जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी संस्था कलकत्ता
जै. सि. प्र. म. देवबन्द जैन सिद्धान्त प्रचारक मण्डली देवबन्द
जै. सि. भ. आरा जैन सिद्धान्त भवन आरा
जै. श्रे. मं. म्हेसाणा जैन श्रेयस्कर मण्डल, म्हेसाणा
जै. श्वे. मि. ला. जयपुर जै. श्वे. मित्र मण्डल लायब्रेरी, जयपुर
ज्ञा. प्र. म. बम्बई ज्ञान प्रसारक मण्डल, बम्बई
झ. मू. ही. बम्बई झवेरी मूलचन्द्र हीराचन्द, बम्बई
[illegible] अहमदाबाद डाह्याभाई रायचन्द्र मेहता, अहमदाबाद
दि. जै. अ. [illegible] महावीरजी दिगम्बर जैन अतिशयक्षेत्र, महावीरजी
दे. मू. बम्बई [illegible]रण मूल जी, बम्बई

दे. ला. जै. पु. बम्बई देवचन्द्र लाल भाई जैन पुस्तकोद्धार फंड, बम्बई
दे. दि. जै. ग्र. कारंजा देवेन्द्र कीर्ति दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, कारंजा
ना. प्र. सभा काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
निर्ण. सा. प्रे. निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
न्यू. बु. कं. बम्बई न्यू बुक कम्पनी, बम्बई
प. श्रु. प्र. बम्बई परम श्रुत प्रभावक मण्डल, बम्बई
पुरा. म. अह. पुरातत्त्व मन्दिर ग्रन्थावली, अहमदाबाद
पुंजा. जै. ग्रं. अहम. पूंजाभाई जैन ग्रन्थमाला कार्यालय, अहमदाबाद
फ. के. सूरत सेठ फकीरचन्द केलाभाई, सूरत
बा. गो. बम्बई बावचन्द गोपाल जी, बम्बई
बिब्लो. इं. कल. बिब्लोथिका इंडिका, कलकत्ता
भग. ह अहम. पं० भगवानदास हरखचन्द
भाण्डा. रि. इं. पूना भाण्डारकर रिसर्च इंस्टिट्यूट, पूना
भार. ज्ञा. पीठ भारतीय ज्ञान पीठ, बनारस
भी. मा. बम्बई भीमशी माणेक, बम्बई
भू. का. अहम. पं० भूरालाल कालीदास, अहमदाबाद
मन. पो. अहम. मनसुख भाई पोखाड़, अहमदाबाद
मन. ता. मे. बम्बई मनसुखलाल ताराचन्द मेहता, बम्बई
मन. र. मे. बम्बई मनसुखलाल रवजी भाई मेहता, बम्बई
महा. वि. बम्बई महावीर विद्यालय, बम्बई
मा. दि. जै. ग्रं. माणिक चन्द दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला,
मुक्ति. जै. मो. बड़ोदा श्री मुक्तिकमल जैन मोहनमाला, बड़ोदा
मेह.. ल. लाहौर मेहरचन्द लक्ष्मणदास, लाहौर
मो. ब. लाहौर मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर
मो. ला. पूना मोतीलाल ला[illegible]जी, पूना
मो. जै. ग्रं. बम्बई मोहनलाल जी जैन ग्रंन्थमा[illegible], बम्बई
[illegible]शो. जै. ग्रं. यशोविजय जैन ग्रन्थमाल[illegible]
रा[illegible] पु. मं राजस्थान पुरातत्त्व म[illegible]र, जयपुर
राय. जै. शा. बम्बई रायचन्द्र जैन शास्त्रमाला, [illegible]
लांग[illegible] ग्री. बम्ब[illegible] [illegible]नैन ग्रीन एण्ड को, बम्बई
व. के. प्रे. अहम. वकील केशवलाल प्रेमचन्द, अहम[illegible]

चन्द्र. द. बम्बई वन्द्रावन दास दलाल, कोट बम्बई
वि. दा. ग्रं. सूरत विजयदान सूरीश्वर जैन ग्रन्थमाला, सूरत
वि. ध. ज्ञा. आगरा विजयधर्म लक्ष्मीज्ञान मन्दिर, बेलन गंज आगरा
वि. नी. जै. लाय. विजयनीति सूरीश्वर जैन लायब्रेरी
वि. व. ज्ञा. मं. कोटा विजयवल्लभसूरीश्वर ज्ञानमन्दिर, कोटा
वि. भ. सु. ग्रं. विनय भक्ति सुन्दर चरण ग्रन्थमाला,
वी. शा. सं. कलकत्ता वीर शासन संघ, कलकत्ता
वी. से. मं. सरसावा वीरसेवा मन्दिर, सरसावा
श्वे. जै. कान्फ. श्वेताम्बर जैन कान्फरेंस, बम्बई
श्वे. स्था. कान्फ. श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फरेंस,
सखा. ने. जै. शोलापुर सखाराम नेमिचन्द जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर
स. ज्ञा. पी. आगरा सन्मति ज्ञान पीठ, आगरा
स. सु. ओराण सन्मति सुमनमाला, ओराण (गुजरात)
सारा. न. अहम. साराभाई नवाब, अहमदाबाद
सा. र. का. बम्बई साहित्य रत्न कार्यालय, बम्बई
सिंघी ग्रं. सिंघी जैन ग्रंथमाला,
सिंघी. शा. पीठ, बम्बई सिंघी जैन शास्त्र शिक्षापीठ, बम्बई
सिद्ध. सा. स. सूरत सिद्धचक्र साहित्य प्रसारक समिति, सूरत
सुख. ज्वा. महेन्द्रगढ़ राजा सुखदेव सहाय ज्वाला प्रसाद जौहरी, महेन्द्रगढ़
सेक्रे. बु. ई. सेक्रेड बुक ऑफ द ईस्ट
सेठि. जै. ग्रं. बीकानेर सेठिया जैन ग्रन्थमाला, बीकानेर
हरि. माला. हरितोष माला
ह. भू. ध. प्रे. बनारस हर्षचन्द्र भूराभाई धर्माभ्युदय प्रेस, बनारस
हि. श्राव. रतलाम श्री हितेच्छु श्रावकमण्डल, रतलाम
हि. सा. स. प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
ही. हं. जामनगर श्रावक हीरालाल हंसराज, जामनगर

विद्याश्रम समाचार

जैन साहित्य का इतिहास

जैन साहित्य कितना विशाल और महत्त्व का है, इस तथ्य का पता विद्वानों को लगता जा रहा है। अतः वे इस बात के लिए आतुर हैं कि जैन साहित्य प्रकाश में लाया जाए। समग्र साहित्य कब छप सकेगा, यह अभी दूर की बात है। फिर भी विद्वानों को मुद्रित व अमुद्रित साहित्य का परिचय मिल सके, यही बड़ी बात है। खासकर रिसर्च कार्य करने वालों के लिए इसकी [illegible]ष उपयोगिता है। इन्हीं विचारों को लेकर डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल जी ने सन् १९५२ के मार्च में 'जैन साहित्य निर्माण योजना' का विचार श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम के संचालकों के सामने रखा था। जो सबको जँचा। जैन साहित्य निर्माण योजना में महत्त्व के कई समयोपयोगी ग्रन्थों के नि[illegible] लक्ष्य है। जिसके लिए कम से कम पाँच लाख रुपये की आवश्यकता पड़ेगी। विद्याश्रम के पास अभी इतना फन्ड नहीं, और न जैन समाज ने इस कार्य के महत्त्व को ही आँका है। फिर भी विद्याश्रम की संचालिका श्री सोहनलाल जैन प्रचारक समिति, अमृतसर ने 'जैनसाहित्य का इतिहास' नामक ग्रन्थ के निर्माण के लिए पचीस हजार रुपया निश्चित कर दिया है। ग्रन्थ के लेखन और प्रकाशन पर लगभग पचास हजार रूपया खर्च आएगा। यह सारा बोझ जैन समाज को उठाना है, इसमें संदेह नहीं।

जिसदिन तीन हजार पृष्ठ का यह विशाल काय ग्रन्थ चार जिल्दों में छपकर सबके सामने आएगा, उस दिन विद्वानों को कितना हर्ष होगा, उसका अन्दाजा ही लग सकता है। इस ग्रन्थ में ढाई-तीन हजार वर्ष में जो जैन साहित्य प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती तथा तामिल, तेलगु, कन्नड़ आदि भाषाओं में बना है, उसका सर्वांगपूर्ण संक्षिप्त विवरण रहेगा। जिससे कोई भी विद्वान किसी भी ग्रन्थ के विषय में [illegible]खक, समय तथा विषयादि के बारे में प्रामाणिक पता लगा सकेगा।

विद्वन्मंडल का अधिवेशन

उक्तग्रन्थ की पूर्व तैयारी करीब एक साल से [illegible]ल रही थी। उसकी पूर्व रेखा [illegible] चुकी थी। उसे अन्तिम रूप देने के लिए [illegible] ओरियन्टल [illegible]को कान्फ[illegible]स से एक दिन पहले अहमदाबाद में ता० २[illegible] विद्व[illegible]मण्डल का अधिवेशन हुआ। जिसमें जैन सम[illegible]

उपस्थित थे। प्रातः मुनि श्री पुण्यविजय जी, दोपहर को आचार्य श्री जिन विजय जी की अध्यक्षता में 'जैन साहित्य के इतिहास' की योजना व पूर्वरेखा को अन्तिम निश्चित रूप दिया गया। कार्य संचालन के लिए एक व्यवस्था समिति बनी है। जिसके अध्यक्ष डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल तथा मंत्री श्री दलसुख मालवणिया, संयुक्त मंत्री डॉ० इन्द्रचन्द्र जी शास्त्री हैं। आशा है विद्वान लेखक तथा जैन समाज इस कार्य में पूरे उत्साह से सहयोग देंगे। जिससे यह कार्य सुचारु रूप से संपन्न होकर शीघ्र ही विद्वानों के सामने आ सके।

जैन साहित्य का इतिहास संबन्धी पत्र व्यवहार के लिए पते

१. श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस–५ (प्रधान कार्यालय)

२. डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस–५ (अध्यक्ष)

३. श्री दलसुख मालवणिया F/3 बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस–५ (मंत्री)

४. डॉ० इन्द्रचन्द्र शास्त्री, रामजस कालेज, दरियागंज, देहली (संयुक्त मंत्री)

—कृष्णचन्द्राचार्य

सन्मति डायरी—

सम्पादक—मुनि श्री अखिलेश जी महाराज, मुनि सुरेशचंद्र शास्त्री साहित्य-रत्न। प्राप्तिस्थान—सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामंडी, आगरा। पक्की सुनहरी जिल्द—मूल्य १)

इस वर्ष डायरी में वि० सं० के अतिरिक्त वीर सं० भी दिये जाने के साथ ही साथ सौर मास भी दिया गया है, जिससे उत्तर भारत के व्यक्तियों के लिए डायरी का महत्त्व अधिक बढ़ गया है। प्रत्येक पृष्ठ पर सूर्योदय और सूर्यास्त के समय के साथ [illegible] वर्धमान महावीर की वाणी मूल प्राकृत में और उसका हिन्दी भावार्थ दिया गया है। अंत में डाक, तार, रेलवे संबंधी जानकारी, वेतन का नकशा और छुट्टियों की तालिका भी दी गई है। हमें आशा ही नहीं, विश्वास है [illegible] इस सामायिक, उपादेय और सर्वाङ्ग सुन्दर प्रय[illegible] का [illegible]

[illegible]

—महेन्द्र '[illegible]जा'

नम्र अनुरोध

जैन साहित्य के सर्वांगीण इतिहास की योजना का आरंभिक विचार लगभग एक वर्ष पहले काशी में हुआ था। वह अनेक विद्वानों द्वारा प्रोत्साहन और सहयोग का आश्वासन पाकर वृद्धि को प्राप्त हुआ। अब अहमदाबाद के विद्वत्सम्मेलन में उसके सम्बन्ध में अन्तिम निश्चय किया जा चुका है। सम्मेलन में उपस्थित विद्वानों ने एकमत होकर यह निर्णय किया है कि जैन साहित्य का यह इतिहास चार खंडों में और लगभग तीन सहस्र पृष्ठों में दो वर्ष के भीतर समाप्त हो जाना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि लेखक और संपादक महानुभाव कृतसंकल्प होकर अपना-अपना स्वीकृत कार्य दिसम्बर १९५५ के अन्त तक अथवा सुविधानुसार उससे पूर्व भी तैयार कर लें, जिससे १९५६ में यह ग्रन्थ छप कर पाठकों के सम्मुख आ सके। जैन साहित्य की गवेषणा के क्षेत्र में इस प्रकार का प्रयत्न अभूतपूर्व है। इसका आधार विद्वानों के पारस्परिक सहयोग की नींव पर रखा गया है। प्रत्येक लेखक और संपादक की कर्तव्यनिष्ठा इस शृंखला के बल की कड़ी है जिससे अन्तिमकार्य की सिद्धि संभव होगी। यह सत्य नितान्त स्पष्ट है। समस्त लेखक और संपादक महानुभावों से मेरा नम्र अनुरोध है कि वे इस प्रयत्न की सिद्धि को अपनी ही विजय मानकर कार्यपरायण होने की कृपा करें। जो कार्य उठाया गया है, उसे पूरा करना है यह सबका बीजमंत्र है।

अध्यायों को लिखते समय लेखकों को जो प्रष्टव्य हो, अथवा किसी बात का स्पष्टीकरण करना हो, तो उसके सम्बन्ध में निःसंकोच होकर वे कृपापूर्वक अपने खंड के संपादक को या श्री दलसुख भाई मालवणिया को या श्री [illegible]चन्द्र जी को, अथवा मुझे सीधे पत्र लिखें। लेखकों के मार्ग में जो कठिनाइयाँ होंगी, उन्हें दूर करने का प्रयत्न किया जायगा। योजना का प्रधान कार्यालय काशी में निम्न पते पर रहेगा—

श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम

बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, ब[illegible]

वा[illegible]रण

श्री [illegible]हनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति, अमृतसर के

सांस्कृतिक अनुष्ठान

पार्श्वनाथ विद्याश्रम बनारस का

विकास कथा

१. श्री सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति की स्थापना सन्	१९३६
२. पार्श्वनाथ विद्याश्रम का उद्घाटन	जुलाई १९३७
३. श्री शतावधानी रत्नचन्द्र जैन पुस्तकालय	जुलाई १९३८
४. प्रथम एम.ए. श्री रत्नचन्द्र जैन	मई १९३९
५. प्रथम आचार्य, श्री कृष्णचन्द्र	मई १९४३
६. अनुशीलनपीठ का प्रारम्भ	जुलाई १९४८
७. 'श्रमण' (मासिक पत्र) का प्रारम्भ	नवम्बर १९४९
८. प्रथम डॉक्टर (Ph.D.), श्री इन्द्र चन्द्र एम.ए.,	दिसम्बर १९५२
९. जैन साहित्य निर्माण योजना	जनवरी १९५३
१०. विद्वद्व्याख्यान माला	सितम्बर १९५३
११. विद्वन्मण्डल का प्रथम अधिवेशन	अक्टूबर १९५३

'श्रमण' का पञ्चम वर्ष नवम्बर १९[illegible]३ से प्रारम्भ हो चुका है। आज ही इस सांस्कृतिक मासिक के ग्राहक बनें।

व्यवस्थापक

[illegible] पार्श्वनाथ वि[illegible]श्रम, बनारस—५

[illegible] टी प्रेस, बनारस